अनुयोगद्वार सूत्र

(शुद्ध मूल पाठ, कठिन शब्दार्थ, भावार्थ एवं विवेचन सहित)

प्रकाशक

श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन
संस्कृति रक्षक संघ, जोधपुर
शाखा-नेहरू गेट बाहर, ब्यावर-३०५९०१
☎ (०१४६२) २५१२१६, २५७६९९

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ साहित्य रत्न माला का १२४ वाँ रत्न

अनुयोगद्वार सूत्र

(शुद्ध मूल पाठ, कठिन शब्दार्थ, भावार्थ एवं विवेचन सहित)

सम्पादक

नेमीचन्द बांठिया

पारसमल चण्डालिया

अनुवादक

प्रो० डॉ० छगनलाल शास्त्री

एम. ए. (त्रय), पी. एच.डी., काव्यतीर्थ, विद्यामहोदधि

डॉ० महेन्द्रकुमार रांकावत

बी.एस.सी. एम. ए., पी. एच. डी.

प्रकाशक

श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, जोधपुर

शाखा-नेहरू गेट बाहर, ब्यावर-३०५९०१

☎ (०१४६२) २५१२१६, २५७६९९ फेक्स नं. २५०३२८

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्रव्य सहायक

उदारमना श्रीमान् सेठ जशवंतलाल भाई शाह, बम्बई

प्राप्ति स्थान

१. श्री अ. भा. सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, सिटी पुलिस, **जोधपुर** ☏ २६२६१४५

२. शाखा-अ. भा. सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, नेहरू गेट बाहर, **ब्यावर** ☏ २५१२१६

३. महाराष्ट्र शाखा-माणके कंपाउंड, दूसरी मंजिल आंबेड़कर पुतले के बाजू में, **मनमाड़**

४. श्री जशवन्तभाई शाह एदुन बिल्डिंग पहली धोबी तलावलेन पो० बॉ० नं० २२१७, **बम्बई-२**

५. श्रीमान् हस्तीमल जी किशनलालजी जैन प्रीतम हाऊ० कॉ० सोसा० ब्लॉक नं० १०
स्टेट बैंक के सामने, **मालेगांव (नासिक)**

६. श्री एच. आर. डोशी जी-३६ बस्ती नारनौल अजमेरी गेट, **दिल्ली-६** ☏ २३२३३५२१

७. श्री अशोकजी एस. छाजेड़, १२१ महावीर क्लॉथ मार्केट, **अहमदाबाद**

८. श्री सुधर्म सेवा समिति भगवान् महावीर मार्ग, **बुलडाणा**

९. श्री श्रुतज्ञान स्वाध्याय समिति सांगानेरी गेट, **भीलवाड़ा**

१०. श्री सुधर्म जैन आराधना भवन २४ ग्रीन पार्क कॉलोनी साउथ तुकोगंज, **इन्दौर**

११. श्री विद्या प्रकाशन मन्दिर, ट्रांसपोर्ट नगर, **मेरठ** (उ. प्र.)

१२. श्री अमरचन्दजी छाजेड़, १०३ वाल टेक्स रोड़, **चैन्नई** ☏ २५३५७७७५

१३. श्री संतोषकुमार बोथरा वर्द्धमान स्वर्ण अलंकार ३९४, शांपिंग सेन्टर, **कोटा** ☏ २३६०९५०

मूल्य : ५०-००

प्रथम आवृत्ति
१०००

वीर संवत् २५३१
विक्रम संवत् २०६१
अप्रेल २००५

मुद्रक - स्वास्तिक प्रिन्टर्स प्रेम भवन हाथी भाटा, अजमेर ☏ २४२३२९५

प्रस्तावना

जैन आगम साहित्य का भारतीय साहित्य में विशिष्ट एवं महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसका अक्षर-कोष जितना विशालकाय है उससे अनेक गुणा अधिक इसमें गंभीर अर्थ, सूक्ष्मता, विशद् व्याख्या समायी हुई है। जैनागम मात्र मानव लोक के जीवन से सम्बन्धित विभिन्न बिन्दुओं पर ही प्रकाश नहीं डालता प्रत्युत शेष तीन गतियों तिर्यंलोक, नरकलोक, देवलोक आदि के समग्र जीवन पर भी प्रकाश डालता है। इतना ही नहीं विभिन्न गतियों में परिभ्रमण के कारण, प्रत्येक गति में पाये जाने वाले ज्ञान, अज्ञान, योग, उपयोग, लेश्या, संयम, असंयम आदि की भी विस्तृत व्याख्या करता है। इसके साथ ही अपने तप और उत्तम साधना के बल पर अनादिकाल आत्मा पर लगे कर्मों को क्षय कर पंचम मोक्ष गति पाने का भी जैनागम में विधान किया गया।

इसके अलावा जैनागम की श्रेष्ठता होने का प्रमुख कारण इसके उपदेष्टा सर्वज्ञ सर्वदर्शी की वीतरागता है, जो अपनी उत्तम साधना और आराधना के द्वारा पूर्णता प्राप्त करने के पश्चात् ही वाणी की वागरणा करते हैं। अतएव उनके वचन सर्वदोषों से रहित ही नहीं प्रत्युत परस्पर विरोधी भी नहीं होते हैं। जबकि अन्य दर्शन के उपदेष्टा छद्मस्थ होने के कारण परस्पर विरोधी हो सकते हैं। साथ ही जिस सूक्ष्मता से जीवों के भेद-प्रभेद तथा इनमें पाये जाने ज्ञान-अज्ञान, संज्ञा, लेश्या, योग, उपयोग आदि की व्याख्या एवं अजीव द्रव्यों का भेद प्रभेद आदि का कथन इसमें पाया जाता है, वैसा अन्यत्र नहीं मिल सकता। मिल भी कैसे सकता है? क्योंकि अन्य दर्शनियों के प्रर्वतकों का ज्ञान तो सीमित होता है। जबकि जैन दर्शन के उपदेष्टा सर्वज्ञ सर्वदर्शी वीतराग प्रभु का ज्ञान तो अनन्त हैं। इस प्रकार जैन आगम साहित्य हर दृष्टि से भूतकाल मे श्रेष्ठ था, वर्तमान में श्रेष्ठ है और भविष्यकाल में श्रेष्ठ रहेगा।

जैन दर्शन में आगम साहित्य का कितना महत्त्व है इसका महज अंदाज इसी से लगाया जा सकता है कि प्रभु ने जो दो प्रकार के धर्म फरमाये हैं उसमें पहला स्थान श्रुतधर्म को दिया है और दूसरा चारित्रधर्म को। आगम ज्ञान श्रुतधर्म के अर्न्तगत आता है। श्रुतधर्म की सुदृढ़ आराधना से ही साधक चारित्र धर्म की सुदृढ़ आराधना कर सकता है। आगम साधक के लिए दर्पण रूप कहा गया है। जिस प्रकार दर्पण के सामने जाते ही जीव को अपना प्रतिबिम्ब नजर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आने लग जाता है। उसी प्रकार आगम के आलोक में रमण करने पर साधक को अपने चित्त की समस्त सद् और असद् प्रवृत्तियों का दिग्दर्शन हो जाता है। इसके अध्ययन करने से अपने अन्तरंग में रहे, सभी प्रसुप्त अवगुण स्पष्ट झलकने लगते हैं। इसके साथ ही आगम आत्मा को परमात्मपद की ओर प्रेरित करने वाला परमगुरु है। आगम ज्ञान से ही मन और इन्द्रियाँ समाहित रहती है। आगम ज्ञान से आत्मा में अद्भुत शक्ति, स्फूर्ति एवं अप्रमत्तता जागृत होती है। इसके अध्ययन से क्लेश, मन की मलिनता, वैभाविक स्थिति का सहज ही शमन हो जाता, चित्त में एकाग्रता का वास होता है। श्रुतज्ञान से आत्मा स्वयं धर्म में स्थिर होता है और अपने सम्पर्क में आने वालों को भी धर्म में स्थिर कर सकता है। इसके निरन्तर अध्ययन से वीतरागभाव जागृत होता है। दशवैकालिक सूत्र के नौवें अध्ययन के चौथे उद्देशक में श्रुतज्ञान को चित्त समाधि का मुख्य कारण कहा है। भगवती सूत्र शतक ८ उद्देशक १० में उत्कृष्ट ज्ञान आराधना वाले साधक को या तो उसी भव में सिद्ध बुद्ध मुक्त होना बतलाया है या फिर दूसरे भव का अतिक्रमण नहीं करना बतलाया है अर्थात् कल्पदेवलोक या कल्पातीत देवलोक का एक भव ग्रहण करने दूसरे भव में महाविदेह क्षेत्र या अन्यत्र मनुष्य भव प्राप्त करके उसी भव में नियमेन सिद्ध हो जाता है। इस प्रकार आगम (श्रुत) ज्ञान वह दिव्य महाऔषधि है जो जीव की आधि, व्याधि, उपाधि को मिटा कर भव रोग को सदा के लिए नष्ट कर देती है। इस महान् औषधि का निर्माण किसी सामान्य व्यक्ति के द्वारा नहीं परन्तु सर्वज्ञ सर्वदर्शी वीतराग प्रभु द्वारा किया है। जिसका सेवन कर अनेक भव्य आत्माओं ने अपना भवभ्रमण रोग सदा सदा के लिए समाप्त कर लिया।

ठाणाङ्ग सूत्र में श्रुत धर्म भी दो प्रकार का बतलाया गया है - **"सुयधम्मे दुविहे पण्णत्ते तंजहा - सुत्त सुयधम्मे चेव अत्थ सुयधम्मे चेव"** यानी सूत्र रूप धर्म और अर्थ रूप धर्म। अनुयोग द्वार सूत्र में श्रुत के द्रव्यश्रुत और भावश्रुत दो प्रकार बतलाये हैं। जो पत्र अथवा पुस्तक पर लिखा हुआ है वह **"द्रव्यश्रुत"** है और जिसे पढ़ने पर साधक उपयोग युक्त होता है वह **"भावश्रुत"** है। श्रुतज्ञान का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए बतलाया गया है कि जिस प्रकार धागे में पिरोई हुई सुई गुम होने पर पुनः मिल जाती है, क्योंकि धागा उसके साथ है, उसी प्रकार सूत्रज्ञान रूपी धागे से जुड़ा हुआ व्यक्ति आत्मज्ञान से वंचित नहीं होता। आत्मज्ञान युक्त होने से वह संसार में परिभ्रमण नहीं करता।

नंदी सूत्र में श्रुत के दो प्रकार बताये हैं - सम्यक्श्रुत और मिथ्याश्रुत, वहां सम्यक्श्रुत

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और मिथ्याश्रुत की सूची भी दी गयी है और अन्त में स्पष्ट लिखा है - ''सम्यक्श्रुत कहलाने वाले शास्त्र भी मिथ्यादृष्टि के हाथों में पड़कर मिथ्याबुद्धि से परिगृहीत होने के कारण मिथ्याश्रुत बन जाते हैं। इसके विपरीत मिथ्याश्रुत कहलाने वाले शास्त्र सम्यग्दृष्टि के हाथों में पड़कर सम्यक्त्व से परिगृहीत होने के कारण सम्यक्श्रुत बन जाते हैं। आगे इसी नंदी सूत्र श्रुत के अक्षरश्रुत और अनक्षरश्रुत, संज्ञीश्रुत और असंज्ञीश्रुत आदि चौदह भेद भी किये हैं।

वर्तमान स्थानकवासी परम्परा में बत्तीस आगम मान्य है। उनका समय-समय पर विभिन्न रूप से वर्गीकरण किया गया है। सर्वप्रथम इन्हें अंगप्रविष्ट और अंगबाह्य रूप में प्रतिष्ठापित किया है। अंगप्रविष्ट श्रुत में उन आगम साहित्य को लिया गया है जिनका निर्यहूण गणधरों द्वारा सूत्र में हुआ है। गणधरों द्वारा जिज्ञासा प्रस्तुत करने पर तीर्थंकरों द्वारा समाधान किया गया हो और अंगबाह्यश्रुत वह है जो स्थविरकृत हो अथवा गणधरों के जिज्ञासा प्रस्तुत किये बिना ही तीर्थंकर द्वारा प्रतिपादित्त हो। समवायाङ्ग और अनुयोग द्वार सूत्र में आगम साहित्य का केवल द्वादशांगी के रूप में निरूपण हुआ है। तीसरा वर्गीकरण विषय के हिसाब से चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग, गणितानुयोग एवं धर्मकथानुयोग के रूप में हुआ है। इसके पश्चातवर्ती साहित्य में जो सबसे अर्वाचनीय है उसमें ग्यारह अंग, बारह उपांग, चार मूल, चार छेद सूत्र और बत्तीसवां आवश्यक सूत्र के रूप में बत्तीस आगमों का विभाजन किया गया है।

प्रस्तुत अनुयोगद्वार सूत्र चार मूल सूत्रों के अन्तर्गत एक मूल सूत्र है। इसे मूल सूत्र में स्थापित्त करने का स्थविर भगवंतों का क्या लक्ष्य रहा? इसके लिए समाधान दिया गया है कि आत्मोत्थान के मूल साधन प्रभु ने सम्यग्-दर्शन, सम्यग् ज्ञान, सम्यक् चारित्र और सम्यक् तप बतलाये हैं। उत्तराध्ययन सूत्र सम्यग्दर्शन, चारित्र और तप का प्रतीक है, जबकि दशवैकालिक चारित्र और तप का। अनुयोगद्वार सूत्र दर्शन और ज्ञान का प्रतिनिधित्व करता है और नंदी सूत्र पांच ज्ञान का। इस कारण से अनुयोग द्वार की गणना मूल सूत्रों में की गई है। सम्यग्-दर्शन के अभाव में ज्ञान, चारित्र और तप तीनों क्रमशः मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र और बालतप माने गये हैं। जहाँ सम्यग् ज्ञान, सम्यक् चारित्र और तप होगा, वहाँ नियमा सम्यग्-दर्शन होगा ही सम्यग्ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप की उत्कृष्ट आराधना के लिये क्रमशः अनुयोगद्वार सूत्र, नंदी सूत्र, उत्तराध्ययन सूत्र और दशवैकालिक सूत्र का अध्ययन आवश्यक माना गया है।

चार मूल सूत्रों में नंदी सूत्र के बाद अनुयोगद्वार सूत्र का नम्बर आता है। अनुयोग शब्द

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अनु+योग के संयोग से निर्मित हुआ है। यह अनुकूल अर्थवाचक सूत्र है। सूत्र के साथ अनुकूल, अनुरूप या सुसंगत संयोग अनुयोग है। कोई भी शास्त्र हो जब तक उसके मूल पाठों के साथ अनुकूल अर्थ का समायोजन नहीं किया जाएगा, जब तक पाठक उसका सही अर्थ नहीं समझ पायेगा। परिणाम स्वरूप अर्थ की जगह अनर्थ होने की संभावना हो सकती है। जैसे **'अजैर्यष्टव्यम्'** पद है। यदि इसका अर्थ तीन साल पुराने नहीं उगने योग्य धान्य से यज्ञ करना (दान देना या त्याग देना) के स्थान पर बकरों से यज्ञ करना कर दिया जाय तो जैनधर्म का अहिंसा सिद्धान्त खण्डित हो जाता है। इसलिए शास्त्र के प्रत्येक शब्द, वाक्य का उसके अनुरूप अर्थ आवश्यक है। जैनागमों में कई प्रकार के सूत्र हैं यथा - संज्ञासूत्र, स्वसमयसूत्र, परसमयसूत्र, उपसर्गसूत्र, अपवादसूत्र, जिनकल्पिकसूत्र, स्थविरकल्पिकसूत्र आदि। इन विविध सूत्रों का यथायोग अनुयोग (अर्थ के साथ यथायोग अनुयोजन) यदि नहीं किया जाय तो अनिष्ट होने की ज्यादा सम्भावना रहती है। साधक की जब तक अनुयोग दृष्टि विकसित न हो तब तक वह अपवाद सूत्र को उत्सर्ग सूत्र समझ कर तदनुसार आचरण करके साधक संयम से च्यूत भी हो सकता है। इसी कारण अनुयोग द्वार सूत्र की समग्र आगमों को और उसकी व्याख्याओं को समझने में कुंजी रूप माना गया है।

शास्त्रों का जटिल और दुरुह अर्थों का रहस्य केवल व्याकरण के द्वारा नहीं खुल सकता, उसके लिये अनुयोग के द्वारों (उपांगों-तरीकों) का होना भी आवश्यक है ताकि आसानी से शास्त्र के प्रत्येक शब्द का सुक्ष्मता से ज्ञान हो सके। इसीलिए अनुयोग के साथ द्वार शब्द रखा गया है - अनुयोग - अनुकूल सुसंगत अर्थ जो उपक्रम, निक्षेप, अनुगम और नय चारों द्वारों के द्वारा व्याख्या की जाय। तभी उसका सही यथार्थ अर्थ संभव है।

उपक्रम - वह है, जो अर्थ के अपने समीप करता है। आगम में जिन विषयों की चंर्चा की गई है। उन सभी विषयों पर तुलनात्मक दृष्टि से चिन्तन करना, जिससे प्रबुद्ध पाठकों को यह परिज्ञात हो सके कि आगम साहित्य में अन्य स्थलों पर इन विषयों की चर्या किस रूप में की गई है और परवर्ती साहित्य में इन विषयों का विकास किस रूप में हुआ है आदि।

निक्षेप - यह अनुयोग द्वार का दूसरा द्वार है। निक्षेप जैन दर्शन का एक पारिभाषिक शब्द है। इसके द्वारा पदार्थ का बोध होता है। यानी जो अनिर्णीत वस्तु का नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव से निर्णय कराये वह निक्षेप है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अनुगम - अनुयोग द्वार का तीसरा अनुगम द्वार है। जिसके द्वारा सूत्र का अनुसरण अथवा सूत्र के अर्थ का स्पष्टीकरण किया जाता है। अनुगम की शैली से शास्त्रीय पदों की व्याख्या करना सरल हो जाता है। यह आगम अध्ययन की सरल पद्धति है।

नय - अनुयोग द्वार का चौथा द्वार है नय। प्रत्येक वस्तु अनन्त धर्मात्मक वाली होती है, उन सम्पूर्ण धर्मों का यथार्थ और प्रत्यक्ष ज्ञान तो केवल सर्वज्ञ सर्वदर्शी वीतराग प्रभु को ही हो सकता है। सामान्य मानव के सामर्थ्य की बात नहीं है। सामान्य मानव एक समय में कुछ धर्मों का ज्ञान कर पाता है। अतएव वस्तु के आंशिक ज्ञान को नय कहते हैं यानी वस्तु में रहे अनन्त धर्मों का विरोध न करते हुए, वस्तु के एक अंग या धर्म की ग्रहण करने वाले ज्ञान का अभिप्राय नय है। वैसे तो वचन के जितने प्रकार हैं उतने ही नय भी हो सकते हैं। किन्तु अनुयोगद्वार में मुख्य सात नयों का वर्णन है - १. नैगमनय २. संग्रहनय ३. व्यवहारनय ४. ऋजुसूत्रनय ५. शब्दनय ६. समभिरुढनय एवं ७. भूतनय।

अनुयोगद्वार सूत्र के रचयिता आर्य रक्षित माने जाते हैं। इस आगम की रचना से पूर्व आचार्य अपने सभी मेघावी शिष्यों को शास्त्र की वाचना देते समय चारों अनुयोगों का बोध करा देते थे। तब अनुयोग द्वार सूत्र की आवश्यकता नहीं रहती। तत्पश्चात् बुद्धि की मंदता के कारण प्रत्येक सूत्र के अनुयोग की परम्परा चालू हुई।

'नन्दी सूत्र में (श्रुतज्ञान के वर्णन में) दशपूर्वी एवं उससे अधिक ज्ञान वालों की रचना को सम्यक् श्रुत कहा है। इसलिए स्थानकवासी परम्परा दशादि पूर्वधरों की रचना को आगम मानती हैं।'

अब प्रस्तुत अनुयोगद्वार सूत्र के विषय में - कतिपय आगमिक विचारणा की जाती है -

'वस्तुतः अनुयोगद्वार सूत्र नहीं है। अनुयोग व्याख्या पद्धति है। आर्य रक्षित के पूर्व जब तक अनुयोग का पृथक्करण नहीं होने से कालिक श्रुत अमूढनयिक था। जैसा कि प्राचीन ग्रन्थों में बताया है -

"मूढनयं कालियं सुयं, म णया समोयरंति इह।
अपुहुत्ते समोयारो, णत्थि पुहुत्ते समोयारो॥"

अर्थ - "कालिक श्रुत मूढनयिक है" - अविभक्तनयों से युक्त हैं, इसलिए कालिक श्रुत में नयों का समवतार (समावेश) नहीं होता तथा चरण करणानुयोग, धर्मकथानुयोग, गणितानुयोग और द्रव्यानुयोग इस प्रकार चार अनुयोगों की अपृथक् अवस्था में नयों का समवतार प्रत्येक सूत्र

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

में होता है। किन्तु इन चारों अनुयोगों की पृथक्ता नहीं थी, उस समय प्रत्येक सूत्र में नयों का समवतार होता था। तब तक तो सभी आगम अनुयोग सहित ही पढ़ाये जाते थे। आर्य रक्षित ने आगामी पीढ़ी की बुद्धि की मंदता देखकर अनुयोग का पृथक्करण मात्र किया। किसी नये अनुयोगद्वार की रचना नहीं की। इसीलिए देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण ने आर्यरक्षित के लिए - **'रयणकरंडगभूओ, अणुओगो रक्खिओ जेहिं'** शब्दों का प्रयोग किया। इन्होंने अनुयोग की रक्षा की है, रचना नहीं। जो अनुयोग इनसे पूर्व सभी सूत्रों पर किया जाता था। उसे शिष्यों के लिए दुरुह समझकर मात्र आवश्यक (सामायिक अध्ययन) पर ही रखा। इतना काम आर्यरक्षित ने किया। जिससे अनुयोग नष्ट होते हुए बच गया एवं शिष्यों के भी सुगमता हो गई। इस तथ्य पर मद्देनजर रखते हुए स्थानकवासी परम्परा ने अनुयोग को आगमकालीन व्याख्या पद्धति समझ कर एवं आगमों की व्याख्याओं में सहयोगी मानकर तथा आर्यरक्षित के द्वारा तो मात्र पृथक्ककरण मानकर इसे भी आगमों के समान मान्यता दी है - जो पूर्ण उचित है। अर्धमागधी भाषा में संस्कृत भाषा का सम्मिश्रण होता ही है एवं अनुयोग तो व्याख्या पद्धति है। इसलिए शिष्यों को समझाने की दृष्टि से कुछ संस्कृत प्रयोग हो जाना अनुचित नहीं है। इसकी भाषा एवं रचनाशैली इस व्याख्या पद्धति की प्राचीनतमता सिद्ध करती है। भाषा एवं रचनाशैली तथा संस्कृत प्रयोग 'यह कृति आर्य रक्षित की है' यह ज्ञात करने में सहयोगी होते हैं।

जैन आगम साहित्य में अनुयोग के विविध भेद प्रभेद किये गये हैं। नंदी सूत्र में अनुयोग के दो विभाग किये हैं। वहाँ पर दृष्टिवाद के परिकर्म, सूत्र, पूर्वगत, अनुयोग और चूलिका ये पांच भेद किये गये हैं। उनमें अनुयोग चतुर्थ है। अनुयोग के मूल प्रथमानुयोग और गण्डिकानुयोग ये दो भेद किये गये हैं। मूल प्रथमानुयोग के अन्तर्गत भगवान् के सम्यक्त्व प्राप्ति के पूर्वभव के अलावा देवगमन, च्यवन, जन्म, अभिषेक, प्रव्रज्या, तप, केवल की प्राप्ति, तीर्थ की स्थापना, शिष्य समुदाय, गणधर, आर्यिकाएं मुनियों की विविध लब्धियों आदि के साथ सिद्ध गमन तक का सारा वर्णन प्रथमानुयोग में है। दूसरे शब्दों में भगवान् के सम्यक्त्व प्राप्ति से लेकर मोक्ष गमन तक का सारा वर्णन इस प्रथमानुयोग में है। दूसरा गण्डिकानुयोग है - गण्डिका का अर्थ है - समान व्यक्तव्यता से अर्थ का अनुसरण करने वाली वाक्य पद्धति और अनुयोग अर्थात् अर्थ प्रकट करने की विधि। इसकी रचना समय-समय पर मूर्धन्य मनीषी तथा आचार्यों ने की, जिसमें जैन परम्परा के अनेक महापुरुषों का वर्णन हुआ है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तुत अनुयोग द्वार सूत्र में सर्व प्रथम मंगलाचरण के रूप में पांच ज्ञानों का निरूपण हुआ है। प्रत्येक कार्य अथवा शास्त्र की निर्विघ्न पूर्णता के भारतीय सभी धर्मों में उसे प्रारम्भ करने से पूर्व मंगलाचरण की परम्परा रही हुई है, उसी का अनुसरण इस सूत्र के प्रारम्भ में किया गया है। मंगलाचरण न करना अनिष्ट का द्योतक माना जाता है। साथ ही इस सूत्र की रचना ज्ञान प्राप्ति और दर्शन विशुद्धि के लिए हुई है। अतः विघ्नों की उपशान्ति तथा निज आनंद एवं कल्याण की प्राप्ति के लिए शास्त्रकार ने सर्वप्रथम मंगल के रूप में **"नाणं पंचविहं पण्णत्तं"** (ज्ञान पांच प्रकार का कहा) कह कर सर्वप्रथम ज्ञान का वर्णन किया है। क्योंकि ज्ञान से समस्त जीव-अजीव का बोध हो जाता है इसलिए ज्ञान स्वयं मंगल ही नहीं अपितु परममंगल रूप है।

मंगलाचरण के पश्चात् आवश्यक अनुयोग का उल्लेख है। इसमें सहज ही पाठक बन्धुओं को यह अनुमान हो सकता है कि इसमें आवश्यक सूत्र की व्याख्या होगी। पर ऐसी बात नहीं है इसमें आवश्यक सूत्र का अनुयोग के विभिन्न द्वारों उपक्रम, निक्षेप, अनुगम, नय आदि के द्वारा विवेचन किया गया है। विवेचन एवं व्याख्या पद्धति कैसी होनी चाहिये यह बताने के लिए यथा स्थान आवश्यक दृष्टान्त भी प्रस्तुत किये गये हैं। वैसे आवश्यक सूत्र में श्रुत, स्कन्ध, अध्ययन नामक ग्रन्थ की व्याख्या, उसके छह अध्ययनों में पिण्डार्थ (अर्थाधिकार का निर्देश) उनके नाम और सामायिक शब्द की व्याख्या दी है। आवश्यक सूत्र के पदों की व्याख्या नहीं है। इससे स्पष्ट है कि अनुयोग द्वार सूत्र मुख्य रूप अनुयोग की व्याख्याओं के द्वारों का निरूपण करने वाला ग्रन्थ है। मात्र आवश्यक सूत्र की व्याख्या करने वाला नहीं है। चूंकि आगम साहित्य में अंग सूत्रों के बाद सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान आवश्यक सूत्र को दिया गया है क्योंकि प्रस्तुत सूत्र में निरूपित सामायिक से ही श्रमण जीवन का प्रारम्भ होता है। प्रतिदिन प्रातः और संध्या के समय श्रमण जीवन के लिये जो आवश्यक (प्रतिक्रमण) किया जाता है वह सूत्र के अन्तर्गत है। अतः अंगों के अध्ययन से पूर्व आवश्यक सूत्र का अध्ययन आवश्यक माना गया। यद्यपि व्याख्या के रूप में भले ही सम्पूर्ण आवश्यक सूत्र की व्याख्या अनुयोग द्वार सूत्र में न दी गई हो। केवल ग्रन्थ के नाम पदों की व्याख्या दी गई हो, तथापि व्याख्या की जिस पद्धति को इसमें अपनाया गया है, वही पद्धति सम्पूर्ण आगमों की व्याख्या में भी अपनाई गई है। यदि यह कह दिया जाय कि आवश्यक सूत्र की व्याख्या के बहाने ग्रन्थकार ने सम्पूर्ण आगमों के रहस्यों को समझाने का प्रयास किया है तो अतिश्योक्ति नहीं होगी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इस आगम का अनुवाद जैन दर्शन के जाने-माने विद्वान् डॉ० छगनलालजी शास्त्री काव्यतीर्थ एम. ए., पी. एच. डी. विद्यामहोदधि ने किया है। आपने अपने जीवन काल में अनेक आगमों का अनुवाद किया है। अतएव इस क्षेत्र में आपका गहन अनुभव है। प्रस्तुत आगम के अनुवाद में भी संघ द्वारा प्रकाशित अन्य आगमों की शैली का ही अनुसरण आदरणीय शास्त्री जी ने किया है यानी मूल पाठ, कठिन शब्दार्थ, भावार्थ एवं विवेचन आदि। आदरणीय शास्त्रीजी के अनुवाद की शैली सरलता के साथ पाडित्य एवं विद्वता लिए हुए है। जो पाठकों के इसके पठन अनुशीलन से अनुभव होगी। आदरणीय शास्त्रीजी के अनुवाद में उनके शिष्य डॉ० श्री महेन्द्रकुमारजी का भी सहयोग प्रशंसनीय रहा। आप भी संस्कृत एवं प्राकृत के अच्छे जानकार हैं। आपके सहयोग से ही शास्त्रीजी ने इस विशालकाय शास्त्र का अल्प समय में ही अनुवाद कर पाये। अतः संघ दोनों आगम मनीषियों का आभारी है।

इस अनुवादित आगम को परम श्रद्धेय श्रुतधर पण्डित रत्न श्री प्रकाशचन्दजी म. सा. की आज्ञा से पण्डित रत्न श्री लक्ष्मीमुनि जी म. सा. ने गत दल्लीराजंहरा चातुर्मास में सुनने की कृपा की। सेवाभावी सुश्रावक श्री श्रीकांतजी गोलेच्छा, दल्लीराजहरा निवासी ने इसे सुनाया। पूज्य श्री जी ने आगम धारणा सम्बन्धित जहाँ भी उचित लगा संशोधन का संकेत किया। तदनुसार यथास्थान पर संशोधन किया गया। तत्पश्चात् मैंने एवं श्रीमान् पारसमल जी चण्डालिया ने पुनः सम्पादन की दृष्टि से इसका पूरी तरह अवलोकन किया। इस प्रकार प्रस्तुत आगम को प्रकाशन में देने से पूर्व सूक्ष्मता से पारायण किया गया है। बावजूद इसके हमारी अल्पज्ञता की वजह से कहीं पर भी त्रुटि रह सकती है। अतएव समाज के विद्वान् मनीषियों की सेवा में हमारा नम्र निवेदन है कि इस आगम के मूल पाठ, अर्थ, अनुवाद आदि में कहीं पर भी कोई अशुद्धि, गलती आदि दृष्टिगोचर हो तो हमें सूचित करने की कृपा करावें। हम उनके आभारी होंगे।

संघ का आगम प्रकाशन का काम प्रगति पर है। इस आगम प्रकाशन के कार्य में **धर्म प्राण समाज रत्न तत्त्वज्ञ सुश्रावक श्री जशवंतलाल भाई शाह** एवं **श्राविका रत्न श्रीमती मंगला बहन शाह, बम्बई** की गहन रुचि है। आपकी भावना है कि संघ द्वारा जितने भी आगम प्रकाशन हों वे अर्द्ध मूल्य में ही बिक्री के लिए पाठकों को उपलब्ध हो। इसके लिए उन्होंने सम्पूर्ण आर्थिक सहयोग प्रदान करने की आज्ञा प्रदान की है। तदनुसार प्रस्तुत आगम पाठकों को उपलब्ध कराया जा रहा है, संघ एवं पाठक वर्ग आपके इस सहयोग के लिए आभारी है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आदरणीय शाह साहब तत्त्वज्ञ एवं आगमों के अच्छे ज्ञाता हैं। आप का अधिकांश समय धर्म साधना आराधना में बीतता है। प्रसन्नता एवं गर्व तो इस बात का है कि आप स्वयं तो आगमों का पठन-पाठन करते ही हैं, पर आपके सम्पर्क में आने वाले चतुर्विध संघ के सदस्यों को भी आगम की वाचनादि देकर जिनशासन की खूब प्रभावना करते हैं। आज के इस हीयमान युग में आप जैसे तत्त्वज्ञ श्रावक रत्न का मिलना जिनशासन के लिए गौरव की बात है। आपकी धर्म सहायिका **श्रीमती मंगलाबहन शाह** एवं पुत्र रत्न **मयंकभाई शाह** एवं **श्रेयांसभाई शाह** भी आपके पद चिह्नों पर चलने वाले हैं। आप सभी को आगमों एवं थोकड़ों का गहन अभ्यास है। आपके धार्मिक जीवन को देख कर प्रमोद होता है। आप चिरायु हों एवं शासन की प्रभावना करते रहें, इसी शुभ भावना के साथ!

प्रस्तुत आगम की अनुवादित सामग्री लगभग ५०८+२४ = ५३२ पृष्ठों की हो गई। अतएव सम्पूर्ण सामग्री को एक ही भाग में प्रकाशित किया जा रहा है।

इसके प्रकाशन में जो कागज काम में लिया गया है वह उच्च कोटि का मेफलिथो साथ ही पक्की सेक्शन बाईडिंग है बावजूद आदरणीय शाह साहब के आर्थिक सहयोग से **मूल्य मात्र ५० रुपये** ही रखा गया है। जो अन्य संस्थानों के प्रकाशनों की अपेक्षा अल्प है।

संघ की आगम बत्तीसी प्रकाशन योजना के अन्तर्गत इस सूत्र का प्रथम बार ही प्रकाशन हो रहा है। पाठक बन्धुओं से निवेदन है कि इस नूतन प्रकाशन का अधिक से अधिक लाभ उठावें।

ब्यावर (राज.)
दिनांकः ८-४-२००५

संघ सेवक
नेमीचन्द बांठिया
अ. भा. सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, जोधपुर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अस्वाध्याय

निम्नलिखित बत्तीस कारण टालकर स्वाध्याय करना चाहिये।

आकाश सम्बन्धी १० अस्वाध्याय	**काल मर्यादा**
१. बड़ा तारा टूटे तो-	एक प्रहर
२. दिशा-दाह *	जब तक रहे
३. अकाल में मेघ गर्जना हो तो-	दो प्रहर
४. अकाल में बिजली चमके तो-	एक प्रहर
५. बिजली कड़के तो-	आठ प्रहर
६. शुक्ल पक्ष की १, २, ३ की रात-	प्रहर रात्रि तक
७. आकाश में यक्ष का चिह्न हो-	जब तक दिखाई दे
८-९. काली और सफेद धूंअर-	जब तक रहे
१०. आकाश मंडल धूलि से आच्छादित हो-	जब तक रहे

औदारिक सम्बन्धी १० अस्वाध्याय

११-१३. हड्डी, रक्त और मांस,	ये तिर्यंच के ६० हाथ के भीतर हो। मनुष्य के हो, तो १०० हाथ के भीतर हो। मनुष्य की हड्डी यदि जली या धुली न हो, तो १२ वर्ष तक।
१४. अशुचि की दुर्गंध आवे या दिखाई दे-	तब तक
१५. श्मशान भूमि-	सौ हाथ से कम दूर हो, तो।

* आकाश में किसी दिशा में नगर जलने या अग्नि की लपटें उठने जैसा दिखाई दे और प्रकाश हो तथा नीचे अंधकार हो, वह दिशा-दाह है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१६. चन्द्र ग्रहण-	खंड ग्रहण में ८ प्रहर, पूर्ण हो तो १२ प्रहर

(चन्द्र ग्रहण जिस रात्रि में लगा हो उस रात्रि के प्रारम्भ से ही अस्वाध्याय गिनना चाहिये।)

१७. सूर्य ग्रहण-	खंड ग्रहण में १२ प्रहर, पूर्ण हो तो १६ प्रहर

(सूर्य ग्रहण जिस दिन में कभी भी लगे उस दिन के प्रारंभ से ही उसका अस्वाध्याय गिनना चाहिये।)

१८. राजा का अवसान होने पर,	जब तक नया राजा घोषित न हो
१६. युद्ध स्थान के निकट	जब तक युद्ध चले
२०. उपाश्रय में पंचेन्द्रिय का शव पड़ा हो,	जब तक पड़ा रहे

(सीमा तिर्यंच पंचेन्द्रिय के लिए ६० हाथ, मनुष्य के लिए १०० हाथ। उपाश्रय बड़ा होने पर इतनी सीमा के बाद उपाश्रय में भी अस्वाध्याय नहीं होता। उपाश्रय की सीमा के बाहर हो तो यदि दुर्गन्ध न आवे या दिखाई न देवे तो अस्वाध्याय नहीं होता।)

२१-२४. आषाढ़, आश्विन, कार्तिक और चैत्र की पूर्णिमा	दिन रात
२५-२८. इन पूर्णिमाओं के बाद की प्रतिपदा-	दिन रात
२६-३२. प्रातः, मध्याह्न, संध्या और अर्द्ध रात्रि- इन चार सन्धिकालों में-	१-१ मुहूर्त

उपरोक्त अस्वाध्याय को टालकर स्वाध्याय करना चाहिए। खुले मुंह नहीं बोलना तथा दीपक के उजाले में नहीं वांचना चाहिए।

नोट - नक्षत्र २८ होते हैं उनमें से आर्द्रा नक्षत्र से स्वाति नक्षत्र तक नौ नक्षत्र वर्षा के गिने गये हैं। इनमें होने वाली मेघ की गर्जना और बिजली का चमकना स्वाभाविक है। अतः इसका अस्वाध्याय नहीं गिना गया है।

❀ ❀ ❀ ❀

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अनुयोगद्वार सूत्र
विषयानुक्रमणिका

क्रं.	विषय	पृष्ठ
१.	मंगलमय विषय निर्देश	१
२.	पंचविध ज्ञान : स्वरूप	२
३.	पंचविध ज्ञान का क्रम-निर्देश	४
४.	भेद-विवक्षा : अभिधेय सूचन	५
५.	अनुयोग - विवक्षा	१०
६.	आवश्यक सूत्र का स्वरूप विश्लेषण	११
७.	निक्षेपानुरूप निरूपण	१४
८.	नाम आवश्यक	१५
९.	स्थापना आवश्यक	१६
१०.	नाम और स्थापना निक्षेप में अन्तर	१७
११.	द्रव्यावश्यक	१८
१२.	आगम-द्रव्यावश्यक	१८
१३.	नोआगम-ज्ञ-शरीर-द्रव्यावश्यक	२२
१४.	नो आगम-भव्य-शरीर-द्रव्यावश्यक	२३
१५.	ज्ञायक-शरीर-भव्य-शरीर-व्यतिरिक्त-द्रव्यावश्यक	२४
१६.	कुप्रावचनिक द्रव्यावश्यक	२६
१७.	लोकोत्तरिक द्रव्यावश्यक	२८
१८.	भावावश्यक	२९
१९.	आगम भावावश्यक	३०
२०.	नो आगम भावावश्यक	३०
२१.	लौकिक भावावश्यक	३०
२२.	कुप्रावचनिक भावावश्यक	३१
२३.	लोकोत्तरिक भावावश्यक	३२
२४.	आवश्यक के एकार्थक शब्द	३३
२५.	श्रुत के प्रकार	३४
२६.	नाम श्रुत	३५
२७.	स्थापना श्रुत	३५
२८.	द्रव्य श्रुत के प्रकार	३६
२९.	आगमतः द्रव्य श्रुत	३६
३०.	नोआगमतः द्रव्यश्रुत	३७
३१.	ज्ञ शरीर द्रव्यश्रुत	३७
३२.	भव्यशरीर द्रव्यश्रुत	३८
३३.	ज्ञ-शरीर-भव्यशरीर-व्यतिरिक्त-द्रव्यश्रुत	३८
३४.	भावश्रुत	४२
३५.	आगमतः भावश्रुत	४२
३६.	नो आगमतः भावश्रुत	४२
३७.	लौकिक भावश्रुत	४३
३८.	लोकोत्तरिक भावश्रुत	४४

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रं.	विषय	पृष्ठ
३९.	श्रुत के पर्याय	४५
४०.	स्कंध के भेद	४७
४१.	द्रव्य स्कन्ध	४८
४२.	ज्ञ शरीर-भव्य शरीर-व्यतिरिक्त - द्रव्य स्कन्ध	४८
४३.	सचित्त द्रव्य स्कन्ध	४८
४४.	अचित्त द्रव्य स्कन्ध	५०
४५.	मिश्र द्रव्य स्कन्ध	५०
४६.	ज्ञ शरीर-भव्य शरीर-व्यतिरिक्त- द्रव्य स्कन्ध का अन्यविध निरूपण	५१
४७.	भाव स्कन्ध निरूपण	५३
४८.	स्कन्ध के पर्याय सूचक शब्द	५४
४९.	आवश्यक के अर्थाधिकार और अध्ययन	५६
५०.	उपक्रम के भेद	५८
५१.	नाम एवं स्थापना उपक्रम	५९
५२.	द्रव्योपक्रम	५९
	सचित्त द्रव्योपक्रम	६०
	अचित्त द्रव्योपक्रम	६२
	मिश्र द्रव्योपक्रम	६३
५३.	क्षेत्रोपक्रम	६३
५४.	कालोपक्रम	६४
५५.	भावोपक्रम	६५
५६.	उपक्रम का शास्त्रीय विवेचन	७०
५७.	आनुपूर्वी	७०
५८.	द्रव्यानुपूर्वी	७०
५९.	नैगम-व्यवहारनय-सम्मत- अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी	७४
६०.	अर्थपद निरूपण	७४
६१.	नैगम-व्यवहारनय सम्मत- भंगोपदर्शनता	७८
६२.	समवतार निरूपण	८०
६३.	अनुगम-निरूपण	८२
	१. सत्पदप्ररूपणा	८३
	२. द्रव्य प्रमाण	८४
	३. क्षेत्र विवेचन	८५
	४. स्पर्शना-निरूपण	८६
	५. काल-प्ररूपण	८७
	६. अन्तर निरूपण	८७
	७. भाग-प्रतिपादन	८९
	८. भाव प्ररूपणा	९०
	९. अल्पबहुत्व निरूपण	९१
६४.	संग्रहनयानुरूप अनौपनिधिकी - द्रव्यानुपूर्वी	९२
६५.	अर्थपद प्ररूपणता का स्वरूप एवं- प्रयोजन	९३
६६.	भंगसमुत्कीर्तनता का प्रयोजन	९४
६७.	भंगोपदर्शनता का स्वरूप	९५
६८.	समवतार विवेचन	९५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रं.	विषय	पृष्ठ
६९.	अनुगम निरूपण	९६
७०.	औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी	१०१
७१.	औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी का इतर भेद	१०३
७२.	क्षेत्रानुपूर्वी के भेद	१०४
७३.	नैगम - व्यवहार सम्मत- अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी	१०५
७४.	अर्थपद प्ररूपणता का स्वरूप एवं प्रयोजन	१०५
७५.	भंगसमुत्कीर्तनता का स्वरूप एवं प्रयोजन	१०६
७६.	भंगोपदर्शनता	१०७
७७.	समवतार निरूपण	१०८
७८.	अनुगम का निरूपण	१०८
७९.	स्पर्शना विवेचन	११०
८०.	अन्तर - विवेचन	१११
८१.	भाग निरूपण	१११
८२.	भाव प्ररूपण	११२
८३.	अल्प-बहुत्व निरूपण	११२
८४.	अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी	११४
८५.	औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी	११७
८६.	अधोलोक क्षेत्रानुपूर्वी	११८
८७.	पश्चानुपूर्वी	१२०
८८.	अनानुपूर्वी	१२१
८९.	ऊर्ध्वलोक पूर्वानुपूर्वी	१२१
९०.	पश्चानुपूर्वी	१२२
९१.	औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी का अन्यविध निरूपण	१२२
९२.	कालानुपूर्वी का निरूपण	१२३
९३.	नैगमव्यवहारानुरूप अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी	१२४
९४.	अनुगम एवं इसके भेद	१२७
९५.	संग्रहनयानुरूप अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी	१३०
९६.	औपनिधिकी कालानुपूर्वी	१३१
९७.	औपनिधिकी कालानुपूर्वी का - अन्यविध निरूपण	१३३
९८.	उत्कीर्तनानुपूर्वी का स्वरूप	१३४
९९.	गणनानुपूर्वी का निरूपण	१३५
१००.	संस्थानानुपूर्वी का विवेचन	१३७
१०१.	समाचारी - आनुपूर्वी का निरूपण	१३९
१०२.	भावानुपूर्वी का विवेचन	१४२
१०३.	नामाधिकार प्ररूपणा	१४६
१०४.	एक नाम	१४६
१०५.	द्विनाम का स्वरूप	१४७
१०६.	त्रिनाम	१५७
१०७.	द्रव्यनाम	१५८
१०८.	गुणनाम	१५८
१०९.	वर्णनाम	१५९

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रं.	विषय	पृष्ठ
११०.	स्पर्शनाम	१६०
१११.	संस्थाननाम	१६०
११२.	पर्यायनाम	१६१
११३.	त्रिनाम का अन्य व्याख्याक्रम	१६३
११४.	चतुर्नाम	१६४
११५.	पंचनाम	१६८
११६.	षट्नाम	१६६
११७.	जीवोदय निष्पन्न के भेद	१७०
११८.	अजीवोदयनिष्पन्न के प्रकार	१७२
११६.	औपशमिक भाव	१७२
१२०.	क्षायिक भाव	१७३
१२१.	क्षयनिष्पन्न	१७४
१२२.	क्षायोपशमिक भाव	१७६
१२३.	क्षयोपशम-निष्पन्न	१७७
१२४.	पारिणामिक भाव	१७६
१२५.	सान्निपातिक भाव	१८२
१२६.	त्रिकसंयोगी सान्निपातिक भाव	१८५
१२७.	चतुसंयोगी सान्निपातिक भाव	१८६
१२८.	पंचसंयोगज सान्निपातिक भाव	१६१
१२६.	सप्तनाम	१६३
१३०.	सप्तस्वरों के उच्चारण स्थान	१६३
१३१.	जीवनिश्रित सात स्वर	१६४
१३२.	अजीवनिश्रित सात स्वर	१६४
१३३.	सप्तस्वरों के लक्षण, फल	१६६
१३४.	सात स्वरों के ग्राम एवं मूर्च्छनाएं	१६८
१३५.	सप्तस्वरोत्पत्ति	२००
१३६.	गीतगायक की कुशलता	२०३
१३७.	गीत के छह दोष	२०३
१३८.	गीत के आठ गुण	२०३
१३६.	गीत के वृत्त एवं भाषा	२०६
१४०.	संगातृ-प्रकार	२०६
१४१.	उपसंहार	२०७
१४२.	अष्टनाम	२०७
१४३.	नव नाम	२१०
	१. वीर रस	२११
	२. श्रृंगार रस	२१३
	३. अद्भुत रस	२१३
	४. रौद्र रस	२१४
	५. व्रीडनक रस	२१६
	६. बीभत्स रस	२१७
	७. हास्य रस	२१८
	८. करुण रस	२१६
	६. प्रशान्त रस	२२०
१४४.	दस नाम	२२२
	१. गौणनाम	२२२
	२. नोगौण नाम	२२३
	३. आदानपद निष्पन्न नाम	२२४
	४. प्रतिपक्षपद निष्पन्न नाम	२२६

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रं.	विषय	पृष्ठ
	५. *प्रधानपद निष्पन्न नाम*	२२७
	६. *अनादि सिद्धांत निष्पन्न नाम*	२२८
	७. *नामनिष्पन्न नाम*	२२८
	८. *अवयवनिष्पन्न नाम*	२२९
	९. *संयोगनिष्पन्न नाम*	२३२
	१. द्रव्य संयोग निष्पन्न नाम	२३२
	२. क्षेत्रसंयोग निष्पन्न नाम	२३५
	३. कालसंयोग निष्पन्न नाम	२३५
	४. भाव संयोग निष्पन्न नाम	२४०
	१० *प्रमाणनिष्पन्न नाम*	२४१
	१. नाम प्रमाण निष्पन्न नाम	२४१
	२. स्थापना प्रमाण निष्पन्ननाम	२४२
	३. द्रव्य प्रमाण निष्पन्न नाम	२४८
	४. भाव प्रमाण निष्पन्न नाम	२४८
	१. सामासिक भाव प्रमाण निष्पन्न नाम	२४८
	२. तद्धितनिष्पन्न भावप्रमाणनाम	२५५
	३. धातुज भाव प्रमाण निष्पन्न नाम	२६२
	४. निरुक्ति जनित भाव प्रमाण निष्पन्न नाम	२६२
१४५.	प्रमाण-भेद	२६३
	१. *द्रव्य प्रमाण*	२६४
	प्रदेशनिष्पन्न द्रव्यप्रमाण	२६४
	विभागनिष्पन्न द्रव्य प्रमाण	२६४
	१. मान प्रमाण	२६५
	२. उन्मान प्रमाण	२६८
	३. अवमान प्रमाण	२७०
	४. गणिम प्रमाण	२७१
	५. प्रतिमान प्रमाण	२७२
	२. *क्षेत्र प्रमाण*	२७४
	प्रदेश निष्पन्न क्षेत्र प्रमाण	२७४
	विभागनिष्पन्न क्षेत्र प्रमाण	२७४
१४६.	अंगुल स्वरूप	२७५
	१. *आत्मांगुल*	२७५
	आत्मांगुल का उद्देश्य	२७७
	आत्मांगुल के प्रकार	२७९
	अंगुलत्रयः अल्प-बहुत्व	२७९
	२. *उत्सेधांगुल*	२८०
	परमाणु स्वरूप	२८०
	व्यावहारिक परमाणु का विश्लेषण	२८२
	व्यावहारिक परमाणु	२८६
	उत्सेधांगुल का प्रयोजन	२८८
	नारकों की अवगाहना	२८८
	भवनपति देवों की शरीरावगाहना	२९२
	पांच स्थावरों की शरीरावगाहना	२९२
	द्वीन्द्रिय जीवों की देहावगाहना	२९४
	त्रीन्द्रिय जीवों की अवगाहना	२९४
	चतुरिन्द्रिय जीवों की अवगाहना	२९५
	पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की अवगाहना	२९६
	मनुष्यगति देहावगाहना	३०४

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रं.	विषय	पृष्ठ
	वाणव्यंतर एवं ज्योतिष्क देवों - की शरीरावगाहना	३०५
	वैमानिक आदि देवों की देहावगाहना	३०५
	ग्रैवेयक और अनुत्तरोपपातिक देवों - की अवगाहना	३०७
	उत्सेधांगुल : भेद एवं अल्प-बहुत्व	३०७
	३. प्रमाणांगुल	३०८
	प्रमाणांगुल का प्रयोजन	३१०
१४७.	कालप्रमाण	३१२
१४८.	समयनिरूपण	३१३
१४९.	समयसमूह मूलक काल विभाजन	३१६
१५०.	औपमिक काल	३१८
१५१.	पल्योपम	३१८
१५२.	व्यावहारिक उद्धारपल्योपम	३१९
१५३.	सूक्ष्म उद्धारपल्योपम	३२१
१५४.	अद्धापल्योपम-सागरोपम	३२५
१५५.	सूक्ष्म अद्धापल्योपम	३२७
१५६.	नैरयिकों की स्थिति	३२८
१५७.	भवनपति देवों की स्थिति	३३०
१५८.	पांच स्थावर निकायों की स्थिति	३३१
१५९.	विकलेन्द्रियों की स्थिति	३३५
१६०.	पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीवों - की स्थिति	३३७
१६१.	जलचर पंचेन्द्रिय जीवों की स्थिति	३३७
१६२.	स्थलचर पंचेन्द्रिय जीवों की स्थिति	३३९
१६३.	खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचों की - काल स्थिति	३४३
१६४.	संग्रहणी गाथाएँ	३४४
१६५.	मनुष्यों की स्थिति	३४५
१६६.	वाणव्यंतर देवों की स्थिति	३४६
१६७.	ज्योतिष्क देवों की स्थिति	३४६
१६८.	वैमानिक देवों की स्थिति	३४९
१६९.	सौधर्म से अच्युतकल्प पर्यन्त देवों - की स्थिति	३५०
१७०.	ग्रैवेयक और अनुत्तर देवों - की स्थिति	३५२
१७१.	क्षेत्रपल्योपम का निरूपण	३५५
१७२.	व्यावहारिक क्षेत्रपल्योपम	३५५
१७३.	सूक्ष्म क्षेत्रपल्योपम	३५७
१७४.	द्रव्य वर्णन	३६०
१७५.	अजीवद्रव्य निरूपण	३६१
१७६.	अरूपी अजीवद्रव्य	३६१
१७७.	रूपी अजीवद्रव्य	३६१
१७८.	जीवद्रव्य निरूपण	३६३
१७९.	पंचविध शरीर	३६५
१८०.	चौबीस दंडकवर्ती जीव-शरीर-निरूपण	३६९
१८१.	पांच शरीर : संख्याक्रम	३७०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रं.	विषय	पृष्ठ
१८२.	बद्ध-मुक्त वैक्रिय शरीर : संख्या	३७१
१८३.	बद्ध-मुक्त आहारक शरीर : परिमाण	३७२
१८४.	तैजस शरीर संख्या परिमाण	३७३
१८५.	कार्मण शरीरों की संख्या	३७४
१८६.	नारकों में बद्ध मुक्त शरीरों - की प्ररूपणा	३७४
१८७.	भवनवासियों के बद्ध-मुक्त शरीर	३७६
१८८.	पृथ्वी-अप्-तेजस्कायिक जीवों - के बद्ध-मुक्त शरीर	३७८
१८९.	वायुकायिक जीवों के बद्ध-मुक्त शरीर	३७८
१९०.	वनस्पतिकायिक जीवों के बद्ध-मुक्त शरीर	३८०
१९१.	पंचेन्द्रिय जीवों के बद्ध-मुक्त शरीर	३८२
१९२.	वाणव्यंतर देवों के बद्ध-मुक्त शरीर	३८७
१९३.	ज्योतिष्क देवों के बद्ध-मुक्त शरीर	३८८
१९४.	वैमानिक देवों के बद्ध-मुक्त शरीर	३८९
१९५.	भाव प्रमाण	३९१
१९६.	गुणप्रमाण	३९१
१९७.	अजीव गुण प्रमाण	३९२
१९८.	जीवगुण प्रमाण	३९३
१९९.	अनुमान प्रमाण	३९५
२००.	पूर्ववत् अनुमान	३९५
२०१.	शेषवत् अनुमान	३९६
२०२.	दृष्टसाधर्म्यवत् अनुमान	३९९
२०३.	अतीतकाल	४००
२०४.	वर्तमानकाल	४०१
२०५.	भविष्यत्काल	४०२
२०६.	विपरीत विशेषदृष्ट साधर्म्यवत् - अनुमान	४०३
२०७.	उपमान प्रमाण	४०५
२०८.	साधर्म्योपनीत उपमान	४०५
२०९.	वैधर्म्योपनीत उपमान प्रमाण	४०८
२१०.	आगम प्रमाण	४१०
२११.	दर्शनगुण प्रमाण	४१५
२१२.	चारित्रगुण प्रमाण	४१६
२१३.	नयप्रमाण	४२१
२१४.	प्रस्थक दृष्टांत	४२१
२१५.	वसतिदृष्टान्त	४२४
२१५.	प्रदेश दृष्टान्त	४२६
२१६.	संख्याप्रमाण विवेचन	४३२
२१७.	औपम्य संख्या	४३६
२१८.	सद्-सद्रूप औपम्य संख्या	४३७
२१९.	सद्-असद्रूप औपम्य संख्या	४३८
२२०.	असत् - सत् औपम्य संख्या	४३८
२२१.	असद् - असद् रूप औपम्य संख्या	४३९
२२२.	परिमाण संख्या के भेद	४३९
२२३.	कालिकश्रुत परिमाणसंख्या	४४०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रं.	विषय	पृष्ठ
२२४.	दृष्टिवाद श्रुत परिमाण संख्या	४४२
२२५.	ज्ञान संख्या	४४२
२२६.	गणनासंख्या	४४२
२२७.	संख्यात के भेद	४४३
२२८.	असंख्यात के भेद	४४४
२२९.	युक्ता संख्यात	४४९
२३०.	असंख्यातासंख्यात का निरूपण	४५०
२३१.	परित्तानन्त का वर्णन	४५२
२३२.	युक्तानन्त का स्वरूप	४५३
२३३.	अनन्तानन्त का निरूपण	४५३
२३४.	भावसंख्या का विवेचन	४५५
२३५.	वक्तव्यता के भेद	४५६
२३६.	परसमयवक्तव्यता	४५८
२३७.	स्वसमय-परसमय वक्तव्यता	४५९
२३८.	वक्तव्यताः विभिन्न नयदृष्टियाँ	४६१
२३९.	अर्थाधिकार विवेचन	४६२
२४०.	समवतार निरूपण	४६३
२४१.	क्षेत्रसमवतार	४६६
२४२.	कालसमवतार	४६६
२४३.	भाव समवतार	४६८
२४४.	निक्षेप-विवेचन	४७०
२४५.	ओघनिष्पन्न	४७०
२४६.	अध्ययन	४७०
२४७.	द्रव्य-अध्ययन	४७१
२४८.	भाव-अध्ययन	४७३
२४९.	अक्षीण निरूपण	४७५
२५०.	भाव-अक्षीण	४७७
२५१.	आय - विवेचन	४७८
२५२.	भाव - आय	४८२
२५३.	द्रव्यक्षपणा	४८४
२५४.	भावक्षपणा	४८६
२५५.	नामनिष्पन्ननिक्षेप	४८७
२५६.	द्रव्य सामायिक	४८८
२५७.	भाव सामायिक	४८८
२५८.	सामायिक हेतु अधिकृत	४८९
२५९.	श्रमण जीवन की विभिन्न उपमाएं	४९०
२६०.	श्रमण का व्युत्पत्ति मूलक निर्वचन	४९२
२६१.	सूत्रालापक निष्पन्न निक्षेप	४९२
२६२.	अनुगम विवेचन	४९३
	१. निक्षेपनिर्युक्त्यनुगम	४९४
	२. उपोद्घातनिर्युक्त्यनुगम	४९४
	३. सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्त्यनुगम	४९९
२६३.	नय-विश्लेषण	५०४
२६४.	नयवर्णन की उपयोगिता	५०६
२६५.	प्रशस्ति गाथाएं	५०६

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, जोधपुर
आगम बत्तीसी प्रकाशन योजना के अन्तर्गत प्रकाशित आगम

अंग सूत्र

क्रं. नाम आगम	मूल्य
१. आचारांग सूत्र भाग-१-२	५५-००
२. सूयगडांग सूत्र भाग-१,२	४५-००
३. स्थानांग सूत्र भाग-१, २	६०-००
४. समवायांग सूत्र	२५-००
५. भगवती सूत्र भाग १-७	३००-००
६. ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र भाग-१, २	८०-००
७. उपासकदशांग सूत्र	२०-००
८. अनुत्तरोपपातिक दशा सूत्र	१५-००
९. प्रश्नव्याकरण सूत्र	३५-००
१०. विपाक सूत्र	३०-००

उपांग सूत्र

१. उववाइय सुत्त	२५-००
२. राजप्रश्नीय सूत्र	२५-००
३. जीवाजीवाभिगम सूत्र भाग-१,२	८०-००
४. प्रज्ञापना सूत्र भाग-१,२,३,४	१६०-००
५-९. निरयावलिका (कल्पिका, कल्पवतंसिका, पुष्पिका-पुष्पचूलिका, वृष्णिदशा)	२०-००
१०. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति	५०-००

मूल सूत्र

१. नंदी सूत्र	२५-००
२. अनुयोगद्वार सूत्र	५०-००

शीघ्र प्रकाशित होने वाले आगम

१. उत्तराध्ययनसूत्र

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संघ के अन्य प्रकाशन

क्रं.	नाम	मूल्य
१.	अंगपविट्ठसुत्ताणि भाग १	१४-००
२.	अंगपविट्ठसुत्ताणि भाग २	४०-००
३.	अंगपविट्ठसुत्ताणि भाग ३	३०-००
४.	अंगपविट्ठसुत्ताणि संयुक्त	८०-००
५.	अनंगपविट्ठसुत्ताणि भाग १	३५-००
६.	अनंगपविट्ठसुत्ताणि भाग २	४०-००
७.	अनंगपविट्ठसुत्ताणि संयुक्त	८०-००
८.	अनुत्तरोववाइय सूत्र	३-५०
९.	आयारो	८-००
१०.	सूयगडो	६-००
११.	उत्तरज्झयणाणि (गुटका)	अप्राप्य
१२.	दसवेयालिय सुत्तं (गुटका)	५-००
१३.	णंदी सुत्तं (गुटका)	३-००
१४.	चउछेयसुत्ताइं	१५-००
१५.	आचारांग सूत्र भाग १	२५-००
१६.	अंतगडदसा सूत्र	१०-००
१७-१९.	उत्तराध्ययन सूत्र भाग १,२,३	४५-००
२०.	आवश्यक सूत्र (सार्थ)	१०-००
२१.	दशवैकालिक सूत्र	१२-००
२२.	जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग १	१०-००
२३.	जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग २	१०-००
२४.	जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग ३	१०-००
२५.	जैन सिद्धांत थोक संग्रह संयुक्त	अप्राप्य
२६.	पन्नवणा सूत्र के थोकड़े भाग १	८-००
२७.	पन्नवणा सूत्र के थोकड़े भाग २	१०-००
२८.	पन्नवणा सूत्र के थोकड़े भाग ३	अप्राप्य
२९-३१.	तीर्थंकर चरित्र भाग १,२,३	१४०-००
३२.	मोक्ष मार्ग ग्रन्थ भाग १	३५-००
३३.	मोक्ष मार्ग ग्रन्थ भाग २	३०-००
३४-३६.	समर्थ समाधान भाग १,२,३	५७-००
३७.	सम्यक्त्व विमर्श	१५-००
३८.	आत्म साधना संग्रह	२०-००
३९.	आत्म शुद्धि का मूल तत्वत्रयी	२०-००
४०.	नवतत्वों का स्वरूप	अप्राप्य
४१.	अगार-धर्म	१०-००
४२.	Saarth Saamaayik Sootra	१०-००
४३.	तत्त्व-पृच्छा	१०-००
४४.	तेतली-पुत्र	४५-००
४५.	शिविर व्याख्यान	१२-००
४६.	जैन स्वाध्याय माला	१८-००
४७.	सुधर्म स्तवन संग्रह भाग १	२२-००
४८.	सुधर्म स्तवन संग्रह भाग २	१५-००
४९.	सुधर्म चरित्र संग्रह	१०-००
५०.	लोंकाशाह मत समर्थन	१०-००

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रं.	नाम	मूल्य
५१.	जिनागम विरुद्ध मूर्त्ति पूजा	१५-००
५२.	बड़ी साधु वंदना	१०-००
५३.	तीर्थंकर पद प्राप्ति के उपाय	५-००
५४.	स्वाध्याय सुधा	७-००
५५.	आनुपूर्वी	१-००
५६.	सुखविपाक सूत्र	२-००
५७.	भक्तामर स्तोत्र	२-००
५८.	जैन स्तुति	६-००
५९.	सिद्ध स्तुति	३-००
६०.	संसार तरणिका	७-००
६१.	आलोचना पंचक	२-००
६२.	विनयचन्द चौबीसी	१-००
६३.	भवनाशिनी भावना	२-००
६४.	स्तवन तरंगिणी	५-००
६५.	सामायिक सूत्र	१-००
६६.	सार्थ सामायिक सूत्र	३-००
६७.	प्रतिक्रमण सूत्र	३-००
६८.	जैन सिद्धांत परिचय	३-००
६९.	जैन सिद्धांत प्रवेशिका	४-००
७०.	जैन सिद्धांत प्रथमा	४-००
७१.	जैन सिद्धांत कोविद	३-००
७२.	जैन सिद्धांत प्रवीण	४-००
७३.	तीर्थंकरों का लेखा	१-००
७४.	जीव-धड़ा	२-००
७५.	१०२ बोल का बासठिया	०-५०
७६.	लघुदण्डक	२-००
७७.	महादण्डक	१-००
७८.	तेतीस बोल	२-००
७९.	गुणस्थान स्वरूप	२-००
८०.	गति-आगति	१-००
८१.	कर्म-प्रकृति	१-००
८२.	समिति-गुप्ति	२-००
८३.	समकित के ६७ बोल	२-००
८४.	पच्चीस बोल	३-००
८५.	नव-तत्त्व	७-००
८६.	सामायिक संस्कार बोध	४-००
८७.	मुखवस्त्रिका सिद्धि	३-००
८८.	विद्युत् सचित्त तेऊकाय है	३-००
८९.	धर्म का प्राण यतना	२-००
९०.	सामण्ण सड्ढिधम्मो	अप्राप्य
९१.	मंगल प्रभातिका	१.२५
९२.	कुगुरु गुर्वाभास स्वरूप	४-००

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

॥ णमो सिद्धाणं॥

श्री आर्यरक्षित स्थविर विरचित-

अनुयोगद्वार सूत्र

(मूलपाठ, कठिन शब्दार्थ, भावार्थ और विवेचन सहित)

(१)

मंगलमय विषय निर्देश

णाणं पंचविहं पण्णत्तं। तंजहा - आभिणिबोहियणाणं १ सुयणाणं २ ओहिणाणं ३ मणपज्जवणाणं ४ केवलणाणं ५।

शब्दार्थ - पंचविहं - पंचविध-पाँच प्रकार का, **पण्णत्तं** - प्रज्ञप्त हुआ है।

भावार्थ - ज्ञान पाँच प्रकार का प्रज्ञप्त-प्रतिपादित हुआ है -

१, आभिनिबोधिक(मति)ज्ञान २. श्रुतज्ञान ३. अवधिज्ञान ४. मनःपर्यवज्ञान एवं ५. केवलज्ञान।

विवेचन - टीकाकारों द्वारा प्रस्तुत प्रारंभिक पाठ मंगलाचरण के रूप में व्याख्यात हुआ है। तदनुसार यहाँ मंगलाचरण का सूक्ष्म, संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

मंगल शब्द शुभ, श्रेयस् या कल्याण का बोधक है। **"मं❀ - पापं, दोषं, विघ्नं वा गलति - नाशयति इति मंगलं"** - जो पाप, दोष या विघ्न को मिटाता है, उसे मंगल कहा जाता है। यह मंगल की शाब्दिक व्युत्पत्ति है।

भारतीय वाङ्मय में ऐसी मान्यता रही है कि प्रारंभ किए जाने वाले ग्रंथ की सुंदर, सफल रूप में परिसमाप्ति हो, एतदर्थ आदि में मंगलाचरण किया जाए।

❀ 'मः' का अर्थ विष भी है, जो उपलक्षण से पाप, दोष या अशुभ का द्योतक है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आगम तो सर्वज्ञ, तीर्थंकर देव द्वारा उपदिष्ट एवं प्रमुख शिष्य गणधरों द्वारा संग्रथित हैं। वे तो स्वयं ही मंगलमय हैं। उनका आदि, मध्य, वसान सर्व मंगलमय है। अतएव तत्त्वतः कृत्रिम मंगलाचरण की वहाँ अपेक्षा नहीं है, किन्तु लोकजनीन व्यावहारिकता की दृष्टि से इसे मंगलसूत्र की संज्ञा दी गई है।

मंगलाचरण स्तुत्यात्मक के साथ-साथ वस्तु निर्देशात्मक भी माना गया है। धार्मिक या आध्यात्मिक श्रेयस्कर वस्तु या विषय स्वयं मंगलरूप है। अतएव सीधा उसका निर्देश भी मंगलाचरण का रूप ले लेता है। यहाँ इसी पद्धति को स्वीकार किया गया है।

ज्ञान आध्यात्मिक रत्नत्रय में एक हैं। सम्यग्-दर्शन एवं सम्यक्-चारित्र के साथ-साथ ज्ञान साधक के आत्मलक्ष्य की संपूर्ति में अनन्य हेतु है। **'पढमं नाणं तओ दया'** इत्यादि सूक्त इसके परिचायक हैं। सम्यग्-दर्शन, सम्यक्-ज्ञान का साहचर्य पाकर उदात्त और ज्योतिर्मय बनता है। सम्यक्-चारित्र उससे प्रेरित और अनुस्यूत होकर आत्मसाधना में बलवत्ता निष्पन्न करता है। इन तीनों का समन्वय ही आत्मलक्ष्य की निष्पत्ति में आवश्यक है।

इस सूत्र में **'पण्णत्तं'** क्रिया पद एक विशेष भाव का द्योतक है। **'पण्णत्तं'** का संस्कृत रूप प्रज्ञप्तं या प्रज्ञापितं होता है। ज्ञप्त या ज्ञापित से पूर्व 'प्र' उपसर्ग प्रकर्ष, उत्कर्ष या वैशिष्ट्य का सूचक है। **'प्रकर्षेण विशेषरूपेण ज्ञप्तं अवबोधितम् - प्रज्ञप्तं'** - जो विशेष रूप से ज्ञापित या अवबोधित किया गया हो, वह प्रज्ञप्त होता है। इस प्रकर्ष या वैशिष्ट्य से आगम निरूपित ज्ञान आदि का सर्वदर्शी, सर्वज्ञाता तीर्थंकर देव द्वारा निरूपित होना सूचित होता है। क्योंकि सर्वज्ञत्व ही उत्कृष्ट, विशिष्ट या सांगोपांग निरूपण का हेतु है। उन्हीं के द्वारा तत्त्वों का संपूर्णतः या सर्वदेशीय प्रज्ञापन, निरूपण संभव है।

पंचविध ज्ञान : स्वरूप

१. आभिनिबोधिक ज्ञान - आभिनिबोधिक शब्द 'अभि' एवं 'नि' उपसर्ग तथा 'बोध' के योग से बना है।

''उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते'' -

व्याकरण शास्त्र के इस नियम के अनुसार उपसर्ग के प्रभाव से धातु का अर्थ किसी विशिष्ट अर्थ में, किसी विशिष्ट भाव की प्रतीति कराता है। तदनुसार 'अभि' उपसर्ग आभिमुख्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

का द्योतक है। 'नि' - नियतार्थता का बोधक है। जो बोध या ज्ञान ज्ञेय पदार्थ के अभिमुख होकर - उसे गृहीत करने में उत्सुक होकर, उसके निश्चित अर्थ की प्राप्ति की ओर जाता है, वह आभिनिबोधिक है। इसी का दूसरा नाम मति ज्ञान है। यह आभिमुख्य एवं नियतार्थकता मति ज्ञान के अवग्रह, ईहा, अवाय एवं धारणामूलक निष्पत्तिक्रम को व्यक्त करता है।

'अभिनिबोधस्य इदम् आभिनिबोधिकम्' - के अनुसार यह अभिनिबोध से निष्पन्न ज्ञान का विशेषण है।

इसे ही मतिज्ञान कहा जाता है। **'मननात्मकं मतिः'** के अनुसार यह मननमूलक है। जो अवग्रह आदि के रूप में घटित होता है। आभिनिबोधिक या मतिज्ञान इन्द्रिय और मन के माध्यम से व्यक्त होता है।

२. श्रुत ज्ञान - 'श्रूयते इति श्रुतं' - जो सुना जाता है, श्रवण द्वारा अधिगत किया जाता है, वह श्रुत है। मतिज्ञान मननात्मक होने से स्वगत होता है। **परप्रत्यायन क्षमं श्रुतं** - जब औरों को वह प्रतीति कराने में सक्षम होता है तब वह श्रुत ज्ञान रूप में परिणत हो जाता है। परप्रत्यायकता या प्रतीतिकारकता उपदेश, विवेचन, विश्लेषण आदि से होती है। इसी कारण शास्त्रज्ञान श्रुतज्ञान कहलाता है। क्योंकि शास्त्रों के अध्ययन, पठन या श्रवण से वह उत्पन्न होता है। द्वादशांग तथा पूर्वगत ज्ञान इसी में सम्मिलित है। इसी कारण चतुर्दश पूर्वधर ज्ञानी को श्रुतकेवली कहा जाता है। मतिज्ञान की ज्यों यह भी मन और इन्द्रियों द्वारा व्यक्त होता है किन्तु परिशीलनात्मक या मननात्मक होने से मन का इसमें अधिक महत्त्व है। इस अपेक्षा से इसे अनीन्द्रिय भी कहा है ♦।

३. अवधि ज्ञान - "अव समन्तात् धीयते इति अवधि अवधानम् वा" - जो परीव्याप्त रूप लिए अधिष्ठित होता है, उसे अवधि या अवधान कहा जाता है। इस व्युत्पत्ति के अनुसार अवधिज्ञान उस ज्ञान का सूचक है, जो मन और इन्द्रियों से प्राप्य ज्ञान की अपेक्षा अधिक व्यापक होता है। अर्थात् जो मन एवं इन्द्रिय जनित न होकर साक्षात् आत्मा द्वारा प्राप्त होता है। अवधि का एक अर्थ परिव्याप्तिमूलक सीमा भी है। उसके अनुसार अवधि ज्ञान की व्यापकता या मर्यादा रूपी या मूर्त्त द्रव्यों तक है। वह एक सीमा विशेष तक रूपी पदार्थों का साक्षात्कार कराता है।

♦ तत्त्वार्थ सूत्र, २/२२

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

४. मनःपर्यव ज्ञान - मनोवर्गणा के वे पुद्गल जो समनस्क जीवों द्वारा काययोग से गृहीत होते हैं, मननात्मक-मनोरूप में परिणत होते हैं, उनकी मन संज्ञा है। 'मनःपर्यव' शब्द मनस्, परि, अव के मेल से बना है। 'परि' उपसर्ग का अर्थ सर्वथा या सर्वतोभावेन है। अव शब्द 'अव' धातु से निष्पन्न है, जिसका अर्थ रक्षण, गमन के साथ-साथ अवगम-जानना भी है। तदनुसार समनस्क जीवों द्वारा किए जाने वाले मनन प्रसूत मनः परिणामों को अवगत करना मनःपर्यव ज्ञान है।

मनःपर्यव ज्ञान को मनः पर्याय ज्ञान भी कहा जाता है। जो मनः, परि तथा आय के मेल से बना है। इनमें आय शब्द 'आ' उपसर्गपूर्वक 'या' धातु से बना है, जिसका अर्थ प्राप्ति है। मनःपर्यव और मनःपर्याय इसीलिए समानार्थक हैं। इस ज्ञान के द्वारा एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के मन के भावों को अवगत करने में, जानने में सक्षम होता है।

५. केवल ज्ञान - 'केवल' शब्द-एक, मात्र, असाधारण, पूर्ण, समस्त, परम, अनावृत-आदि अनेक अर्थों का द्योतक है❁। ज्ञानावरणीय कर्म के सर्वथा क्षीण हो जाने पर जो संपूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है, उसे केवलज्ञान कहा जाता है। जिन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो जाता है, वे विश्ववर्ती संपूर्ण ज्ञेय पदार्थों को, उनके त्रिकालवर्ती गुणपर्यायों के साथ हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष जानते हैं। वह अव्याहत, अप्रतिहत, अनुपम एवं अनुत्तर होता है।

पंचविध ज्ञान का क्रम-निर्देश

वैशिष्ट्य, वैलक्षण्य एवं तारतम्य के आधार पर पाँचों ज्ञानों का क्रम निर्दिष्ट हुआ है। जैन दर्शन की यह मान्यता है कि मतिज्ञान तथा श्रुतज्ञान यत्किंचित् रूप में, न्यूनाधिक तथा संसार के समग्र सम्यग्दृष्टि प्राणी वर्ग में होते हैं। इसलिए ये दो ज्ञान क्रमशः पहले लिए गए हैं। इन दो में भी मतिज्ञान को श्रुतज्ञान से पूर्व लिए जाने का यह कारण है कि श्रुतज्ञान मतिज्ञान पूर्वक होता है❃। मननात्मकता के अनंतर ही प्रत्यायकता या परप्रत्यायकता सिद्ध होती है। पहले चिंतन या मनन होता है फिर अभिव्यक्ति होती है। जो क्रमशः इन दोनों ज्ञानों से संबद्ध है। अवधिज्ञान यद्यपि पारमार्थिक प्रत्यक्ष में है किन्तु अपेक्षा विशेष के कारण उसका इन दोनों से सादृश्य भी है। क्योंकि मति, श्रुत और अवधि - ये तीनों सम्यक्दृष्टि एवं मिथ्यादृष्टि - दोनों

❁ संस्कृत हिन्दी कोश (वामन शिवराम आप्टे), पृष्ठ - ३०२

❃ तत्त्वार्थसूत्र, प्रथम अध्याय, सूत्र-२०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ही प्रकार के जीवों के होते हैं। जब सम्यग्-दर्शन के साथ इनका योग होता है, तब वे ज्ञान कहे जाते हैं। जब मिथ्यादर्शन के साथ ये होते हैं, तब इनकी संज्ञा अज्ञान होती है। वे क्रमशः मति अज्ञान और श्रुत अज्ञान कहे जाते हैं। यहाँ प्रयुक्त अज्ञान शब्द ज्ञान के प्रतिषेध या अभाव का द्योतक नहीं है किन्तु मिथ्यादर्शनरूप कुत्सा का द्योतक है। मिथ्यादर्शन के साथ होने वाले अवधि ज्ञान को विभंगज्ञान (अवधि अज्ञान) कहा जाता है। जब विभंगज्ञानी सम्यक् दृष्टि प्राप्त कर लेता है तो मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान सहज ही मतिज्ञान और श्रुतज्ञान का रूप ले लेते हैं। यों तीनों का क्रमिक संबंध घटित होता है।

अवधि ज्ञान रूपी या मूर्त्त पदार्थों को जानता है, जबकि मनःपर्यव ज्ञान मानसिक स्थितियों का बोध कराता है। इस अपेक्षा से अवधि ज्ञान स्थूलगामी एवं मतिज्ञान सूक्ष्मगामी है। दोनों में इस प्रकार तारतम्य घटित होता है। दूसरा तथ्य यह है, मनःपर्यव ज्ञान सम्यक्त्वी को ही होता है, मिथ्यात्वी को नहीं। इसलिए उत्कर्ष की अपेक्षा से यह अवधि ज्ञान से बढ़कर है।

केवलज्ञान सर्वातिशायी है। वह ज्ञानावरणीय कर्म का सर्वथा क्षय होने से निष्पन्न होता है। यह आत्मा की सर्वोत्कृष्ट अवस्थिति है। वहाँ कुछ भी अपरिज्ञात नहीं रहता है।

पूर्व के चारों ज्ञान कार्मिक क्षयोपशम जनित हैं।

(२)

भेद-विवक्षा : अभिधेय सूचन

तत्थ चत्तारि णाणाइं ठप्पाइं ठवणिज्जाइं, णो उद्दिसिज्जंति ❀, णो समुद्दिसिज्जंति ✲, णो अणुण्णविज्जंति। सुयणाणस्स उद्देसो, समुद्देसो, अणुण्णा, अणुओगो य पवत्तइ।

शब्दार्थ - **ठप्पाइं** - स्थाप्य, **ठवणिज्जाइं** - स्थापनीय, **उद्दिसिज्जंति** - उपदिष्ट होते हैं, **समुद्दिसिज्जंति** - समुपदिष्ट होते हैं, **अणुण्णविज्जंति** - अनुज्ञापित होते हैं, **उद्देशो** - उद्देश, **समुद्देशो** - समुद्देश, **अणुण्णा** - अनुज्ञा, **अणुओगो** - अनुयोग, **पवत्तइ** - प्रवर्तित होता है।

पाठान्तर - ❀ उद्दिस्संति ✲ समुद्दिस्संति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - उन पाँच ज्ञानों में श्रुतज्ञान को छोड़कर शेष चार ज्ञान स्थाप्य, स्थापनीय हैं - व्यवहार योग्य नहीं हैं। क्योंकि इन चारों ज्ञानों का उपदेश, समुपदेश नहीं दिया जाता, अनुज्ञा नहीं दी जा सकती। परन्तु श्रुत ज्ञान उपदिष्ट, समुपदिष्ट, अनुज्ञापित और अनुयोजित किया जाता है।

विवेचन - श्रुत ज्ञान के अतिरिक्त चार ज्ञानों को स्थापनीय और स्थाप्य कहा गया है। जो स्थापनीय कहा गया है, उसका एक विशेष आशय है। व्याकरण के अनुसार स्थाप्य और स्थापनीय यत् और अनीय प्रत्यय द्वारा निष्पन्न रूप हैं। **'स्थापयितुं योग्यं स्थाप्यं स्थापनीयं वा।'** जो स्थापित करने योग्य होता है, उसे स्थाप्य या स्थापनीय कहा जाता है। इन विशेषणों द्वारा इन चारों की सीधी व्यवहार्यता से भिन्न होने का निषेध किया गया है। केवल श्रुतज्ञान ही व्यवहार्य, वचन, श्रवण एवं अभिव्यक्ति का माध्यम है। क्योंकि तद्‌भिन्न चारों ज्ञान तद्-तद्‌विषयक आवरणों के नष्ट होने से प्रकट होते हैं। मति, अवधि, मनःपर्याय और केवलज्ञान गुरु या शिक्षक के उपदेश से नहीं प्राप्त होता है। इसलिए उनके उपदिष्ट, समुपदिष्ट, अनुज्ञात एवं अनुयोजित न होने का कथन किया गया है। यद्यपि श्रुतज्ञान के आविर्भाव में श्रुतज्ञानावरण का मिटना हेतु अवश्य है किन्तु साथ ही साथ उसकी अभिव्यक्ति का माध्यम, उपदेश, अनुज्ञा आदि भी हैं। श्रुतज्ञानावरण के क्षायोपशमिक भाव के अनुरूप श्रोता, शिक्षार्थी या ज्ञानार्थी में प्रज्ञा का तारतम्य रहता है। एक ही गुरु से श्रुतज्ञान का श्रवण, अध्ययन करने वाले किसी ज्ञानार्थी की ग्रहण शक्ति अति तीव्र एवं प्रत्यग्र होती है तथा उसी के सतीर्थ्य - सहपाठी किसी अन्य की ग्रहण शक्ति एवं बुद्धि अतीव मंद होती है। यह श्रुतज्ञानावरण के क्षायोपशमिक भाव की तरतमता के कारण है। किन्तु यहाँ इतना अवश्य है कि तीव्र या मंद, जिस किसी बौद्धिक रूप में श्रुतज्ञान के अर्जन में उपदेश, अनुज्ञापन एवं शिक्षण तो अपेक्षित है ही क्योंकि वचन और श्रवण अभिव्यक्ति के माध्यम हैं, जिनका संबंध श्रुतज्ञान से है।

आगम, शास्त्र श्रुतज्ञान के उपादान हैं। इनकी अभिधेयता की दृष्टि से यह सूत्र यहाँ उपस्थापित है।

इसका अभिप्राय यह है कि अवधि, मनःपर्याय एवं केवलज्ञान ज्ञेय का साक्षात्कार कराते हैं। ज्ञानी द्वारा ज्ञेय ज्ञात हो जाता है। ज्ञात विषयों की अभिव्यक्ति, प्रतिपादन, विवेचन आदि शब्दों द्वारा किए जाते हैं। ग्रहण करने योग्य, त्याग करने योग्य विषयों का आदेश, प्रतिषेध आदि शब्दों द्वारा ही किए जाते हैं। जो श्रुतज्ञान के उपादान हैं। यों मति, अवधि, मनःपर्यव एवं केवलज्ञान ज्ञापनावस्था में श्रुतज्ञान का माध्यम अपनाते हैं, तद्रूपावस्था प्राप्त कर लेते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विशिष्ट ज्ञानी, उपदेष्टा, गुरु, उपदेशक आदि की वाणी द्वारा अभिव्यक्ति प्राप्त करते हैं। अतएव उद्देश-उपदेश, समुद्देश-समुपदेश तथा आज्ञा-अनुज्ञा के रूप में निर्देश श्रोता, ग्रहीता, जिज्ञासु या शिष्य में अनुयोग के - उन-उन विषयों के परिज्ञापन के द्वार हैं।

अनुयोग द्वार संज्ञा की प्रासंगिकता का यह तात्त्विक विश्लेषण है।

(३)

जइ सुयणाणस्स उद्देसो, समुद्देसो, अणुण्णा, अणुओगो य पवत्तइ, किं अंगपविट्ठस्स उद्देसो, समुद्देसो, अणुण्णा, अणुओगो य पवत्तइ? किं अंगबाहिरस्स उद्देसो, समुद्देसो, अणुण्णा, अणुओगो य पवत्तइ?

अंगपविट्ठस्स वि उद्देसो जाव पवत्तइ अणंगपविट्ठस्स * वि उद्देसो जाव पवत्तइ। इमं पुण पट्ठवणं पडुच्च अणंगपविट्ठस्स * अणुओगो।

शब्दार्थ - **जइ** - यदि, **सुयणाणस्स** - श्रुतज्ञान का, **पवत्तइ** - प्रवृत्त होता है, **अंगपविट्ठस्स** - अंग प्रविष्ट का, **अंगबाहिरस्स** - अंग बाह्य का, **इमं** - यह, **पुण** - पुनः, **पट्ठवणं** - प्रस्थापन-प्रारंभ, **पडुच्च** - प्रतीत्य-प्रतीति कर या अपेक्षित कर।

भावार्थ - यदि श्रुतज्ञान में उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा और अनुयोग प्रवृत्त होता है तो तद्विषयक प्रवृत्ति अंगप्रविष्ट श्रुत में होती है अथवा अंगबाह्य में होती है?

अंगप्रविष्ट श्रुत तथा अंगबाह्य श्रुत - दोनों में ही उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा और अनुयोग की प्रवृत्ति होती है।

अंगप्रविष्ट श्रुत में भी उद्देश यावत् अनुयोग की प्रवृत्ति होती है तथा अंगबाह्य श्रुत में भी उद्देश यावत् अनुयोग की प्रवृत्ति होती है।

परन्तु यहाँ अंगबाह्य श्रुत का ही उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा एवं अनुयोग प्रस्तुत किया जायेगा।

विवेचन - अंगप्रविष्ट एवं अंगबाह्य के रूप में श्रुत के दो भेदों की यहाँ जो चर्चा की गई है, उसका विशेष आशय है। विद्वानों ने तत्त्व के विशद् परिज्ञापन की दृष्टि से आगम पुरुष की परिकल्पना की। जिस प्रकार एक पुरुष की देह में विविध अंग होते हैं, उसी प्रकार आगमों के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भाग को अंगों के रूप में परिनिष्ठित किया गया है। जैन श्रुत के संप्रवाहक,

---

पाठान्तरं - * अंग बाहिरस्स

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वीतराग, सर्वज्ञ तीर्थंकर होते हैं। सर्वज्ञत्व की दृष्टि से वे सर्वथा आप्त होते हैं। क्योंकि उनके वचन वर्तमान, भूत और भविष्य - तीनों कालों से अबाधित होते हैं, सर्वांशतः प्रामाणिक, विश्वस्त एवं अविप्रतिपन्न-असंदिग्ध होते हैं। अतएव उन आगमों को अंगों के रूप में स्वीकृत किया गया, जो अर्थ रूप में तीर्थंकरों द्वारा भाषित तथा शब्द रूप में उनके प्रमुख शिष्य गणधरों द्वारा संकलित या संग्रथित (रचित) हैं।

अंगेषु प्रविष्टानि - अंग प्रविष्टानि - यह व्युत्पत्ति यहाँ फलित होती है।

जो आगम अंगगत तत्त्व के अनुरूप स्थविरों द्वारा प्रणीत हैं, उन्हें अनंगप्रविष्ट या अंगबाह्य कहा जाता है। आचार्य जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण ने भी विशेषावश्यक भाष्य में यही लिखा है।

गणहर थेरकयं वा आएसा मुक्कवागरणओ वा।
धुव-चल-विसेसओ वा अंगाणंगेसु नाणत्तं॥५५०॥

"अंगश्रुत का सीधा सम्बन्ध गणधरों से है, जबकि अनंग (अंगबाह्य) श्रुत का सीधा सम्बन्ध स्थविरों से है। अथवा गणधरों के पूछने पर तीर्थंकर ने त्रिपदी के रूप में या अर्थरूप में जो बताया, वह अंगश्रुत है तथा बिना पूछे अपने आप (उत्तराध्ययन सूत्र की तरह) जो बताया, वह अनंगश्रुत है। अथवा जो श्रुत सदा एकरूप (ध्रुव) रहता है, वह अंगश्रुत है, तथा जो श्रुत परिवर्तित, अनियत तथा न्यूनाधिक होता रहता है, वह अनंगश्रुत हैं।"

नंदी सूत्र की टीका में आचार्य मलयगिरि ने इसी तथ्य का प्रतिपादन किया है।

जैन श्रमणसंघ में आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्त्तक, स्थविर, गणी, गणधर तथा गणावच्छेदक इन सात पदों के होने का उल्लेख हुआ है❊।

जिनका शास्त्राध्ययन विशाल हो, अपने विपुल ज्ञान द्वारा जीवन सत्त्व के परिज्ञाता हों तथा शास्त्र ज्ञान द्वारा जिनके जीवन में आध्यात्मिक स्थिरता और दृढ़ता हो, वे स्थविर कहलाते हैं।

इस प्रकार जीवन के धनी श्रमणों की अपनी गरिमा है। वे दृढ़धर्मा होते हैं और संघ के श्रमणों को धर्म में, साधना में और संयम में स्थिर बनाए रखने के लिए सदैव जागरूक तथा प्रयत्नशील रहते हैं।

❊ (क) स्थानांग सूत्र - ४, ३, ३२३ वृत्ति
(ख) बृहत्कल्प सूत्र, उद्देशक - ४

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(४)

जइ अणंगपविट्ठस्स❋ अणुओगो, किं कालियस्स अणुओगो? उक्कालियस्स अणुओगो?

कालियस्स वि अणुओगो, उक्कालियस्स वि अणुओगो। इमं पुण पट्ठवणं पडुच्च उक्कालियस्स अणुओगो।

शब्दार्थ - कालियस्स - कालिक-विशिष्ट समय संबद्ध, **उक्कालियस्स** - उत्कालिक-समय विशेष के प्रतिबंध से विवर्जित।

भावार्थ - यदि अनंगप्रविष्ट श्रुत में उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा और अनुयोग की प्रवृत्ति होती है तो क्या कालिक श्रुत एवं उत्कालिक श्रुत में भी ये सब प्रवृत्त होते हैं?

कालिक और उत्कालिक दोनों में ही उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा और अनुयोग की प्रवृत्ति होती है।

परन्तु यहाँ उत्कालिक श्रुत का ही उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा एवं अनुयोग प्रस्थापित किया जायेगा।

विवेचन - कालिक श्रुत - जिन आगमों का दिन तथा रात्रि के प्रथम एवं अंतिम प्रहर में अध्ययन करना विहित है, उन्हें कालिक श्रुत कहा जाता है।

बहुश्रुत भगवंत कालिक श्रुत की व्याख्या इस प्रकार फरमाते हैं - "अंगसूत्र एवं अंगसूत्रों से सीधे शब्दशः संदर्भ ग्रहण करके जिन आगमों की रचना हुई हैं, वे एवं जो गणधरों के सिवाय शेष स्थविरों (दस पूर्वधरों से चौदह पूर्वधरों) के द्वारा भगवान् से सीधा अर्थ ग्रहण करके रचित होते हैं। वे सब कालिक सूत्र कहे जाते हैं।

उत्कालिक सूत्र - जिन आगमों का अनध्याय या अस्वाध्याय काल के अतिरिक्त कालिक से भिन्न काल में भी अर्थात् दिन एवं रात्रि के प्रथम तथा अंतिम प्रहर के सिवाय अन्य प्रहरों (दूसरे एवं तीसरे प्रहरों) में भी अध्येय हैं, उन्हें उत्कालिक श्रुत कहा जाता है।

अंग सूत्र के भावों को लेकर स्थविरों के द्वारा स्थविरों के शब्दों में रचित होने वाले आगम उत्कालिक श्रुत कहे जाते हैं।

यहाँ पर आगे के सूत्र में आवश्यक सूत्र को भी उत्कालिक श्रुत के रूप में बताया जायेगा।

पाठंतरं - ❋ अंग बाहिरस्स

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अतएव यहाँ उत्कालिक शब्द का अर्थ - 'काल की मर्यादा को उल्लंघन किया हुआ' समझना चाहिये। आवश्यक सूत्र प्रतिदिन उभय संध्या के काल में करना अनिवार्य होने से इसके लिये कोई अस्वाध्याय काल नहीं बताया है।

(५)

अनुयोग - विवक्षा

जइ उक्कालियस्स अणुओगो, किं आवस्सगस्स अणुओगो? आवस्सगवइरित्तस्स अणुओगो?

आवस्सगस्स वि अणुओगो, आवस्सगवइरित्तस्स वि अणुओगो। इमं पुण पट्ठवणं पडुच्च आवस्सगस्स अणुओगो।

शब्दार्थ - आवस्सगस्स - आवश्यक के, **वइरित्तस्स** - व्यतिरिक्त-सिवाय।

भावार्थ - यदि उत्कालिक श्रुत के (उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा एवं) अनुयोग होते हैं तो क्या वे आवश्यक सूत्र के होते हैं अथवा आवश्यक से भिन्न उत्कालिक श्रुत के होते हैं?

आवश्यक सूत्र के भी (उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा और) अनुयोग होते हैं और आवश्यक से भिन्न उत्कालिक श्रुत के भी ये होते हैं।

परन्तु यहाँ आवश्यक श्रुत के ही अनुयोग आदि प्रस्थापित - प्रारंभ किए जायेंगे।

विवेचन - अनुयोग शब्द 'अनु' उपसर्ग एवं 'योग' के मेल से बना है। 'अनु' - आनुकूल्य, अनुसरण, अनुगमन एवं अनुकथन का द्योतक है। श्रुत - सूत्र में निहित अर्थ को समीचीन संगति के साथ जोड़ना अनुयोग का आशय है। इस रूप में उपदिष्ट, अनुशिष्ट, अनुज्ञापित, अभिप्राय, आशय या भाव यथावत् रूप में हृदयंगम होता है।

प्राकृत के 'अणओग' शब्द का 'अनुयोग' के साथ-साथ अणुयोग भी संस्कृत रूपान्तरण बनता है। अनुयोगद्वार सूत्र की वृत्ति में अणु शब्द को लेते हुए विशेष रूप से विवेचन किया है। 'अणु' शब्द सूक्ष्मतम पौद्गलिक इकाई के अतिरिक्त लघु-छोटे या अतिसंक्षिप्त का भी द्योतक है☆।

सूत्र अणु या छोटा होता है। उसका अर्थ विस्तृत होता है। यों अणुयोग शब्द भी अतिसंक्षिप्त आशय को विस्तृत अर्थ के रूप में व्यक्त करने का माध्यम है। सुप्रसिद्ध वैयाकरण

☆ अनुयोगद्वार सूत्र वृत्ति, पत्रांक - ७

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एवं महाभाष्यकार पतंजलि ने 'शब्दाः कामदुघाः' - ऐसा जो कहा है, उसका शब्दों के विस्तीर्ण, व्यापक और वैशद्यपूर्ण अर्थ की ओर संकेत है। अणुयोग शब्द से इसकी संगति घटित होती है।

(६)

आवश्यक सूत्र का स्वरूप विश्लेषण

जइ आवस्सगस्स अणुओगो, किं ❤ णं अंगं? अंगाइं? सुयखंधो? सुयखंधा? अज्झयणं? अज्झयणाइं? उद्देसो? उद्देसा?

आवस्सयं ❀ णं णो अंगं, णो अंगाइं, सुयखंधो, णो सुयखंधा, णो अज्झयणं, अज्झयणाइं, णो उद्देसो, णो उद्देसा।

शब्दार्थ - सुयखंध - श्रुतस्कंध, **अज्झयणं** - अध्ययन।

भावार्थ - यदि यह अनुयोग आवश्यक का है तो वह (आवश्यक सूत्र) एक अंग रूप है या अनेक अंग रूप है? एक श्रुतस्कंध रूप है या एकाधिक श्रुतस्कंध रूप है? एक अध्ययन रूप है या अनेक अध्ययन रूप है? एक उद्देशक रूप है या अनेक उद्देशक रूप है?

आवश्यक सूत्र न एक अंग रूप है और न ही अनेक अंग रूप। वह एक श्रुतस्कंध रूप है, एकाधिक श्रुतस्कंध रूप नहीं है। वह एक अध्ययन रूप नहीं है, एकाधिक अध्ययन रूप है। न एक उद्देशात्मक है न अनेक उद्देशात्मक है।

विवेचन - आगम पुरुष की जो परिकल्पना की गई है, वहाँ श्रुतस्कंध शब्द का विशेष रूप से प्रयोग दृष्टिगत होता है। जिस प्रकार एक पुरुष के भारवहन योग्य दो स्कंध-कंधे होते हैं, उसी प्रकार जो आगम दो विशिष्ट भागों में विभक्त होते हैं, उन्हें श्रुतस्कंध कहा जाता है। क्योंकि उन पर धर्मदेशना या तत्त्व रूप भार सन्निहित होता है। आवश्यक सूत्र में एक ही श्रुतस्कंध है। उसी में विवक्षित तत्त्व विवेचित है। इसीलिए इसे एकाधिक श्रुतस्कन्ध रूप नहीं कहा गया है।

यह अनंगप्रविष्ट - अंगबाह्य श्रुत में समाविष्ट है। इसलिए इसमें एक या अनेक अंगरूप (द्वादशांग गणीपिटक रूप) नहीं है।

पाठांतर - ❤ आवस्सयं किं ❀ आवस्सयस्स

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आगमों में विषय वैशिष्ट्य के आधार पर अध्ययनों के रूप में विभाजन परिलक्षित होता है। यह छह अध्ययनों में विभक्त है। इसलिए इसे एक अध्ययनरूप न कह कर अनेक अध्ययन रूप कहा गया है।

आगमों में अध्ययनों का पुनः उपविभाजन उद्देशकों के रूप में दृष्टिगत होता है। जहाँ वर्ण्य विषय के नामनिर्देश के साथ प्रकरण विशेष का विवेचन होता है। इसमें वैसा उपविभाजन प्राप्त नहीं होता।

उपर्युक्त सूत्र में आये हुए कुछ विशिष्ट शब्दों के अर्थ इस प्रकार हैं -

अंग - तीर्थंकरों के अर्थ - उपदेशानुसार गणधरों द्वारा शब्दनिबद्ध श्रुत की अंग संज्ञा है।

श्रुतस्कन्ध - अध्ययन का समूहात्मक बृहत्काय खंड श्रुतस्कन्ध कहलाता है।

अध्ययन - शास्त्र के किसी एक विशिष्ट अर्थ के प्रतिपादक अंश को अध्ययन कहते हैं।

उद्देशक - अध्ययन के अंतर्गत नामनिर्देशपूर्वक वस्तु का निरूपण करने वाला प्रकरण विशेष उद्देशक कहलाता है।

यहाँ पर आवश्यक सूत्र को अनंगप्रविष्ट - अंगबाह्य में बताया गया है। इसका कारण इस प्रकार से कहा जाता है -

"यद्यपि आवश्यकादि अंगबाह्य सूत्र अंगसूत्रों से ही निर्यूहित होते हैं, इसलिये द्वादशांगी में तो आवश्यकादि समाविष्ट होने से गणधरों की रचना में तो उनका समावेश होता ही है। तथापि आगमकालीन युग में भी साधकों के लिये आवश्यक होने से सर्वप्रथम सामायिक आदि आवश्यक सीखाये जाते हैं। उभय सन्ध्या ही आवश्यक का काल होने से भी इनको कालिक नहीं कहा जा सकता। इसलिये भी इन्हें उत्कालिक कहा गया है। पश्चाद्वर्ती काल में तो विधिवत् अंगसूत्रों से इनका निर्यूहण हुआ है। इसलिये यह अंगबाह्य कहा गया है। अंगसूत्रों के आधार से स्थविरों ने इसकी रचना की है। इसीलिये भाष्यकारों ने **'गणहरथेरकयं वा, अंगाणंगेसु णाणत्तं'** - 'अंगसूत्र गणधरकृत है और अंगबाह्य स्थविरकृत होते हैं।' ऐसा बताया है। नन्दी और अनुयोगद्वार में आवश्यक को अंगबाह्य बताया है। इसलिये औपपातिक आदि की तरह आवश्यक भी स्थविरकृत है। अंगसूत्रों के भावों को लेकर स्थविरों के द्वारा स्थविरों के शब्दों में रचा जाने से इसकी उत्कालिकता स्पष्ट है। नन्दी सूत्र में तो आवश्यक व्यतिरिक्त के कालिक, उत्कालिक भेद किये हैं, जबकि अनुयोगद्वार सूत्र में उत्कालिक के आवश्यक, आवश्यक व्यतिरिक्त भेद किये हैं। इसलिये अपेक्षा से आवश्यक को उत्कालिक माना है।"

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(७)

तम्हा आवस्सयं णिक्खिविस्सामि, सुयं णिक्खिविस्सामि, खंधं णिक्खिविस्सामि, अज्झयणं णिक्खिविस्सामि।

गाहा - जत्थ य जं जाणेज्जा, णिक्खेवं णिक्खिवे णिरवसेसं।
जत्थ वि य ण जाणेज्जा, चउक्कयं णिक्खिवे तत्थ॥१॥

शब्दार्थ - **तम्हा** - इस कारण, **णिक्खिविस्सामि** - निक्षेप करूंगा, **जत्थ** - जहाँ, **जं** - जो, **जाणेज्जा** - ज्ञात हो, **णिक्खेवं** - निक्षेप, **णिक्खिवे** - निक्षेप करे, **णिरवसेसं** - समस्त, **चउक्कयं** - चतुःकृत - चार, **तत्थ** - वहाँ।

भावार्थ - इसलिए आवश्यक की (निक्षेपानुसार) व्याख्या करूंगा। इसी प्रकार श्रुत, स्कंध एवं अध्ययन आदि का निक्षेपानुसार निरूपण करूंगा।

गाथा - यदि निक्षेपकर्त्ता निक्षेप करने योग्य वस्तु को निरवशेषतया-समग्र रूप में जानता हो तो वह तदनुरूप निक्षेप करे। यदि वह वैसा (निरवशेषतया) नहीं जानता हो तो (नाम, स्थापना, द्रव्य एवं भाव रूप) चार निक्षेपों के अनुसार विवेचन करे।

विवेचन - जैन दर्शन में निक्षेप वाग्व्यवहार की एक विशेष पद्धति है। प्रसंग की अपेक्षा से किसी शब्द का एक से अधिक अर्थों में प्रयोग करना निक्षेप है※।

जीवन व्यवहार के साथ भाषा का अनन्य संबंध है। वह भावाभिव्यक्ति का प्रमुख माध्यम है। भाषा का शाब्दिक या पदात्मक दृष्टि से शुद्ध प्रयोग व्याकरण से स्वायत्त होता है किन्तु किसी शुद्ध शब्द की प्रासंगिकता के आधार पर उसका भिन्न अर्थों में भी प्रयोग होता है। मुख्यतः वैसे चार प्रसंग स्वीकार किए गए हैं, जो नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव के रूप में हैं। प्रस्तुत सूत्र में निक्षेप करने या निक्षेप के आधार पर प्रतिपादित करने की जो बात कही गई है, वह प्रसंगानुरूप निरूपण से संबंधित है। इससे प्रस्तुत विषय का सम्यक् विधान होता है और अप्रस्तुत का सहज ही निराकरण होता है। इससे वर्ण्य विषय का ज्ञान विशदता पूर्वक अधिगत होता है। एक ही शब्द का यह भिन्नार्थक प्रयोग विसंगत नहीं होता।

※ स्वाध्याय सूत्र, नवम अधिकार, सूत्र - ४६

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(८)
निक्षेपानुरूप निरूपण

से किं तं आवस्सयं?

आवस्सयं चउव्विहं पण्णत्तं। तंजहा - णामावस्सयं १ ठवणावस्सयं २ दव्वावस्सयं ३ भावावस्सयं ४।

शब्दार्थ - **तं** - वह, **ठवणा** - स्थापना, **दव्व** - द्रव्य।

भावार्थ - वह आवश्यक कैसा है?

आवश्यक नाम, स्थापना, द्रव्य एवं भाव के रूप में चार प्रकार का प्रतिपादित हुआ है।

विवेचन - प्रस्तुत प्रकरणगत आवश्यक शब्द कुछ महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ देता है। इसके मूल में अवश्य शब्द है। अवश्य उस कार्य को कहा जाता है, जिसे करना ही पड़े, जिसे किए बिना नहीं रहा जा सके। दूसरे शब्दों में, जो अनिवार्य हो, वह आवश्यक है।

वृत्तिकार ने आवश्यक शब्द की अनेक प्रकार से व्युत्पत्ति की है -

'अवश्यं कर्त्तव्यमित्यावश्यकम्' - इस व्युत्पत्ति के अनुसार अवश्य करने योग्य धार्मिक उपकरणों का विधायक होने से इसे 'आवश्यक' कहा गया है।

दूसरी व्युत्पत्ति इस प्रकार की गई है -

'आ - समन्ताद्गुणानां वश्यमात्मानं करोतीत्यावश्यकम्' - जो गुणों को आत्म-वशगत बनाता है, आत्मा में गुणों को सन्निहित करता है, निष्पादित करता है, वह आवश्यक है।

तीसरी व्युत्पत्ति अन्य प्रकार से भी की गई है -

'आ - समन्ताद वश्या - वशगता भवन्ति इन्द्रियकषायादि भावशत्रवो यस्मात्तदावश्यकम्' - इन्द्रिय एवं कषाय आदि भावशत्रु, जिसके द्वारा जीते जाते हैं, जिसके स्वीकरण से वश में किए जाते हैं, वह आवश्यक है।

प्राकृत के **'आवस्सयं'** शब्द का संस्कृत रूप **'आवश्यकं'** के अतिरिक्त **'आवासकं'** भी होता है। इसे अधिकृत कर वृत्तिकार ने **''गुणशून्यमात्मानं आ - समन्ताद् वासयति - गुणैः वासितं सुरभितं करोतीत्यावासकम्''** - जो आत्मा मूल गुणों को भूल जाने से शून्यवत् है, उसे गुणों से सुवासित, सुरभित, पुनः संयोजित कर जो सुशोभित करता है, वह आवश्यक है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(६)

नाम आवश्यक

से किं तं णामावस्सयं?

णामावस्सयं - जस्स णं जीवस्स वा, अजीवस्स वा, जीवाण वा, अजीवाण वा, तदुभयस्स वा, तदुभयाणं वा, 'आवस्सए' त्ति णामं कज्जइ। सेत्तं णामावस्सयं।

शब्दार्थ - जीवाण - जीवों का, **अजीवाण** - अजीवों का, **कज्जइ (कीरए)** - कथित किया जाता है।

भावार्थ - नाम आवश्यक क्या है, कैसा होता है?

जिस किसी जीव का या अजीव का अथवा जीवों का या अजीवों का अथवा तदुभय - जीव-अजीव का या तदुभयों - जीवों-अजीवों का लौकिक व्यवहार हेतु जो नाम रखा जाता है, वह नाम-स्थापना संज्ञक आवश्यक है।

विवेचन - नाम आवश्यक का जो निरूपण हुआ है, उसका आधार नाम निक्षेप है।

जहाँ शब्द का व्युत्पत्तिगम्य अर्थ सिद्ध नहीं होता, वह नाम निक्षेप है।

यहाँ यह ज्ञातव्य है कि अर्थ की दृष्टि से शब्द का संरचना विषयक विश्लेषण व्युत्पत्ति कहा जाता है। जो शब्द व्युत्पत्ति संगत अर्थ व्यक्त करते हैं, उन्हें यौगिक कहा जाता है। जिन शब्दों के साथ व्युत्पत्ति घटित नहीं होती, रूढ़ि या परम्परा से जिनका अर्थ किया जाता है, वे रूढ़ कहलाते हैं। जिन शब्दों की व्युत्पत्ति तो होती है किन्तु उसके अनुरूप अर्थ नहीं किया जाता, जो किसी विशेष अर्थ में रूढ़ हो जाते हैं, उन्हें योगरूढ़ कहा जाता है।

नाम निक्षेप में किसी शब्द का अर्थ व्युत्पत्ति आदि का अनुसरण नहीं करता। वह केवल प्रत्यक्षतः व्यवहृत संकेत का सूचन करता है। जैसे किन्हीं धनहीन माता-पिता ने अपने पुत्र का नाम धनाधीश रखा। धनाधीश का अर्थ धन या सम्पत्ति का अधिपति होता है। यहाँ आर्थिक दृष्टि से विपन्न माता-पिता का पुत्र जन्म लेते ही धन का अधिनायक कैसे हो सकता है? किन्तु लोक में उसी नाम से पुकारा जाता है। किसी भीरू या कायर का नाम भी शूरवीर हो सकता है किन्तु व्युत्पत्ति की दृष्टि से तो शौर्य एवं वीरता का उसमें अभाव होता है। अतः वह अर्थ की व्युत्पत्ति की दृष्टि से असंगत है। फिर भी लोक में उसका प्रचलन होता है। इसका अभिप्राय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यह हुआ कि ऐसे नाम भी लोक में स्वीकृत हैं, चलते हैं जो तद् सूचक शब्दों द्वारा बोध्य अर्थ के अनुगामी नहीं होते। शब्द प्रयोग की इस विधा को जैन दर्शन में निक्षेप के रूप में अभिहित किया गया है।

नाम निक्षेप में नाम द्वारा सूचित अर्थ को खोजना आवश्यक नहीं होता, वह वस्तु या व्यक्ति विशेष की पहचान का द्योतक है।

(१०)

स्थापना आवश्यक

से किं तं ठवणावस्सयं?

ठवणावस्सयं-जं णं कट्ठकम्मे वा, चित्तकम्मे वा, पोत्थकम्मे वा, लेप्पकम्मे वा, गंथिमे वा, वेढिमे वा, पूरिमे वा, संघाइमे वा, अक्खे वा, वराडए वा, एगो वा, अणेगो वा, सब्भावठवणा वा, असब्भावठवणा वा, 'आवस्सए' त्ति ठवणा ठविज्जइ। सेत्तं ठवणावस्सयं।

शब्दार्थ - **ठवणावस्सयं** - स्थापना आवश्यक, **कट्ठकम्मे** - काठ पर खोदा हुआ आकार विशेष, **चित्तकम्मे** - चित्र कर्म - भित्तिका, वस्त्र आदि पर निर्मित चित्र, **पोत्थकम्मे**- ताड़पत्र, भोजपत्र, वस्त्र आदि पर लिपिबद्ध अक्षरात्मक आकार, **लेप्पकम्मे** - दीवाल आदि पर मृत्तिका का लेपन कर उकेर कर बनाया गया आकार, **गंथिमे** - ग्रंथिम - सूत्र आदि में गांठे लगाकर बनाई गई आकृति, **वेढिमे** - वेष्टिम - एकाधिक सूत, वस्त्र आदि को लपेट कर बनाया गया आकार, **पूरिमे** - पूरिम - ताम्र, पीतल आदि को गलाकर, सांचे में ढालकर बनाया गया आकार, **संघाइमे** - संघातिम - कई वस्तुओं को जोड़कर बनायी गयी आकृति, **अक्खे** - अक्ष - शतरंज या चौसर के पासे, **वराडए** - वराटक - कौड़ी पर बनाया गया आकार विशेष, **सब्भाव** - सद्भाव, **ठविज्जइ** - स्थापित किया जाता है।

भावार्थ - स्थापना आवश्यक का स्वरूप कैसा होता है?

काष्ठ कर्म, चित्रकर्म, पुस्तकर्म, लेप्यकर्म, ग्रंथिम, वेष्टिम, पूरिम, संघातिम अक्ष अथवा वराटक में अंकित, चित्रित एक या अनेक आकृतियों के रूप में जो सद्भाव या असद्भाव रूप स्थापना की जाती है, वह स्थापना आवश्यक है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - मानव बड़ा कल्पनाशील प्राणी है। वह जीवन से सम्बद्ध व्यक्ति, प्रयुक्त पदार्थ आदि को स्मृति में रखना चाहता है। वैसा करने के लिए मानव ने अपनी उर्वर कल्पना के आधार पर स्व विचारानुरूप प्रतिमा, चित्र आदि तरह-तरह के प्रतीक निर्मित किए, आज भी करता है। वैसा करने में उसको एक प्रकार की सुखानुभूति होती है, जो आसक्ति प्रसूत है। यों परिकल्पना के आधार पर जो प्रतीक निर्मित होते हैं, उनका तत्सम्बद्ध व्यक्ति या वस्तु के रूप में कथन करना स्थापना निक्षेप का विषय है।

यह परिकल्पित रूप निर्मित अनेक वस्तुओं के आधार पर की जाती है, जिनका ऊपर के सूत्र में उल्लेख है।

(११)

नाम और स्थापना निक्षेप में अन्तर

णामट्ठवणाणं को पइविसेसो?

णामं आवकहियं, ठवणा इत्तरिया वा होज्जा, आवकहिया वा।

शब्दार्थ - **णाम-ठवणाणं** - नाम और स्थापना में, **पइविसेसो** - प्रतिविशेष-अन्तर, **आवकहियं** - यावत्कथिक, **इत्तरिया** - इत्वरिक, **होज्जा** - होती है।

भावार्थ - नाम निक्षेप और स्थापना निक्षेप में क्या अंतर है?

नाम निक्षेप यावत्कथिक होता है परन्तु स्थापना निक्षेप इत्वरिक और यावत्कथिक दोनों प्रकार का होता है।

विवेचन - इस सूत्र में नाम निक्षेप और स्थापना निक्षेप का अंतर बतलाया गया है।

यावत्कथिक का व्युत्पत्तिगत विश्लेषण इस प्रकार है - **"यावत् यद्वस्तु व्यक्ति वा विद्यते तावद् तन्नाम्ना कठयतेति यावत्कथिकम्"** - अर्थात् जिस व्यक्ति विशेष या वस्तु विशेष को जो नाम दिया जाता है, वह तब तक प्रवर्तित रहता है, जब तक वह व्यक्ति या वस्तु उस रूप में अस्तित्व लिए रहती है। यावत्कथिक द्वारा इस भाव का द्योतन हुआ है। नाम-निक्षेप की यह विशेषता है।

स्थापना निक्षेप का भी एक पक्ष ऐसा ही है। अर्थात् किन्हीं पदार्थों में जो स्थापना परिकल्पित की जाती है, वह उन पदार्थों के उन-उन रूपों में अवस्थित रहने तक विद्यमान रहती है। इस दृष्टि से स्थापना निक्षेप यावत्कथिक है। किन्तु स्थापना निक्षेप के साथ एक अन्य पक्ष

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भी है। कुछ ऐसी स्थापनाएँ की जाती हैं जो काल विशेष की अपेक्षा से होती हैं। उस विशिष्ट काल के अनंतर उस परिकल्पित स्थापना का अस्तित्व नहीं रहता। उसके लिए इत्वरिक का प्रयोग हुआ है। यावत्कथिक तो नाम और स्थापना दोनों हैं किन्तु नाम केवल यावत्कथिक है किन्तु स्थापना यावत्कथिक भी है और इत्वरिक भी।

(१२)

द्रव्यावश्यक

से किं तं दव्वावस्सयं?

दव्वावस्सयं दुविहं पण्णत्तं। तंजहा - आगमओ य १ णोआगमो य २।

शब्दार्थ - **दव्वावस्सयं** - द्रव्यावश्यकं - द्रव्यावश्यक, **दुविहं** - द्विविध - दो प्रकार का, **आगमओ** - आगमतः - आगमपूर्वक।

भावार्थ - द्रव्य आवश्यक क्या है?

आगम द्रव्यावश्यक एवं नो आगम द्रव्यावश्यक के रूप में वह दो प्रकार का है।

विवेचन - **'द्रवतीति द्रव्यम्'** - जो मूल स्वरूप में अवस्थित रहता हुआ भिन्न भिन्न पर्यायों में परिणत होता है, उसे द्रव्य कहा जाता है। उसमें अतीत, अनागत एवं वर्तमान के रूप में त्रिकालवर्ती पर्यायों या अवस्थाओं का समावेश होता है। जो पहले जिन पर्यायों में था, आज उनमें नहीं है, फिर भी पूर्ववर्ती पर्यायों की अपेक्षा से आज भी उसके लिए वैसा भाषा व्यवहार प्रचलित है। अनागत पर्यायों के लिए भी ऐसा घटित होता है। जो आज जैसा नहीं है किन्तु भविष्यत् में संभावित पर्यायों की दृष्टि से उसे वैसा अभिहित किया जाना प्रचलित है।

इसका तात्पर्य यह है कि भाव रूप में वैसा न होते हुए भी पूर्ववर्ती-पश्चाद्वर्ती स्थितियों के अनुसार वैसा कहा जाना द्रव्य निक्षेप का विषय है।

(१३-१४)

आगम-द्रव्यावश्यक

से किं तं आगमओ दव्वावस्सयं?

आगमओ दव्वावस्सयं - जस्स णं 'आवस्सए' त्ति पयं सिक्खियं, ठियं,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जियं, मियं, परिजियं, णामसमं, घोससमं, अहीणक्खरं, अणच्चक्खरं, अव्वाइद्धक्खरं, अक्खलियं, अमिलियं, अवच्चामेलियं, पडिपुण्णं, पडिपुण्णघोसं, कंठोट्ठविप्पमुक्कं, गुरुवायणोवगयं, से णं तत्थ वायणाए, पुच्छणाए, परियट्टणाए, धम्मकहाए, णो अणुप्पेहाए। कम्हा ? 'अणुवओगो' दव्वमिति कट्टु।

शब्दार्थ - **सिक्खियं** - सीखा हुआ, **ठियं** - मस्तक में टिका हुआ, **जियं** - अनुक्रमपूर्वक पठन, **मियं** - अक्षर आदि की मर्यादा, संयोजन आदि जानना अथवा श्लोक, पद, वर्ण आदि के संख्या प्रमाण का भलीभाँति अभ्यास करना, **परिजियं** - आनुपूर्वी-अनानुपूर्वी पूर्वक सर्वात्मना स्वायत्त करना, **णामसमं** - स्वकीय नाम की तरह सर्वथा, सर्वदा स्मृति में समुपस्थित रखना, **घोससमं** - स्वर के ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत❤ तथा उदात्त, अनुदात्त, स्वरित के रूप में जो उच्चारण संबंधी भेद वैयाकरणों ने किए हैं, उनके अनुरूप उच्चारण करना, **अहीणक्खरं** - अहीनाक्षर-पाठक्रम में किसी भी अक्षर को हीन-प्लुत या अस्पष्ट न कर देना - अक्षर का स्पष्टतापूर्वक उच्चारण करना, **अणच्चक्खरं** - अनत्यक्षर - अधिक अक्षर न जोड़ना, **अव्वाइद्धक्खरं** - अव्याविद्धक्षर - व्यतिक्रम रहित उच्चारण करना - अक्षर, पद आदि का विपरीत-उल्टा पठन न करना, **अक्खलियं** - अस्खलित - पाठ में स्खलन न करना, पाठ का यथाप्रवाह उच्चारण करना, **अमिलियं** - अमिलित - अक्षरों को परस्पर न मिलाते हुए उच्चारण करना, **अवच्चामेलियं**- अव्यत्या म्रेडित - आगम विशेष या शास्त्र विशेष के सूत्रों के पाठ को समानार्थक जानकर उच्चार्य्य पाठ के साथ न मिलाना, **पडिपुण्णं** - प्रतिपूर्ण - पाठ का पूर्ण रूप से उच्चारण करना, उसके किसी अंग को अनुच्चरित न रखना, **पडिपुण्णघोसं** - उच्चारणीय पाठ का घोषपूर्वक-जहाँ अपेक्षित हो उच्च स्वर से स्पष्टतया उच्चारण करना, **कंठोट्ठविप्पमुक्कं**- कण्ठौष्ठ-विप्रमुक्त - उच्चारणीय पाठ या पाठांश को गले और होठों में अटका कर अस्पष्ट नहीं बोलना, **गुरुवायणोवगयं** - गुरु के पास आवश्यक शास्त्र की विधिवत् वाचना लेना, **पुच्छणाए**- पृच्छना, **परियट्टणाए** - परिवर्तना, **अणुप्पेहाए** - अनुप्रेक्षा।

भावार्थ - आगमतः द्रव्यावश्यक कैसा होता है, उसका क्या स्वरूप है?

जिस (साधु) ने आवश्यक को शिक्षित, स्थित आदि उच्चारण संबद्ध विधिक्रम के अनुरूप

❤ ऊकालोऽज्झस्वदीर्घप्लुतः-पाणिनीय अष्टाध्यायी - १,२,२७

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वाचना तो ली है किन्तु उसकी अनुप्रेक्षा - अर्थ का अनुचिंतन नहीं किया है, वह आगमतः द्रव्यावश्यक है। क्योंकि "अनुपयोगो द्रव्यम्" - जहाँ उपयोग नहीं होता, ज्ञानविषयक साक्ष्य नहीं होता, वह द्रव्यरूप है, अतएव वह आवश्यक द्रव्यावश्यक संज्ञा से अभिहित है।

विवेचन - घोषसम और परिपूर्णघोष - इन दोनों विशेषणों में से घोषसम विशेषण शिक्षाकालाश्रयी है और परिपूर्णघोष विशेषण परावर्तनकाल की अपेक्षा है।

णेगमस्स णं एगो अणुवउत्तो, आगमओ एगं दव्वावस्सयं, दोण्णि अणुवउत्ता, आगमओ दोण्णि दव्वावस्सयाइं, तिण्णि अणुवउत्ता, आगमओ तिण्णि दव्वावस्सयाइं, एवं जावइया अणुवउत्ता तावइयाइं ताइं णेगमस्स आगमओ दव्वावस्सयाइं।

एवमेव ववहारस्स वि।

संगहस्स णं एगो वा अणेगो वा अणुवउत्तो वा अणुवउत्ता वा आगमओ दव्वावस्सयं दव्वावस्सयाणि वा, से एगे दव्वावस्सए।

उज्जुसुयस्स एगो अणुवउत्तो आगमओ एगं दव्वावस्सयं, पुहुत्तं णेच्छइ। तिण्हं सद्दणयाणं जाणए अणुवउत्तं अवत्थु।

कम्हा?

जइ जाणए, अणुवउत्तं ण भवइ, जइ अणुवउत्तं, जाणए ण भवइ, तम्हा णत्थि आगमओ दव्वावस्सयं। सेत्तं आगमओ दव्वावस्सयं।

शब्दार्थ - **णेगमस्स** - नैगम नय का, **अणुवउत्तो** - उपयोग रहित, **आगमओ** - आगम की अपेक्षा से, **दोण्णि** - दो, **तिण्णि** - तीन, **जावइया** - जितने, **तावइयाइं** - उतने, **ताइं** - वे, **ववहारस्स** - व्यवहार, **संगहस्स** - संग्रह का, **उज्जुसुयस्स** - ऋजुसूत्र का, **पुहुत्तं** - पृथक्त्व, **णेच्छइ** - इच्छित नहीं है, **सद्द** - शब्द, **अवत्थु** - अवस्तु-असत्य, **कम्हा** - किस कारण से।

भावार्थ - नैगम नय की अपेक्षा से एक उपयोग रहित आत्मा एक आगम द्रव्य आवश्यक है। दो उपयोग रहित आत्माएँ दो आगम द्रव्य आवश्यक, तीन उपयोग रहित आत्माएँ तीन आगम द्रव्य आवश्यक हैं। इस प्रकार जितनी भी उपयोग रहित आत्माएँ हैं, वे सभी नैगम नय की दृष्टि से आगम द्रव्य आवश्यक हैं, तदन्तर्गत हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसी प्रकार व्यवहारनय के साथ भी योजनीय है।

संग्रहनय की अपेक्षा से एक उपयोग रहित आत्मा एक द्रव्य आवश्यक तथा अनेक उपयोग रहित आत्माएँ अनेक द्रव्य आवश्यक हैं, ऐसा स्वीकार्य नहीं है। उसके अनुसार सभी आत्माएँ एक द्रव्य आवश्यक हैं।

ऋजुसूत्र नय की दृष्टि से एक उपयोग रहित आत्मा एक आगमद्रव्य आवश्यक है। यहाँ पार्थक्य स्वीकार्य नहीं होता।

यदि ज्ञायक - ज्ञाता अनुपयुक्त - उपयोग रहित हो तो तीनों शब्दनयों के अनुसार वह अवस्तु रूप मानी जाती है। क्योंकि ज्ञाता उपयोग शून्य नहीं होता।

यह आगम की अपेक्षा से द्रव्य आवश्यक का स्वरूप है।

(१५)

से किं तं णोआगमओ दव्वावस्सयं?

णोआगमओ दव्वावस्सयं तिविहं पण्णत्तं। तंजहा - जाणयसरीरदव्वावस्सयं १ भवियसरीरदव्वावस्सयं २ जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्तं दव्वावस्सयं ३।

शब्दार्थ - **जाणय** - ज्ञ, **भविय** - भव्य, **वइरित्तं** - व्यतिरिक्त।

भावार्थ - नो आगम द्रव्यावश्यक का स्वरूप क्या है?

नो आगम द्रव्यावश्यक तीन प्रकार का प्रज्ञप्त-प्रतिपादित हुआ है - १. ज्ञ शरीर द्रव्यावश्यक २. भव्य शरीर द्रव्यावश्यक ३. ज्ञ शरीर-भव्य शरीर-व्यतिरिक्त द्रव्यावश्यक।

विवेचन - यहाँ नो आगम द्रव्यावश्यक में जो 'नो' का प्रयोग हुआ है, वह निषेधमूलक विशेष आशय से संपृक्त है। उससे दो भाव परिज्ञापित किए गए हैं। एक 'आगमतः द्रव्यावश्यक' वह है, जहाँ आवश्यक का सर्वथा प्रतिषेध है, दूसरा आगमतः द्रव्यावश्यक वह है, जहाँ आंशिक रूप में निषेध का संसूचन है।

साहित्यशास्त्र में भी निषेधमूलक नञ् (नो) के प्रयोग में लगभग इसी प्रकार का विवेचन हुआ है। एक नञ् मुख्यतः निषेध का सूचक होता है। दूसरा नञ् वह होता है जहाँ निषेध की आंशिकता रहती है। इन्हें क्रमशः प्रसज्य प्रतिषेध और पर्युदास की संज्ञा से अभिहित किया गया है।

जहाँ आगम-आवश्यक आदि ज्ञान का सर्वथा अभाव होता है, वह नो आगमद्रव्यावश्यक सर्वदेशीय निषेधमूलक रूप है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आवर्त्तन आदि क्रियाएँ तथा वंदना सूत्र आदि आगम का उच्चारण करते हुए सर्वथा जो आवश्यक किया जाता है, वह एकदेशीय प्रतिषेधमूलक नो आगम द्रव्यावश्यक में परिगणित है।

प्रकृत सूत्र में आए तीनों भेद इसी से संबद्ध हैं।

(१६)

नोआगम-ज्ञ-शरीर-द्रव्यावश्यक

से किं तं जाणयसरीरदव्वावस्सयं?

जाणयसरीरदव्वावस्सयं - 'आवस्सए' त्ति पयत्थाहिगारजाणयस्स जं सरीरयं ववगयचुयचावियचत्तदेहं, जीवविप्पजढं, सिज्जागयं वा, संथारगयं वा, णिसीहियागयं वा, सिद्धसिलातलगयं वा पासित्ता णं कोई भणे(वए)ज्जा - अहो! णं इमेणं सरीरसमुस्सएणं जिणदिट्ठेणं भावेणं 'आवस्सए' त्ति पयं आघवियं, पण्णवियं, परूवियं, दंसियं, णिदंसियं, उवदंसियं। जहा को दिट्ठंतो? अयं महुकुंभे आसी, अयं घयकुंभे आसी। से तं जाणयसरीरदव्वावस्सयं।

शब्दार्थ - **पयत्थाहिगार** - पद अर्थाधिकार, **ववगय** - व्यपगत - चैतन्य रहित, **चुय-चाविय** - च्युत-च्यावित - आयुष्य के समाप्त हो जाने से श्वासोच्छ्वास आदि दशविध प्राणशून्य, **जीवविप्पजढं** - जीव विप्र जड़ - प्राण चले जाने से जड़त्व प्राप्त, **चत्तदेहं** - त्यक्तदेह - आहारादि परिणतिजनित दैहिक क्रिया विवर्जित, **सेज्जागयं** - शैय्यास्थित, **संथारगयं**-संस्तारकस्थित, **णिसीहियागयं** - शव परिस्थापनभूमि, **सिद्धसिलातलगयं** - सिद्धशिलातलगत, **भणेज्जा** - कथन योग्य, **इमेणं** - इस, **सरीरसमुस्सएणं** - शरीर समुच्छ्रय - दैहिक पुद्गल समुच्चय रूप, **जिणदिट्ठेणं** - जिनेन्द्र देव द्वारा समुपदिष्ट, **आघवियं** - आग्राहित-सम्यक् ग्रहीत, **पण्णवियं**- प्रज्ञप्त, **परूवियं** - प्ररूपित, **दंसियं** - दर्शित, **णिदंसियं** - निदर्शित, **उवदंसियं** - उपदर्शित, **जहा** - जैसे, **को** - कौन, **दिट्ठंतो** - दृष्टांत, **महुकुंभे** - मधुकुंभ - शहद का घड़ा, **आसी** - था, **घयकुंभे** - घी का घड़ा।

भावार्थ - ज्ञ-शरीर-द्रव्यावश्यक कैसा होता है?

जिसने आवश्यक पद के अर्थाधिकार को जाना है, उसके चेतना रहित, प्राणशून्य, अनशन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्वारा मृत देह को शय्यासंस्तारकगत देखकर कोई कहे - अहो! दैहिक पुद्गल समुच्चय रूप शरीर द्वारा जिनेन्द्र देव समुपदिष्ट आवश्यक पद को सम्यक् गृहीत किया - उसका अध्ययन किया, उसे प्रज्ञापित किया - औरों को समझाया,उसकी प्ररूपणा की, उसे दर्शित, निर्देशित एवं उपदर्शित किया - विविध रूप में उसकी प्रज्ञापना की।

(प्रश्न उपस्थित होता है) क्या ऐसा कोई दृष्टांत है?

(उसका समाधान यह है) जैसे एक रिक्त घट है, जिसमें मधु था, एक ऐसा दूसरा रिक्त घट है, जिसमें घृत था। वर्तमान में उनमें मधु एवं घृत न होने पर भी (उन्हें) क्रमशः मधुघट एवं घृतघट कहा जाता है। यही तथ्य ज्ञ शरीर के साथ योजनीय है। अतएव यह ज्ञ-शरीर-द्रव्यावश्यक के रूप में जाना जाता है।

विवेचन - इस सूत्र में ऐसे साधक की मृत देह को उपलक्षित कर नो आगम-ज्ञ-शरीर-द्रव्यावश्यक का स्वरूप प्रतिपादित किया है, जिसने जीवितावस्था में तीर्थंकरोपदिष्ट भावानुरूप आवश्यक का अध्ययन, अध्यापन, परिज्ञापन, निर्देशन आदि किया था। यद्यपि चेतनाशून्य, निष्प्राण देह में अब वह आवश्यक विद्यमान नहीं है क्योंकि ज्ञान तो आत्मा का विषय है। आत्मशून्य देह में उसके अस्तित्व की कल्पना ही नहीं की जा सकती। किन्तु व्यवहारनय - व्यवहारिक दृष्टि या भूतपूर्व प्रज्ञापन नय की अपेक्षा से पूर्ववर्तित्व भाव को दृष्टि में रखते हुए ऐसा प्रतिपादित किया जाता है।

(१७)

नो आगम-भव्य-शरीर-द्रव्यावश्यक

से किं तं भवियसरीरदव्वावस्सयं?

भवियसरीरदव्वावस्सयं - जे जीवे जोणिजम्मणणिक्खंते, इमेणं चेव आत्तएणं सरीरसमुस्सएणं जिणोवदिट्ठेणं भावेणं 'आवस्सए' त्ति पयं सेयकाले सिक्खिस्सइ ण ताव सिक्खइ।

जहा को दिट्ठंतो?

अयं महुकुंभे भविस्सइ, अयं घयकुंभे भविस्सइ। सेत्तं भवियसरीरदव्वावस्सयं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ - **भविय** - भव्य, **जे** - जो, **जोणिजम्मणणिक्खंते** - योनि - जन्म-निष्क्रांत-जन्म स्थान से निकला हुआ, **आदत्त** - प्राप्त, **सेयकाले** - स्यात् काले-भविष्यकाल में।

भावार्थ - भव्यशरीर-द्रव्यावश्यक का स्वरूप कैसा है?

योनिरूप जन्म स्थान से निःसृत किसी जीव का शरीर भविष्य में वीतराग प्ररूपित भावानुरूप आवश्यक सीखेगा किन्तु वर्तमान में नहीं सीख रहा है, उस समय वह जीव (भावी पर्याय की अपेक्षा से) भव्य-शरीर-द्रव्यावश्यक कहलाता है।

(प्रश्न) क्या कोई ऐसा दृष्टांत है?

(समाधान) दो ऐसे घड़े रखे हैं, जिनमें से एक में मधु रखा जायेगा तथा दूसरे में घृत रखा जायेगा। (यद्यपि वर्तमान काल में दोनों रिक्त हैं किन्तु भविष्य में रखे जाने वाले मधु और घृत की अपेक्षा से उन्हें वैसा कहा जाता है।)

इसी दृष्टांत के अनुसार भव्य-शरीर-द्रव्यावश्यक ज्ञातव्य है।

विवेचन - नो आगम द्रव्यावश्यक के पहले भेद में अतीत में निष्पन्न स्थिति की वर्तमान में परिकल्पना कर अतीत के अनुरूप विवेचन करने की पद्धति निरूपित हुई है। यद्यपि वर्तमान में वैसा नहीं है किन्तु अतीत में था। उस दृष्टि से वहाँ प्रज्ञापन होता है।

दूसरे भेद में भावी का-भविष्यवर्ती पर्यायों का वर्तमान में अध्याहार किया जाता है। तत्काल उत्पन्न जीव जो भव्य हैं, जो आगे चलकर आवश्यक आदि का अभ्यास आदि करेगा, यद्यपि वर्तमान में इनसे सर्वथा रहित है, फिर भी वह आगामी स्थिति की आकलना, परिकल्पना के आधार पर नो आगम-भव्य-शरीर-द्रव्यावश्यक कहा जाता है।

(१८)

ज्ञ-शरीर-भव्य-शरीर-व्यतिरिक्त द्रव्यावश्यक

से किं तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्तं दव्वावस्सयं?

जाणयसरीरभविय-सरीरवइरित्तं दव्वावस्सयं तिविहं पण्णत्तं। तंजहा - लोइयं १ कुप्पावयणियं २ लोउत्तरियं ३।

शब्दार्थ - **लोइयं** - लौकिक, **कुप्पावयणियं** - कुप्रावचनिक, **लोउत्तरियं** - लोकोत्तरिक।

भावार्थ - ज्ञ-शरीर-भव्य-शरीर-व्यतिरिक्त द्रव्यावश्यक किस प्रकार का है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञ-शरीर-भव्य-शरीर-व्यतिरिक्त द्रव्यावश्यक लौकिक, कुप्रावचनिक एवं लोकोत्तरिक के रूप में तीन प्रकार का है।

(१६)

से किं तं लोइयं दव्वावस्सयं?

लोइयं दव्वावस्सयं - जे इमे राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुंबिय- इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाहपभिइओ कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए सुविमलाए फुल्लुप्पल-कमलकोमलुम्मिलियम्मि अहापंडुरे पभाए रत्तासोगपगास-किंसुय-सुयमुह-गुंजद्धराग-सरिसे कमलागरणलिणिसंडबोहए उट्ठियम्मि सूरे सहस्स-रस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते मुहधोयणदंतपक्खालण-तेल्लफणिह-सिद्धत्थय-हरियालिय-अद्दाग-धूव-पुप्फ-मल्ल-गंध-तंबोलवत्थाइयाइं दव्वावस्सयाइं करेंति, तओ पच्छा रायकुलं वा देवकुलं वा आरामं वा उज्जाणं वा सभं वा पवं वा गच्छंति। सेत्तं लोइयं दव्वावस्सयं।

शब्दार्थ - **राईसर** - राजा एवं ऐश्वर्यशाली विशिष्ट पुरुष, **तलवर** - राज सम्मानित विशिष्ट नागरिक, **माडंबिय** - जागीरदार या भूस्वामी, **कोडुंबिय** - कौटुम्बिक - बड़े परिवारों के प्रमुख, **इब्भ** - वैभवशाली जन, **सेट्ठि** - श्रेष्ठीजन, **सेणावइ** - सेनापति, **सत्थवाह** - सार्थवाह, **पभिइओ** - प्रभृति, **कल्लं** - कल्य-प्रभातकाल, **रयणीए** - रात्रि के, **पाउप्पभायाए**- प्रभा का प्रादुर्भाव हो जाने पर, **सुविमलाए** - समुज्ज्वल, **फुल्लुप्पल** - खिले हुए नीलकमल, **कमल** - मृग विशेष, **उम्मिल्लियम्मि** - उन्मीलित - विकसित होने पर, **अह** - अथ - रात्रि के चले जाने पर, **पंडुरे** - श्वेत वर्ण युक्त, **रत्त** - लाल, **असोग** - अशोक वृक्ष, **पगास** - प्रकाश, **किंसुय** - पलाश के पुष्प, **सुयमुह** - शुकमुख-तोते की चोंच, **गुंजद्धराग** - गुंजार्धराग-आधी घुंघची, **कमलागर** - कमलयुक्त सरोवर, **णलिणी** - कमलिनी, **संड** - समूह, **बोहए**-बोधक, **उट्ठियम्मि** - उत्थित होने पर, **सूरे** - सूर्य के, **सहस्सरस्सिम्मि** - सहस्र किरणों से युक्त, **दिणयरे** - सूर्य, **तेयसा** - तेज से, **जलंते** - प्रज्वलित होने पर, **मुहधोयण** - मुख धोना, **दंतपक्खालण** - दंत प्रक्षालन, **तेल्ल** - तेल मर्दन, **फणिह** - कंघे द्वारा केश प्रसाधन, **सिद्धत्थय** - श्वेत सरसों, **हरियालिय** - दूर्वा, दूब, **अद्दाग** - आदर्श-दर्पण, **धूव** - धूप,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुप्फ - पुष्प, **मल्ल** - माला, **गंध** - सुगंधित पदार्थ, **तंबोल** - तांबूल-पान, **वत्थ** - वस्त्र, **रायकुलं** - राजकुल, **देवकुलं** - देवायतन, **आराम** - बगीचा, **उज्जाण** - उद्यान, **सभं** - सभा, **पवं** - प्रपा-प्याऊ, **तओ पच्छा** - उसके पश्चात्।

भावार्थ - राजा, ऐश्वर्यशाली, प्रभावशाली विशिष्टजन, राजसम्मानित पुरुष, श्रेष्ठी आदि रात्रि व्यतीत हो जाने पर लाल अशोक वृक्ष, पलाश के पुष्प, तोते की चोंच, घुंघची के आधे लाल भाग के सदृश अरुणिमायुक्त सूर्य के उदित होने पर, सरोवरों में कमलों के खिल जाने पर, यों प्रातःकाल हो जाने पर मुख शुद्धि, दंतप्रक्षालन, तेल मर्दन, केश प्रसाधन, मंगल हेतु श्वेत सरसों, दूर्वा प्रक्षेपण, दर्पण में मुख दर्शन, धूप, पुष्प, तथा माल्योपचार, सुगंधित पदार्थ एवं तांबूल सेवन, सुगंधित वस्त्र परिधान आदि धारण कर राजकुल, राजदरबार, देवायतन, बगीचे, उद्यान, सभा तथा प्रपा आदि में जाते हैं। यह लौकिक द्रव्यावश्यक है।

विवेचन - इस सूत्र में जिन कार्यों का वर्णन हुआ है, वे लौकिक दृष्टि से आवश्यक कर्मोपचार माने जाते हैं। लौकिक दृष्टि से उन्हें पवित्र या उत्तम भी कहा जाता है। किन्तु मोक्षोपयोगिता के अभाव में वे भाव आवश्यक की श्रेणी में नहीं आते। उनमें आध्यात्मिक उत्कर्ष का अभाव रहता है। किन्तु वे लौकिक दृष्टि से आवश्यक कहे और माने जाते हैं। इस कथन की दृष्टि से ये द्रव्यावश्यक हैं।

(२०)

कुप्रावचनिक द्रव्यावश्यक

से किं तं कुप्पावयणियं दव्वावस्सयं?

कुप्पावयणियं दव्वावस्सयं - जे इमे चरगचीरिगचम्मखंडियभिक्खोंडपंडुरंग गोयम गोव्वइयगिहिधम्मधम्मचिंतग अविरुद्धविरुद्धवुड्ढसावगपभिइओ❀ पासंडत्था कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव तेयसा जलंते, इंदस्स वा, खंदस्स वा, रुद्दस्स वा, सिवस्स वा, वेसमणस्स वा, देवस्स वा, णागस्स वा, जक्खस्स वा, भूयस्स वा, मुगुंदस्स वा, अज्जाए ✱ वा, दुग्गाए वा, कोट्टकिरियाए वा, उवलेवण-

❀ भरहसमए जेण कइवया सावया पच्छा बंभणा जाया तेणं बंभणा वुड्ढसावगत्ति वुच्चंति।

✱ देवीणाममिमं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संमज्जणआवरिसणधूवपुप्फगंध-मल्लाइयाइं दव्वावस्सयाइं करेंति। सेत्तं कुप्पावयणियं दव्वावस्सयं।

शब्दार्थ - **कुप्पावयणियं** - कुप्रावचनिक, **चरग** - चरक-समुदाय के रूप में भ्रमणशील भिक्षोपजीवी, **चीरिग** - चीरिक - वस्त्र खंडों-चिथड़ों को जोड़कर धारण करने वाले, **चम्मखंडिय**-चमड़े के टुकड़ों को जोड़कर पहनने वाले, **भिक्खोंड** - भीख मांगकर भरण-पोषण करने वाले, **पंडुरंग** - पांडुरंग - देह पर भस्म या श्वेत-पीत मृत्तिका रमाने वाले, **गोयम** - गोतम - गाय या बैल को आधार बनाकर भिक्षायाचन करने वाले, **गोव्वइय** - गोव्रती - गाय की क्रिया के अनुरूप चर्याशील, **गिहिधम्म**- गृहधर्म - गृहस्थ धर्म को सर्वोत्तम मानने वाले, **धम्मचिंतग** - धर्मचिंतक-धर्म के चिंतन मात्र में ही कल्याण मानने वाले, **अविरुद्ध** - माता, पिता, देव, मनुष्य, तिर्यंच आदि सभी को समान मानते हुए उनके प्रति विनय प्रदर्शित करने वाले, **विरुद्ध** - समस्त धर्म विरुद्ध अक्रियावाद में विश्वास रखने वाले, **वुड्ढसावग** - वृद्ध श्रावक - सम्यक् क्रियाविहीन वयोवृद्ध तथाकथित श्रावक, **पासंडत्था** - पाखण्डस्थ (पाषण्डस्थ) - निर्ग्रन्थ प्रवचन में अश्रद्धाशील विविध संप्रदायावलंबी, **तेयसा** - तेजसा - तेज से, **जलंते** - प्रज्वलित, **इंद** - इन्द्र, **खंद** - स्कंद-स्वामी कार्तिकेय, **रुद्द** - रुद्र, **सिव** - शिव, **वेसमण** - वैश्रमण-कुबेर, **णाग** - नाग, **जक्ख** - यक्ष, **भूय** - भूत, **मुगुंद** - मुकुंद, **अज्जाए** - आर्या देवी, **दुग्गाए** - भैंसे पर आरूढ दुर्गा देवी, **कोट्टकिरियाए** - कोट्ट क्रिया देवी, **उवलेवण** - उपलेपन, **संमज्जण** - सम्मार्जन, **आवरिसण** - आवर्षण-जलाभिषेक।

भावार्थ - कुप्रावचनिक द्रव्यावश्यक का क्या स्वरूप है?

चरक, चीरिक, चर्मखंडिक आदि कुप्रावचनिक प्रातःकाल होने पर इन्द्र, स्कंद, रूद्र, शिव, कुबेर आदि देव, नाग, यक्ष, भूत, मुकुंद, आर्यादेवी, कोट्ट क्रियादेवी आदि का उपलेपन, सम्मार्जन, जलाभिषेक, धूप, पुष्प, सुरभित द्रव्य, माला आदि द्वारा जो पूजन-अर्चन करते हैं, वह कुप्रावचनिक द्रव्यावश्यक है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में कुप्रावचनिक शब्द प्रयुक्त हुआ है, उसका विशेष अर्थ है। प्रवचन का अर्थ प्रकृष्ट वचन, विशेष कथन या उपदेश है। **"कुत्सितं प्रवचनं - कुप्रवचनं"**- जो प्रवचन कुत्सित, मिथ्यात्व रूप दोष से युक्त होता है, उसे कुप्रवचन कहा जाता है।

"कुप्रवचनेन संबद्धाः तत्कर्त्तारो वा कुप्रावचनिकाः" - जो मिथ्यात्वग्रस्त व्यक्ति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सद्धर्म प्रतिकूल मिथ्या सिद्धान्तों का अनुसरण और प्रसार करते हैं, उन्हें कुप्रावचनिक कहा जाता है। वे वस्तुतः सद्धर्म के परिपंथी होते हैं। वे भिन्न-भिन्न रूपों में भिक्षादि द्वारा अपना भरण-पोषण करते हैं और विभिन्न देव, यक्ष, भूत-प्रेत आदि की अर्चना, पूजा करते हैं। निर्ग्रन्थ प्रवचन में श्रद्धाविहीन ऐसे विविध मतानुयायिओं के लिए **'पाखंड'** शब्द का प्रयोग हुआ है।

ये अपने-अपने तथाकथित मिथ्यात्व संपृक्त सिद्धांतों के अनुसार अपने द्वारा क्रियमाण पूजन, अर्चन को आवश्यक मानते हैं। मोक्षोपदिष्ट दृष्टि से वह यथार्थतः, भावतः आवश्यक नहीं है। किन्तु लोक प्रचलित रूप में आवश्यक होने से द्रव्यावश्यक माना गया है।

(२१)

लोकोत्तरिक द्रव्यावश्यक

से किं तं लोगुत्तरियं दव्वावस्सयं?

लोगुत्तरियं दव्वावस्सयं - जे इमे समणगुणमुक्कजोगी, छक्कायणिरणुकंपा, हया इव उद्दामा, गया इव णिरंकुसा, घट्ठा, मट्ठा, तुप्पोट्ठा, पंडुरपडपाउरणा, जिणाणमणाणाए सच्छंदं विहरिऊणं उभओ-कालं आवस्सयस्स उवट्ठंति. सेत्तं लोगुत्तरियं दव्वावस्सयं। सेत्तं जाणयसरीरभविय-सरीरवइरित्तं दव्वावस्सयं। सेत्तं णोआगमओ दव्वावस्सयं। सेत्तं दव्वावस्सयं।

शब्दार्थ - समणगुणमुक्क - श्रमण गुण रहित, **हया** - अश्व, **उद्दामा** - उद्दण्ड, **गया**- हाथी, **णिरंकुसा** - उच्छृंखल, **घट्ठा** - घृष्ट-रगड़ना या मलना, **मट्ठा** - मृष्ट-कोमल बनाना, **तुप्पोट्ठा** - ओठों को मक्खन आदि मलकर कोमल बनाना, **पंडुरपडपाउरणा** - ओढने-बिछाने के वस्त्रों को स्वच्छ सज्जित करते हैं, **आणाए** - आज्ञा, **सच्छंदं विहरिऊणं** - स्वच्छंद विहारी, **उवट्ठंति** - उत्थित-तत्पर रहते हैं।

भावार्थ - लोकोत्तरिक द्रव्यावश्यक किस प्रकार का है?

जो साधु के गुणों - आचार से रहित हों, षट्कायिक जीवों के प्रति अनुकंपा रहित हों, अश्वों की तरह उद्दाम हों, हाथियों की तरह निरंकुश हों, शरीर पर तेल आदि मलते हों, उसे वैसा कर कोमल, मृदुल बनाते हों, ओष्ठों को चिकने बनाए रखने हेतु उन पर मक्खन आदि मलते हों, अपने उपयोग के वस्त्रों को उजले सुंदर बनाए रखने में तत्पर हों, जिनेन्द्र देव की

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आज्ञा की अवहेलना करते हों, स्वच्छंद विहारी हों, किन्तु वैसा करते हुए भी दोनों समय आवश्यक आदि करने में तत्पर रहते हों, इनका यह आवश्यक लोकोत्तरिक कहा जाता है।

यह ज्ञ-शरीर-भव्य-शरीर-व्यतिरिक्त द्रव्यावश्यक है।

यह नो आगमद्रव्यावश्यक का विश्लेषण है। इस प्रकार द्रव्यावश्यक का विवेचन समाप्त हुआ।

विवेचन - इस सूत्र में उन व्यक्तियों का वर्णन है, जो श्रमण परिवेश में रहते हैं। कथनी में साधु या श्रमण के रूप में आते हैं किन्तु उनका जीवन श्रमण धर्म के अनुरूप नहीं होता। आत्मोपासना के स्थान पर वे दैहिक अनुकूलता, सुविधा, सज्जा तथा सुंदरता आदि बनाए रखने में संलग्न रहते हैं। जिनाज्ञा के विपरीत चलते हैं किन्तु प्रदर्शन हेतु प्रातः-सायं आवश्यक क्रिया भी संपादित करते हैं।

लोकोत्तर आवश्यक का ऐसा ही आशय है। जिनधर्म सर्वज्ञ, वीतराग प्रभु द्वारा उपदिष्ट है, साधुओं द्वारा आचरित होने से लोक में उत्तम है। किन्तु उपर्युक्त द्रव्यलिंगी साधुओं द्वारा संपादित होने से द्रव्यावश्यक में परिगणित है। यहाँ प्रयुक्त नो शब्द सर्वथा निषेधवाचक नहीं है, वह एकदेश प्रतिषेध सूचक है। क्योंकि प्रतिक्रमण रूप आवश्यक क्रियाओं में ज्ञान का सद्भाव होने से आगमरूपता है किन्तु क्रियाओं की अपेक्षा से उनमें आगमरूपता नहीं है। इस प्रकार यहाँ नो शब्द क्रियाओं की अपेक्षा से व्यवहृत हुआ है।

(२२)

भावावश्यक

से किं तं भावावस्सयं?

भावावस्सयं दुविहं पण्णत्तं। तंजहा - आगमओ य १ णोआगमओ य२।

शब्दार्थ - भावावस्सयं - भावावश्यक।

भावार्थ - भावावश्यक का स्वरूप कैसा है?

भावावश्यक दो प्रकार का प्रज्ञापित हुआ है - १. आगमतः - आगम भावावश्यक २. नोआगमतः - नो आगम भावावश्यक।

विवेचन - भावावश्यक का तात्पर्य शुद्ध या वास्तविक आवश्यक से है। जहाँ अन्यान्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

औपचारिक आवश्यकों का स्वतः प्रतिवाद या प्रतिषेध हो जाता है। अतः भावपूर्वक शुद्ध क्रिया के पालक साधु के जीवन के साथ इसकी संलग्नता है।

(२३)

आगम भावावश्यक

से किं तं आगमओ भावावस्सयं?

आगमओ भावावस्सयं जाणए उवउत्ते। सेत्तं आगमओ भावावस्सयं।

शब्दार्थ - **जाणए** - ज्ञाता, **उवउत्ते** - उपयोग युक्त।

भावार्थ - आगमतः भावावश्यक क्या है?

जो आवश्यक का ज्ञायक-ज्ञाता हो तथा साथ ही साथ उपयोगयुक्त हो, उसे आगमतः भावावश्यक कहा गया है।

विवेचन - **"चेतना-व्यापारः उपयोगः"** - चेतना के व्यापार कार्य या उद्यम को उपयोग कहा जाता है। वह ज्ञान का प्रवृत्तिमूलक रूप है। जिसे आवश्यक पद का ज्ञान हो और साथ ही साथ उसमें तदनुरूप अनुभूतिजन्य प्रवृत्ति हो, वह भावावश्यक है।

(२४)

नो आगम भावावश्यक

से किं तं णोआगमओ भावावस्सयं?

णोआगमओ भावावस्सयं तिविहं पण्णत्तं। तंजहा - लोइयं १ कुप्पावयणियं २ लोगुत्तरियं ३।

भावार्थ - नो आगम आवश्यक का स्वरूप कैसा है?

यह तीन प्रकार का परिज्ञापित हुआ है -

१. लौकिक २. कुप्रावचनिक और ३. लोकोत्तरिक।

(२५)

लौकिक भावावश्यक

से किं तं लोइयं भावावस्सयं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लोइयं भावावस्सयं - पुव्वण्हे भारहं, अवरण्हे रामायणं। सेत्तं लोइयं भावावस्सयं।

शब्दार्थ - पुव्वण्हे - पूर्वाह्न-प्रथम प्रहर (दिन का पूर्व भाग), **भारहं** - भारत-महाभारत, **अवरण्हे** - अपराह्न-मध्यानोत्तर (दिन का उत्तर भाग)।

भावार्थ - लौकिक भावावश्यक का कैसा स्वरूप है?

दिन के पूर्व भाग में महाभारत का तथा उत्तर भाग में रामायण का वाचन श्रवण आदि लौकिक नो आगम भावावश्यक है।

विवेचन - वैदिक परंपरानुवर्ती लोगों द्वारा आगम रूप में स्वीकृत महाभारत, रामायण आदि का वाचन, पठन, श्रवण आदि को आवश्यक के रूप में परिगृहीत किया गया है। किन्तु वस्तुवृत्या वे आगम नहीं हैं। इसलिए वहाँ नो आगम की संगति घटित होती है। लोक प्रचलित होने से उसे लौकिक संज्ञा द्वारा अभिहित किया गया है।

(२६)

कुप्रावचनिक भावावश्यक

से किं तं कुप्पावयणियं भावावस्सयं?

कुप्पावयणियं भावावस्सयं - जे इमे चरगचीरिग जाव पासंडत्था इज्जंजलि होमजपोंदुरुक्कणमुक्कारमाइयाइं भावावस्सयाइं करेंति। सेत्तं कुप्पावयणियं भावावस्सयं।

शब्दार्थ - इज्ज - यज्ञ, **अंजलि** - जलादि द्वारा अभिषेक, **होम** - हवन, **जप** - मंत्र जप, **उंदुरुक्क** - उन्दुरुक्त-सांड आदि की तरह जोर से ध्वनि विशेष का उच्चारण, **णमुक्कारमाइयाइं** - नमस्कार आदि, **करेंति** - करते हैं।

भावार्थ - कुप्रावचनिक भावावश्यक का कैसा स्वरूप है?

चरक, चीरिक यावत् निर्ग्रन्थ प्रवचन में अश्रद्धाशील अन्य संप्रदायानुयायी यज्ञ, जलादि द्वारा अभिषेक, हवन, मंत्र जप, विशिष्ट ध्वनि उच्चारण, नमस्कार आदि जो करते हैं, वह कुप्रावचनिक भावावश्यक है।

विवेचन - यज्ञादि में श्रद्धा रखने वाले मीमांसक आदि यज्ञादि जो विविध उपक्रम करते हैं, उसे कुप्रावचनिक्र भावावश्यक कहा गया है। वे जो भी करते हैं, उसमें उनकी श्रद्धा होती है

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और वे उपयोगपूर्वक वैसा करते हैं। इसलिए उनकी अपेक्षा से वह भावावश्यक की परिधि में आता है। किन्तु यह वीतराग प्ररूपित आगम सम्मत नहीं है। अतएव नो आगमतः की श्रेणी में समाविष्ट है।

(२७)
लोकोत्तरिक भावावश्यक

से किं तं लोगुत्तरियं भावावस्सयं?

लोगुत्तरियं भावावस्सयं - जे (जण)णं इमे समणे वा, समणी वा, सावओ वा, साविया वा, तच्चित्ते, तम्मणे, तल्लेसे, तदज्झवसिए तत्तिव्वज्झवसाणे, तदट्ठोवउत्ते ※, तदप्पियकरणे, तब्भावणाभाविए, अण्णत्थ कत्थइ मणं अकरेमाणे उभओ-कालं आवस्सयं करे(न्ति)इ। सेत्तं लोगुत्तरियं भावावस्सयं। सेत्तं णोआगमओ भावावस्सयं। सेत्तं भावावस्सयं।

शब्दार्थ - **सावओ** - श्रावक, **साविया** - श्राविका, **तच्चित्ते** - एकाग्रचित्त, **तम्मणे** - तन्मय, **तल्लेसे** - तदनुरूप शुभ लेश्या युक्त, **अज्झवसिए** - अध्यवसाय, **तिव्व** - तीव्र, **तदट्ठोवउत्ते** - तदर्थोपपन्न, **तदप्पियकरणे** - तदर्पितकरण-उसमें अर्पित इन्द्रिय युक्त, **तब्भावणाभाविए** - तदनुरूप भावना से अनुभावित, **अण्णत्थ** - अन्य अर्थ-विषय या प्रयोजन में, **कत्थइ** - कहीं भी, **अकरेमाणे** - नहीं लगाता हुआ, **उभओ** - दोनों।

भावार्थ - लोकोत्तरिक भावावश्यक कैसा है?

जो साधु-साध्वी, श्रावक या श्राविका एकाग्रचित्त, तन्मय, तदनुरूप शुभ लेश्या एवं अध्यवसाय युक्त, तीव्र भाव युक्त, तदनुरूप अर्थोपगत होकर उनमें उपयोग पूर्वक शरीर एवं इन्द्रियों को उसमें अर्पित किए हुए, तन्मूलक भावों में अपने आप को समर्पित कर अन्यत्र कहीं भी मन को न जाने देते हुए, पूरी तरह उसी में मन को लगाते हुए दोनों समय प्रतिक्रमणादि आवश्यक करते हैं, वह नो आगमतः लोकोत्तरिक भावावश्यक है।

विवेचन - इस सूत्र में वर्णित नो आगमतः लोकोत्तरिक भावावश्यक का यह अभिप्राय है कि उपयोगपूर्वक किए जाने से उसका ज्ञानात्मक रूप भाव आवश्यक में समाविष्ट है किन्तु तद्गत बाह्य क्रियाएँ आगम रूप नहीं होने से नो आगमतः है।

※ जिणवयणधम्माणुरागरत्तमणे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(२८)

आवश्यक के एकार्थक शब्द

तस्स णं इमे एगट्ठिया णाणाघोसा णाणावंजणा णामधेज्जा भवंति, तंजहा-

गाहा-आवस्सयं अवस्सकरणिज्जं, धुवणिग्गहो विसोही य।

अज्झयणछक्कवग्गो, णाओ आराहणा मग्गो ॥१॥

समणेणं सावएण य, अवस्स कायव्वयं हवइ जम्हा।

अंतो अहोणिसस्स य, तम्हा 'आवस्सयं' णाम ॥२॥ सेत्तं आवस्सयं।

शब्दार्थ - एगट्ठिया - एकार्थक, **णाणाघोसा** - भिन्न-भिन्न उच्चारण ध्वनि युक्त, **वंजणा** - व्यंजन, **णामधेज्जा** - नामधेय-संज्ञाएँ, **अवस्सकरणिज्जं** - अवश्यकरणीय, **धुवणिग्गहो** - ध्रुवनिग्रह, **छक्कवग्गो** - षट्कवर्ग, **कायव्वयं** - कर्त्तव्य, **हवइ** - होता है, **जम्हा** - जिससे, **अहोणिसस्स** - दिन और रात के, **अंतो** - अंत में, **तम्हा** - उस कारण।

भावार्थ - उस आवश्यक के भिन्न-भिन्न उच्चारण ध्वनि एवं व्यंजन आदि युक्त आठ पर्यायवाची शब्द इस प्रकार हैं -

१. आवश्यक २. अवश्यकरणीय ३. ध्रुवनिग्रह ४. विशोधि ५. अध्ययनषट्कवर्ग ६. न्याय ७. आराधना और ८. मार्ग।

साधु तथा साध्वी द्वारा दिन और रात्रि के अन्त में अवश्य रूप में करने योग्य होने के कारण यह आवश्यक संज्ञा से अभिहित हुआ है।

विवेचन - आवश्यक के ये आठ नाम उसके गुणगत वैशिष्ट्य के द्योतक हैं।

१. आवश्यक - आवश्यक शब्द 'आ' उपसर्ग और 'वश्य' के योग से बना है। 'आ' समन्तात या परिपूर्णता का द्योतक है। **"वशितुं योग्यं वश्यम्"** - के अनुसार जो वश में करने योग्य होते हैं, उन्हें वश्य कहा जाता है। **"ज्ञानादि गुणसमयवाय मोक्षो वा वश्या भवत्ति येन तदावश्यकम्"** - जिसके द्वारा ज्ञानादि गुण या मोक्ष वशगत-अधिगत किया जाता है, वह आवश्यक है।

२. अवश्यकरणीय - 'अवश्य' शब्द अनिवार्यता के अर्थ का सूचक है। **अवश्यस्येदमावश्यकम्** (अवश्यस्य + इदं + आवश्यकम्) - जो अवश्य से संबद्ध है, जिसे अवश्य किया जाना चाहिए, वह **'अवस्सकरणिज्जं'** - अवश्यकरणीय है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३. ध्रुवनिग्रह - 'ध्रुव' शब्द नियतता, निश्चितता का बोधक है। जीव के साथ अनादिकाल से संश्लिष्ट कर्म उनके परिणामस्वरूप संसार में आवागमन का निश्चित रूप से निग्रह या अवरोध करता है। अतएव उसकी ध्रुवनिग्रह संज्ञा है।

४. विशोधि - विशोधि शब्द 'वि' उपसर्ग पूर्वक 'शोधि' के मेल से बना है। 'वि' वैशिष्ट्य बोधक है। **"विशेषेण शोधि - शुद्धि पवित्रता वायेन भवति तद्विशुद्धि संज्ञम्"**- जिससे आत्मा का कर्मकालुष्य अपगत होता है, आत्मा विशेष रूप से शुद्धता प्राप्त करती है, वह आवश्यक विशोधि संज्ञक है।

५. अध्ययनषट्कवर्ग - सामायिक, प्रतिक्रमण आदि छह अध्ययन होने से यह अध्ययन षट्कवर्ग से सूचित है।

६. न्याय - **"नीयते अनेन इति न्यायः"** - जो सत्य तक-परम लक्ष्य तक पहुँचाता है, उसे न्याय कहा जाता है। विधिवत् भावावश्यक से यह सिद्ध होता है, इसलिए यह न्याय है।

७. आराधना - शुद्ध आत्मोपासना या परमात्मोपासना से संबद्ध होने से यह आराधना रूप है।

८. मार्ग - साधक के जीवन की अंतिम मंजिल 'मुक्ति' तक पहुँचाने का यथार्थ पथ होने के कारण यह मार्ग संज्ञक है।

(२६)

श्रुत के प्रकार

से किं तं सुयं?

सुयं चउव्विहं पण्णत्तं। तंजहा - णामसुयं १ ठवणासुयं २ दव्वसुयं ३ भावसुयं ४।

शब्दार्थ - **सुयं** - श्रुत, **चउव्विहं** - चतुर्विध - चार प्रकार का।

भावार्थ - श्रुत का कैसा स्वरूप है?

श्रुत चार प्रकार का प्रज्ञप्त हुआ है - १. नाम श्रुत २. स्थापना श्रुत ३. द्रव्य श्रुत तथा ४. भाव श्रुत।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(३०)

नाम श्रुत

से किं तं णामसुयं?

णामसुयं-जस्स णं जीवस्स वा जाव 'सुए' त्ति णामं कज्जइ। सेत्तं णामसुयं।

भावार्थ - नामश्रुत का स्वरूप कैसा है?

जिस किसी जीव का या अजीव का अथवा जीवों का या अजीवों का अथवा उन दोनों का 'श्रुत' ऐसा जो नाम रखा जाता है, उसे नाम श्रुत कहा जाता है।

(३१)

स्थापना श्रुत

से किं तं ठवणासुयं?

ठवणासुयं - जं णं कट्ठकम्मे वा जाव ठवणा ठविज्जइ। सेत्तं ठवणासुयं।

भावार्थ - स्थापना श्रुत का स्वरूप कैसा है?

काष्ठकर्म यावत् कौड़ी आदि में यह श्रुत है, ऐसी जो स्थापना की जाती है, उसे स्थापना श्रुत कहा जाता है।

(३२)

णामठवणाणं को पइविसेसो?

णामं आवकहियं, ठवणा इत्तरिया वा होज्जा, आवकहिया वा।

शब्दार्थ - **पइविसेसो** - प्रतिविशेष-अंतर (पारस्परिक वैशिष्ट्य)।

भावार्थ - नाम श्रुत और स्थापना श्रुत में क्या अंतर है?

नाम यावत्कथिक होता है तथा स्थापना यावत्कथिक और इत्वरिक - दोनों प्रकार की होती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(३३)

द्रव्य श्रुत के प्रकार

से किं तं दव्वसुयं?

दव्वसुयं दुविहं पण्णत्तं तंजहा - आगमओ य १ णो आगमओ य २।

भावार्थ - द्रव्यश्रुत का कैसा स्वरूप है?

द्रव्यश्रुत दो प्रकार का प्रतिपादित हुआ है - १. आगमतः २. नो आगमतः।

(३४)

• आगमतः द्रव्य श्रुत

से किं तं आगमओ दव्वसुयं?

आगमओ दव्वसुयं - जस्स णं 'सुए' त्ति पयं सिक्खियं, ठियं, जियं जाव णो अणुप्पेहाए। कम्हा? 'अणुवओगो' दव्वमिति कट्टु। णेगमस्स णं एगो अणुवउत्तो आगमओ एगं दव्वसुयं जाव तिण्हं सद्दणयाणं जाणए अणुवउत्ते अवत्थु। कम्हा? जइ जाणए अणुवउत्ते ण भवइ, जइ अणुवउत्ते, जाणए ण भवइ, तम्हा णत्थि आगमओ दव्वसुयं। सेत्तं आगमओ दव्वसुयं।

भावार्थ - आगमतः द्रव्यश्रुत किस प्रकार का है?

जिस (साधु) ने 'श्रुत' पद को स्थिर, जित, मित, परिजित के रूप में सीखा है यावत् अर्थ की अनुप्रेक्षा-अनुचिंतना नहीं की है, वह आगमतः द्रव्यश्रुत है। क्योंकि **"अनुपयोगो द्रव्यम्"** - ऐसा सिद्धान्त है। नैगम नय के अनुसार जो एक उपयोग रहित है, वह एक द्रव्यश्रुत है यावत् इसी के अनुरूप तीनों शब्द नयों के अनुसार यह ज्ञातव्य है, जो अनुपयोग रहित होता है, वह अवस्तु रूप है। यह किस प्रकार है - एक, जानता है किन्तु अनुपयोग रहित नहीं होता। दूसरा, जो उपयोग रहित है किन्तु ज्ञाता है। इसलिए पहला आगमतः द्रव्यश्रुत नहीं है (जबकि दूसरा आगमतः द्रव्यश्रुत है)। यह आगमतः द्रव्यश्रुत का स्वरूप है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(३५)

नोआगमतः द्रव्यश्रुत

से किं तं णोआगमओ दव्वसुयं?

णोआगमओ दव्वसुयं तिविहं पण्णत्तं। तंजहा - जाणयसरीरदव्वसुयं १ भवियसरीरदव्वसुयं २ जाणयसरीरभविय-सरीरवइरित्तं दव्वसुयं ३।

भावार्थ - नोआगमतः द्रव्यश्रुत का कैसा स्वरूप है?

नोआगमतः द्रव्यश्रुत तीन प्रकार का परिज्ञापित हुआ है - १. ज्ञ शरीर द्रव्यश्रुत २. भव्य शरीर द्रव्यश्रुत ३. ज्ञ शरीर-भव्यशरीर-व्यतिरिक्त-द्रव्यश्रुत।

(३६)

ज्ञ शरीर द्रव्यश्रुत

से किं तं जाणयसरीरदव्वसुयं?

जाणयसरीरदव्वसुयं - 'सुय' त्ति पयत्थाहिगारजाणयस्स जं सरीरयं ववगयचुयचावियचत्तदेहं जाव पासित्ता णं कोई भणेज्जा - अहो!ण इमेणं सरीरसमुस्सएणं जिणदिट्ठेणं भावेणं 'सुय' त्ति पयं आघवियं जाव अयं घयकुंभे आसी। सेत्तं जाणयसरीरदव्वसुयं।

भावार्थ - ज्ञ शरीर द्रव्यश्रुत का कैसा स्वरूप है?

जिसने श्रुत पद के अर्थाधिकार को जाना है, उसके चेतना रहित, प्राणशून्य, अनशन द्वारा मृत देह को शय्या-संस्तारकगत देखकर कोई कहे - अहो! दैहिक पुद्गल रूप शरीर द्वारा जिनेन्द्र देव समुपदिष्ट श्रुत पद को सम्यक् गृहीत किया - उसका अध्ययन किया, उसे परिज्ञापित किया - औरों को समझाया, उसकी प्ररूपणा की, उसे दर्शित, निदर्शित एवं उपदर्शित किया - विविध रूप में उसे प्रज्ञप्त किया।

(प्रश्न) क्या ऐसा कोई दृष्टान्त है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(समाधान) जैसे एक रिक्त घट है, जिसमें मधु था, एक अन्य रिक्त घट है, जिसमें घृत था। वर्तमान में उनमें मधु एवं घृत न होने पर भी उन्हें क्रमशः मधुघट एवं घृतघट कहा जाता है।

इसी प्रकार वर्तमान निर्जीव शरीर भूतकालिक श्रुत पर्याय का आधार रूप होने से ज्ञ शरीर द्रव्यश्रुत कहलाता है।

(३७)

भव्यशरीर द्रव्यश्रुत

से किं तं भवियसरीरदव्वसुयं?

भवियसरीरदव्वसुयं - जे जीवे जोणिजम्मण-णिक्खंते जाव जिणोवदिट्ठेणं भावेणं 'सुय' त्ति पयं सेयकाले सिक्खिस्सइ जाव अयं घयकुंभे भविस्सइ। सेत्तं भवियसरीरदव्वसुयं।

भावार्थ - भव्यशरीर-द्रव्यश्रुत का कैसा स्वरूप है?

किसी जीव का शरीर (यथा समय) जन्म स्थान से निःसृत हुआ, भविष्य में वीतराग प्ररूपित भावानुरूप श्रुत पद को सीखेगा किन्तु वर्तमान में नहीं सीख रहा है, उस समय वह जीव (भावी पर्याय की अपेक्षा से) भव्य शरीर द्रव्यश्रुत कहलाता है।

(प्रश्न) क्या ऐसा कोई दृष्टान्त उपलब्ध है?

(समाधान) दो घड़े रखे हैं (जो वर्तमान में रिक्त हैं किन्तु भविष्य में उनमें क्रमशः मधु एवं घृत रखा जाना है) जो भविष्यवर्ती पर्याय की अपेक्षा से क्रमशः मधुकुंभ एवं घृतकुंभ कहे जायेंगे।

यही भव्य-शरीर-द्रव्यश्रुत का स्वरूप है।

(३८)

ज्ञ-शरीर-भव्यशरीर-व्यतिरिक्त द्रव्यश्रुत

से किं तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्तं दव्वसुयं?

जाणयसरीरभविय-सरीरवइरित्तं दव्वसुयं पत्तयपोत्थयलिहियं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - ज्ञ शरीर-भव्यशरीर-व्यतिरिक्त द्रव्यश्रुत का क्या स्वरूप है?

पत्र-ताड़पत्र, भोजपत्र, कागज आदि पर अथवा पुस्तक रूप में परिणित पत्रों पर लिखित श्रुत ज्ञशरीर-भव्यशरीर-व्यतिरिक्त द्रव्यश्रुत है।

विवेचन - विविध प्रकार के पत्र पुस्तक आदि पर लिखित 'श्रुत' भावश्रुत का कारण है। इसलिए वह द्रव्यश्रुत है। उपर्युक्त दोनों से भिन्न होने के कारण उनसे व्यतिरिक्त कहा गया है। व्यतिरिक्त शब्द सर्वथा भिन्नत्व का द्योतक है।

पत्र आदि पर लिखित श्रुत उपयोग शून्य हैं क्योंकि पत्रादि पदार्थ चेतना विरहित हैं। इसलिए उसमें द्रव्यत्व है, भावत्व नहीं है। आगमता का आधार आत्मा, शरीर एवं शब्द समवाय है। पुस्तक, पत्र आदि में इनका वास्तविक अस्तित्व न होने से, दूसरे शब्दों में इनके चेतनाराहित्य के कारण इनमें नोआगमता है।

विशेष - मागधी प्राकृत के सिवाय अर्द्धमागधी, शौरसेनी, पैशाची और महाराष्ट्री आदि प्राकृतों में तालव्य, मूर्धन्य और दन्त्य - तीनों सकारों के लिए केवल दन्त्य सकार का ही प्रयोग होता है। इसलिए दन्त्य सकार युक्त प्राकृत शब्द की छाया संस्कृत में तीनों सकारों के रूप में की जा सकती है। यही कारण है, जहाँ 'सुयं' की छाया 'श्रुत' की गई है, वहाँ उसके अतिरिक्त 'सूत्र' (सूत) भी हो सकती है। सूत्र का अर्थ सूत या धागा भी है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए यहाँ प्रकारान्तर से विवेचन किया गया है।

अहवा जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्तं दव्वसुयं पंचविहं पण्णत्तं। तंजहा - अंडयं १ बोंडयं २ कीडयं ३ वालयं ४ वागयं ५।

शब्दार्थ - **अहवा** - अथवा।

भावार्थ - अथवा सूत्र-सूत (धागा), अंडज, बोंडज, कीटज, बालज और वल्कज के रूप में ज्ञशरीर-भव्यशरीर-व्यतिरिक्त द्रव्यश्रुत पाँच प्रकार का कहा गया है।

से किं तं अंडयं?

अंडयं हंसगब्भाइ।

भावार्थ - अंडज किस प्रकार का होता है?

हंस गर्भादि से निष्पन्न सूत्र को अंडज कहा जाता है।

से किं तं बोंडयं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बोंडयं कप्पासमाइ।

भावार्थ - बोंडज किसे कहा जाता है?

बोंड-कपास या रुई से निर्मित सूत को बोंडज कहा जाता है।

से किं तं कीडयं?

कीडयं पंचविहं पण्णत्तं। तंजहा - पट्टे १ मलए २ अंसुए ३ चीणंसुए ४ किमिरागे ५।

भावार्थ - कीटज कैसा होता है?

कीटज पट्ट, मलय, अंशुक, चीनांशुक तथा कृमिराग के रूप में पाँच प्रकार का आख्यात हुआ है।

विवेचन - कीटज सूत्र का संबंध रेशमी धागों से हैं। विविध प्रकार के कीड़ों की लार से बनने वाले रेशमी धागे यहाँ अभिहित हुए हैं। कीटों की गुण निष्पन्न भिन्नता के अनुसार ये पाँच प्रकार के हैं। उनसे बनने वाले वस्त्र ही पट्ट, मलय आदि के नाम से प्रसिद्ध है।

यहाँ प्रयुक्त **'चीणंसुए'** - चीनांशुक शब्द एक विशेष आशय लिए हुए हैं। प्राकृत और संस्कृत में उत्तम कोटि के रेशमी वस्त्रों के लिए इसका प्रयोग होता रहा है। चीन + अंशुक के मेल से यह बना है। इससे यह प्रकट होता है कि चीन में होने वाले विशेष किस्म के रेशम के कीड़ों से यह बनता रहा है। यह भी प्रकट होता है कि वे कीड़े चीन में बहुलता से होते रहे हैं। चीन में बने रेशमी वस्त्र भारत में विशेष रूप से आते रहे हैं। इसलिए सामान्य रेशम के लिए चीनांशुक शब्द प्रचलित हो गया। संस्कृत के अनेक काव्यों, नाटकों आदि में रेशम के लिए चीनांशुक शब्द का प्रयोग होता रहा है। यह भी इतिहास से सिद्ध है, प्राचीन काल में चीन से ही रेशमी वस्त्रों का प्रायः निर्यात होता था।

कृमिरागसूत्र के विषय में ऐसा सुना जाता है कि किन्हीं क्षेत्रविशेषों में मनुष्यादि का रक्त बर्तन में भरकर उसके मुख को छिद्रों वाले ढक्कन से ढंक देते हैं। उसमें बहुत से लाल रंग के कृमि-कीड़े उत्पन्न हो जाते हैं। वे कृमि छिद्रों से निकल कर बाहर आसपास के प्रदेश में उड़ते हुए अपनी लार छोड़ते हैं। इस लार को इकट्ठा करके जो सूत बनाया जाता है, वह कृमिरागसूत्र कहलाता है। लाल रंग के कृमियों से उत्पन्न होने के कारण इस सूत का रंग भी लाल होता है।

से किं तं वालयं ?

Jain Education International　　For Personal & Private Use Only　　www.jainelibrary.org

वालयं पंचविहं पण्णत्तं। तंजहा - उण्णिए १ उट्टिए २ मियलोमिए ३ कोतवे ४ किट्टिसे ५।

भावार्थ - बालज सूत्र का कैसा स्वरूप है?

बालज सूत्र और्णिक, औष्ट्रिक, मृगलौमिक, कौतव तथा किट्टिस के रूप में पाँच प्रकार का है।

विवेचन - ऊर्ण से संबद्ध सूत्र को और्णिक कहा गया है।

"ऊर्णस्येदमौर्णिकम्" - के अनुसार ऊन से बने सूत को और्णिक कहा जाता है। ऊन प्रायः भेड़ के बालों से प्राप्त होती है। उसके भी अनेक प्रकार होते हैं। ऊन के सूत से बने वस्त्र अत्यंत गर्म होते हैं। यही कारण है, प्राचीन काल से सर्दी में प्रायः ऊनी वस्त्रों को धारण करने का प्रचलन रहा है।

ऊँट के बालों से निर्मित धागा औष्ट्रिक कहा जाता है। राजस्थान और गुजरात के रेगिस्तानी भागों में जहाँ ऊँट अधिक उपयोग में लिए जाते हैं, इस धागे से बने वस्त्र प्रयोग में आते हैं।

हिरण के बालों से बने सूत्र मृगलौमिक कहे जाते हैं।

कौतवे-कुतुपिक-कुतुप या कुश आदि घास से बना सूत कौतव कहा जाता है।

किट्टि का अर्थ सूअर है। सूअर के बालों से बना सूत किट्टिस शब्द द्वारा अभिहित हुआ है। अथवा इन और्णिक आदि सूत्रों को बनाते समय इधर-उधर बिखरे बालों का नाम किट्टिस है। इनसे निर्मित अथवा और्णिक आदि सूत को दुहरा-तिहरा करके बनाया गया सूत अथवा घोड़ों आदि के बालों से बना सूत किट्टिस कहलाता है।

से किं तं वागयं?

वागयं सणमाइ। सेत्तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्तं दव्वसुयं। सेत्तं णोआगमओ दव्वसुयं। सेत्तं दव्वसुयं।

शब्दार्थ - सणमाई - पटसन (जूट) आदि से निष्पन्न।

भावार्थ - वल्कज का क्या स्वरूप है?

पटसन आदि से निर्मित सूत्र वल्कज कहा जाता है। यह ज्ञशरीर-भव्यशरीर-व्यतिरिक्त द्रव्य श्रुत का वर्णन है। इस प्रकार नो आगमतः द्रव्यश्रुत का वर्णन परिसमाप्त होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - प्राचीन ग्रंथों में वल्क-वृक्षों की छाल के या उससे निकले तन्तुओं से बने वस्त्रों का उल्लेख आता है। उन्हें वल्कल कहा जाता था। वनवासी, तपस्वी, ऋषि, मुनि आदि उन्हें धारण करते थे।

(३९)

भावश्रुत

से किं तं भावसुयं?

भावसुयं दुविहं पण्णत्तं। तंजहा - आगमओ य १ णोआगमओ य २।

भावार्थ - भावश्रुत का क्या स्वरूप है?

भावश्रुत दो प्रकार का बतलाया गया है - आगमतः तथा नोआगमतः।

(४०)

आगमतः भावश्रुत

से किं तं आगमओ भावसुयं?

आगमओ भावसुयं जाणए उवउत्ते। सेत्तं आगमओ भावसुयं।

भावार्थ - आगमतः भावश्रुत का कैसा स्वरूप है?

आगमतः भावश्रुत ज्ञाता और उपयोग रूप है। इस प्रकार आगमतः भावश्रुत का स्वरूप है।

विवेचन - जब श्रुत का पद अनुभव अथवा उपयोग से युक्त होता है तब वह भावश्रुत संज्ञा से अभिहित किया जाता है। जो साधु भावश्रुत युक्त होते हैं, अभेदोपचार से उन्हें भी भावश्रुत कहा जाता है। इसका तात्पर्य यह है - उपयोग रूप परिणाम के होने के कारण उसमें भावत्व है।

अर्थज्ञान के सद्भाव के कारण वह आगमतः है।

(४१)

नो आगमतः भावश्रुत

से किं तं णोआगमओ भावसुयं?

णोआगमओ भावसुयं दुविहं पण्णत्तं। तंजहा - लोइयं १ लोगुत्तरियं च २।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - नो आगमतः भावश्रुत का क्या स्वरूप है?

नो आगमतः भावश्रुत लौकिक और लोकोत्तर के रूप में दो प्रकार का बतलाया गया है।

(४२)

लौकिक भावश्रुत

से किं तं लोइयं णोआगमओ भावसुयं?

लोइयं णोआगमओ भावसुयं - जं इमं अण्णाणिएहिं मिच्छदिट्ठीहिं सच्छंदबुद्धिमइविगप्पियं तंजहा - भारहं, रामायणं, भीमासुरुक्कं, कोडिल्लयं, घोडयमुहं, सगडभद्दियाउ, कप्पासियं, णागसुहुमं, कणगसत्तरी, वेसियं वइसेसियं, बुद्धसासणं, काविलं, लोगायतं, सट्ठियंतं, माढरं पुराणं वागरणं णाडगाइं, अहवा बावत्तरिकलाओ, चत्तारि वेया संगोवंगा। सेत्तं लोइयं णोआगमओ भावसुयं।

शब्दार्थ - **अण्णाणिएहिं** - अज्ञानियों द्वारा, **मिच्छदिट्ठीहिं** - मिथ्यादृष्टियों द्वारा, **सच्छंदबुद्धि मइविगप्पियं** - स्वच्छन्द बुद्धि-मति द्वारा विकल्पित, **कोडिल्लयं** - कौटिल्य-चाणक्य रचित शास्त्र, **घोडयमुहं** - घोटकमुख-शालिहोत्र संज्ञक अश्वशास्त्र, **सगडभद्दियाउ** - गाड़े-गाड़ियों से संबंधित ग्रंथ, **णागसुहुमं** - नागसूक्ष्म सर्पविद्या-सर्प विष नाश विषयक उपाय आदि से संबंधित-ग्रंथ, **कणगसत्तरी** - कनकसप्तति-सांख्यकारिका, **वेसियं** - श्रृंगारशास्त्र, **वइसेसियं** - वैशेषिक सूत्र, **बुद्धसासणं** - बौद्ध शास्त्र, **काविलं** - कपिलसूत्र, **लोगायतं** - लोकायत-चार्वाक, **सट्ठियंतं** - षष्ठितंत्र-प्राचीन सांख्य, **माढरं** - माठर वृत्ति (षष्ठितंत्र पर), **वागरणं** - व्याकरण, **णाडगाइं** - नाटकादि-नाट्य शास्त्र आदि, **वेया** - वेद, **संगोवंगा** - सांगोपांग-अंग उपांग सहित।

भावार्थ - नो आगमतः लौकिक भावश्रुत किस प्रकार का है?

अज्ञानी मिथ्यादृष्टियों द्वारा, स्वच्छंद-निरंकुश बुद्धि एवं प्रज्ञा से रचित शास्त्र लौकिक नोआगमतः भावश्रुत हैं। रामायण, महाभारत तथा अंगोपांगयुक्त वेद, सांख्य, वैशेषिक आदि दर्शन, पुराण, शालिहोत्र आदि रचित अश्वशास्त्र विषयक ग्रंथ इत्यादि शास्त्र नोआगमतः लौकिक भावश्रुत है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में कनकसत्तरी, षष्ठितंत्र, माठरवृत्ति, कपिलसूत्र का जो प्रयोग

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हुआ है, वह सांख्य विषयक विविध ग्रंथों का सूचन है। महर्षि कपिल सांख्य दर्शन के प्रणेता माने जाते हैं। उन द्वारा रचित कपिल सूत्र सांख्य दर्शन का प्राचीनतम ग्रंथ माना जाता है। तत्पश्चात् सांख्य दर्शन पर षष्ठितंत्र की रचना हुई। षष्ठि शब्द साठ का बोधक है। संभव है, उसमें साठ प्रकरण रहे हों। उस पर माठर नामक आचार्य ने टीका या वृत्ति की रचना की, जिसे माठर वृत्ति कहा जाता है। 'कनकसत्तरी' सांख्यकारिका का नाम है। सप्तति का अर्थ सत्तर है। इसमें प्रामाणिक रूप में सत्तर कारिकाएँ हैं। ईश्वरकृष्ण द्वारा रचित यह ग्रंथ सांख्यशास्त्र का सर्वाधिक प्रामाणिक ग्रंथ है।

छहों दर्शनों के महान् टीकाकार वाचस्पति मिश्र की इस पर सांख्यतत्त्व कौमुदी नामक विस्तृत टीका है, जिसका दार्शनिक जगत् में अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है। विविध शास्त्रों के संबंध में इस सूत्र से जो ऐतिहासिक इंगित प्राप्त होते हैं, वे अनुसंधान की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि आगमकाल में किसी न किसी रूप में इन शास्त्रों का अस्तित्व था।

ये सभी ग्रन्थ भौतिक जगत् में उपयोगी होने से एवं अलग-अलग मतों की मान्यताओं को बताने वाले होने से इन्हें लौकिक भाव श्रुत में गिना गया है। आत्मा की दृष्टि से (आत्म-विशुद्धि में) उपयोगी नहीं होने से एवं अज्ञानियों के द्वारा रचित होने से बुद्धिमानों एवं आत्मसाधकों के लिए इनका वांचन, मनन, आचरण करना किंचित् मात्र भी उपादेय नहीं है।

(४३)

लोकोत्तरिक भावश्रुत

से किं तं लोउत्तरियं णोआगमओ भावसुयं?

लोउत्तरियं णोआगमओ भावसुयं- जं इमं अरहंतेहिं भगवंतेहिं, उप्पण्णणाण-दंसणधरेहिं, तीयपच्चुप्पण्णमणागय-जाणएहिं, सव्वण्णूहिं सव्वदरिसीहिं, तिलुक्कवहियमहियपूइएहिं, अप्पडिहयवर-णाणदंसणधरेहिं, पणीयं दुवालसंगं गणिपिडगं। तंजहा - आयारो १ सूयगडो २ ठाणं ३ समवाओ ४ विवाहपण्णत्ती ५ णायाधम्मकहाओ ६ उवासगदसाओ ७ अंतगडदसाओ ८ अणुत्तरोववाइयदसाओ ९ पण्हावागरणाइं १० विवागसुयं ११ दिट्ठिवाओ य १२। सेत्तं लोउत्तरियं णोआगमओ भावसुयं। सेत्तं णोआगमओ भावसुयं। सेत्तं भावसुयं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ - **उप्पण्ण** - उत्पन्न, **धरेहिं** - धारक, **पच्चुपण्ण** - प्रत्युत्पन्न, **अणागय** - अनागत-भविष्य, **सव्वण्णूहि** - सर्वज्ञों द्वारा, **सव्वदरिसीहिं** - सर्वदर्शियों द्वारा, **तिलुक्कवहिय**- आनंद अश्रु रूप दृष्टि से त्रिलोकवर्ती जीवों द्वारा सहर्ष अवलोकित (तीनों लोकों में विद्यमान), **महिय** - महिमा युक्त, **पूइएहिं** - पूजित, **अप्पडिहय** - अप्रतिहत - बाधा रहित, **पणीतं** - प्रणीत-रचित।

भावार्थ - लोकोत्तरिक नोआगमतः भावश्रुत का कैसा स्वरूप है?

जिन्हें केवलज्ञान, केवलदर्शन उत्पन्न हुआ, वर्तमान, भूत एवं भविष्य के जो दृष्टा हैं, तीनों लोकों के जीवों द्वारा अवलोकित, सभी जीवों द्वारा महिमान्वित - महिमा मण्डित रूप में स्वीकृत, पूजित, अप्रतिहत ज्ञान के धारक, तीर्थंकर भगवंतों द्वारा समुपदिष्ट, आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, व्याख्याप्रज्ञप्ति, ज्ञाताधर्मकथा, उपासकदशांग, अन्तकृद्दशांग, अनुत्तरोपपातिकदशांग, प्रश्नव्याकरण, विपाकश्रुत एवं दृष्टिवाद के रूप में द्वादशांग नोआगमतः भावश्रुत हैं।

नोआगमतः भावश्रुत का ऐसा स्वरूप है।

विवेचन - सूत्र में नोआगम की अपेक्षा लोकोत्तरिक भावश्रुत का स्वरूप बतलाया है। अर्हत् भगवन्तों द्वारा प्रणीत गणिपिटक में उपयोगरूप परिणाम होने से भावश्रुतता है और यह उपयोग रूप परिणाम चरणगुण-चारित्रगुण से युक्त है तो वह नोआगम से भावश्रुत है। क्योंकि चरणगुण क्रिया रूप है और क्रिया आगम नहीं होती है। इस प्रकार यहाँ 'नो' शब्द एकदेशनिषेधक रूप में प्रयुक्त हुआ है।

(४४)

श्रुत के पर्याय

तस्स णं इमे एगट्ठिया णाणाघोसा णाणावंजणा णामधेज्जा भवंति, तंजहा -

गाहा- सुयसुत्तगंथसिद्धंतसासणे, आणवयण उवएसे।
पण्णवण आगमे वि य, एगट्ठा पज्जवा सुत्ते॥१॥

सेत्तं सुयं।

शब्दार्थ - **एगट्ठिया** - एकार्थक-समान अर्थ युक्त, **णाणाघोसा** - उदात्त, अनुदात्त,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्वरित तथा ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत आदि विविध स्वरयुक्त, **णाणावंजणा** - क वर्ग आदि विविध व्यंजन युक्त, **पज्जवा** - पर्याय।

भावार्थ - विविध स्वर एवं व्यंजनयुक्त भावश्रुत के पर्यायवाची शब्द - श्रुत, सूत्र, ग्रंथ, सिद्धांत, शासन, आज्ञा, वचन, उपदेश, प्रज्ञापना तथा आगम (ये दस) हैं।

श्रुत का विवेचन इस प्रकार है।

विवेचन - श्रुत के पर्यायवाची शब्दों का जो उल्लेख हुआ है, यद्यपि तत्त्वतः वे सभी एकार्थक हैं किन्तु शाब्दिक व्युत्पत्ति की दृष्टि से उनमें अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं। इससे एकार्थकता बाधित नहीं होती, विश्लेषणपूर्वक स्पष्ट होती है। प्रत्येक के संबंध में यहाँ निम्नांकित रूप में ज्ञातव्य है -

१. श्रुत - वीतराग तीर्थंकर देव द्वारा अर्थ रूप में भाषित ज्ञान गणधरों आदि द्वारा श्रवण किया जाता है अथवा परंपरा से आगत तीर्थंकरोपदिष्ट ज्ञान उत्तरवर्ती जिज्ञासु जीवों द्वारा उपदेष्टा गुरु से सुना जाता है, इसलिए वह श्रुत है। ज्ञान की इस शाश्वत परंपरा का मुख्य आधार श्रवण ही है। वैदिक परंपरा में भी वेदों को इसलिए श्रुति कहा जाता है।

२. सूत्र - संक्षिप्ततम शब्दावली में विस्तृत अर्थ को निबद्ध करना सूत्र है, कहा गया है-

अल्पाक्षरमसंदिग्धं सारवद्विश्वतोमुखम्।
अस्तोममनवद्यं च सूत्रं सूत्रः विदोविदुः॥

- जो अल्प अक्षरों से युक्त, संदेह रहित, सार युक्त, सर्वव्यापी, आशय युक्त, सर्वथा संगत तथा निर्दोष हो, ऐसी शब्द संरचनामय हो, उसे सूत्र कहा जाता है।

आगम रूप श्रुत ज्ञान में ये सभी विशेषताएँ हैं। वह सूत्रात्मक शैली में प्रस्तुत है।

३. ग्रंथ - शब्द के रूप में संग्रथित होने से इसे ग्रंथ कहा गया है। जैसा कि प्राचीन ग्रन्थों (विशेषावश्यक भाष्य आदि) में कहा गया है -

"अत्थं भासइ अरहा सुत्तं गंथंति गणहरा निउणं"

- तीर्थंकर भगवान् अर्थ रूप में उपदेश करते हैं, गणधर कुशलतापूर्वक सूत्र रूप में उसे संग्रथित करते हैं। संग्रथन के कारण इनकी ग्रंथ संज्ञा है।

४. सिद्धांत - **"सिद्धः अंतो येषां ते सिद्धान्ताः"** - जिनका परिणाम या अभिप्राय सिद्ध या सर्वथा सुप्रमाणित हो, उन्हें सिद्धांत कहा जाता है। श्रुत ज्ञान इस वैशिष्ट्य से युक्त होने के कारण सिद्धांत रूप है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

५. शासन - **''शास्तीति शासनम्''** - जो शासित करता है, सत्यानुप्राणित करता है मिथ्यात्व से पृथक् कर सम्यक्त्व में शासित करता है, वह शासन है।

६. आज्ञा - निर्द्वन्द्व, निर्दोष एवं सर्वथा प्रमाणयुक्त होने से जो आदेश के रूप में व्याख्यात है, जो मुक्तिमार्ग का आदेश करता है, वह आज्ञा रूप है।

७. वचन - वाणी द्वारा व्याख्यात होने से यह वचन रूप है।

८. उपदेश - उपादेय में प्रवृत्ति और हेय से निवृत्ति हेतु जो गुरुजन द्वारा उपदेश के रूप में प्रतिपादित होता है, वह उपदेश है।

६. प्रज्ञापना - **'ज्ञापयति बोधयतीति ज्ञापना - प्रकर्षेण ज्ञापयतीति प्रज्ञापना'** - जो जीवादि तत्त्वों का विशेष रूप से विश्लेषण करता है, उन्हें प्रज्ञापित करता है, उसकी प्रज्ञापना संज्ञा है।

१०. आगम - आप्तवचन होने से जो ज्ञान के अनादि स्रोत के रूप में चला आ रहा है, वह आगम रूप है।

(४५)

स्कंध के भेद

से किं तं खंधे?

खंधे चउव्विहे पण्णत्ते। तंजहा - णामखंधे १ ठवणाखंधे २ दव्वखंधे ३ भावखंधे ४।

भावार्थ - स्कंध किस प्रकार का है?

स्कंध के चार भेद परिज्ञापित हुए हैं, वे इस प्रकार हैं - १. नाम स्कंध २. स्थापना स्कंध ३. द्रव्य स्कंध एवं ४. भाव स्कंध।

(४६)

णामट्ठवणाओ पुव्वभणियाणुक्कमेण भाणियव्वाओ।

भावार्थ - नाम और स्थापना स्कन्ध पूर्वप्रतिपादन के अनुरूप भणनीय - कथनीय हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(४७)

द्रव्य स्कन्ध

से किं तं दव्वखंधे?

दव्वखंधे दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - आगमओ य १ णोआगमओ य २।

भावार्थ - द्रव्य स्कन्ध कैसा है?

द्रव्य स्कन्ध दो तरह का है - १. आगम द्रव्य स्कन्ध तथा २. नोआगम द्रव्य स्कन्ध।

से किं तं आगमओ दव्वखंधे?

आगमओ दव्वखंधे - जस्स णं 'खंधे' त्ति पयं सिक्खियं जाव सेत्तं भवियसरीरदव्वखंधे णवरं खंधाभिलावो।

भावार्थ - आगम द्रव्य स्कन्ध क्या स्वरूप है?

जिसने स्कन्ध पद का गुरु से शिक्षण प्राप्त किया है यावत् वह भव्य शरीर द्रव्य स्कन्ध है। यहाँ स्कन्ध का अभिलाप - विवेचन है।

ज्ञ शरीर-भव्य शरीर-व्यतिरिक्त द्रव्य स्कन्ध

से किं तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वखंधे?

जाणयसरीरभविय-सरीरवइरित्ते दव्वखंधे तिविहे पण्णत्ते। तंजहा - सचित्ते १ अचित्ते २ मीसए ३।

भावार्थ - ज्ञ शरीर - भव्य शरीर - व्यतिरिक्त द्रव्य स्कन्ध किस प्रकार का है?

ज्ञ शरीर - भव्य शरीर - व्यतिरिक्त द्रव्य स्कन्ध के १. सचित्त २. अचित्त और ३. मिश्र ये तीन भेद हैं।

(४८)

सचित्त द्रव्य स्कन्ध

से किं तं सचित्ते दव्वखंधे?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सचित्ते दव्वखंधे अणेगविहे पण्णत्ते। तंजहा - हयखंधे, गयखंधे, किण्णरखंधे, किंपुरिसखंधे, महोरगखंधे, गंधव्वखंधे, उसभखंधे। सेत्तं सचित्ते दव्वखंधे।

शब्दार्थ - अणेगविहे - अनेक विध - अनेक प्रकार का, हय - अश्व, **महोरग** - विशाल सर्प।

भावार्थ - सचित्त द्रव्य स्कन्ध किस प्रकार का है?

सचित्त द्रव्य स्कन्ध के अनेक भेद हैं, जैसे - अश्व स्कन्ध, गज स्कन्ध, किन्नर स्कन्ध, किंपुरुष स्कन्ध, महोरग स्कन्ध, गंधर्व स्कन्ध, वृषभ स्कन्ध, ये सचित्त द्रव्य स्कन्ध हैं।

विवेचन - चित्त का तात्पर्य चेतना है। संज्ञान, उपयोग, विज्ञान आदि उसके पर्यायवाची हैं। यहाँ सचित्त स्कन्ध भेद में जो किन्नर और किंपुरुष शब्द आये हैं उनका अर्थ टीकाकार मलधारीय आचार्य हेमचन्द्र ने अनुयोगद्वार टीका में = 'व्यंतर जाति के देव' किया हैं। प्राचीन परम्परा से एवं आगम के इस वर्णन के अनुसार यही अर्थ होना उचित है। इन शब्दों का पौराणिक साहित्य में विशेष रूप से प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। विद्याधर, गन्धर्व आदि की तरह किन्नर एक विशेष जाति के जीवों का बोधक है। पौराणिक ग्रन्थों में ऐसा उल्लेख मिलता है - ''जिनके मस्तक अश्व के तथा शरीर मनुष्य के होते थे, उन्हें किन्नर कहा जाता है ❁ किन्नर शब्द में 'किम+नरः' का योग है। किम् का मकार व्यंजन संधि के नियमानुसार न में परिवर्तित हो गया है। जिसे देखकर सहसा मन में यह शंका उठी कि क्या यह मनुष्य है अथवा अश्व है? ऐसा भाव उदित होने के कारण किन्नर की शाब्दिक सार्थकता मानी जाती है।

भाषा शास्त्र के अर्थ परिवर्तन के विविध प्रकार के अनुसार वर्तमान काल में किन्नर शब्द नपुंसक के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

किम् पुरुष शब्द भी किन्नर की तरह एक विशिष्ट जाति के विशिष्ट प्रभाव युक्त विचित्र आकार युक्त जीवों के लिए प्रयुक्त होता रहा है, जिन्हें देखकर सहसा मन में यह भाव उदित हो कि क्या यह पुरुष - मनुष्य है या और कुछ?

इस शब्द के साथ भी भाषा शास्त्रीय परिवर्तन के शब्द बने। आज शब्दकोशों के अनुसार इसका अर्थ निकृष्ट पुरुष होता है। जिसकी निकृष्टता बहुल प्रकृति को देखकर सहसा मन में एक घृणा संपुटित प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या यह भी कोई मनुष्य है?

प्राचीन परम्परा से तो टीकाकार द्वारा किया हुआ अर्थ ही उचित समझना चाहिये।

❁ संस्कृत हिन्दी शब्द कोश (वामन शिवराम आप्टे) पृष्ठः २७५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(६)

अचित्त द्रव्य स्कन्ध

से किं तं अचित्ते दव्वखंधे?

अचित्ते दव्वखंधे अणेगविहे पण्णत्ते। तंजहा - दुपएसिए, तिपएसिए जाव दसपएसिए, संखिज्जपएसिए, असंखिज्जपएसिए, अणंतपएसिए। सेत्तं अचित्ते दव्वखंधे।

शब्दार्थ - **दुपएसिए** - द्विप्रदेशिक - दो प्रदेश युक्त, **तिपएसिए** - त्रिप्रदेशिक, **संखिज्जपएसिए** - संख्यात प्रदेशिक।

भावार्थ - अचित्त द्रव्य स्कन्ध किस प्रकार का है?

अचित्त द्रव्य स्कन्ध अनेक प्रकार का बतलाया गया है, जैसे - द्विप्रदेशिक, त्रिप्रदेशिक या दस प्रदेशिक, संख्यात प्रदेशिक, असंख्यात प्रदेशिक तथा अनंत प्रदेशिक। यह अचित्त द्रव्य स्कन्ध का निरूपण है।

विवेचन - प्रदेश शब्द सूक्ष्मतम पुद्गल स्कन्ध का सूचक है। "परमाणु परिमितोभागः प्रदेशः" जितने स्थान पर परमाणु रहता है, पुद्गल का उतना भाग प्रदेश कहा जाता है। अतः जहाँ दो प्रदेश हो वह द्विप्रदेशिक तथा तीन प्रदेश हो वहाँ त्रिप्रदेशिक-इस प्रकार यह क्रम अनन्त प्रदेशी स्कन्ध तक व्याख्येय है।

(५०)

मिश्र द्रव्य स्कन्ध

से किं तं मीसए दव्वखंधे?

मीसए दव्वखंधे अणेगविहे पण्णत्ते। तंजहा - सेणाए अग्गिमे खंधे, सेणाए मज्झिमे खंधे, सेणाए पच्छिमे खंधे। सेत्तं मीसए दव्वखंधे।

शब्दार्थ - **मीसए दव्वखंधे** - मिश्र द्रव्य स्कन्ध, **सेणाए** - सेना का, **अग्गिमे** - अग्रिम-आगे का, **मज्झिमे** - मध्य का, **पच्छिमे** - पीछे का।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - मिश्र द्रव्य स्कन्ध किस प्रकार का है?

मिश्र द्रव्य स्कन्ध अनेक प्रकार का है, जैसे - सेना का आगे का स्कन्ध, बीच का स्कन्ध तथा पीछे का स्कन्ध। यह मिश्र द्रव्य स्कन्ध का प्रतिपादन है।

विवेचन - मिश्र द्रव्य स्कन्ध में जो सेना का उदाहरण दिया गया है, उसका आशय यह है कि सेना सचित्त और अचित्त दोनों का समन्वित रूप है। सैनिक, हाथी, घोड़े आदि सचित्त हैं तथा खड्ग, ढ़ाल, भाले, धनुष, बाण आदि अचित्त हैं। यों इसमें दोनों का सम्मिश्रण है।

(५१)

ज्ञ शरीर-भव्य शरीर-व्यतिरिक्त द्रव्य स्कन्ध का अन्यविध निरूपण

अहवा जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वखंधे तिविहे पण्णत्ते। तंजहा - कसिणखंधे १ अकसिणखंधे २ अणेगदवियखंधे ३।

शब्दार्थ - **अहवा** - अथवा, **कसिणखंधे** - कृत्स्न-समग्र स्कन्ध, **अकसिण** - अकृत्स्न-असमग्र, **अणेग** - अनेक।

भावार्थ - अथवा ज्ञ शरीर - भव्य शरीर व्यतिरिक्त द्रव्य स्कन्ध के १. कृत्स्न द्रव्य स्कन्ध २. अकृत्स्न द्रव्य स्कन्ध तथा ३. अनेक द्रव्य स्कन्ध के रूप में तीन भेद हैं।

(५२)

से किं तं कसिणखंधे?

कसिणखंधे - से चेव हयखंधे, गयखंधे जाव उसभखंधे। सेत्तं कसिणखंधे।

भावार्थ - कृत्स्न स्कन्ध किस प्रकार का है?

कृत्स्न स्कन्ध, अश्व स्कन्ध, गजस्कन्ध यातव् वृषभ स्कन्ध के रूप में है, जैसा पहले व्याख्यात हुआ है। कृत्स्न स्कन्ध का यह स्वरूप है।

विवेचन - यहाँ सचित्त द्रव्य स्कन्ध के उदाहरण में अश्व स्कन्ध, गज स्कन्ध यावत् वृषभ स्कन्ध का उल्लेख हुआ है। वैसा ही कृत्स्न स्कन्ध के उदाहरण में दृष्टिगत होता है। यहाँ यह ज्ञातव्य है कि दोनों प्रसंगों की विवक्षा में अन्तर है। सचित्त द्रव्य स्कन्ध के उदाहरणों में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अश्व, गज, वृषभ आदि में जीव की विवक्षा है, वहाँ तदाश्रित शरीर अविवक्षित है। यहाँ अश्व आदि के जीव तथा तदाश्रित शरीर - इन सबकी समग्र रूप में विवक्षा है। केवल जीव या शरीर की नहीं है।

(५३)

से किं तं अकसिणखंधे?

अकसिणखंधे - से चेव दुपएसियाइ खंधे जाव अणंतपएसिए खंधे। सेत्तं अकसिणखंधे।

भावार्थ - अकृत्स्न स्कन्ध किस प्रकार का है?

अकृत्स्न स्कन्ध पूर्व प्रतिपादन के अनुसार द्विप्रदेशिक स्कन्ध यावत् अनंत प्रदेशिक स्कन्ध इत्यादि के रूप में है। यह अकृत्स्न स्कन्ध का निरूपण है।

विवेचन - अकृत्स्न स्कन्ध शब्द में प्रयुक्त 'अ' उपसर्ग निषेध सूचक है जो कृत्स्न या समग्र नहीं होता उसे अकृत्स्न, अपरिपूर्ण या असमग्र कहा जाता है। एक प्रदेशी, द्विप्रदेशी, त्रिप्रदेशी आदि उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि एकप्रदेशी, द्विप्रदेशी आदि अन्यों की अपेक्षा अपरिपूर्ण है। इसी प्रकार द्विप्रदेशी, त्रिप्रदेशी आदि की अपेक्षा असमग्र या अपरिपूर्ण है।

उसी प्रकार अन्यों को भी समझना चाहिये। द्विप्रदेशी से लेकर अनंत प्रदेशी स्कन्ध आदि को यहाँ पर अकृत्स्न स्कन्ध के रूप में कहा गया है। सर्वोत्कृष्ट अनंत प्रदेशी स्कन्ध से एक प्रदेश कम तक के सभी स्कन्धों का इसमें समावेश समझ लेना चाहिए।

(५४)

से किं तं अणेगदवियखंधे?

अणेगदवियखंधे - तस्स चेव देसे अवचिए तस्स चेव देसे उवचिए। सेत्तं अणेगदवियखंधे। सेत्तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वखंधे। सेत्तं णोआगमओ दव्वखंधे। सेत्तं दव्वखंधे।

शब्दार्थ - **अवचिए** - अवचित - अपचित, **उवचिए** - उपचित।

भावार्थ - अनेक द्रव्य स्कन्ध किस प्रकार का है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अनेक द्रव्य स्कन्ध ऐसा है, जिसका एक भाग अपचित - जीव रहित तथा एक भाग उपचित - जीव युक्त से मिलकर बनता है।

अनेक द्रव्य स्कन्ध का ऐसा स्वरूप है।

यह ज्ञ शरीर - भव्य शरीर व्यतिरिक्त द्रव्य स्कन्ध है।

यह नोआगमतः द्रव्य स्कन्ध है। द्रव्य स्कन्ध का ऐसा विवेचन है।

विवेचन - सूत्र में प्रयुक्त अवचित - अपचित शब्द में स्थित 'अप' उपसर्ग निषेध या अभाव मूलक है। उवचिय या उपचित में 'उप' उपसर्ग सद्भावात्मक है। केश, नख आदि देह के भाग, जो जीव रहित हैं, अपचित हैं। शरीर के उदर, स्कन्ध, पृष्ठ आदि भाग जीव युक्त होने से उपचित हैं। अनेक द्रव्य स्कन्ध में जीव रहित और जीव सहित दोनों का सम्मिश्रण है।

यहाँ यह विशेष रूप से ज्ञातव्य है -

कृत्स्न स्कन्ध में समग्र जीव प्रदेश युक्त शरीरवयवों का ही ग्रहण होता है जबकि अनेक द्रव्य स्कन्ध में जीव रहित (बाल, नाखून आदि) और जीव सहित दोनों का ही समावेश है।

(५५)

भावस्कन्ध निरूपण

से किं तं भावखंधे?

भावखंधे दुवहे पण्णत्ते। तंजहा - आगमओ य १ णोआगमओ य २।

भावार्थ - भाव स्कन्ध किस प्रकार का है?

भाव स्कन्ध आगमतः और नोआगमतः के रूप में दो प्रकार का बतलाया गया है।

(५६)

से किं तं आगमओ भावखंधे?

आगमओ भावखंधे जाणए उवउत्ते। सेत्तं आगमओ भावखंधे।

शब्दार्थ - **उवउत्ते** - उपयोग पूर्वक, **जाणए** - ज्ञाता।

भावार्थ - आगमतः भाव स्कन्ध किस प्रकार का है?

स्कन्ध पद को उपयोग पूर्वक ज्ञाता - जानने वाला आगमतः भाव स्कन्ध है।

यह आगमतः भाव स्कन्ध का निरूपण है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(५७)

से किं तं णोआगमओ भावखंधे?

णोआगमओ भावखंधे एएसं चेव सामाइयमाइयाणं छण्हं अज्झयणाणं समुदयसमिइसमागमेणं णिप्फण्णे आवस्सयसुयखंधे 'भावखंधे' त्ति लब्भइ। सेत्तं णोआगमओ भावखंधे। सेत्तं भावखंधे।

शब्दार्थ - **एएसिं** - इनके, **सामाइयमाइयाणं** - सामायिक आदि, **छण्हं अज्झयणाणं**- छह अध्ययनों के, **समुदयसमिइसमागमेणं** - समुदाय के समुचित रूप में मिलने से, **णिप्फण्णे**- पूर्ण होने से, **लब्भइ** - प्राप्त होता है।

भावार्थ - नोआगमतः भाव स्कन्ध कैसा होता है?

परस्पर समुचित रूप में संबद्ध सामायिक आदि छह अध्ययनों (के समुदाय) के सम्मिलन से आवश्यक श्रुत स्कन्ध नोआगमतः भाव स्कन्ध प्राप्त - निष्पन्न होता है। यह नोआगमतः भाव स्कन्ध का स्वरूप है।

भाव स्कन्ध इस प्रकार का है।

(५८)

स्कन्ध के पर्याय सूचक शब्द

तस्स णं इमे एगट्ठिया णाणाघोसा णाणावंजणा णामधेज्जा भवंति, तंजहा -

गाहा - गण काए य णिकाए, खंधे वग्गे तहेव रासी य।

पुंजे पिंडे णिगरे, संघाए आउलसमूहे॥१॥

सेत्तं खंधे।

शब्दार्थ - **एगट्ठिया** - एकार्थक, **णाणाघोसा** - भिन्न-भिन्न ध्वनि युक्त, **णाणावंजणा**- विभिन्न व्यंजन युक्त, **णामधेज्जा** - नाम, **भवंति** - होते हैं।

भावार्थ - उस भाव स्कन्ध के भिन्न-भिन्न ध्वनियुक्त तथा विविध व्यंजन युक्त एकार्थक अनेक नाम हैं। वे इस प्रकार हैं -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गाथा - गण, काय, निकाय, स्कन्ध, वर्ग, राशि, पुंज, पिण्ड, निकर, संघात, आकुल और समूह।

विवेचन - इस सूत्र की अन्तर्वर्ती गाथा में जो भाव स्कन्ध के एकार्थक नाम आए हैं, वे यद्यपि स्वर, व्यंजन आदि की दृष्टि से भिन्न-भिन्न हैं, उनके शाब्दिक अवयव असमान हैं किन्तु अर्थ की दृष्टि से वे समान हैं, पर्यायवाची हैं। पर्यायवाचिता होने पर भी अपेक्षा विशेष के आधार पर उनकी व्याख्या भिन्न-भिन्न प्रकार से की जा सकती है -

१. गण - गण शब्द बुद्ध और महावीर कालीन भारत के लिच्छवी, वज्जि, मल्ल इत्यादि अनेक गणराज्य के सूचक हैं। विश्व में आज परिव्याप्त प्रजातांत्रिक प्रणाली के ये प्राचीनतम उदाहरण हैं, जहाँ जनमत के आधार पर सांसदों और गणाध्यक्षों का निर्वाचन होता था।

इन गणराज्यों का समूह होता था, जो परस्पर समन्वयपूर्वक कार्यशील होते थे। उन गणराज्यों की तरह स्कन्ध अनेक परमाणुओं का समन्वित रूप है। अतः इसकी समन्वय या सादृश्य के नाते गण संज्ञा है।

२. काय - पृथ्वीकाय, अपकाय, तेजस्काय एवं वायुकाय, वनस्पतिकाय आदि की तरह परमाणु प्रचयात्मक रूप होने से इसकी काय संज्ञा है।

३. निकाय - छह जीव निकाय की तरह स्कन्ध भी निकाय रूप हैं।

४. स्कन्ध - द्विप्रदेशी, त्रिप्रदेशी, चतुःप्रदेशी आदि विविध रूपों के संश्लिष्ट परिणाम रूप होने से उनकी स्कन्ध संज्ञा है।

५. वर्ग - गो वर्ग आदि की तरह स्कन्ध वर्ग रूप हैं।

६. राशि - तण्डुल, गोधूम, मुद्ग (मूंग) आदि धान्यों की राशि सदृश होने से इनका राशि नाम हैं।

७. पुञ्ज - एकत्रित किए हुए धान्य आदि के पुंज के तुल्य होने से ये पुंज संज्ञक हैं।

८. पिण्ड - गुड़ आदि के पिण्डवत् होने से इनकी पिण्ड संज्ञा है।

९. निकर - चांदी आदि द्रव्यों के समूह की तरह होने से इसकी निकर संज्ञा है।

१०. संघात - उत्सव, समारोह आदि में एकत्रित जन समूह की तरह होने से इनका नाम संघात है।

११. आकुल - प्रांगण, परिसर आदि में इकट्ठे हुए लोगों के समुदाय की तरह होने से ये आकुल कहे गए हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१२. समूह - नगर, ग्राम आदि के लोगों के समूह की तरह होने के कारण ये समूह रूप हैं।

इस प्रकार स्कन्ध का सम्पूर्ण वर्णन कहा गया है।

(५९)

आवश्यक के अर्थाधिकार और अध्ययन

आवस्सगस्स णं इमे अत्थाहियारा भवंति, तंजहा -

गाहा - सावज्जजोगविरई, उक्कित्तण गुणवओ य पडिवत्ती।
खलियस्स णिंदणा, वणति गिच्छ गुणधारणा चेव॥१॥

शब्दार्थ - अत्थाहियारा - अर्थाधिकार।

भावार्थ - आवश्यक के ये अर्थाधिकार हैं - जैसे -

१. सावद्ययोगविरति, २. उत्कीर्तन, ३. गुणवत्-प्रतिपत्ति, ४. स्खलित-निन्दा, ५. व्रण चिकित्सा एवं ६. गुणधारणा।

विवेचन - अर्थाधिकार का तात्पर्य आवश्यक के अन्तर्गत करणीय, साधनीय, अभ्यसनीय इत्यादि का परिज्ञान या बोध है। यही तथ्य यहाँ वर्णित निम्नांकित छह अर्थाधिकारों द्वारा सूचित है।

१. सावद्ययोगविरति - सावद्य का अर्थ पाप है। **'अवद्येन सहितं सावद्यं'** - पापयुक्त को सावद्य कहा जाता है। योग का अर्थ मानसिक, वाचिक, कायिक कर्म है। वैसी पापपूर्ण प्रवृत्तियों से विरत होना सावद्ययोगविरति अर्थाधिकार है।

'सव्वं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि' - समस्त सावद्य योग का प्रत्याख्यान करता हूँ, सामायिक की यह भाषा इसका संसूचन करती है।

२. उत्कीर्तन - सावद्ययोग आदि आत्मपरिपंथी, प्रतिकूल प्रपत्तियों से जो विरत हुए, कृत्स्नकर्मक्षय द्वारा जो सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हुए, जिन्होंने सदेहावस्था में जीवों को आत्मसिद्धि का समुपदेश दिया, ऐसे चौबीस तीर्थंकरों, सिद्धों, आध्यात्मिक महापुरुषों का संस्तवन 'उत्कीर्तन' कहा जाता है, जिससे आत्मशुद्धि के पथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा प्राप्त होती है। चतुर्विंशतिस्तव इसी का रूप है।

३. गुणवत् प्रतिपत्ति - सावद्य प्रवृत्तियों से विरत होकर साधना में संलग्न गुणी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुरुषों - मूल गुण और उत्तम गुण के धारक संयमी साधकों के प्रति आदर, सत्कार एवं सम्मान भाव गुणवत् प्रतिपत्ति के रूप में आख्यात है। यह वन्दना के रूप में आख्यात है।

४. स्खलित निन्दा - संयम की आराधना करते हुए प्रमादवश जो स्खलना, अतिचार या दोष-सेवन हो जाए, विशुद्ध अन्तर्भावना से उसकी निन्दा करना स्खलित निन्दा है, जो प्रतिक्रमण रूप है। प्रतिक्रमण का तात्पर्य अनात्म भाव से आत्मभाव में प्रतिक्रांत होना या लौटना है।

५. व्रण चिकित्सा - व्रण का अर्थ घाव है। संयम की आराधना में प्रमादवश होने वाला स्खलन, अतिचार या दोष का सेवन आध्यात्मिक व्रण है। जिस प्रकार मरहम आदि से शारीरिक व्रण या घाव की चिकित्सा की जाती है, उसी प्रकार प्रायश्चित्त रूप औषध के प्रयोग से ऐसे आध्यात्मिक व्रण या दोष का निराकरण करना व्रण चिकित्सा है, जो कायोत्सर्ग में अन्तर्गर्भित है।

६. गुणधारणा - प्रायश्चित्त से आत्मशोधन द्वारा दोषों का सम्मार्जन कर आत्मा के मूल और उत्तर गुणों को अतिचार शून्य या दोष रहित रूप में पालन करना गुणधारणा है, जो प्रत्याख्यान द्वारा समायोजित है।

(६०)

गाहा - आवस्सयस्स एसो, पिंडत्थो वण्णिओ समासेणं।
एत्तो एक्केक्कं पुण, अज्झयणं कित्तइस्सामि॥१॥

तंजहा - सामाइयं १ चउवीसत्थओ २ वंदणं ३ पडिक्कमणं ४ काउस्सग्गो ५ पच्चक्खाणं ६।

शब्दार्थ - आवस्सयस्स - आवश्यक का, **एसो** - यह, **पिंडत्थो** - पिण्डार्थ-सामुदायिक अर्थ, **समासेणं** - संक्षेप में, **वण्णिओ** - वर्णित, निरूपित किया, **एत्तो** - उसके, **पुण** - पुनः, **अज्झयणं** - अध्ययन का, **कित्तइस्सामि** - कीर्तित-प्रतिपादित करूंगा।

भावार्थ - गाथा - इस प्रकार उपर्युक्त रूप में आवश्यक के सामुदायिक अर्थ का संक्षेप में वर्णन किया गया है। उन एक-एक अध्ययन का नामोल्लेख करूंगा। उनके-अध्ययनों के नाम इस प्रकार हैं - १. सामायिक २. चतुर्विंशतिस्तव ३. वंदन ४. प्रतिक्रमण ५. कायोत्सर्ग तथा ६. प्रत्याख्यान।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तत्थ पढमं अज्झयणं सामाइयं। तस्स णं इमे चत्तारि अणुओगदारा भवंति, तंजहा - उवक्कमे १ णिक्खेवे २ अणुगमे ३ णए ४।

शब्दार्थ - तत्थ - तत्र-वहाँ।

भावार्थ - उन षट् संख्यात्मक अध्ययनों में पहला सामायिक अध्ययन है। उसके उपक्रम, निक्षेप, अनुगम एवं नय के रूप में चार अनुयोगद्वार हैं।

विवेचन - सामायिक के मूल में 'सम' शब्द है। 'सम' - समत्व का बोधक है। 'सम' के साथ आय शब्द का योग है। **'समस्य आयः समाय'** - जिसका अर्थ समत्व भाव की प्राप्ति या अनुभूति है। **"समायः येन सिद्धयति, प्राप्यते वा तत्सामायिकम्"** - जिससे समत्व भाव की प्राप्ति हो, उसे सामायिक कहा गया है। समस्त सावद्ययोगों के त्याग से प्राणी मात्र के प्रति समता का अभ्युदय होता है, आत्मस्थता प्राप्त होती है। चिन्तनधारा बहिर्गामिता का परित्याग कर अन्तर्गामिनी बनती है। यह अध्यात्मसाधना का मूल है। विवेचन की संगति के लिए पदार्थों को सन्निकटवर्ती बनाना इसका आशय है।

निक्षेप - नाम, स्थापना आदि निक्षेपों के आधार पर सूत्रगत पदों का यथावत् व्यवस्थापन करना निक्षेप है।

अनुगम - अनु शब्द अनुकूल या पीछे चलने का द्योतक है। सूत्र के अनुकूल या उसके अनुसार सुसंगत अर्थ करना अनुगम है।

नय - अनंत धर्मात्मक वस्तु के अन्यान्य धर्मों को आपेक्षिक दृष्टि से गौण कर किसी एक अंश को मुख्य मानते हुए गृहीत करना, नय है।

उपक्रम आदि का क्रमविन्यास - निक्षेप योग्यता प्राप्त वस्तु निक्षिप्त होती है और इस योग्य बनाने का कार्य उपक्रम द्वारा होता है। अतः सर्वप्रथम उपक्रम और तदनन्तर निक्षेप का निर्देश किया है। नाम आदि के रूप में निक्षिप्त वस्तु ही अनुगम की विषयभूत बनती है, इसलिये निक्षेप के अनन्तर अनुगम का तथा अनुगम से युक्त (ज्ञात) हुई वस्तु नयों द्वारा विचारकोटि में आती है, अतएव अनुगम के बाद नय का कथन किया गया है।

(६१)

उपक्रम के भेद

से किं तं उवक्कमे?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उवक्कमे छव्विहे पण्णत्ते। तंजहा - णामोवक्कमे १ ठवणोवक्कमे २ दव्वोवक्कमे ३ खेत्तोवक्कमे ४ कालोवक्कमे ५ भावोवक्कमे ६।

भावार्थ - उपक्रम किस प्रकार का है?

उपक्रम छह प्रकार का प्रज्ञापित, वर्णित हुआ है, जैसे - नामोपक्रम, स्थापनोपक्रम, द्रव्योपक्रम, क्षेत्रोपक्रम, कालोपक्रम एवं भावोपक्रम।

१-२. नाम एवं स्थापना उपक्रम

णामठवणाओ गयाओ।

शब्दार्थ - गयाओ - गत - पूर्वनिरूपित।

भावार्थ - नाम उपक्रम एवं स्थापना उपक्रम का विश्लेषण पूर्ववर्णित नामावश्यक एवं स्थापनावश्यक में अन्तर्गर्भित है।

३. द्रव्योपक्रम

से किं तं दव्वोवक्कमे?

दव्वोवक्कमे दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - आगमओ य १ णोआगमओ य २ जाव सेत्तं भवियसरीरदव्वोवक्कमे।

से किं तं जाणगसरीर-भवियसरीरवइरित्ते दव्वोवक्कमे?

जाणगसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वोवक्कमे तिविहे पण्णत्ते। तंजहा - सचित्ते १ अचित्ते २ मीसए ३।

शब्दार्थ - **दुविहे** - द्विविध-दो प्रकार का, **जहा** - यथा-जैसे, **य** - च - और।

भावार्थ - द्रव्योपक्रम क्या है, किस प्रकार का है?

द्रव्योपक्रम आगमतः एवं नोआगमतः के रूप में दो प्रकार का बतलाया गया है यावत् यह भव्यशरीर द्रव्योपक्रम का स्वरूप है।

ज्ञशरीर-भव्यशरीर-व्यतिरिक्त-द्रव्योपक्रम का क्या स्वरूप है?

ज्ञशरीर-भव्यशरीर-व्यतिरिक्त-द्रव्योपक्रम तीन प्रकार का है - सचित्त, अचित्त और मिश्र।

विवेचन - द्रव्योपक्रम के संदर्भ में यह ज्ञातव्य है - आपेक्षिक दृष्टि से उपक्रम की

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वर्तमान, भूत और भविष्यत् - तीन पर्यायें होती हैं। भूतकालीन अथवा भविष्यकालीन पर्याय को वर्तमान में उपक्रम के रूप में निरूपित करना द्रव्योपक्रम है।

(६२)

सचित्त द्रव्योपक्रम

से किं तं सचित्ते दव्वोवक्कमे?

सचित्ते दव्वोवक्कमे तिविहे पण्णत्ते। तंजहा - दुप(ए)याणं १ चउप्पयाणं २ अपयाणं ३। एक्केक्के पुण दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - परिक्कमे य १ वत्थुविणासे य २।

भावार्थ - सचित्त द्रव्योपक्रम किस प्रकार का है?

सचित्त द्रव्योपक्रम तीन प्रकार का प्ररूपित हुआ है। जैसे - द्विपद, चतुष्पद, अपद।

इनमें से प्रत्येक परिकर्म एवं वस्तु विनाश के रूप में दो-दो प्रकार का है।

(६३)

से किं तं दुपयाणं उवक्कमे?

दुपयाणं उवक्कमे-णडाणं, णट्टाणं, जल्लाणं, मल्लाणं, मुट्ठियाणं, वेलंबगाणं, कहगाणं, पवगाणं, लासगाणं, आइक्खगाणं, लंखाणं, मंखाणं, तूणइल्लाणं, तुंबवीणियाणं, का(वडि)वोयाणं, मागहाणं। सेत्तं दुपयाणं उवक्कमे।

भावार्थ - द्विपद उपक्रम किस प्रकार का है?

द्विपद उपक्रम के अन्तर्गत नट, नर्तक, जल्ल, मल्ल, मौष्टिक, वेलंबक-विदूषक, कथक, प्लवक, लासक, आख्यायक, लंख, मंख, तूणिक, तुंबवीणिक, कावड़िक एवं मागध आदि दो पैर वालों का परिकर्म एवं विनाश रूप उपक्रम द्विपद उपक्रम है।

विवेचन - द्विपद उपक्रम का आशय दो पैर वाले मनुष्यों से है। उनमें सूत्रकार ने उदाहरण के रूप में जिन-जिन का उल्लेख किया है, उनका विश्लेषण इस प्रकार है -

नट - अभिनय, गान एवं नाच द्वारा मनोरंजन करने वाले।

नर्तक - मुख्यतः विविध भाँति के नृत्य प्रस्तुत करने वाले।

जल्ल - मोटे रस्से को बांस आदि के सहारे तान कर उस पर खेल-करतब दिखाने वाले।

Jain Education International		For Personal & Private Use Only		www.jainelibrary.org

मल्ल - कुश्ती करने वाले पहलवान।

मौष्टिक - मुष्टि प्रहार का प्रदर्शन करने वाले।

वेलंबक - मसखरे - हंसी-मजाक द्वारा मनोरंजन करने वाले।

कथक - कथाएँ या कहानियाँ कहने वाले।

प्लवक - तैराक-जल में विविध क्रीड़ाएँ दिखाने में निपुण।

लासक - नारी सुलभ कोमल श्रृंगारिक नृत्य करने वाले।

आख्यायक - भविष्य का कथन करने वाले।

लंख - बांस आदि पर चढ़ कर करतब दिखाने वाले।

मंख - चित्रपट लिए घूमने वाले भिक्षुक।

तूणिक - सारंगी, सितार, तंबूरा आदि तंतुवाद्य बजाने वाले।

तुंबवीणिक - तूंबे की वीणा - पूंगी बजाने वाले।

कावड़िक - कावड़ लेकर घूमने वाले।

मागध - मंगलपाठ करने वाले।

(६४)

से किं तं चउप्पयाणं उवक्कमे?

चउप्पयाणं उवक्कमे चउप्पयाणं - आसाणं, हत्थीणं, इच्चाइ। सेत्तं चउप्पयाणं उवक्कमे।

शब्दार्थ - **चउप्पयाणं** - चतुष्पदों-चौपायों का, **आसाणं** - अश्वों के, **हत्थीणं** - हाथियों के, **इच्चाइ** - इत्यादि।

भावार्थ - चतुष्पद उपक्रम किस प्रकार का है?

चतुष्पद उपक्रम अश्वों, हाथियों इत्यादि के रूप में अनेकविध है। यह चतुष्पद उपक्रम का निरूपण है।

(६५)

से किं तं अपयाणं उवक्कमे?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अपयाणं उवक्कमे अपयाणं - अंबाणं, अंबाडगाणं, इच्चाइ। सेत्तं अपओवक्कमे। सेत्तं सचित्तदव्वोवक्कमे।

शब्दार्थ - **अपयाणं** - अपद-पद या चरण (पाँव) रहित, **अंबाणं** - आमों का, **अंबाडगाणं** - आमलकों-आँवलों का।

भावार्थ - अपद उपक्रम किस प्रकार का है?

अपद उपक्रम आम्र, आमलक इत्यादि से संबद्ध है। अपद उपक्रम का ऐसा निरूपण है। यह - उक्त वर्णन सचित्त द्रव्योपक्रम का है।

विवेचन - इन सूत्रों में सचित्त द्रव्योपक्रम का स्वरूप व्याख्यात हुआ है। जैसा पहले विवेचन हुआ है, सचित्त का अर्थ चैतन्ययुक्त अथवा प्राणवान् है। उनका विभाजन पदों या पैरों के आधार पर किया गया है। द्विपद मुख्यतः मनुष्यों को इंगित करता है। चतुष्पद में चौपाए पशुओं का समावेश है। वृक्ष आदि वनस्पतिक जीव पदरहित हैं, अपने स्थान पर अवस्थित हैं, चलनशील नहीं है, इसलिए उनका अपद के रूप में उल्लेख हुआ है।

यहाँ परिकर्म और विनाश का जो उल्लेख हुआ है, उस संबंध में ज्ञाप्य है कि - वस्तु या पदार्थ के गुण-वैशिष्ट्य, शक्ति-वैशिष्ट्य आदि की वृद्धि या विकास जिस प्रयत्न या उपाय से होता है, वह परिकर्म है। **"क्रियते इति कर्मः"** - जो किया जाय उसे कर्म कहा जाता है। परि-विशिष्टतापूर्वक होने वाले उद्यम का सूचक है।

खड्ग आदि द्वारा वस्तु विशेष का नाश या घात विनाश है। 'नाश' शब्द के पहले 'वि' उपसर्ग जुड़ने से विनाश शब्द बना है। **"विशेषेण नाशः विनाशः"**।

(६६)

अचित्त द्रव्योपक्रम

से किं तं अचित्तदव्वोवक्कमे?

अचित्तदव्वोवक्कमे - खंडाईणं, गुडाईणं, मच्छंडीणं। सेत्तं अचित्तदव्वोवक्कमे।

शब्दार्थ - **खंडाईणं** - खांड या चीनी आदि का, **गुडाईणं** - गुड़ आदि का, **मच्छंडीणं**-मिश्री आदि का।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - अचित्त द्रव्योपक्रम कैसा है?

अचित्त द्रव्योपक्रम चीनी, गुड़, मिश्री आदि पदार्थों से संबद्ध है। अर्थात् विशेष साधनों द्वारा उन पदार्थों में मिठास की वृद्धि करना एतत्रूप परिकर्म तथा इनका विनाश या विध्वंसरूप उपक्रम अचित्त द्रव्योपक्रम है।

(६७)

मिश्र द्रव्योपक्रम

से किं तं मीसए दव्वोवक्कमे?

मीसए दव्वोवक्कमे - से चेव थासगआयंसगाइमंडिए आसाइ। सेत्तं मीसए दव्वोवक्कमे। सेत्तं जाणयसरीर-भवियसरीरवइरित्ते दव्वोवक्कमे। सेत्तं णोआगमओ दव्वोवक्कमे। सेत्तं दव्वोवक्कमे।

शब्दार्थ - **थासग** - स्थासक-घोड़े को सजाने का आभूषण विशेष, **आयंसगाइमंडिए** - दर्पण आदि से मंडित, **आसाइ** - अश्व आदि।

भावार्थ - मिश्र द्रव्योपक्रम किस प्रकार का है?

आभरण विशेष तथा दर्पण आदि से सुशोभित अश्व आदि से इसका संबंध है। अर्थात् इनसे संबद्ध वृद्धि विकास आदि रूप परिकर्म तथा विनाश मूलक उपक्रम मिश्र द्रव्योपक्रम है। यह ज्ञशरीर-भव्यशरीर-व्यतिरिक्त द्रव्योपक्रम का स्वरूप है। यह नोआगमतो द्रव्योपक्रम है। यह द्रव्योपक्रम का निरूपण है।

(६८)

क्षेत्रोपक्रम

से किं तं खेत्तोवक्कमे?

खेत्तोवक्कमे-जं णं हलकुलियाईहिं खेत्ताइं उवक्कमिज्जंति। सेत्तं खेत्तोवक्कमे।

शब्दार्थ - **जं** - यत्-जो, **णं** - ननु-निश्चय ही, **हलकुलियाईहिं** - हल, खुरपे आदि द्वारा, **खेत्ताइं** - क्षेत्रों को-अन्नोत्पादक भू भागों को, **उवक्कमिज्जंति** - उत्क्रांत करते हैं-अन्नोत्पादन योग्य बनाते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - क्षेत्रोपक्रम किस प्रकार का है?

हल, खुरपे आदि द्वारा जो खेतों को घासादि हटाकर अन्नोत्पादन के योग्य बनाया जाता है, वह क्षेत्रोपक्रम है।

विवेचन - सामान्यतः क्षेत्र शब्द स्थान का द्योतक है। यहाँ वह उस भूखण्ड का सूचक है, जहाँ चावल, गेहूँ आदि अन्न उत्पन्न किए जाते हैं तथा जिसे खेत कहा जाता है। खेत में खुरपे आदि द्वारा घास आदि को पहले साफ किया जाता है, जमीन को पोला बनाया जाता है, फिर हल द्वारा इसकी जुताई होती है। यह परिकर्म क्षेत्रोपक्रम है।

हाथी आदि खेत को रौंद डालते हैं, मल-मूत्र कर देते हैं, जिससे उसकी उर्वरता नष्ट हो जाती है। अन्नोत्पादन के योग्य नहीं रहता है, यह उसका विनाशमूलक उपक्रम है।

(६६)

कालोपक्रम

से किं तं कालोवक्कमे?

कालोवक्कमे जं णं णालियाईहिं कालस्सोवक्कमणं कीरइ। सेत्तं कालोवक्कमे।

शब्दार्थ - **णालियाईहिं** - नालिका आदि द्वारा, **कालस्सोवक्कमणं** - काल का उपक्रमण - काल का यथार्थ ज्ञान, **कीरइ** - किया जाता है।

भावार्थ - कालोपक्रम का क्या स्वरूप है?

नालिका आदि द्वारा जो काल का यथार्थ ज्ञान होता है, वह कालोपक्रम है।

विवेचन - प्राचीनकाल में काल के ठीक-ठीक ज्ञान के लिए नालिका आदि का प्रयोग होता था। किसी ताम्र आदि से निर्मित बर्तन के पेंदे में इतना छोटा छिद्र बना होता था, जिससे उस पात्र में भरी बालू शनैः-शनैः नीचे गिरती थी। एक घंटा में वह बालू नीचे आ जाती थी। इस प्रकार घंटे का ज्ञान होता था।

यह काल का ज्ञान होने से परिकर्म कालोपक्रम है। नक्षत्र आदि गतिशील रहते हैं, उससे जो काल का विनाश या अपगम होता है, वह कालविनाश उपक्रम के रूप में अभिहित होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(७०)
भावोपक्रम

से किं तं भावोवक्कमे?

भावोवक्कमे दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - आगमओ य १ णोआगमओ य २।

भावार्थ - भावोपक्रम किस प्रकार का है?

भावोपक्रम दो प्रकार का कहा गया है - १. आगमतः तथा २. नोआगमतः।

तत्थ आगमओ जाणए उवउत्ते।

भावार्थ - वहाँ, जो ज्ञाता होने के साथ-साथ उपयोगयुक्त हो, वह आगमतः भावोपक्रम है।

से किं तं णोआगमओ भावोवक्कमे?

णोआगमओ भावोवक्कमे दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - पसत्थे य १ अपसत्थे य २।

शब्दार्थ - पसत्थे - प्रशस्त, **अपसत्थे** - अप्रशस्त।

भावार्थ - नोआगमतः भावोपक्रम कैसा है?

नोआगमतः भावोपक्रम प्रशस्त एवं अप्रशस्त के रूप में दो प्रकार का है।

से किं तं अपसत्थे णोआगमओ भावोवक्कमे?

अपसत्थे णोआगमओ भावोवक्कमे डोडिणि-गणिया-अमच्चाईणं।

शब्दार्थ - डोडिणि - ब्राह्मणी, **गणिया** - गणिका-वेश्या, **अमच्चाईणं** - अमात्य आदि का।

भावार्थ - अप्रशस्त भावोपक्रम किस प्रकार का होता है?

ब्राह्मणी, गणिका तथा अमात्य आदि के भावों को जानने का उपक्रम अप्रशस्त नो आगमतः भावोपक्रम है।

विवेचन - ब्राह्मणी, गणिका तथा अमात्य का अप्रशस्त नोआगमतः भावोपक्रम का क्रमशः विवेचन इस प्रकार हैं - **ब्राह्मणी का अप्रशस्त भावोपक्रम** - एक ब्राह्मणी थी। उसके तीन पुत्रियाँ थीं। तीनों बहुत ही विनीत और आज्ञाकारिणी थीं। ब्राह्मणी का भी उन तीनों पर बहुत प्यार था। वह चाहती थी कि पुत्रियाँ हर समय मेरे पास ही रहें। यथासमय तीनों पुत्रियाँ सयानी हो गई। ब्राह्मणी ने तीनों पुत्रियों का विवाह कर दिया। विवाह करने के बाद उसने सोचा कि मेरे तीनों दामादों की मनोवृत्ति जानकर अपनी तीनों पुत्रियों को इस प्रकार शिक्षित कर दूँ कि इनका जीवन सदैव सुखी रहे। यों विचार कर जब वह अपनी बड़ी लड़की को विदा करने लगी, तब उसे एकान्त

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

में ले जाकर कहा - बेटी! जब तेरा पति अपने शयनागार में आए, तब तू उसका कोई अपराध मानकर उसके सिर पर लात मारना। ऐसा करने पर वह तेरे साथ जैसा व्यवहार करे, वह मुझे आकर बताना। मेरी इस शिक्षा को अवश्य याद रखना।' लड़की ने इस बात को स्वीकार किया। जब उसका पति शयनागार में आया तो उसके अपने पति को कोई दोष बताकर सिर पर एक लात जमा दी। लात लगते ही उसके पति ने स्नेहार्द्र होकर उसके अपराध को गुण समझ कर कहा - प्रिये! मेरा सिर पत्थर की तरह अत्यन्त कठोर है और तुम्हारा चरण शिरीष पुष्प की तरह अत्यन्त कोमल है। इसलिए तुम्हारे पैर में कहीं पीड़ा तो नहीं हुई? क्षमा करना।'' यों कहकर उसके पैर को हाथों से दबाने लगा। इस प्रकार उसने अपनी इस नववधू को प्रसन्न किया। लड़की ने माँ के पास आकर उसे सारा वृत्तान्त कह सुनाया। दामाद के इस व्यवहार को सुनकर वह अत्यन्त प्रसन्न होकर अपनी पुत्री से बोली - ''बेटी! तू महाभाग्यशालिनी है। तेरे पति के इस व्यवहार से ऐसा पता चलता है कि तेरा पति सदैव तेरा वशवर्ती होकर रहेगा, घर में भी तेरी बात सदैव चलेगी। अतः तू निर्भय होकर रह, निश्चिन्ततापूर्वक रह।''

जब मझली लड़की को विदा करने का समय आया तब ब्राह्मणी ने एकान्त में ले जाकर उसको भी वैसा ही करने की शिक्षा दी। शयनागार में पति के प्रवेश करते ही उसने भी पति को कोई दोष बताकर उसके सिर पर लात जमा दी। पत्नी का यह अप्रत्याशित व्यवहार देखकर उसको कुछ रोष आ गया। उसने रोष में आकर कहा - ''तुम्हारा यह व्यवहार कुलवधुओं के योग्य नहीं है। भविष्य में ऐसा मत करना।'' यों कहकर कुछ ही देर बाद वह मन में कुछ सोचकर प्रसन्न हो गया फिर उसने कुछ भी नहीं कहा।

मझली लड़की ने भी प्रातःकाल अपनी माता से आकर रात्रिकालीन सारी घटना सुना दी। ब्राह्मणी आनन्दित होकर उससे कहने लगी - ''बेटी! तू भी अपने घर में मनचाहा व्यवहार कर। कोई डरने जैसी बात नहीं है। तेरा पति क्षण भर रुष्ट होकर प्रसन्न हो जाएगा।''

इसी प्रकार ब्राह्मणी ने अपनी सबसे छोटी लड़की को भी विदा करते समय वैसी ही शिक्षा दी। उसने भी आवास भवन में आते ही पति के सिर पर पादप्रहार किया। यह व्यवहार करते ही उसका पति रोष में आ गया उसकी आँखें लाल हो गई और कड़क कर बोला - ''दुष्टे! कुलकन्या के लिए अयोग्य व्यवहार तूने मेरे साथ क्यों किया? क्या मैं कमजोर हूँ कि तेरी मार सहकर अपनी अधोगति करवाऊँगा?'' यों कहकर उसने अपनी पत्नी को खूब मारा और मारपीट कर घर से निकाल दिया। पतिगृह से निष्कासित लड़की रोती हुई अपनी माँ के पास गई और उसे अपने पति के द्वारा किए हुए व्यवहार की सारी घटना सुनाई। उसे सुनकर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ब्राह्मणी को अत्यन्त दुःख हुआ। वह लड़की से कहने लगी - "बेटी! तेरा पति दुराराध्य है। तू उसकी जितनी भी विनयभक्ति एवं सेवा कर सके, कर। उसी से तू सुखी रहेगी। प्रति से पराङ्मुख रहेगी तो तुझे कभी सुख नहीं मिलेगा। अतः तू सदैव उसके अनुकूल रहकर उसका मन प्रसन्न रख।" फिर अपने दामाद को बुलाकर ब्राह्मणी ने उसे नम्रतापूर्वक कहा - "वत्स! सुहागरात के समय मेरी पुत्री ने जो कुछ व्यवहार किया है, वह द्वेष या रोषवश रहकर नहीं, किन्तु अपने कुलाचार के अनुसार किया है। इसलिए बुरा मत मानो। उसे घर ले जाओ। वह तुम्हारी चरणसेविका एवं आज्ञानुवर्तिनी होकर रहेगी।" यों अपनी सास के नम्र एवं मधुर वचनों से उसका क्रोध शान्त हो गया। अपनी पत्नी पर प्रसन्न होकर वह उसे अपने घर ले आया।

ब्राह्मणी ने अपनी पुत्रियों के माध्यम से अपने दामादों के अभिप्राय को अवगत कर लिया, यह बात उपर्युक्त दृष्टान्त से स्पष्ट हो जाती है। ब्राह्मणी का दूसरे का अभिप्राय (मनोभाव) जानना ही शास्त्रीय भाषा में नो-आगमतः अप्रशस्त भावोपक्रम है। इस अभिप्रायज्ञान (भावोपक्रम) को अप्रशस्त इसीलिए कहा गया है कि यह सांसारिक है, इसके साथ त्याग, वैराग्य, प्रभुभक्ति या आत्मोत्थान का कोई वास्ता नहीं है।

वेश्या का अप्रशस्त भावोपक्रम - किसी नगर में विलासवती नामक एक वेश्या रहती थी। उसने महिलाओं की ६४ कलाओं (विज्ञानों) में निपुणता प्राप्त कर रखी थी। कामक्रीड़ा रसिक व्यक्तियों की मनोवृत्ति समझने के लिए उसने एक रतिभवन बनवाया। फिर उसने उस रतिभवन की दीवारें नानाविध कामक्रीड़ा करते हुए राजकुमार सेठ, सेनापति, मंत्रीपुत्र आदि के आकर्षक चित्रों से चित्रित करवा दीं। गणिका अपने यहाँ आने वालों को कामक्रीड़ारसिक मनोवृत्ति को भांप लेती एवं उसकी मनोवृत्ति के अनुसार उसके साथ कामक्रीड़ा करती। वेश्या के इस चातुर्यपूर्ण व्यवहार से आगन्तुक कामी व्यक्ति सन्तुष्ट होकर उसे पर्याप्त धन देते थे। इस प्रकार वेश्या ने नगर के प्रायः सभी सम्पन्न कामरसिकों के अभिप्रायों को जानकर उनकी रुचि के अनुसार कामलीला से मोहित करके उनसे प्रचुर धन लूटा।

वेश्या द्वारा कामक्रीड़ा के विभिन्न भावाभिव्यंजक चित्रों के माध्यम से प्रत्येक आगन्तुक कामरसिकों की रुचियों और अभिप्रायों को जानना, नो-आगमतः अप्रशस्त भावोपक्रम है। वेश्या के भावोपक्रम (परकीय-अभिप्रायज्ञान) को अप्रशस्त कहे जाने का कारण स्पष्ट है। कामी लोगों के अभिप्राय जानकर तदनुसार उनकी वासनापूर्ति करके धन लूटना ही वेश्या का मुख्य लक्ष्य था। इस लक्ष्य की अप्रशस्तता स्पष्ट है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अमात्य का अप्रशस्त भावोपक्रम - भद्रबाहु नामक एक राजा था। उसके अमात्य का नाम सुशील था। वह नीतिशास्त्र में अत्यन्त निपुण था। दूसरों के अभिप्राय को किसी भी तरीके से जान लेना तो उसके लिए बांये हाथ का खेल था। एक दिन राजा अपने अमात्य के साथ नगर से बाहर सैर करने के लिए घोड़े पर सवार होकर निकला। रास्ते में एक जगह घोड़े ने पेशाब किया। घोड़े ने जिस जगह पेशाब किया था, वह ज्यों का त्यों पड़ा रहा, बहुत देर तक सूखने नहीं पाया। जब राजा घूम-फिर कर वापस उसी जगह लौटा तो उसने वहाँ पेशाब ज्यों का त्यों पड़ा देखा। इस पर राजा को यह विचार स्फुरित हुआ कि यहाँ की भूमि बड़ी कठोर है। इतना समय हो जाने पर भी इस जगह पेशाब सूखा नहीं है। अगर यहाँ तालाब बना दिया जाए तो पानी चिरकाल तक टिका रह सकेगा, सूखेगा नहीं। ऐसा विचार करने के बाद राजा काफी समय तक उस भू-भाग को धूम-फिरकर देखता रहा। अन्त में, वह अपने महल में चला गया। परन्तु भद्रबाहु राजा की उक्त चेष्टा को मंत्री सुशील बहुत बारीकी से देखता रहा। उसे राजा का अभिप्राय समझते देर न लगी। मंत्री ने कुछ ही समय में पानी से लहलराता एक विशाल सरोवर वहाँ बनवा दिया। सरोवर के चारों ओर किनारे-किनारे सभी ऋतुओं के फूलों की बेलें लगवादी एवं फलदार वृक्ष भी चारों ओर लगवा दिये। समय पाकर वह सरोवर बगीचे के कारण एक रमणीय पर्यटन स्थान बन गया। एक दिन राजा फिर मंत्री के साथ सैर करने के लिए निकला। रास्ते में वृक्षों के झुंड एवं पुष्पों से लदी हुई लताओं से सुशोभित सुन्दर सरोवर को देखा तो राजा दंग रह गया। उसने सुशील मंत्री से पूछा - 'मंत्रिवर! यह पुष्पों एवं वृक्ष पंक्तियों से सुशोभित यहाँ विशाल सुरम्य सरोवर किसने बनाया है?'' राजा के प्रश्न के उत्तर में मंत्री ने कहा-''महाराज! इसके निर्माता तो आप स्वयं ही हैं।'' राजा ने विस्मित होकर पूछा - मैं इसका निर्माता कैसे? मुझे तो इस सरोवर का पता ही नहीं। मैंने तो इसे पहली बार देखा है।

राजा के ऐसा कहने पर मंत्री ने उस दिन की घटना का स्मरण कराते हुए कहा - 'महाराज! घोड़े के पेशाब को इस जगह बहुत देर तक ज्यों का त्यों पड़ा देखकर आपका मनोमन्थन इस भूमि पर तालाब बनवाने का चला था, मैंने इसे आपकी चेष्टाओं पर से जान लिया था। बाद में मैंने यहाँ तालाब खुदवाया, पेड़-पौधे लगवाए और पुष्पों से सुशोभित बेलें लगवाई। पर यह सब आपके ही मनोमन्थन का प्रसाद है।' राजा मंत्री की दूरदर्शिता, दूसरों के मनोभावों को ताड़ने की शक्ति एवं विनम्रता से बहुत प्रभावित हुआ और प्रसन्न होकर मंत्री को सधन्यवाद पुरस्कृत किया, उसके अधिकार बढ़ा दिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मंत्री ने किस प्रकार राजा भद्रबाहु के अभिप्राय को समझा और किस अनूठे ढंग से उसे कार्यान्वित किया, यह उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है। अमात्य (मंत्री) द्वारा जाने गए राजा के उक्त अभिप्राय को शास्त्रकारों ने नो-आगमतः अप्रशस्त भावोपक्रम बताया है। यह अप्रशस्त भावोपक्रम इसलिए है कि परमार्थ एवं आत्म-कल्याण के साथ इसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

अप्रशस्त भावोपक्रम के अन्य उदाहरण - प्रस्तुत सूत्र में '**अमच्चाईणं**' पद है, यहाँ का 'आदि' शब्द ब्राह्मणी, गणिका और अमात्य की भांति दूसरों के अभिप्रायों को समझने वाले अन्य व्यक्तियों का सूचक है। जैसे, दो भाई हैं। बड़े भाई ने छोटे भाई पर अकारण ही रोष करके उसे पीटा। उसका रुदन सुनकर माता बड़े पुत्र को सजा देने के लिए हाथ में डंडा लेकर आती दिखाई दी। माता के हाथ में डंडा देखकर लड़का माता के अभिप्राय को भाँप गया और वह तत्काल वहाँ से नौ दो ग्यारह हो गया। यहाँ बड़े लड़के के द्वारा माता के अभिप्राय को समझना, नो-आगमतः अप्रशस्त भावोपक्रम है। ऐसे ही अन्य उदाहरणों की कल्पना की जा सकती है।

से किं तं पसत्थे णोआगमओ भावोवक्कमे?

पसत्थे० गुरुमाईणं। सेत्तं णोआगमओ भावोवक्कमे। सेत्तं भावोवक्कमे। सेत्तं उवक्कमे।

शब्दार्थ - **गुरुमाईणं** - गुरु आदि के।

भावार्थ - प्रशस्त भावोपक्रम का क्या स्वरूप है?

गुरु आदि के भाव या अभिप्राय को यथार्थ रूप में जानना प्रशस्त नोआगमतः भावोपक्रम है। यह नोआगमतः भावोपक्रम का स्वरूप है। इस प्रकार भावोपक्रम का वर्णन समाप्त होता है। यह उपक्रम का विवेचन है।

विवेचन - भावोपक्रम के प्रशस्त और अप्रशस्त जो दो भेद किए गए हैं, वहाँ प्रशस्तता और अप्रशस्तता का संबंध लौकिकता तथा धार्मिकता या आध्यात्मिकता के साथ जुड़ा है। सांसारिक जनों के भावों को जानना अप्रशस्त इसलिए है कि वे मात्र लौकिक या व्यावहारिक होते हैं, जिनमें पुण्यात्मकता, पापात्मकता आदि आशंकित है। गुरु आदि के अभिप्राय को जानना प्रशस्त इसलिए है कि वह धार्मिक, आध्यात्मिक या सर्वथा पुण्यात्मक होता है। गुरु से अभिप्राय यहाँ धार्मिक गुरु या संयति मुनि से है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(७१)

उपक्रम का शास्त्रीय विवेचन

अहवा उवक्कमे छव्विहे पण्णत्ते। तंजहा - आणुपुव्वी १ णामं २ पमाणं ३ वत्तव्वया ४ अत्थाहिगारे ५ समोयारे ६।

शब्दार्थ - **अहवा** - अथवा, **छव्विहे** - छह प्रकार का।

भावार्थ - अथवा उपक्रम छह प्रकार का परिज्ञापित हुआ है, जैसे - १. आनुपूर्वी २. नाम ३. प्रमाण ४. वक्तव्यता ५. अर्थाधिकार एवं ६. समवतार।

(७२)

१. आनुपूर्वी

से किं तं आणुपव्वी?

आणुपव्वी दसविहा पण्णत्ता। तंजहा - णामाणुपुव्वी १ ठवणाणुपुव्वी २ दव्वाणुपुव्वी ३ खेत्ताणुपुव्वी ४ कालाणुपुव्वी ५ उक्कित्तणाणुपुव्वी ६ गणणाणुपुव्वी ७ संठाणाणुपुव्वी ८ सामायारीआणुपुव्वी ९ भावाणुपुव्वी १०।

भावार्थ - आनुपूर्वी का कैसा स्वरूप है?

आनुपूर्वी दस प्रकार की प्रतिपादित की गई है -

१. नामानुपूर्वी २. स्थापनानुपूर्वी ३. द्रव्यानुपूर्वी ४. क्षेत्रानुपूर्वी ५. कालानुपूर्वी ६. उत्कीर्तनानुपूर्वी ७. गणनानुपूर्वी ८. संस्थानानुपूर्वी ९. समाचार्यानुपूर्वी १०. भावानुपूर्वी।

(७३)

णामठवणाओ गयाओ।

भावार्थ - नाम एवं स्थापना विषयक वर्णन पूर्वगत है।

द्रव्यानुपूर्वी

से किं तं दव्वाणुपुव्वी?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दव्वाणुपुव्वी दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - आगमओ य १ णोआगमओ य २।

भावार्थ - द्रव्यानुपूर्वी किस प्रकार की है?

द्रव्यानुपूर्वी आगमतः एवं नोआगमतः के रूप में दो प्रकार की कही गई है।

से किं तं आगमओ दव्वाणुपुव्वी?

आगमओ दव्वाणुपुव्वी-जस्स णं 'आणुपुव्वि' त्ति पयं सिक्खियं, ठियं, जियं, मियं, परिजियं जाव णो अणुप्पेहाए। कम्हा? 'अणुवओगो' दव्वमिति कट्टु।

भावार्थ - आगमतः द्रव्यानुपूर्वी किस प्रकार की है?

जिसने आनुपूर्वी के पद को सीखा है, स्थित, जित, मित और परिजित किया है यावत् अनुप्रेक्षा, अर्थानुचिन्तन न होने से वह आगमतः द्रव्यानुपूर्वी है, क्योंकि **"अनुपयोगो द्रव्यम्"** जो उपयोग रहित होता है, वह द्रव्य है, इस सिद्धान्त वाक्य के अनुसार इसको आगमतः द्रव्यानुपूर्वी कहा गया है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में आए शिक्षित आदि पदों का विश्लेषण इस प्रकार है -

शिक्षित (सिक्खियं) - सामान्य रूप से सीख लेना, गुरु से स्वायत कर लेना।

स्थित (ठियं) - सीखे हुए को अपने मस्तिष्क में, स्मृति में टिकाना, स्थिर बनाना।

जित (जियं) - जिसे सीख लिया है, मस्तिष्क में स्थिर कर लिया है, उसका अनुक्रम पूर्वक पाठ करना, जित है।

मित (मियं) - शिक्षित पदार्थ - पाठगत अक्षर आदि की मर्यादा, नियमबद्धता, संयोजना आदि का ज्ञान करना।

परिजित (परिजियं) - यहाँ जित के पहले परि उपसर्ग लगा है। परि उपसर्ग पूर्णतः का द्योतक है। अधीत पर पूर्णतः अधिकार कर लेना इसके अन्तर्गत है।

णेगमस्स णं एगो अणुवउत्तो आगमओ एगा दव्वाणुपुव्वी जाव जाणए अणुवउत्ते अवत्थु। कम्हा?

जइ जाणए, अणुवउत्ते ण भवइ, जइ अणुवउत्ते, जाणए ण भवइ, तम्हा णत्थि आगमओ दव्वाणुपुव्वी। सेत्तं आगमओ दव्वाणुपुव्वी।

भावार्थ - नैगमनय की अपेक्षा से एक उपयोग रहित आत्मा एक आगम द्रव्यानुपूर्वी है

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यावत् ज्ञाता यदि अनुपयुक्त हो तो उसे अवस्तु (असत्) माना जाता है क्योंकि जो ज्ञाता होता है, वह उपयोग शून्य नहीं होता तथा जो अनुपयुक्त होता है, वह ज्ञाता नहीं होता, इसलिए वह आगमतः द्रव्यानुपूर्वी नहीं होता। यह आगमतः द्रव्यानुपूर्वी का स्वरूप है।

से किं तं णोआगमओ दव्वाणुपुव्वी?

णोआगमओ दव्वाणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता। तंजहा - जाणयसरीरदव्वाणुपुव्वी १ भवियसरीरदव्वाणुपुव्वी २ जाणयसरीर-भवियसरीरवइरित्ता दव्वाणुपुव्वी ३।

भावार्थ - नोआगमतः द्रव्यानुपूर्वी किस प्रकार की है?

नोआगमतः द्रव्यानुपूर्वी तीन प्रकार की प्रतिपादित हुई है -

१. ज्ञ शरीर द्रव्यानुपूर्वी २. भव्य शरीर द्रव्यानुपूर्वी ३. ज्ञ शरीर -भव्य शरीर - व्यतिरिक्त द्रव्यानुपूर्वी।

से किं तं जाणयसरीरदव्वाणुपुव्वी?

जाणयसरीरदव्वाणुपुव्वी 'आणुपुव्वि' पयत्थाहिगारजाणयस्स जं सरीरयं ववगयचुयचावियचत्तदेहं सेसं जहा दव्वावस्सए तहा भाणियव्वं जाव सेत्तं जाणयसरीरदव्वाणुपुव्वी।

भावार्थ - ज्ञ शरीर द्रव्यानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

जिसने आनुपूर्वी पद के अर्थाधिकार को जाना है, उसे चेतना रहित, प्राण शून्य, अनशन द्वारा मृत देह को देखकर कोई कहे...इत्यादि शेष वर्णन ज्ञ शरीर द्रव्यावश्यक की तरह कथनीय है यावत् यह ज्ञ शरीर द्रव्यानुपूर्वी का निरूपण है।

से किं तं भवियसरीरदव्वाणुपुव्वी?

भवियसरीरदव्वाणुपुव्वी-जे जीवे जोणी जम्मणणिक्खंते सेसं जहा दव्वावस्सए जाव सेत्तं भवियसरीरदव्वाणुपुव्वी।

भावार्थ - भव्य शरीर द्रव्यानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

योनिरूप जन्म स्थान से निःसृत किसी जीव का शरीर.....इत्यादि शेष वर्णन भव्य शरीर द्रव्यावश्यक की तरह योजनीय है यावत् यह भव्य शरीर द्रव्यानुपूर्वी का विवेचन है।

से किं तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ता दव्वाणुपुव्वी?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जाणयसरीरभविय-सरीरवइरित्ता दव्वाणुपुव्वी दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - उवणिहिया य १ अणोवणिहिया य २।

शब्दार्थ - **उवणिहिया** - औपनिधिकी, **अणोवणिहिया** - अनौपनिधिकी।

भावार्थ - ज्ञ शरीर - भव्य शरीर - व्यतिरिक्त द्रव्यानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

ज्ञ शरीर-भव्य शरीर - व्यतिरिक्त द्रव्यानुपूर्वी औपनिधिकी एवं अनौपनिधिकी के रूप में दो प्रकार की कही गई है।

तत्थ णं जा सा उवणिहिया सा ठप्पा।

शब्दार्थ - **तत्थ** - वहाँ, **जा** - जो, **सा** - वह, **ठप्पा** - स्थाप्य।

भावार्थ - उनमें जो औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी है, वह स्थाप्य है।

तत्थ णं जा सा अणोवणिहिया सा दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - णेगमववहाराणं१ संगहस्स य २।

भावार्थ - अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी दो प्रकार की निरूपित हुई है - १. नैगम - व्यवहारनय संबद्ध तथा २. संग्रहनय संबद्ध।

विवेचन - इस सूत्र में प्रयुक्त औपनिधिकी एवं अनौपनिधिकी शब्दों का विश्लेषण इस प्रकार हैं -

'औपनिधिकी' शब्द के मूल में उपनिधि शब्द है। यह उप उपसर्ग एवं निधि के मेल से बना है। उप का अर्थ समीप है। निधि का अर्थ किसी वस्तु को स्थापित या निहित करना अथवा रखना है। तदनुसार **'निधेः समीपं उपनिधि'** यह व्युत्पत्ति है।

संस्कृत एवं प्राकृत में स्वार्थ में 'क' प्रत्यय होता है। अर्थात् 'क' प्रत्यय जोड़कर शब्द को और अधिक स्पष्ट बनाया जाता है, पर अर्थ ज्यों का त्यों रहता है। उपनिधि में 'क' प्रत्यय जोड़ने से उपनिधिक होता है। उपनिधिक से संबद्ध पदार्थ को औपनिधिक कहा जाता है। अर्थात् यह इसका विशेषण रूप है। औपनिधिक का स्त्रीलिङ्ग में ङीप (ई) प्रत्यय जोड़ने से औपनिधिकी होता है। जो औपनिधिकी न हो, उसे अनौपनिधिकी कहा जाता है। अर्थात् अन् प्रत्यय का प्रयोग निषेध में होता है, जो अनौपनिधिकी में है।

यहाँ इसका तात्पर्य यह होता है कि वर्णनीय पदार्थ को पहले स्थापित कर फिर उसके समीप ही पूर्वानुपूर्वी आदि के क्रम से अन्यान्य पदार्थों का रखा जाना उपनिधि कहलाता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यहाँ यह ज्ञातव्य है कि औपनिधिकी आनुपूर्वी अल्पविषयिकी है तथा अनौपनिधिकी आनुपूर्वी बहुविषयिकी है। अतएव अनौपनिधिकी को मुख्य मानते हुए उसका वर्णन पहले किया गया है।

(७४)

नैगम-व्यवहारनय-सम्मत अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी

से किं तं णेगमववहाराणं अणोवणिहिया दव्वाणुपुव्वी?

णेगमववहाराणं अणोवणिहिया दव्वाणुपुव्वी पंचविहा पण्णत्ता। तंजहा - अट्ठपयपरूवणया १ भंगसमुक्कित्तणया २ भंगोवदंसणया ३ समोयारे ४ अणुगमे ५।

भावार्थ - नैगम और व्यवहारनय सम्मत अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी किस प्रकार की है?

नैगम एवं व्यवहारनय सम्मत अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी १. अर्थपदप्ररूपणा २. भंगसमुत्कीर्तनता ३. भंगोपदर्शनता ४. समवतार और ५. अनुगम के रूप में पांच प्रकार की है।

(७५)

अर्थपद निरूपण

से किं तं णेगमववहाराणं अट्ठपयपरूवणया?

णेगमववहाराणं अट्ठपयपरूवणया-तिपएसिए आणुपुव्वी जाव दसपएसिए आणुपुव्वी, संखिज्जपएसिए आणुपुव्वी, असंखिज्जपएसिए आणुपुव्वी, अणंतपएसिए आणुपुव्वी, परमाणुपोग्गले अणाणुपुव्वी, दुपएसिए अवत्तव्वए, तिपएसिया आणुपुव्वीओ जाव अणंतपएसियाओ आणुपुव्वीओ, परमाणुपोग्गला अणाणुपुव्वीओ, दुपएसियाइं अवत्तव्वयाइं। सेत्तं णेगमववहाराणं अट्ठपयपरूवणया।

शब्दार्थ - **तिपएसिए** - त्रिप्रदेशिक, **संखिज्जपएसिए** - संख्येय प्रदेशिक - संख्यात प्रदेशिक, **असंखिज्जपएसिए** - असंख्यात प्रदेशिक, **अणंतपएसिए** - अनंत प्रदेशिक, **परमाणुपोग्गले** - परमाणु पुद्गल, **अणाणुपुव्वी** - अनानुपूर्वी, **अवत्तव्वए** - अवक्तव्य।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - नैगम-व्यवहार सम्मत अर्थपद का निरूपण किस प्रकार का है?

नैगम-व्यवहार सम्मत अर्थपद निरूपण के अनुसार त्रिप्रदेशिक यावत् दस प्रदेशिक, संख्येय प्रदेशिक, असंख्येय प्रदेशिक, अनंत प्रदेशिक द्रव्यस्कन्ध रूप आनुपूर्वी है। परमाणु पुद्गल अनानुपूर्वी है। द्विप्रदेशिक स्कन्ध अवक्तव्य है। अनेक त्रिप्रदेशिक स्कन्ध यावत् अनेक अनंत प्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वियाँ अनेक आनुपूर्वी रूप हैं। अनेक अलग-अलग पुद्गल परमाणु अनेक अनानुपूर्वी रूप हैं। अनेक द्विप्रदेशिक स्कन्ध अनेक अवक्तव्यरूप हैं। यह नैगम-व्यवहार सम्मत अर्थपद का निरूपण है।

विवेचन - आनुपूर्वी का अर्थ अनुक्रम या परिपाटी है। यह वहीं संभव है, जहाँ आदि, मध्य और अन्त रूप गणना व्यवस्थित रूप से संभावित होती है। आदि, मध्य और अन्त की व्यवस्था त्रिप्रदेशिक स्कन्धों से लेकर अनंत प्रदेशिक स्कन्धों तक संभव है। इसलिए इनमें प्रत्येक स्कन्ध आनुपूर्वी रूप परिपाटी गत या अनुक्रम गत है।

इस सूत्र में परमाणु को अनानुपूर्वी रूप इसलिए कहा गया है क्योंकि उसमें आदि, मध्य और अंत घटित नहीं होता। वह सर्वथा सूक्ष्मतम इकाई है।

द्विप्रदेशिक स्कन्ध में दो परमाणु संश्लिष्ट हैं। उन दो में अनुक्रम है। पहले के बाद दूसरा है। किन्तु इनके मध्यवर्ती नहीं होता क्योंकि मध्यवर्ती तीन होने से घटित होता है। इसलिए द्विप्रदेशिक स्कन्ध का अनुक्रम पूर्व रूप से नहीं बनने से उसे यहाँ पर अवक्तव्य रूप से कहा गया है।

(७६)

एयाए णं णेगमववहाराणं अट्ठपयपरूवणयाए किं पओयणं?

एयाए णं णेगमववहाराणं अट्ठपयपरूवणयाए भंगसमुक्कित्तणया कज्जइ (कीरइ)।

शब्दार्थ - **एयाए** - इसका, **पओयणं** - प्रयोजन, **कज्जइ (कीरइ)** - कथित किया जाता है।

भावार्थ - नैगम एवं व्यवहारनय सम्मत इस अर्थ प्ररूपणात्मक आनुपूर्वी का क्या प्रयोजन प्रतिपादित हुआ है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नैगम व्यवहार सम्मत अर्थ प्ररूपणात्मक आनुपूर्वी द्वारा भंग समुत्कीर्तन - भंग निरूपण किया जाता है।

(७७)

से किं तं णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया?

णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया-अत्थि आणुपुव्वी १ अत्थि अणाणुपुव्वी२ अत्थि अवत्तव्वए ३ अत्थि आणुपुव्वीओ ४ अत्थि अणाणुपुव्वीओ ५ अत्थि अवत्तव्वयाइं ६। अहवा अत्थि आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वी य १ अहवा अत्थि आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वीओ य २ अहवा अत्थि आणुपुव्वीओ य अणाणुपुव्वी य ३ अहवा अत्थि आणुपुव्वीओ य अणाणुपुव्वीओ य ४ अहवा अत्थि आणुपुव्वी य अवत्तव्वए य ५ अहवा अत्थि आणुपुव्वी य अवत्तव्वयाइं च ६ अहवा अत्थि आणुपुव्वीओ य अवत्तव्वए य ७ अहवा अत्थि आणुपुव्वीओ य अवत्तव्वयाइं च ८ अहवा अत्थि अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वए य ९ अहवा अत्थि अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वयाइं च १० अहवा अत्थि अणाणुपुव्वीओ य अवत्तव्वए य ११ अहवा अत्थि अणाणुपुव्वीओ य अवत्तव्वयाइं च १२। अहवा अत्थि आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वए य १ अहवा अत्थि आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वयाइं च २ अहवा अत्थि आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वीओ य अवत्तव्वए य ३ अहवा अत्थि आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वीओ य अवत्तव्वयाइं च ४ अहवा अत्थि आणुपुव्वीओ य अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वए य ५ अहवा अत्थि आणुपुव्वीओ य अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वयाइं च ६ अहवा अत्थि आणुपुव्वीओ य अणाणुपुव्वीओ य अवत्तव्वए य ७ अहवा अत्थि आणुपुव्वीओ य अणाणुपुव्वीओ य अवत्तव्वयाइं च ८ तिसंजोगे एए अट्ठभंगा। एवं सव्वेऽवि छव्वीसं भंगा। सेत्तं णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया।

शब्दार्थ - **अत्थि** - अस्ति - है, **अहवा** - अथवा, **एए** - ये, **तिसंजोगे** - तीनों के संयोग से।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - नैगम एवं व्यवहार सम्मत भंग समुत्कीर्तन किस प्रकार का है?

नैगम - व्यवहार-सम्मत भंग समुत्कीर्तन १. आनुपूर्वी २. अनानुपूर्वी ३. अवक्तव्य ४. आनुपूर्वियाँ ५. अनानुपूर्वियाँ एवं ६. (अनेक) अवक्तव्य रूप हैं।

अथवा १. आनुपूर्वी तथा अनानुपूर्वी अथवा २. आनुपूर्वी एवं अनानुपूर्वियाँ अथवा ३. आनुपूर्वियाँ और अनानुपूर्वी अथवा ४. आनुपूर्वियाँ एवं अनानुपूर्वियाँ अथवा ५. आनुपूर्वी और अवक्तव्य अथवा ६. आनुपूर्वी एवं (अनेक) अवक्तव्य अथवा ७. आनुपूर्वियाँ और अवक्तव्य अथवा ८. आनुपूर्वियाँ और (अनेक) अवक्तव्य अथवा ९. अनानुपूर्वी एवं अवक्तव्य अथवा १०. अनानुपूर्वी एवं (अनेक) अवक्तव्य अथवा ११. अनानुपूर्वियाँ एवं अवक्तव्य अथवा, १२. अनानुपूर्वियाँ और (अनेक) अवक्तव्य रूप हैं।

अथवा, १. आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी और अवक्तव्य अथवा २. आनुपूर्वी अनानुपूर्वी एवं (अनेक) अवक्तव्य अथवा ३. आनुपूर्वी, अनानुपूर्वियाँ तथा अवक्तव्य अथवा ४. आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी एवं (अनेक) अवक्तव्य अथवा ५. आनुपूर्वियाँ, अनानुपूर्वियाँ तथा अवक्तव्य अथवा ६. आनुपूर्वियाँ, अनानुपूर्वी एवं (अनेक) अवक्तव्य अथवा ७. आनुपूर्वियाँ, अनानुपूर्वियाँ तथा अवक्तव्य अथवा (और) ८. आनुपूर्वियाँ, अनानुपूर्वियाँ एवं (अनेक) अवक्तव्य - इस प्रकार तीनों के संयोग से ये आठ भंग बनते हैं। ये सब मिलकर छब्बीस भंग बनते हैं। यह नैगम-व्यवहार सम्मत भंगों का समुत्कीर्तन - स्वरूप है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में नैगम और व्यवहार नय सम्मत छब्बीस भंगों का निरूपण हुआ है। ये भंग आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी एवं अवक्तव्य - इन तीनों के संयोग और असंयोग की अपेक्षा से बनते हैं। जहाँ इनका असंयोग हो, वहाँ एकवचनान्त तीन और बहुवचनान्त तीन - यों दोनों को मिलाने से छह भंग होते हैं।

जहाँ इन तीनों का संयोग हो, वहाँ द्विकसंयोगी - दो-दो के संयोग पर आधारित भंग तीन चतुर्भंगियों के रूप में निष्पन्न होते हैं। यों वे कुल बारह होते हैं।

त्रिकसंयोग में - तीनों के संयोग की स्थिति में एकवचन और बहुवचन के आधार पर आठ भंग बनते हैं।

इस भंग-विभाजन का अभिप्राय यह है कि असंयोगज छह और संयोगज बीस - इन छब्बीस भंगों में से वक्ता जिस भंग की अपेक्षा से द्रव्य को विवक्षित - व्याख्यात करना चाहता हो, वह उस भंग के अनुसार विवक्षित पदार्थ का निरूपण कर सकता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(७८)

एयाए णं णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणयाए किं पओयणं?

एयाए णं णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणयाए भंगोवदंसणया कीरइ।

शब्दार्थ - एयाए - इसके द्वारा, **भंगोवदंसणया** - भंगोपदर्शनता।

भावार्थ - इस नैगम एवं व्यवहारनय सम्मत भंगनिरूपण का क्या प्रयोजन है?

इस नैगम तथा व्यवहारनय सम्मत भंगनिरूपण का प्रयोजन भंगोपदर्शन - पृथक्-पृथक् रूप में भंगों का प्रतिपादन करना है।

विवेचन - इस सूत्र में भंगों के संदर्भ में समुत्कीर्तन एवं उपदर्शन - दो शब्दों का प्रयोग हुआ है। साधारणतया देखने पर दोनों समान जैसे प्रतीत होते हैं किन्तु सूक्ष्म आशय की गवेषणा करने पर दोनों में अर्थभेद है।

समुत्कीर्तन में सम्+उत्+कीर्तन शब्द हैं। सम् का तात्पर्य सम्यक्, उत् का अर्थ - विशद् रूप में तथा कीर्तन का अर्थ निरूपण है। अर्थात् समुत्कीर्तन में भंगों के नाम और उनके प्रकार बतलाए जाते हैं।

'उपदर्शन' शब्द 'उप' उपसर्ग एवं 'दर्शन' से मिलकर बना है। 'उप' सामीप्य या नैकट्य बोधक है। अतएव जो निकटतम या अति समीप त्र्यणुक आदि वाच्यार्थ हैं, उनका उपदर्शन में प्रतिपादन किया जाता है।

(७९)

नैगम-व्यवहारनय सम्मत भंगोपदर्शनता

से किं तं णेगमववहाराणं भंगोवदंसणया?

णेगमववहाराणं भंगोवदंसणया-तिपएसिए आणुपुव्वी १ परमाणुपोग्गले अणाणुपुव्वी २ दुपएसिए अवत्तव्वए ३ अहवा तिपएसिया आणुपुव्वीओ ४ परमाणुपोग्गला अणाणुपुव्वीओ ५ दुपएसिया अवत्तव्वयाइं ६। अहवा तिपएसिए य परमाणुपुग्गले य आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वी य चउभंगो ४। अहवा तिपएसिए य दुपएसिए य आणुपुव्वी य अवत्तव्वए य चउभंगो ८। अहवा परमाणुपोग्गले य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दुपएसिए य अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वए य चउभंगो❀ १२। अहवा तिपएसिए य परमाणुपोग्गले य दुपएसिए य आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वए य १ अहवा तिपएसिए य परमाणुपोग्गले य दुपएसिया य आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वयाइं च २ अहवा तिपएसिए य परमाणुपुग्गला य दुपएसिए य आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वीओ य अवत्तव्वए य ३ अहवा तिपएसिए य परमाणुपोग्गला य दुपएसिया य आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वीओ य अवत्तव्वयाइं च ४ अहवा तिपएसिया य परमाणुपोग्गले य दुपएसिए य आणुपुव्वीओ य अणाणुपुव्वीओ य अवत्तव्वए य ५ अहवा तिपएसिया य परमाणुपोग्गले य दुपएसिया य आणुपुव्वीओ य अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वयाइं च ६ अहवा तिपएसिया य परमाणुपोग्गला य दुपएसिए य आणुपुव्वीओ य अणाणुपुव्वीओ य अवत्तव्वए य ७ अहवा तिपएसिया य परमाणुपोग्गला य दुपएसिया य आणुपुव्वीओ य अणाणुपुव्वीओ य अवत्तव्वयाइं च ८। सेत्तं णेगमववहाराणं भंगोवदंसणया।

भावार्थ - नैगम - व्यवहारनय सम्मत भंगोपदर्शन कैसा है?

नैगम -व्यवहारनय सम्मत भंगोपदर्शनता का विश्लेषण इस प्रकार है - १. त्रिप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वी है २. परमाणुपुद्गल अनानुपूर्वी है, ३. द्विप्रदेशिक स्कन्ध अवक्तव्य है, अथवा ४. त्रिप्रदेशिक अनेक स्कन्ध आनुपूर्वियाँ हैं, ५. (अनेक) परमाणु पुद्गल अनानुपूर्वियाँ हैं ६. (अनेक) द्विप्रदेशिक स्कन्ध अवक्तव्य हैं, (यह असंयोगज छह भागों का स्वरूप है)।

अथवा, त्रिप्रदेशिक परमाणु पुद्गल में आनुपूर्वी एवं अनानुपूर्वी के आधार पर चार भंग बनते हैं।

अथवा, त्रिप्रदेशिक और द्विप्रदेशिक स्कन्ध में आनुपूर्वी और अवक्तव्य के आधार पर चार भंग बनते हैं।

अथवा, परमाणुपुद्गल और द्विप्रदेशिक स्कन्ध में अनानुपूर्वी और अवक्तव्य के आधार पर चार भंग ❂ बनते हैं। अथवा १. त्रिप्रदेशिक स्कन्ध, परमाणुपुद्गल और द्विप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी एवं अवक्तव्य रूप हैं। अथवा २. त्रिप्रदेशिक स्कन्ध, परमाणुपुद्गल एवं द्विप्रदेशिक

❀ अणणायरिसे बारस भंगुल्लेहो लब्भइ।

❂ अन्य प्रतियों में बारह भंग प्राप्त होते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्कन्ध आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी एवं अवक्तव्य रूप हैं। अथवा ३. त्रिप्रदेशिक स्कन्ध, अनेक परमाणुपुद्गल एवं द्विप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वी, अनानुपूर्वियाँ और अवक्तव्य रूप हैं। अथवा ४. त्रिप्रदेशिक स्कन्ध, (अनेक) परमाणुपुद्गल और (अनेक) द्विप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी एवं (अनेक) अवक्तव्य रूप हैं। अथवा ५. (अनेक) त्रिप्रदेशिक स्कन्ध, परमाणुपुद्गल एवं द्विप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वियाँ, अनानुपूर्वियाँ एवं अवक्तव्य रूप हैं। अथवा ६. (अनेक) त्रिप्रदेशिक स्कन्ध, परमाणुपुद्गल और अनेक द्विप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वियाँ, अनानुपूर्वी एवं (अनेक) अवक्तव्य रूप हैं। अथवा ७. (अनेक) त्रिप्रदेशिक स्कन्ध, (अनेक) परमाणु पुद्गल तथा (अनेक) द्विप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वियाँ, अनानुपूर्वियाँ और अवक्तव्य रूप हैं। अथवा ८. (अनेक) त्रिप्रदेशिक स्कन्ध (अनेक) परमाणु पुद्गल तथा (अनेक) द्विप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वियाँ, अनानुपूर्वियाँ और (अनेक) अवक्तव्य रूप हैं।

यह नैगम - व्यवहारनय सम्मत भंगोपदर्शनता है।

(८०)

समवतार निरूपण

से किं तं समोयारे?

समोयारे (भणिज्जइ)।

णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं कहिं समोयरंति? किं आणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति? अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति? अवत्तव्वयदव्वेहिं समोयरंति?

णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं आणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति, णो अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति, णो अवत्तव्वयदव्वेहिं समोयरंति।

णेगमववहाराणं अणाणुपुव्वीदव्वाइं कहिं समोयरंति? किं आणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति? अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति? अवत्तव्वयदव्वेहिं समोयरंति?

णो आणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति, अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति, णो अवत्तव्वयदव्वेहिं समोयरंति।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णेगमववहाराणं अवत्तव्वयदव्वाइं कहिं समोयरंति? आणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति? अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति? अवत्तव्वयदव्वेहिं समोयरंति?

णो आणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति, णो अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति, अवत्तव्वयदव्वेहिं समोयरंति। सेत्तं समोयारे।

शब्दार्थ - **समोयारे** - समवतार, **समोयरंति** - समवतरित - समाविष्ट होते हैं।

भावार्थ - समवतार का क्या स्वरूप है?

समवतार का वर्णन किया जा रहा है -

नैगम - व्यवहारनय-सम्मत आनुपूर्वी द्रव्य कहाँ समवतरित होते हैं?

क्या आनुपूर्वी द्रव्यों में, अनानुपूर्वी द्रव्यों में अथवा अवक्तव्य द्रव्यों में समवतरित होते हैं?

नैगम एवं व्यवहारनय सम्मत आनुपूर्वी द्रव्य, आनुपूर्वी द्रव्यों में समवतरित होते हैं किन्तु अनानुपूर्वी द्रव्यों अथवा अवक्तव्यों में समवतरित नहीं होते।

नैगम एवं व्यवहारनय सम्मत अनानुपूर्वी द्रव्य कहाँ समवतरित होते हैं? क्या वे आनुपूर्वी द्रव्यों में समवतरित होते हैं? (क्या) अनानुपूर्वी द्रव्यों में समवतरित होते हैं? (क्या) अवक्तव्य द्रव्यों में समवतरित होते हैं?

वे आनुपूर्वी द्रव्यों एवं अवक्तव्य द्रव्यों में समवतरित नहीं होते। वे अनानुपूर्वी द्रव्यों में समवतरित होते हैं।

नैगम और व्यवहारनय सम्मत अवक्तव्य द्रव्य कहाँ समवतरित होते हैं? (क्या) वे आनुपूर्वी द्रव्यों में समवतरित होते हैं? अनानुपूर्वी द्रव्यों में समवतरित होते हैं (अथवा) अवक्तव्य द्रव्यों में समवतरित होते हैं?

(अवक्तव्य द्रव्य) आनुपूर्वी द्रव्यों में एवं अनानुपूर्वी द्रव्यों में समवतरित नहीं होते। वे (केवल) अवक्तव्य द्रव्यों में समवतरित होते हैं।

यह समवतार का स्वरूप है।

विवेचन - 'समवतार' शब्द में 'सम', 'अव' और 'तार' का योग है। 'सम' का अर्थ सम्यक् या भली भांति है। 'अव-समन्तात्' - का अर्थ विस्तीर्ण या विशद रूप में है। भली भांति यथावत् रूप में समावेश होना समवतार का आशय है। यह समवतार या समावेश सम पक्षों में या समान में ही होता है। असमान या विसदृश में नहीं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आधुनिक विज्ञान का यह सिद्धान्त है - Like disolves like - समान-समान में ही घुलता है। अर्थात् समान-समान में ही समाविष्ट होता है। यहाँ विज्ञान का यह सिद्धान्त फलित होता है।

(८१)

अनुगम-निरूपण

से किं तं अणुगमे?

अणुगमे णवविहे पण्णत्ते। तंजहा-

गाहा - संतपयपरूवणया, दव्वपमाणं च खित्त फुसणा य।

कालो य अंतरं भाग, भावे अप्पाबहुं चेव॥१॥

भावार्थ - अनुगम किस प्रकार का होता है?

अनुगम नौ प्रकार का प्रतिपादित हुआ है। वे नौ प्रकार इस तरह हैं -

गाथा - १. सत्पदप्ररूपणा २. द्रव्यप्रमाण ३. क्षेत्र ४. स्पर्शना ५. काल ६. अंतर ७. भाग ८. भाव तथा ९. अल्प-बहुत्व।

विवेचन - नैगम और व्यवहारनय सम्मत अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी का अन्तिम भेद अनुगम है। प्रस्तुत सूत्र में उसके भेदों का उल्लेख है।

'अनुगम' में 'अनु' उपसर्ग और गम् धातु है। **'अनुकूलं गमनम् अनुगमः'** - अनुकूल गमन या व्याख्यान विधि को अनुगम कहा जाता है।

दूसरे शब्दों में यों कहा जा सकता है - सूत्र पढ़ने के अनंतर जो उसका विश्लेषण किया जाता है, उसे अनुगम कहा जाता है। अनुगम के इस सूत्र में कहे गए नौ भेदों का विवेचन इस प्रकार है -

१. सत्पदप्ररूपणा - सत् अस्तित्व का द्योतक है। विद्यमान पदार्थ को सत् कहा जाता है। तद्विषयक पद का निरूपण इसका आशय है। जैसे आनुपूर्वी आदि द्रव्य सत् पदार्थ के सूचक हैं। उनकी प्ररूपणा करना सत् तत्त्व प्ररूपणा है।

२. द्रव्य प्रमाण - आनुपूर्वी आदि पदों द्वारा जिन द्रव्यों का आख्यान किया जाता है, उनकी संख्या पर विचार करना द्रव्य प्रमाण है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३. क्षेत्र - आनुपूर्वी आदि पदों द्वारा सूचित द्रव्यों के आधारभूत क्षेत्र का विचार, इस भेद का द्योतक है।

४. स्पर्शना - आनुपूर्वी आदि द्रव्यों द्वारा स्पर्श किए गए क्षेत्र की पर्यालोचना स्पर्शना के अन्तर्गत आती है।

यहाँ यह ज्ञातव्य है कि क्षेत्र में केवल आधारभूत आकाश का ही स्वीकार है, स्पर्शना में आधारभूत क्षेत्र के चारों ओर के तथा ऊपर-नीचे के आकाश प्रदेश भी गृहीत होते हैं।

५. काल - आनुपूर्वी आदि द्रव्यों की स्थिति की मर्यादा पर विचार करना काल कहा जाता है।

६. अन्तर - विवक्षित पर्याय का परित्याग हो जाने के अनंतर फिर उसी पर्याय की प्राप्ति में होने वाला विरहकाल - व्यवधान का काल अन्तर कहा जाता है।

७. भाग - आनुपूर्वी आदि द्रव्य, अन्य द्रव्यों के कितने भाग में अवस्थित रहते हैं, ऐसा विचार भाग कहा जाता है।

८. भाव - विवक्षित आनुपूर्वी आदि द्रव्य किस भाव में अवस्थित हैं, ऐसा विचार भाव शब्द द्वारा अभिहित किया जाता है।

६. अल्प-बहुत्व - द्रव्यार्थिक, प्रदेशार्थिक तथा द्रव्य प्रदेशार्थिक के आश्रय से आनुपूर्वी द्रव्यों में अल्पता अधिकता का विचार करना अल्प-बहुत्व है।

(८२)

१. सत्पदप्ररूपणा

णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं किं अत्थि णत्थि?

णियमा अत्थि।

णेगमववहाराणं अणाणुपुव्वीदव्वाइं किं अत्थि णत्थि?

णियमा अत्थि।

णेगमववहाराणं अवत्तव्वयदव्वाइं किं अत्थि णत्थि?

णियमा अत्थि।

शब्दार्थ - णियमा - नियम से, अत्थि - अस्ति - है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - नैगम एवं व्यवहारनय की अपेक्षा से आनुपूर्वी द्रव्य हैं अथवा नहीं हैं?

वे नियमतः अवश्य हैं।

नैगम - व्यवहारनय सम्मत अनानुपूर्वी द्रव्य हैं अथवा नहीं हैं?

नियमतः - निश्चित रूप से हैं।

नैगम - व्यवहारनय सम्मत अवक्तव्य द्रव्य क्या हैं अथवा नहीं है?

वे नियमतः हैं।

(८३)

२. द्रव्य प्रमाण

णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं किं संखिज्जाइं? असंखिज्जाइं? अणंताइं?

णो संखिज्जाइं, णो असंखिज्जाइं, अणंताइं। एवं अणाणुपुव्वीदव्वाइं अवत्तव्वगदव्वाइं च अणंताइं भाणियव्वाइं।

भावार्थ - नैगम एवं व्यवहारनय की दृष्टि से आनुपूर्वी द्रव्य क्या संख्येय, असंख्येय या अनंत हैं?

वे संख्येय एवं असंख्येय नहीं हैं, अनंत हैं। इसी प्रकार अनानुपूर्वी एवं अवक्तव्य - ये दोनों द्रव्य भी अनंत के रूप में भणनीय - कथनीय हैं।

विवेचन - इस सूत्र में प्रयुक्त **'संखेज्ज'** - संख्येय शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है - **'संख्यातुं योग्यं संख्येयं'** - जो गिनने योग्य होते हैं, उन्हें संख्येय कहा जाता है। **'न संख्यातुं योग्यं असंख्येयम्'** - जिनकी गणना नहीं की जा सकती वे असंख्येय हैं। ये दोनों ही शब्द क्रमशः संख्यात और असंख्यात के बोधक हैं।

इन सूत्रों में आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी एवं अवक्तव्य द्रव्यों को अनंत कहा गया है, उसका आशय यह है कि एक-एक आकाश प्रदेश में वे अनंत रूप में समा सकते हैं। उसका कारण पुद्गलों का संकोच-विस्तार रूप विशिष्ट गुण या स्वभाव है। जैसे - एक दीपक की लौ अत्यन्त छोटे स्थान को प्रकाशित करती है, उसी को एक विस्तीर्ण परिसर में रख दिया जाय तो उसे भी प्रकाशित करती है। छोटे स्थान में प्रकाश रूप में परिणत आग्नेय पुद्गलों का संकोच होता है और बड़े स्थान में उनका विस्तार होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(८४)

३. क्षेत्र विवेचन

णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं लोगस्स किं संखिज्जइभागे होज्जा? असंखिज्जइभागे होज्जा? संखेज्जेसु भागेसु होज्जा? असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा? सव्वलोए होज्जा?

एगं दव्वं पडुच्च संखिज्जइभागे वा होज्जा, असंखिज्जइभागे वा होज्जा, संखेज्जेसु भागेसु वा होज्जा, असंखेज्जेसु भागेसु वा होज्जा, सव्वलोए वा होज्जा। णाणादव्वाइं पडुच्च णियमा सव्वलोए होज्जा।

शब्दार्थ - लोगस्स - लोकस्य - लोक का, **होज्जा** - होते हैं - होने चाहिए, **सव्वलोए**- समस्त लोक में, **पडुच्च** - प्रतीति से, अपेक्षा से, **भागेसु** - भागों में, **णाणादव्वाइं** - विविध द्रव्य।

भावार्थ - नैगम और व्यवहारनय सम्मत आनुपूर्वी द्रव्य क्या (क्षेत्र की अपेक्षा से) लोक के संख्येय भाग में होते हैं? क्या असंख्येय भाग में होते हैं (अथवा) संख्येय भागों में होते हैं (या) असंख्येय भागों में होते हैं (या) समस्त लोक में होते हैं?

एक द्रव्य (कोई आनुपूर्वी) की अपेक्षा से कोई लोक के संख्येय भाग में अवगाह लिए होता है अथवा कोई लोक के असंख्येय भाग में व्याप्त रहता है अथवा कोई संख्येय भागों में रहता है अथवा कोई असंख्येय भागों में रहता है अथवा कोई समस्त लोक में रहता है। किन्तु अनेक द्रव्यों की अपेक्षा से वे समग्र लोक में अवगाह किए होते हैं।

णेगमववहाराणं अणाणुपुव्वीदव्वाइं किं लोयस्स संखिज्जइभागे होज्जा जाव सव्वलोए होज्जा?

एगं दव्वं पडुच्च णो संखिज्जइभागे होज्जा, असंखिज्जइभागे होज्जा, णो संखेज्जेसु भागेसु होज्जा, णो असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा, णो सव्वलोए होज्जा। णाणादव्वाइं पडुच्च णियमा सव्वलोए होज्जा। एवं अवत्तव्वगदव्वाइं भाणियव्वाइं।

भावार्थ - नैगम - व्यवहारनय सम्मत अनानुपूर्वी द्रव्य क्या लोक के संख्येय भाग में रहते हैं यावत् समस्त लोक में होते हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एक (अनानुपूर्वी) द्रव्य की अपेक्षा से वह लोक के संख्येय भाग में नहीं होते (परन्तु) असंख्येय भाग में होते हैं, संख्येय भागों में नहीं होते (एवं) असंख्येय भागों में नहीं होते, सर्वलोक में नहीं होते। नानाद्रव्यों की अपेक्षा से नियमतः समस्त लोक में रहते हैं। इसी प्रकार अवक्तव्य द्रव्य के संदर्भ में भी कथनीय है।

(८५)

४. स्पर्शना-निरूपण

णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं लोगस्स किं संखेज्जइभागं फुसंति? असंखेज्जइभागं फुसंति? संखेज्जे भागे फुसंति? असंखेज्जे भागे फुसंति? सव्वलोगं फुसंति?

एगं दव्वं पडुच्च लोगस्स संखेज्जइभागं वा फुसंति जाव सव्वलोगं वा फुसंति। णाणादव्वाइं पडुच्च णियमा सव्वलोगं फुसंति।

णेगमववहाराणं अणाणुपुव्वीदव्वाइं लोगस्स किं संखिज्जइभागं फुसंति जाव सव्वलोगं फुसंति?

एगं दव्वं पडुच्च णो संखिज्जइभागं फुसंति, असंखिज्जइभागं फुसंति, णो संखिज्जे भागे फुसंति, णो असंखिज्जे भागे फुसंति, णो सव्वलोयं फुसंति। णाणादव्वाइं पडुच्च णियमा सव्वलोयं फुसंति। एवं अवत्तव्वगदव्वाइं भाणियव्वाइं।

शब्दार्थ - फुसंति - स्पर्श करते हैं।

भावार्थ - नैगम और व्यवहारनय सम्मत आनुपूर्वी द्रव्य क्या लोक के संख्येय भाग का स्पर्श करते हैं? क्या वे असंख्येय भाग का स्पर्श करते हैं? संख्येय भागों का स्पर्श करते हैं? असंख्येय भागों का स्पर्श करते हैं? सर्वलोक का स्पर्श करते हैं?

एक द्रव्य की अपेक्षा से (वे) लोक के संख्येय भाग का स्पर्श करते हैं (अथवा) यावत् सर्वलोक का स्पर्श करते हैं।

नैगम - व्यवहारनय सम्मत द्रव्य क्या लोक के संख्येय भाग का स्पर्श करते हैं यावत् समस्त लोक का स्पर्श करते हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एक द्रव्य की प्रतीति - अपेक्षा से (वे) संख्येय भाग का स्पर्श नहीं करते, असंख्येय भाग का स्पर्श करते हैं, संख्येय भागों, असंख्येय भागों और समस्त लोक का स्पर्श नहीं करते। नाना - अनेक द्रव्यों की अपेक्षा से वे सर्वलोक का स्पर्श करते हैं।

इसी प्रकार अवक्तव्य द्रव्यों का भी वर्णन समझ लेना चाहिये।

(८६)

५. काल-प्ररूपण

णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं कालओ केवच्चिरं होंति?

एगं दव्वं पडुच्च जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं। णाणादव्वाइं पडुच्च णियमा सव्वद्धा। अणाणुपुव्वीदव्वाइं अवत्तव्वगदव्वाइं च एवं चेव भाणियव्वाइं।

शब्दार्थ - **कालओ** - कालतः - काल की अपेक्षा से, **केवच्चिरं** - कितने समय तक, **होंति** - होते हैं, **जहण्णेणं** - जघन्यतः, **उक्कोसेणं** - उत्कृष्टतः - अधिकतम रूप में, **सव्वद्धा** - सार्वकालिक।

भावार्थ - नैगम - व्यवहारनय सम्मत आनुपूर्वी द्रव्य काल की अपेक्षा से (अपने स्वरूप में) कितने काल पर्यन्त रहते हैं?

एक आनुपूर्वी द्रव्य जघन्यतः - न्यूनतम एक समय पर्यन्त एवं उत्कृष्टतः - अधिकतम असंख्यात काल पर्यन्त रहता है। नाना - विविध आनुपूर्वी द्रव्यों की अपेक्षा से नियमतः उनकी सार्वकालिक स्थिति है।

अनानुपूर्वी द्रव्यों एवं अवक्तव्य द्रव्यों के संदर्भ में भी ऐसा ही कथनीय है।

(८७)

६. अन्तर निरूपण

णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाणं अंतरं कालओ केवच्चिरं होइ?

एगं दव्वं पडुच्च जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं अणं(तं)तकालं। णाणादव्वाइं पडुच्च णत्थि अंतरं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णेगमववहाराणं अणाणुपुव्वीदव्वाणं अंतरं कालओ केवच्चिरं होइ?

एगं दव्वं पडुच्च जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं। णाणादव्वाइं पडुच्च णत्थि अंतरं।

णेगमववहाराणं अवत्तव्वगदव्वाणं अंतरं कालओ केवच्चिरं होइ?

एगं दव्वं पडुच्च जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं अणंतकालं। णाणादव्वाइं पडुच्च णत्थि अंतरं।

भावार्थ - नैगम एवं व्यवहारनय सम्मत आनुपूर्वी द्रव्यों का काल की अपेक्षा से कितना अंतर या व्यवधान होता है?

एक (आनुपूर्वी) द्रव्य की अपेक्षा से जघन्यतः एक समय और उत्कृष्टतः अनंतकाल का व्यवधान होता है किन्तु अनेक द्रव्यों की अपेक्षा से व्यवधान नहीं होता।

नैगम और व्यवहारनय सम्मत अनानुपूर्वी द्रव्यों का काल की अपेक्षा से कितना अंतर होता है?

एक (अनानुपूर्वी) द्रव्य की अपेक्षा से जघन्यतः एक समय का तथा उत्कृष्टतः असंख्येय काल का व्यवधान होता है। नाना द्रव्यों की अपेक्षा से अन्तर नहीं होता।

नैगम - व्यवहारनय सम्मत अवक्तव्य द्रव्यों का काल की अपेक्षा से कितना अन्तर या व्यवधान होता है?

एक (अवक्तव्य) द्रव्य की अपेक्षा से जघन्यतः एक समय तथा उत्कृष्टतः अनंत काल का अंतर होता है। अनेक द्रव्यों की अपेक्षा से अंतर नहीं होता।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में क्रमशः आनुपूर्वी द्रव्यों, अनानुपूर्वी द्रव्यों एवं अवक्तव्य द्रव्यों का एक तथा अनेक की दृष्टि से कालापेक्षया अन्तर या व्यवधान निरूपित हुआ है। उसका अभिप्राय यह है कि आनुपूर्वी आदि द्रव्य अपने स्वरूप का परित्याग कर पुनः उसी स्वरूप को कितने काल के अंतर से या व्यवधान से प्राप्त करते हैं।

उदाहरणार्थ - त्र्यणुक (तीन अणु समुदाय) चतुरणुक आदि आनुपूर्वी द्रव्यों में से कोई एक आनुपूर्वी द्रव्य स्वाभाविक या प्रायोगिक परिणमन से खण्ड-खण्ड होकर आनुपूर्वी पर्याय से विरहित हो जाय तथा पुनः वही द्रव्य एक समय के अन्तर से स्वाभाविक या प्रायोगिक परिणाम से उन्हीं परमाणुओं के संयोग से उसी स्वरूप में परिवर्तित हो जाए तो एक आनुपूर्वी द्रव्य की अपेक्षा से अपने स्वरूप के परित्याग तथा पुनः उसी स्वरूप में आगमन के बीच में एक समय का अन्तर हुआ। इसीलिए एक आनुपूर्वी द्रव्य की अपेक्षा से जघन्य अन्तरकाल एक समय प्रतिपादित हुआ है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कोई एक आनुपूर्वी द्रव्य उपर्युक्त रीति से आनुपूर्वी पर्याय से रहित हो जाय तथा निर्गत परमाणु अन्य द्वयणुक, त्र्यणुक आदि से लेकर अनंतप्रदेशी स्कन्ध पर्यन्त रूप अनंत स्थानों में प्रत्येक उत्कृष्ट काल की स्थिति तक संश्लिष्ट रहे। इस प्रकार प्रत्येक द्वयणुक आदि अनंत स्थानों में अनंत काल तक संश्लिष्ट होते-होते, अनंत काल समाप्त होने पर जब उन्हीं परमाणुओं द्वारा विवक्षित आनुपूर्वी द्रव्य रूप में पुनः निष्पन्न हो जाए। तब वह अनंतकाल रूप उत्कृष्ट अंतर होता है।

यहाँ अनंतकाल के समाप्त होने की जो बात कही गई है, वहाँ यह शंका उपस्थित होती है कि अनंत की समाप्ति कैसे?

'नास्ति अंतो यस्य सः अनंतः' - जिसका अन्त न हो, उसे अनंत कहा जाता है। यहाँ गणित शास्त्र एक सूक्ष्म समाधान देता है - अनंत के भी अनंत प्रकार होते हैं। अतः अनेक अनंतों का योग अनंत होता है तथा अनंत में से अनंत निकालने पर भी अनंत रहता है। अनंत संज्ञा कहीं विखण्डित नहीं होती। अंग्रेजी में इसे Infinite कहा गया है। वहाँ भी ऐसा ही विश्लेषण है।

अनंत की एक कोटि तथा तदधिक अन्य कोटि का पारस्परिक तारतम्य ही प्रथम कोटि की परिसमाप्ति का आशय है।

(८८)

७. भाग-प्रतिपादन

णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं सेसदव्वाणं कइभागे होज्जा? किं संखिज्जइभागे होजा? असंखिज्जइभागे होज्जा? संखेज्जेसु भागेसु होजा? असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा?

णो संखिज्जइभागे होजा, णो असंखिज्जइभागे होज्जा, णो संखेज्जेसु भागेसु होज्जा, णियमा असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा।

णेगमववहाराणं अणाणुपुव्वीदव्वाइं सेसदव्वाणं कइभागे होज्जा? किं संखेज्जइभागे होज्जा? असंखेज्जइभागे होज्जा? संखेज्जेसु भागेसु होज्जा? असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा?

णो संखेज्जइभागे होज्जा, असंखेज्जइभागे होज्जा, णो संखेज्जेसु भागेसु होज्जा, णो असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा। एवं अवत्तव्वगदव्वाणि वि भाणियव्वाणि।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ - **सेसदव्वाणं** - अवशिष्ट द्रव्यों के, **कइभागे** - कितने भाग, **होज्जा** - होने चाहिए - होते हैं।

भावार्थ - नैगम एवं व्यवहारनय सम्मत आनुपूर्वी द्रव्य शेष द्रव्यों के कितने-कियत् परिमित भाग हैं? क्या (वे) संख्येय भाग हैं? असंख्येय भाग हैं? क्या संख्येय भागों में हैं? क्या असंख्येय भागों में हैं?

(आनुपूर्वी द्रव्य शेष द्रव्यों के) संख्यात भाग नहीं हैं, असंख्यात भाग नहीं हैं, संख्यात भागों में (भी) नहीं हैं, (किन्तु) असंख्यात भागों में हैं।

नैगम-व्यवहारनय सम्मत अनानुपूर्वी द्रव्य शेष द्रव्यों के कितने - कियत् परिमित भाग हैं? क्या संख्येय भाग हैं? क्या असंख्येय भाग हैं? क्या संख्येय भागों में हैं? क्या असंख्येय भागों में हैं?

(अनानुपूर्वी द्रव्य शेष द्रव्यों के) संख्येय भाग नहीं हैं, असंख्येय भाग हैं, संख्येय भागों में नहीं हैं, असंख्येय भागों में नहीं हैं।

इसी प्रकार अवक्तव्य द्रव्य भी कथनीय हैं।

(८९)

८. भाव प्ररूपणा

णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं कयरंमि भावे होज्जा? किं उदइए भावे होज्जा? उवसमिए भावे होज्जा? खइए भावे होज्जा? खओवसमिए भावे होज्जा? पारिणामिए भावे होज्जा? सण्णिवाइए भावे होज्जा?

णियमा साइपारिणामिए भावे होज्जा।

अणाणुपुव्वीदव्वाणि अवत्तव्वगदव्वाणि य एवं चेव भाणियव्वाणि।

शब्दार्थ - **कयरम्मि भावे** - किस भाव में, **उदइए** - औदयिक, **उवसमिए** - औपशमिक, **खइए** - क्षायिक, **खओवसमिए** - क्षायोपशमिक, **पारिणामिए** - पारिणामिक, **सण्णिवाइए** - सन्निपातिक, **साइपारिणामिए** - सादि पारिणामिक।

भावार्थ - नैगम - व्यवहारनय सम्मत आनुपूर्वी द्रव्य किस भाव में वर्तनशील हैं? क्या वे औदयिक भाव में, औपशमिक भाव में, क्षायिक भाव में, क्षायोपशमिक भाव में, पारिणामिक भाव में, (या) सान्निपातिक भाव में वर्तनशील होते हैं?

Jain Education International　　For Personal & Private Use Only　　www.jainelibrary.org

(समस्त आनुपूर्वी द्रव्य) नियमतः सादिपारिणामिक भाव में वर्तनशील होते हैं।

अनानुपूर्वी द्रव्य एवं अवक्तव्य द्रव्य भी इसी प्रकार व्याख्येय हैं।

(९०)

९. अल्पबहुत्व निरूपण

एएसिं भंते! णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाणं अणाणुपुव्वीदव्वाणं अवत्तव्वगदव्वाण य दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए दव्वट्ठपएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवाइं णेगमववहाराणं अवत्तव्वगदव्वाइं दव्वट्ठयाए अणाणुपुव्वीदव्वाइं दव्वट्ठयाए विसेसाहियाइं, आणुपुव्वीदव्वाइं दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणाइं।

पएसट्ठयाए णेगमववहाराणं सव्वत्थोवाइं अणाणुपुव्वीदव्वाइं पएसट्ठयाए, अवत्तव्वगदव्वाइं पएसट्ठयाए विसेसाहियाइं, आणुपुव्वीदव्वाइं पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणाइं।

दव्वट्ठपएसट्ठयाए-सव्वत्थोवाइं णेगमववहाराणं अवत्तव्वगदव्वाइं दव्वट्ठयाए, अणाणुपुव्वीदव्वाइं दव्वट्ठयाए अपएसट्ठयाए विसेसाहियाइं, अवत्तव्वगदव्वाइं पएसट्ठयाए विसेसाहियाइं, आणुपुव्वीदव्वाइं दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणाइं, ताइं चेव पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणाइं। सेत्तं अणुगमे। सेत्तं णेगमववहाराणं अणोवणिहिया दव्वाणुपुव्वी।

शब्दार्थ - **दव्वट्ठयाए** - द्रव्यार्थिक, **पएसट्ठयाए** - प्रदेशार्थिक, **दव्वट्ठपएसट्ठयाए** - द्रव्यार्थप्रदेशार्थिक, **कयरे** - कितने - कौन-कौन से, **कयरेहिंतो** - कौन-कौनसों की अपेक्षा से, **अप्पा** - अल्प, **बहुया** - बहुत, **तुल्ला** - तुल्य, **विसेसाहिया** - विशेषाधिक, **सव्वत्थोवाइं** - सबसे कम, **ताइं** - वे।

भावार्थ - हे भगवन्! नैगम एवं व्यवहारनय सम्मत आनुपूर्वी द्रव्यों, अनानुपूर्वी द्रव्यों और अवक्तव्य द्रव्यों में से द्रव्यार्थिक, प्रदेशार्थिक तथा द्रव्य प्रदेशार्थिक के अनुसार कौन-कौन से द्रव्य किन-किन द्रव्यों की अपेक्षा से न्यून, अधिक, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आयुष्मन् हे गौतम! नैगम तथा व्यवहारनय सम्मत अवक्तव्य द्रव्य द्रव्यार्थिक की अपेक्षा से सबसे कम हैं। अनानुपूर्वी द्रव्य द्रव्यार्थिक के अनुसार (अवक्तव्य द्रव्यों की अपेक्षा) विशेषाधिक हैं एवं आनुपूर्वी द्रव्य द्रव्यार्थिक के अनुसार (अनानुपूर्वी द्रव्यों की अपेक्षा) असंख्यातगुणे हैं।

प्रदेशार्थिक के अनुसार नैगम एवं व्यवहारनय सम्मत अनानुपूर्वी द्रव्य अप्रदेशी होने के कारण सबसे कम हैं। प्रदेशार्थिक के अनुसार अवक्तव्य द्रव्य (अनानुपूर्वी द्रव्यों से) विशेषाधिक हैं। प्रदेशार्थिक की अपेक्षा से आनुपूर्वी द्रव्य (अवक्तव्य द्रव्यों से) असंख्यात गुने हैं।

द्रव्य और प्रदेश रूप उभयार्थता की अपेक्षा - सबसे थोड़े अवक्तव्य द्रव्य द्रव्यार्थ की अपेक्षा से होते हैं। उनसे अनानुपूर्वी द्रव्य द्रव्यार्थ-अप्रदेशार्थ की अपेक्षा विशेषाधिक होते हैं। उनसे अवक्तव्य द्रव्य प्रदेशार्थ की अपेक्षा विशेषाधिक होते हैं। उनसे आनुपूर्वी द्रव्य द्रव्यार्थ की अपेक्षा से असंख्यात गुण होते हैं। उनसे आनुपूर्वी द्रव्य प्रदेशार्थ की अपेक्षा से असंख्यातगुणे होते हैं।

द्रव्यार्थिक - प्रदेशार्थिक एवं दोनों के शामिल की अपेक्षा के अनुसार नैगम-व्यवहार सम्मत अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी का वर्णन इस प्रकार परिसंपन्न होता है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में अनानुपूर्वी द्रव्यों की जो चर्चा आई है, वहाँ यह ज्ञातव्य है कि वे परमाणु रूप होने से अप्रदेशी हैं। फिर प्रदेशार्थिक के अनुसार उनका निरूपण कैसे संगत हो सकता है?

यह ज्ञातव्य है कि यहाँ "**परमाणु परिमितो भागः प्रदेशः**" - इस अर्थ में प्रदेशार्थिक का प्रयोग नहीं हुआ है। "**प्रकृष्टे देशः प्रदेशः**" - प्रदेश की यह व्युत्पत्ति भी होती है। इसके अनुसार सबसे सूक्ष्म देश, दूसरे शब्दों में पुद्गलास्तिकाय का निरंश भाग प्रदेश कहा जाता है। परमाणु द्रव्य में यह अर्थ भी घटित होता है। इसी कारण अनानुपूर्वी द्रव्यों के प्रदेशार्थिकता की अपेक्षा असंगत नहीं है।

(६१)

संग्रहनयानुरूप अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी

से किं तं संगहस्स अणोवणिहिया दव्वाणुपुव्वी?

संगहस्स अणोवणिहिया दव्वाणुपुव्वी पंचविहा पण्णत्ता। तंजहा - अट्ठपयपरूवणया १ भंगसमुक्कित्तणया २ भंगोवदंसणया ३ समोयारे ४ अणुगमे ५।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ - संगहस्स - संग्रहनय की।

भावार्थ - संग्रहनय सम्मत अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी किस प्रकार की है?

संग्रहनय सम्मत अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी के पांच प्रकार बतलाए गए हैं, जो इस प्रकार हैं - १. अर्थ पद प्ररूपणता २. भंगसमुत्कीर्तनता ३. भंगोपदर्शनता ४. समवतार ५. अनुगम।

(९२)

अर्थपद प्ररूपणता का स्वरूप एवं प्रयोजन

से किं तं संगहस्स अट्ठपयपरूवणया?

संगहस्स अट्ठपरूवणया-तिपएसिया आणुपुव्वी, चउप्पएसिया आणुपुव्वी जाव दसपएसिया आणुपुव्वी, संखिज्जपएसिया आणुपुव्वी, असंखिज्जपएसिया आणुपुव्वी, अणंतपएसिया आणुपुव्वी, परमाणुपोग्गला अणाणुपुव्वी, दुपएसिया अवत्तव्वए। से तं संगहस्स अट्ठपयपरूवणया।

भावार्थ - संग्रहनय सम्मत अर्थ पदप्ररूपणता का क्या स्वरूप है?

संग्रहनय सम्मत अर्थ पद प्ररूपणता - त्रिप्रदेशिक आनुपूर्वी, चतुः प्रदेशिक आनुपूर्वी यावत् दस प्रदेशिक आनुपूर्वी, संख्येय प्रदेशिक आनुपूर्वी, असंख्येय प्रदेशिक आनुपूर्वी, अनंतप्रदेशिक आनुपूर्वी रूप है। परमाणु पुद्गल अनानुपूर्वी रूप है। द्विप्रदेशिक (स्कन्ध) अवक्तव्य है।

यह संग्रह नय की अर्थपद प्ररूपणता है।

(९३)

एयाए णं संगहस्स अट्ठपयपरूवणयाए किं पओयणं?

एयाए णं संगहस्स अट्ठपयपरूवणयाए भंगसमुक्कित्तणया कज्जइ।

शब्दार्थ - एयाए - इसका, **पओयणं** - प्रयोजन, **कज्जइ** - किया जाता है।

भावार्थ - संग्रहनय सम्मत इस अर्थपदप्ररूपणता का क्या प्रयोजन है?

संग्रहनय सम्मत इस अर्थपद प्ररूपणता द्वारा संग्रहनयानुरूप भंग समुत्कीर्तनता की जाती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भंगसमुत्कीर्तनता का प्रयोजन

से किं तं संगहस्स भंगसमुक्कित्तणया?

संगहस्स भंगसमुक्कित्तणया - अत्थि आणुपुव्वी १ अत्थि अणाणुपुव्वी २ अत्थि अवत्तव्वए ३ अहवा अत्थि आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वी य ४ अहवा अत्थि आणुपुव्वी य अवत्तव्वए य ५ अहवा अत्थि अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वए य ६ अहवा अत्थि आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वए य ७ एवं सत्तभंगा। सेत्तं संगहस्स भंगसमुक्कित्तणया।

भावार्थ - संग्रहनय की भंगसमुत्कीर्तनता का कैसा स्वरूप है?

संग्रहनय सम्मत भंगसमुत्कीर्तनता - १. आनुपूर्वी २. अनानुपूर्वी एवं ३. अवक्तव्य रूप है अथवा ४. आनुपूर्वी अनानुपूर्वी अथवा ५. आनुपूर्वी - अवक्तव्य अथवा ६. अनानुपूर्वी - अवक्तव्य रूप है, अथवा ७. आनुपूर्वी - अनानुपूर्वी - अवक्तव्य रूप है।

ये सात भंगों का विवेचन हैं।

संग्रहनयानुरूप भंगसमुत्कीर्तना का यह स्वरूप है।

एयाए णं संगहस्स भंगसमुक्कित्तणयाए किं पओयणं?

एयाए णं संगहस्स भंगसमुक्कित्तणयाए संगहस्स भंगोवदंसणया कीरइ।

भावार्थ - इस संग्रहनयानुरूप भंगसमुत्कीर्तनता का क्या प्रयोजन है?

इस संग्रहनय सम्मत भंगसमुत्कीर्तनता से भंगोपदर्शनता की जाती है।

विवेचन - उपर्युक्त सूत्रों में भंग शब्द के साथ समुत्कीर्तना एवं उपदर्शनता - इन दो शब्दों का प्रयोग हुआ है। समुत्कीर्तनता का प्रयोजन उपदर्शनता बतलाया गया है। समुत्कीर्तन में सम् एवं उत् उपसर्ग तथा कीर्तन शब्द हैं। 'सम' का अर्थ सम्यक्, 'उत्' का अर्थ उत्कृष्ट या विशद तथा कीर्तन का अर्थ कथन है। किसी विषय का भलीभांति प्रतिपादन किया जाना समुत्कीर्तन है।

'उपदर्शन' में आया 'उप' उपसर्ग सामीप्य का बोधक है। 'दर्शन' शब्द दृश् धातु से बना है। दृश प्रेक्षणे के अनुसार यह धातु प्रेक्षण के अर्थ में है। **'प्रकृष्टं ईक्षणं प्रेक्षणम्'** - सूक्ष्मता से किसी विषय में अवगाहन करना, उसे देखना दर्शन है। समुत्कीर्तन और उपदर्शन में कारण-कार्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भाव संबंध है। समुत्कीर्तन रूप कारण से उपदर्शन रूप कार्य सिद्ध होता है। इसीलिए उपदर्शन की प्रयोजनवत्ता है।

(६४)

भंगोपदर्शनता का स्वरूप

से किं तं संगहस्स भंगोवदंसणया?

संगहस्स भंगोवदंसणया तिपएसिया आणुपुव्वी १ परमाणुपोग्गला अणाणुपुव्वी २ दुपएसिया अवत्तव्वए ३ अहवा तिपएसिया य परमाणुपुग्गला य आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वी य ४ अहवा तिपएसिया य दुपएसिया य आणुपुव्वी य अवत्तव्वए य ५ अहवा परमाणुपोग्गला य दुपएसिया य अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वए य ६ अहवा तिपएसिया य परमाणुपोग्गला य दुपएसिया य आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वए य ७। सेत्तं संगहस्स भंगोवदंसणया।

भावार्थ - संग्रहनय सम्मत भंगोपदर्शनता का क्या स्वरूप है?

संग्रहनय सम्मत भंगोपदर्शनता के अन्तर्गत १. त्रिप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वी २. परमाणु पुद्गल अनानुपूर्वी तथा ३. द्विप्रदेशिक स्कन्ध अवक्तव्य अथवा ४. त्रिप्रदेशिक, परमाणु पुद्गल आनुपूर्वी-अनानुपूर्वी अथवा ५. त्रिप्रदेशिक, द्विप्रदेशिक, आनुपूर्वी एवं अवक्तव्य अथवा ६. परमाणु पुद्गल, द्विप्रदेशिक, अनानुपूर्वी एवं अवक्तव्य अथवा ७. त्रिप्रदेशिक, परमाणु पुद्गल, द्विप्रदेशिक, आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी एवं अवक्तव्य हैं। (अर्थात् ये शब्दों के वाच्यार्थानुरूप विवक्षित होते हैं।)

संग्रहनय सम्मत भंगोपदर्शनता का यह वर्णन है।

(६५)

समवतार विवेचन

से किं तं संगहस्स समोयारे ?

संगहस्स समोयारे (भणिज्जइ)।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं कहिं समोयरंति? किं आणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति? अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति? अवत्तव्वयदव्वेहिं समोयरंति?

संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं आणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति, णो अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति, णो अवत्तव्वयदव्वेहिं समोयरंति। एवं दोण्णि वि सट्ठाणे सट्ठाणे समोयरंति। सेत्तं समोयारे।

शब्दार्थ - सट्ठाणे - अपने स्थान में।

भावार्थ - संग्रहनय सम्मत समवतार का कैसा स्वरूप हैं? संग्रहनय सम्मत समवतार का वर्णन किया जा रहा है।

संग्रहनय सम्मत आनुपूर्वी द्रव्य कहाँ समवतरित होते हैं? क्या (वे) आनुपूर्वी द्रव्यों में समवतरित होते हैं? क्या अनानुपूर्वी द्रव्यों में समवतरित होते हैं? क्या अवक्तव्य द्रव्यों में समवतरित होते हैं?

संग्रहनय सम्मत आनुपूर्वी द्रव्य आनुपूर्वी द्रव्यों में समवतरित होते हैं। वे अनानुपूर्वी द्रव्यों में समवतरित नहीं होते और न (वे) अवक्तव्य द्रव्यों में समवतरित होते हैं।

इसी प्रकार दोनों ही - अनानुपूर्वी द्रव्य एवं अवक्तव्य द्रव्य भी अपने स्थान में ही समवतरित होते हैं।

यह समवतार का निरूपण है।

(९६)

अनुगम निरूपण

से किं तं अणुगमे?

अणुगमे अट्ठविहे पण्णत्ते। तंजहा -

गाहा - संतपयपरूवणया, दव्वपमाणं च खित्त फुसणा य।
कालो य अंतरं भाग, भावे अप्पाबहुं णत्थि॥१॥

भावार्थ - अनुगम किस प्रकार का है?

अनुगम आठ प्रकार का है, जो निम्नांकित गाथा में प्रतिपादित हुआ है -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गाथा - १. सत्पदप्ररूपणा २. द्रव्य प्रमाण ३. क्षेत्र ४. स्पर्शना ५. काल ६. अन्तर ७. भाग तथा ८ भाव। इसमें अल्प-बहुत्व नहीं होता।

१. सत्पदप्ररूपणा

संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं किं अत्थि णत्थि?

णियमा अत्थि। एवं दोण्णि वि।

भावार्थ - संग्रहनय सम्मत आनुपूर्वी द्रव्य हैं अथवा नहीं हैं?

निश्चित रूपेण वे हैं - उनका अस्तित्व है।

इसी प्रकार अनानुपूर्वी एवं अवक्तव्य द्रव्य - इन दोनों के साथ भी ऐसा ही है। अर्थात् इनका अस्तित्व है।

२. द्रव्य प्रमाण प्रतिपादन

संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं किं संखिज्जाइं? असंखिज्जाइं? अणंताइं?

णो संखिज्जाइं, णो असंखिज्जाइं, णो अणंताइं, णियमा एगो रासी। एवं दोण्णि वि।

शब्दार्थ - रासी - राशि।

भावार्थ - संग्रहनय सम्मत आनुपूर्वी द्रव्य क्या संख्येय हैं? असंख्येय हैं? (या) अनंत हैं?

(संग्रहनय सम्मत आनुपूर्वी द्रव्य) संख्येय नहीं हैं, न (वे)असंख्येय, (या) अनंत ही हैं। (वरन्) नियमतः एक राशि रूप हैं।

इसी तरह दोनों अनानुपूर्वी एवं अवक्तव्य द्रव्य भी हैं।

विवेचन - संग्रहनय का विषय सामान्य है। यद्यपि आनुपूर्वी द्रव्य अनेक होते हैं किन्तु उनमें आनुपूर्वित्व रूप सामान्य धर्म एक है। अतएव संग्रहनय के अनुसार वे संख्यात, असंख्यात या अनंत की कोटि में न लिए जाकर एक राशि रूप लिए गए हैं।

३. क्षेत्र प्रतिपादन

संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं लोगस्स कइभागे होज्जा? किं संखिज्जइभागे होज्जा?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

असंखिज्जइभागे होज्जा? संखेज्जेसु भागेसु होज्जा? असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा? सव्वलोए होज्जा?

णो संखिज्जइभागे होज्जा, णो असंखिज्जइभागे होज्जा, णो संखेज्जेसु भागेसु होज्जा, णो असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा, णियमा सव्वलोए होज्जा। एवं दोण्णि वि।

भावार्थ - संग्रहनयानुरूप आनुपूर्वी द्रव्य लोक के कितने भाग में हैं? क्या (वे) संख्येय भाग में हैं? क्या असंख्येय भाग में है? संख्येय भागों में हैं? असंख्येय भागों में हैं (अथवा) सर्वलोक में हैं?

(संग्रहनय सम्मत आनुपूर्वी द्रव्य लोक के) संख्येय भाग, असंख्येय भाग, संख्येय भागों (या) असंख्येय भागों में नहीं हैं वरन् नियमतः समग्र लोक में हैं।

अनानुपूर्वी एवं अवक्तव्य - इन द्रव्यों के संदर्भ में भी ऐसा ही समझना चाहिए।

४. स्पर्शना का वर्णन

संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं लोगस्स किं संखेज्जइभागं फुसंति? असंखेज्जइभागं फुसंति? संखेज्जे भागे फुसंति? असंखेज्जे भागे फुसंति? सव्वलोगं फुसंति?

णो संखेज्जइभागं फुसंति जाव णियमा सव्वलोगं फुसंति। एवं दोण्णि वि।

भावार्थ - संग्रहनय सम्मत आनुपूर्वी द्रव्य क्या लोक के संख्यात भाग का स्पर्श करते हैं? असंख्यात भाग का स्पर्श करते हैं? संख्यात भागों का स्पर्श करते हैं? असंख्यात भागों का स्पर्श करते हैं? (या) समस्त लोक का स्पर्श करते हैं?

संग्रहनय के अनुसार आनुपूर्वी द्रव्य (लोक के) संख्यात भाग का स्पर्श नहीं करते यावत् नियमतः समस्त लोक का स्पर्श करते हैं।

इसी प्रकार (अनानुपूर्वी एवं अवक्तव्य) द्रव्य की भी यही स्थिति है।

५-६. काल एवं अन्तर का निरूपण

संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं कालओ केवच्चिरं होंति?

(णियमा) सव्वद्धा। एवं दोण्णि वि।

शब्दार्थ - सव्वद्धा - सर्वकाल।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - संग्रहनय सम्मत आनुपूर्वी द्रव्य काल की अपेक्षा कियत् काल परिमित अस्तित्व लिए रहते हैं?

(संग्रहनय सम्मत आनुपूर्वी द्रव्य नियमतः) सर्वकाल में रहते हैं।

इसी तरह (अनानुपूर्वी एवं अवक्तव्य) इन दोनों द्रव्यों के संदर्भ में जानना चाहिए।

संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाणं कालओ केवच्चिरं अंतरं होइ?

णत्थि अंतरं। एवं दोण्णि वि।

भावार्थ - संग्रहनय सम्मत आनुपूर्वी द्रव्य काल की अपेक्षा कितना अंतर - व्यवधान लिए होते हैं?

(उनमें काल की अपेक्षा) अन्तर नहीं होता। यही तथ्य आगे के दो द्रव्यों के संदर्भ में ज्ञाप्य है।

विवेचन - इस सूत्र में प्रयुक्त **'सव्वद्धा'** शब्द भाषा शास्त्रीय दृष्टि से विशेष रूप से विचारणीय है। 'धा' प्रत्यय काल या बार का सूचक है। जैसे द्विधा, त्रिधा, चतुर्धा आदि। प्राकृत में एक से लेकर सबके लिए 'वार' की अपेक्षा यह प्रत्यय प्रयुक्त रहा है। आगे चलकर संस्कृत में कुछ स्थानों में 'धा' के स्थान पर 'दा' कर दिया गया। जिसका प्रयोजन भाषा शास्त्र के अनुसार 'मुख-सुख' प्रवृत्ति है। यथा - एकधा के स्थान पर एकदा तथा सर्वधा के स्थान पर सर्वदा। यह सम्मार्जन का संस्कार है। इसी प्रवृत्ति के कारण संस्कृत का संस्कृत - संस्कार युक्त, सम्मार्जन युक्त नाम पड़ा। इससे संस्कृत की अपेक्षा प्राकृत की प्राचीनता सिद्ध होती है।

७. भाग-प्ररूपणा

संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं सेसदव्वाणं कइभागे होज्जा? किं संखिज्जइभागे होज्जा? असंखिज्जइभागे होज्जा? संखेज्जेसु भागेसु होज्जा? असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा?

णो संखिज्जइभागे होज्जा, णो असंखिज्जइभागे होज्जा, णो संखेज्जेसु भागेसु होज्जा, णो असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा, णियमा तिभागे होज्जा। एवं दोण्णि वि।

भावार्थ - संग्रहनय सम्मत आनुपूर्वी द्रव्य शेष द्रव्यों के कितनेवें भाग प्रमाण होते हैं? क्या वे संख्यात भाग प्रमाण होते हैं? असंख्यात भाग प्रमाण होते हैं? संख्येय भाग (बहुवचन) प्रमाण होते हैं? असंख्येय भाग (बहुवचन) प्रमाण होते हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संग्रहनयानुसार आनुपूर्वी द्रव्य शेष द्रव्यों के संख्यात, असंख्यात, संख्यात (बहुवचन), असंख्यात (बहुवचन) भाग प्रमाण नहीं होते। (वे) नियमतः त्रिभाग प्रमाण होते हैं।

इसी प्रकार शेष दोनों (अनानुपूर्वी एवं अवक्तव्य) के संदर्भ में ज्ञातव्य है।

विवेचन - इस सूत्र में भाग निरूपण के अन्तर्गत आनुपूर्वी द्रव्यों को शेष द्रव्यों के त्रिभाग प्रमाण होने का उल्लेख किया गया है। उसका यह आशय है कि आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी एवं अवक्तव्य द्रव्यों को मिलाने से जो एक राशि निष्पन्न होती है, उस राशि की दृष्टि से आनुपूर्वी द्रव्य एक तिहाई भाग परिमित हैं। पृथक्-पृथक् ये तीनों तीन राशियाँ होती हैं।

८. भाव-प्रतिपादन

संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं कयरम्मि भावे होज्जा?

णियमा साइपारिणामिए भावे होज्जा। एवं दोण्णि वि। अप्पाबहुं णत्थि। सेत्तं अणुगमे। सेत्तं संगहस्स अणोवणिहिया दव्वाणुपुव्वी। सेत्तं अणोवणिहिया दव्वाणुपुव्वी।

शब्दार्थ - **कयरम्मि** - किसमें, **अप्पाबहुं** - अल्प-बहुत्व।

भावार्थ - संग्रहनयानुसार आनुपूर्वी द्रव्य किस भाव में होते हैं?

(आनुपूर्वी द्रव्य) नियमतः सादि पारिणामिक भाव में होते हैं।

इसी प्रकार शेष दोनों के संबंध में जानना चाहिए। इनमें (राशिगत द्रव्यों में) अल्प-बहुत्व नहीं होता।

यह अनुगम का विवेचन है।

यह संग्रहनय सम्मत अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी का स्वरूप है।

इस प्रकार (संग्रहनयानुरूप) अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी का विवेचन परिसंपन्न हुआ।

विवेचन - इस सूत्र में आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी, अवक्तव्य द्रव्यों में अल्प-बहुत्व न होने की बात कही गई है। इसका आशय यह है कि जब वे राशिगत रूप में होते हैं तब उनमें अनेकत्व नहीं होता। सभी एक-एक द्रव्य के रूप में स्वीकृत होते हैं। वहाँ अल्पबहुत्व का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता।

संग्रहनय सम्मत अनुगम प्रकरण में जो बहुवचन का प्रयोग हुआ है, उसे व्यवहारनयानुसार समझना चाहिये। अर्थात् इस तरह वे भिन्न-भिन्न भी हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(९७)

औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी

से किं तं उवणिहिया दव्वाणुपुव्वी ?

उवणिहिया दव्वाणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता। तंजहा - पुव्वाणुपुव्वी १ पच्छाणुपुव्वी २ अणाणुपुव्वी य ३।

भावार्थ - औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी किस प्रकार की है?

औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी तीन तरह की बतलाई गई है - १. पूर्वानुपूर्वी २. पश्चानुपूर्वी ३. अनानुपूर्वी।

(९८)

१. पूर्वानुपूर्वी

से किं तं पुव्वाणुपुव्वी?

पुव्वाणुपुव्वी - धम्मत्थिकाए १ अधम्मत्थिकाए २ आगासत्थिकाए ३ जीवत्थिकाए ४ पोग्गलत्थिकाए ५ अद्धासमए ६। सेत्तं पुव्वाणुपुव्वी।

भावार्थ - पूर्वानुपूर्वी किस प्रकार की है?

पूर्वानुपूर्वी - १. धर्मास्तिकाय २. अधर्मास्तिकाय ३. आकाशास्तिकाय ४. जीवास्तिकाय ५. पुद्गलास्तिकाय एवं ६. अद्धाकाल - कालरूप है। यह पूर्वानुपूर्वी का स्वरूप है।

विवेचन - धर्मास्तिकाय आदि का पूर्वानुक्रम के अनुसार प्रथम, द्वितीय, तृतीय आदि के रूप में पूर्व से लेकर आगे तक की गणना करना, कथन करना पूर्वानुपूर्वी है।

२. पश्चानुपूर्वी

से किं तं पच्छाणुपुव्वी?

पच्छाणुपुव्वी - अद्धासमए ६ पोग्गलत्थिकाए ५ जीवत्थिकाए ४ आगासत्थिकाए ३ अधम्मत्थिकाए २ धम्मत्थिकाए १। सेत्तं पच्छाणुपुव्वी।

भावार्थ - पश्चानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१. धर्मास्तिकाय रूप पश्चानुपूर्वी है २. अधर्मास्तिकाय ३. आकाशास्तिकाय ४. जीवास्तिकाय ५. पुद्गलास्तिकाय तथा ६. काल रूप पश्चानुपूर्वी है।

यह पश्चानुपूर्वी का स्वरूप है।

विवेचन - अंतिम से लेकर प्रथम तक - विपरीत क्रम से प्रतिपादन करना पश्चानुपूर्वी है। पश्चात् का तात्पर्य आखिरी है।

३. अनानुपूर्वी

से किं तं अणाणुपुव्वी?

अणाणुपुव्वी-एयाए चेव एगाइयाए एगुत्तरियाए छगच्छगयाए सेढीए अण्णमण्णब्भासो दुरूवूणो। सेत्तं अणाणुपुव्वी।

शब्दार्थ - **एगाइयाए** - एक से प्रारम्भ कर, **एगुत्तरियाए** - एक-एक की वृद्धि करने से, **छगच्छगयाए** - छह पर्यन्त निष्पन्न, **सेढीए** - श्रेणी के, **अण्णमण्णब्भासो** - अन्योन्याभ्यास्त - परस्पर गुणन से प्राप्त राशि, **दुरूवूणो** - दो कम - आदि और अन्त को छोड़ कर।

भावार्थ - अनानुपूर्वी का कैसा स्वरूप है?

एक से प्रारम्भ कर, एक-एक की वृद्धि करते हुए छह पर्यन्त निष्पादित श्रेणी के अंकों का परस्पर गुणन करने से प्राप्त राशि में से आदि और अन्त के दो भंगों को कम करने पर, जो भंग विद्यमान रहते हैं, उसे अनानुपूर्वी (औपनिधिकी) कहते हैं। यह अनानुपूर्वी का स्वरूप है।

विवेचन - अनानुपूर्वी में १, २, ३, ४, ५, ६ - यों एक से प्रारम्भ कर छह पर्यन्त के अंकों में परस्पर गुणन से (१×२×३×४×५×६=७२०) जो भंग राशि प्राप्त होती है, उसमें से (७२० में से) आदि और अंत के दो भंगों (प्रथम और ७२० वें भंग) को कम करने से ७१८ भंग शेष रहते हैं। यह अनानुपूर्वी का क्रमविन्यास है।

षड् द्रव्यों का क्रमविन्यास - धर्म पद मांगलिक होने से सर्वप्रथम धर्मास्तिकाय का और तत्पश्चात् उसके प्रतिपक्षी अधर्मास्तिकाय का उपन्यास किया गया है। इनका आधार आकाश है, अतः इन दोनों के अनन्तर आकाशास्तिकाय का उल्लेख किया है, तत्पश्चात् आकाश की तरह अमूर्तिक होने से जीवास्तिकाय का न्यास किया है। जीव के भोगोपभोग में आने वाला होने से जीव के अनन्तर पुद्गलास्तिकाय का विन्यास किया है तथा जीव और अजीव का पर्याय रूप होने से सबसे अंत में अद्धासमय का उपन्यास किया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(६६)

औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी का इतर भेद

अहवा उवणिहिया दव्वाणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता। तंजहा - पुव्वाणुपुव्वी १ पच्छाणुपुव्वी २ अणाणुपुव्वी ३।

भावार्थ - अथवा औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी तीन प्रकार की प्रज्ञप्त की गई है - १. पूर्वानुपूर्वी २. पश्चानुपूर्वी एवं ३. अनानुपूर्वी।

१. पूर्वानुपूर्वी

से किं तं पुव्वाणुपुव्वी?

पुव्वाणुपुव्वी-परमाणुपोग्गले १ दुपएसिए २ तिपएसिए ३ जाव दसपएसिए १० संखिज्जपएसिए ११ असंखिज्जपएसिए १२ अणंतपएसिए १३। सेत्तं पुव्वाणुपुव्वी।

भावार्थ - पूर्वानुपूर्वी का कैसा स्वरूप है?

पूर्वानुपूर्वी - १. परमाणुपुद्गल २. द्विप्रदेशिक ३. त्रिप्रदेशिक यावत् १०. दशप्रदेशिक ११. संख्यात प्रदेशिक १२. असंख्यात प्रदेशिक एवं १३. अनंत प्रदेशिक रूप हैं।

यह पूर्वानुपूर्वी का प्रतिपादन है।

२. पश्चानुपूर्वी

से किं तं पच्छाणुपुव्वी?

पच्छाणुपुव्वी - अणंतपएसिए १३ जाव परमाणुपोग्गले १। सेत्तं पच्छाणुपव्वी।

भावार्थ - पश्चानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

पश्चानुपूर्वी - १३ अनंत प्रदेशिक यावत् १. परमाणु पुद्गल रूप है।

यह पश्चानुपूर्वी का निरूपण है।

३. अनानुपूर्वी

से किं तं अणाणुपुव्वी?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अणाणुपुव्वी-एयाए चेव एगाइयाए एगुत्तरियाए अणंतगच्छगयाए सेढीए अण्णमण्णब्भासो दुरूवूणो सेत्तं अणाणुपुव्वी। सेत्तं उवणिहिया दव्वाणुपुव्वी⁂। सेत्तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ता दव्वाणुपुव्वी। सेत्तं णोआगमओ दव्वाणुपुव्वी। सेत्तं दव्वाणुपुव्वी।

भावार्थ - अनानुपूर्वी का कैसा स्वरूप है?

एक से प्रारम्भ कर एक-एक की वृद्धि करने से निष्पन्न अनंत प्रदेशिक स्कन्ध पर्यन्त श्रेणी की संख्या के अंकों को परस्पर गुणित करने से जो गुणनफल आता है, उसमें से आदि और अन्त के दो भंगों का निष्कासन करने पर अवशिष्ट भंग अनानुपूर्वी रूप होते हैं।

यह अनानुपूर्वी का स्वरूप है। यह औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी का विवेचन है☆।

यह ज्ञ शरीर - भव्य शरीर - व्यतिरिक्त द्रव्यानुपूर्वी का प्रतिपादन है। यह नोआगमतः द्रव्यानुपूर्वी है।

यहाँ द्रव्यानुपूर्वी का विवेचन परिसमाप्त होता है।

(१००)

क्षेत्रानुपूर्वी के भेद

से किं तं खेत्ताणुपुव्वी?

खेत्ताणुपुव्वी दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - उवणिहिया य अणोवणिहिया य।

भावार्थ - क्षेत्रानुपूर्वी कितने प्रकार की है?

क्षेत्रानुपूर्वी दो प्रकार की प्रतिपादित हुई है - १. औपनिधिकी तथा २. अनौपनिधिकी।

(१०१)

तत्थ णं जा सा उवणिहिया सा ठप्पा।

भावार्थ - इनमें जो औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी है, वह स्थाप्य है।

⁂ **पच्चंतरे एसो पाढो णत्थि।**

☆ अन्य अनेक प्रतियों में यह पाठ नहीं है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तत्थ णं जा सा अणोवणिहिया सा दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - णेगमववहाराणं १ संगहस्स य २।

भावार्थ - वह अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी १. नैगम - व्यवहार सम्मत एवं २. संग्रहनय सम्मत- यों दो प्रकार की है।

(१०२)

नैगम - व्यवहार सम्मत अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी

से किं तं णेगमववहाराणं अणोवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी?

णेगमववहाराणं अणोवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी पंचविहा पण्णत्ता। तंजहा - अट्ठपयपरूवणया १ भंगसमुक्कित्तणया २ भंगोवदंसणया ३ समोयारे ४ अणुगमे ५।

भावार्थ - नैगम - व्यवहारनय सम्मत अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी किस प्रकार की है?

नैगम - व्यवहारनय सम्मत अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी पांच प्रकार की कही गयी हैं - १. अर्थ पद प्ररूपणता २. भंगसमुत्कीर्तनता ३. भंगोपदर्शनता ४. समवतार एवं ५. अनुगम।

अर्थपद प्ररूपणता का स्वरूप एवं प्रयोजन

से किं तं णेगमववहाराणं अट्ठपयपरूवणया?

णेगमववहाराणं अट्ठपयपरूवणया-तिपएसोगाढे आणुपुव्वी जाव दसपएसोगाढे आणुपुव्वी, संखिज्जपएसोगाढे आणुपुव्वी, असंखिज्जपएसोगाढे आणुपुव्वी, एगपएसोगाढे अणाणुपुव्वी, दुपएसोगाढे अवत्तव्वए, तिपएसोगाढा आणुपुव्वीओ जाव दसपएसोगाढा आणुपुव्वीओ, असंखिज्जपएसोगाढा आणुपुव्वीओ, एगपएसोगाढा अणाणुपुव्वीओ, दुपएसोगाढा अवत्तव्वगाइं। सेत्तं णेगमववहाराणं अट्ठपयपरूवणया।

शब्दार्थ - **तिपएसोगाढे** - तीन प्रदेशों में अवगाहयुक्त।

भावार्थ - नैगम - व्यवहारसम्मत अर्थपद प्ररूपणता का क्या स्वरूप है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नैगम - व्यवहारसम्मत अर्थपद प्ररूपणता (आकाश के) तीन प्रदेशों में अवगाह युक्त आनुपूर्वी यावत् (आकाश के) दस प्रदेशों में अवगाह युक्त आनुपूर्वी है, (आकाश के) संख्यात प्रदेशों में अवगाह युक्त आनुपूर्वी है, (आकाश के) असंख्यात प्रदेशों में अवगाह युक्त (द्रव्य स्कन्ध) आनुपूर्वी है।

आकाश के एक प्रदेश में अवगाह युक्त आनुपूर्वी, द्विप्रदेशावगाढ अवक्तव्य, त्रिप्रदेशावगाढ आनुपूर्वियाँ यावत् दशप्रदेशावगाढ आनुपूर्वियाँ, असंख्यात प्रदेशावगाढ आनुपूर्वियाँ, द्विप्रदेशावगाढ अवक्तव्य (बहुवचन) हैं।

यह नैगम - व्यवहार सम्मत अर्थ पद प्ररूपणता का वर्णन है।

एयाए णं णेगमववहाराणं अट्ठपयपरूवणयाए किं पओयणं?

एयाएणं णेगमववहाराणं अट्ठपयपरूवणयाए णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया कज्जइ।

भावार्थ - इस नैगम - व्यवहार सम्मत अर्थपद प्ररूपणता का क्या प्रयोजन है?

इस नैगम - व्यवहार - सम्मत अर्थ पद प्ररूपणा द्वारा नैगम व्यवहार नयानुरूप भंग समुत्कीर्तनता की जाती है।

विवेचन - क्षेत्रानुपूर्वी में क्षेत्र की प्रधानता है। त्र्यणुकादि रूप पुद्गलस्कन्धों के साथ उसका सीधा सम्बन्ध नहीं है। अतएव त्रिप्रदेशावगाही द्रव्य स्कन्ध से लेकर अनन्ताणुक पर्यन्त स्कन्ध यदि वे एक आकाश प्रदेश में स्थित हैं तो उनमें क्षेत्रानुपूर्वीरूपता नहीं है। फिर भी यहाँ जो त्रिप्रदेशावगाढ द्रव्यस्कन्ध को आनुपूर्वी कहा गया है, उसका तात्पर्य आकाश के तीन प्रदेशों में अवगाह रूप पर्याय से विशिष्ट द्रव्यस्कन्ध है। क्योंकि तीन पुद्गलपरमाणु वाले द्रव्य स्कन्ध आकाश रूप क्षेत्र के तीन प्रदेशों को भी रोक कर रहते हैं। इसीलिए आकाश के तीन प्रदेशों में अवगाही द्रव्य स्कन्ध भी आनुपूर्वी कहे जाते हैं।

वैसे तो क्षेत्रानुपूर्वी का अधिकार होने से यहाँ क्षेत्र की मुख्यता है। परन्तु तदावगाढद्रव्य को क्षेत्रानुपूर्वीरूपता क्षेत्रावगाह रूप पर्याय की प्रधानता विवक्षित होने की अपेक्षा से है।

भंगसमुत्कीर्तनता का स्वरूप एवं प्रयोजन

से किं तं णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया?

णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया अत्थि आणुपुव्वी १ अत्थि अणाणुपुव्वी २

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्थि अवत्तव्वए ३ एवं दव्वाणुपुव्वीगमेणं खेत्ताणुपुव्वीए वि ते चेव छव्वीसं भंगा भाणियव्वा जाव सेत्तं णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया।

भावार्थ - नैगम - व्यवहार सम्मत भंग समुत्कीर्तनता का कैसा स्वरूप है?

नैगम व्यवहार सम्मत भंग समुत्कीर्तनता का निरूपण इस प्रकार है - आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी, अवक्तव्य इत्यादि द्रव्यानुपूर्वी के पाठ की ज्यों क्षेत्रानुपूर्वी के भी वैसे ही छब्बीस भंग कथनीय हैं यावत् इस प्रकार नैगम व्यवहार सम्मत भंगसमुत्कीर्तनता का स्वरूप ज्ञातव्य है।

एयाए णं णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणयाए किं पओयणं?

एयाए णं णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणयाए भंगोवदंसणया कीरइ।

भावार्थ - इस नैगम - व्यवहार सम्मत भंगसमुत्कीर्तनता का क्या प्रयोजन है?

नैगम - व्यवहार-सम्मत भंगसमुत्कीर्तनता द्वारा नैगम व्यवहार सम्मत भंगोपदर्शनता की जाती है।

भंगोपदर्शनता

से किं तं णेगमववहाराणं भंगोवदंसणया?

णेगमववहाराणं भंगोवदंसणया-तिपएसोगाढे आणुपुव्वी १ एगपएसोगाढे अणाणुपुव्वी २ दुपएसोगाढे अवत्तव्वए ३ तिपएसोगाढा आणुपुव्वीओ ४ एगपएसोगाढा अणाणुपुव्वीओ ५ दुपएसोगाढा अवत्तव्वयाइं ६ अहवा तिपएसोगाढे य एगपएसोगाढे य आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वी य एवं तहा चेव दव्वाणुपुव्वीगमेणं छव्वीसं भंगा भाणियव्वा जाव सेत्तं णेगमववहाराणं भंगोवदंसणया।

भावार्थ - नैगम - व्यवहार सम्मत भंगोपदर्शनता का कैसा स्वरूप है?

नैगम - व्यवहार सम्मत भंगोपदर्शनता - १. त्रिप्रदेशावगाह युक्त आनुपूर्वी २. एकप्रदेशावगाह युक्त आनुपूर्वी ३. द्विप्रदेशावगाह युक्त अवक्तव्य ४. त्रिप्रदेशावगाहयुक्त आनुपूर्वियाँ ५. एक प्रदेशावगाह युक्त अनानुपूर्वियाँ ६. द्विप्रदेशावगाह युक्त अवक्तव्य (बहुवचन) अथवा त्रिप्रदेशावगाढ, एक प्रदेशावगाढ, आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी - इसी प्रकार द्रव्यानुपूर्वी की भांति छब्बीस भंग (यहाँ भी) भणनीय - कथनीय या आख्येय हैं यावत् नैगम - व्यवहार सम्मत भंगोपदर्शनता का ऐसा स्वरूप है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समवतार निरूपण

से किं तं समोयारे? समोयारे-णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं कहिं समोयरंति? किं आणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति? अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति? अवत्तव्वयदव्वेहिं समोयरंति ?०

आणुपुव्वीदव्वाइं आणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति, णो अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति, णो अवत्तव्वयदव्वेहिं समोयरंति। एवं तिण्णि वि सट्ठाणे सट्ठाणे समोयरंति। सेत्तं समोयारे।

शब्दार्थ - तिण्णि - तीनों, **वि** - भी, **सट्ठाणे** - स्वस्थान में।

भावार्थ - समवतार का क्या स्वरूप है? नैगम व्यवहार सम्मत आनुपूर्वी द्रव्य कहाँ समवतरित होते हैं? क्या वे आनुपूर्वी द्रव्यों में समवतरित होते हैं? अनानुपूर्वी द्रव्यों में समवतरित होते हैं? अवक्तव्य द्रव्यों में समवतरित होते हैं?

आनुपूर्वी द्रव्य (मात्र) आनुपूर्वी द्रव्यों में (ही) समवतरित होते हैं। वे अनानुपूर्वी द्रव्यों में एवं अवक्तव्य द्रव्यों में समवतरित नहीं होते हैं।

इस प्रकार तीनों ही स्व-स्व स्थानों में समवतरित होते हैं। यह 'समोयार' (समवतार) का स्वरूप है।

अनुगम का निरूपण

से किं तं अणुगमे?

अणुगमे णवविहे पण्णत्ते। तंजहा -

गाहा - संतपयपरूवणया, दव्वपमाणं च खित्त फुसणा य।
कालो य अंतरं भाग, भावे अप्पाबहुं चेव ॥१॥

भावार्थ - अनुगम कितने प्रकार का है?

अनुगम नौ प्रकार का कहा गया है, जो निम्नांकित गाथा से स्पष्ट है -

गाथा - १. सत्पदप्ररूपणता २. द्रव्यप्रमाण ३. क्षेत्र ४. स्पर्शना ५. काल ६. अंतर ७. भाग ८. भाव एवं ९. अल्प बहुत्व।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं किं अत्थि णत्थि?

णियमा अत्थि। एवं दोण्णि वि।

भावार्थ - क्या नैगम - व्यवहार सम्मत (क्षेत्रानुपूर्वी) द्रव्य हैं या नहीं हैं?

(वे) नियमतः हैं।

इसी प्रकार दोनों (अनानुपूर्वी एवं अवक्तव्य) भी हैं।

णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं किं संखिज्जाइं? असंखिज्जाइं? अणंताइं ?

णो संखिज्जाइं, असंखिज्जाइं, णो अणंताइं। एवं दोण्णि वि।

भावार्थ - नैगम - व्यवहार-सम्मत आनुपूर्वी द्रव्य क्या संख्यात, असंख्यात या अनंत हैं?

(वे) न संख्यात हैं तथा न अनंत हैं (वरन्) असंख्यात हैं।

यही बात शेष दोनों (अनानुपूर्वी एवं अवक्तव्य) पर लागू है।

णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं लोगस्स किं संखिज्जइभागे होज्जा? असंखिज्जइभागे होज्जा? जाव सव्वलोए होज्जा?

एगं दव्वं पडुच्च संखिज्जइभागे वा होज्जा, असंखिज्जइभागे वा होज्जा, संखेज्जेसु भागेसु वा होजा, असंखेज्जेसु भागेसु वा होज्जा, देसूणे वा लोए होज्जा। णाणादव्वाइं पडुच्च णियमा सव्वलोए होज्जा।

णेगमववहाराणं अणाणुपुव्वीदव्वाणं पुच्छाए-एगं दव्वं पडुच्च णो संखिज्जइभागे होज्जा, असंखिज्जइभागे होज्जा, णो संखेज्जेसु भागेसु होज्जा, णो असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा, णो सव्वलोए होज्जा। णाणादव्वाइं पडुच्च णियमा सव्वलोए होज्जा। एवं अवत्तव्वगदव्वाणि वि भाणियव्वाणि।

शब्दार्थ - **देसूणे** - एक देश कम।

भावार्थ - नैगम - व्यवहार सम्मत आनुपूर्वी द्रव्य लोक के क्या संख्यात भाग में रहते हैं? असंख्यात भाग में यावत् सर्वलोक में रहते हैं?

एक द्रव्य की प्रतीति या अपेक्षा से वे संख्यात भाग में होते हैं अथवा असंख्यात भाग में होते हैं अथवा संख्यात भागों में होते हैं अथवा असंख्यात भागों में होते हैं अथवा देश कम लोक में होते हैं। अनेक द्रव्यों की अपेक्षा वे नियम से समस्त लोक में होते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार नैगम व्यवहार सम्मत अनानुपूर्वी द्रव्यों के संबंध में प्रश्न है - इसका उत्तर इस प्रकार है-

एक द्रव्य की अपेक्षा संख्यात भाग में नहीं होता, असंख्यात भाग में होता है, संख्यात भागों में नहीं होते, असंख्यात भागों में नहीं होते तथा समस्त लोक में (भी) नहीं होते (किन्तु) नाना द्रव्यों की अपेक्षा वे नियमतः समस्त लोक में होते हैं।

इसी प्रकार अवक्तव्य द्रव्यों के संदर्भ में भी कथनीय है।

स्पर्शना विवेचन

णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं लोगस्स किं संखिज्जइभागं फुसंति? असंखिज्जइभागं फुसंति? संखेज्जे भागे फुसंति? असंखेज्जे भागे फुसंति? सव्वलोगं फुसंति?

एगं दव्वं पडुच्च संखिज्जइभागं वा फुसइ, असंखिज्जइभागं वा फुसइ, संखेज्जे भागे वा फुसइ, असंखेज्जे भागे वा फुसइ, देसूणं वा लोगं फुसइ। णाणादव्वाइं पडुच्च णियमा सव्वलोयं फुसंति। अणाणुपुव्वीदव्वाइं अवत्तव्वयदव्वाइं च जहा खेत्तं णवरं फुसणा भाणियव्वा।

भावार्थ - नैगम - व्यवहार सम्मत आनुपूर्वी द्रव्य क्या लोक के संख्येय भाग का, असंख्येय भाग का, संख्येय भागों का, असंख्येय भागों का (या) सर्वलोक का स्पर्श करते हैं?

एक द्रव्य की अपेक्षा से संख्येय भाग का अथवा असंख्येय भाग का अथवा संख्येय भागों का अथवा असंख्येय भागों का अथवा देश कम लोक का स्पर्श करते हैं। अनेक द्रव्यों की अपेक्षा से वे नियमतः समस्त लोक का स्पर्श करते हैं।

अनानुपूर्वी द्रव्य एवं अवक्तव्य द्रव्य की स्पर्शना का विवेचन क्षेत्रानुपूर्वी के अनुरूप पूर्ववत् ज्ञातव्य है।

णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं कालओ केवच्चिरं होंति?

एगं दव्वं पडुच्च जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं। णाणादव्वाइं पडुच्च णियमा सव्वद्धा। एवं दुण्णि वि।

भावार्थ - नैगम एवं व्यवहारनय सम्मत आनुपूर्वी द्रव्य काल की अपेक्षा से कितनी समयावधि पर्यन्त रहते हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एक द्रव्य की प्रतीति से जघन्य एक समय और अधिकतम असंख्यात काल पर्यन्त रहते हैं। अनेक द्रव्यों की अपेक्षा से वे नियमतः सर्वकालिक होते हैं।

इसी प्रकार अनानुपूर्वी एवं अवक्तव्य द्रव्यों की भी स्थिति ज्ञातव्य है।

अन्तर - विवेचन

णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाणमंतरं कालओ केवच्चिरं होइ?

एगं दव्वं पडुच्च जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं। णाणादव्वाइं पडुच्च णत्थि अंतरं।

भावार्थ - नैगम-व्यवहार सम्मत आनुपूर्वी द्रव्यों का काल की अपेक्षा से कितना अन्तर होता है?

(तीनों द्रव्यों का अन्तर) एक द्रव्य की अपेक्षा कम से कम एक समय तथा अधिकतम असंख्यात काल परिमित होता है किन्तु अनेक द्रव्यों की अपेक्षा कोई अंतर नहीं होता।

विवेचन - इस सूत्र में आनुपूर्वी द्रव्यों के अन्तर या विरह काल की चर्चा है। उसका आशय यह है कि जिस समय कोई एक आनुपूर्वी द्रव्य किसी एक क्षेत्र में एक समय तक अवगाह युक्त है फिर दूसरे क्षेत्र का अवगाह करता है, तदनंतर पुनः वह एकाकी या किसी दूसरे द्रव्य से युक्त होकर उसी पूर्वतन क्षेत्र में - आकाश प्रदेश का अवगाह करता है तो वैसा करने में एक आनुपूर्वी द्रव्य का अंतर काल कम से कम एक समय होता है। इस प्रक्रिया में एक समय परिमित काल व्यय होता है। अर्थात् पूर्ववत् क्षेत्र में पुनः आने में एक समय का विरहकाल रहता है।

जब वही द्रव्य अन्यान्य क्षेत्र प्रदेशों में असंख्यात काल पर्यन्त अवगाह युक्त रह कर दूसरे क्षेत्र प्रदेशों में अवगाह युक्त होता है, पुनश्च वह एकाकी अथवा अन्य द्रव्यों से युक्त होकर पूर्वतन अवगाहित क्षेत्र प्रदेशों में प्रत्यावर्तित होता है, तब उत्कृष्टतम अन्तर या विरहकाल असंख्यातकाल परिमित होता है।

अनानुपूर्वी एवं अवक्तव्य द्रव्यों पर भी यही तथ्य घटित होता है।

भाग निरूपण

णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं सेसदव्वाणं कइभागे होज्जा?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तिण्णि वि जहा दव्वाणुपुव्वीए।

भावार्थ - नैगम - व्यवहार सम्मत आनुपूर्वी द्रव्य शेष द्रव्यों के कियत् भाग परिमित होते हैं?

यहाँ तीनों (आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी एवं अवक्तव्य) के विषय का निरूपण पूर्ववर्णित द्रव्यानुपूर्वी की तरह ज्ञातव्य है।

भाव प्ररूपण

णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं कयरम्मि भावे होज्जा?

णियमा साइपारिणामिए भावे होज्जा। एवं दोण्णिवि।

भावार्थ - नैगम-व्यवहार सम्मत आनुपूर्वी द्रव्य किस भाव में वर्तनशील होते हैं?

(आनुपूर्वी द्रव्य) नियमतः सादिपारिणामिक भाव में रहते हैं।

इसी प्रकार शेष दोनों द्रव्यों के संदर्भ में भी जानना चाहिये।

अल्प-बहुत्व निरूपण

एएसि णं भंते! णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाणं अणाणुपुव्वीदव्वाणं अवत्तव्वगदव्वाणं च दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए दव्वट्ठपएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवाइं णेगमववहाराणं अवत्तव्वगदव्वाइं दव्वट्ठयाए, अणाणुपुव्वीदव्वाइं दव्वट्ठयाए विसेसाहियाइं, आणुपुव्वीदव्वाइं दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणाइं, पएसट्ठयाए-सव्वत्थोवाइं णेगमववहाराणं अणाणुपुव्वीदव्वाइं अपएसट्ठयाए, अवत्तव्वगदव्वाइं पएसट्ठयाए विसेसाहियाइं, आणुपुव्वीदव्वाइं पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणाइं, दव्वट्ठपएसट्ठयाए-सव्वत्थोवाइं णेगमववहाराणं अवत्तव्वगदव्वाइं दव्वट्ठयाए, अणाणुपुव्वीदव्वाइं दव्वट्ठयाए अपएसट्ठयाए विसेसाहियाइं, अवत्तव्वगदव्वाइं पएसट्ठयाए विसेसाहियाइं, आणुपुव्वीदव्वाइं दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणाइं, ताइं चेव पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणाइं। सेत्तं अणुगमे। सेत्तं णेगमववहाराणं अणोवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - हे भगवन्! इन नैगम-व्यवहारनयानुगत आनुपूर्वी द्रव्यों, अनानुपूर्वी द्रव्यों एवं अवक्तव्य द्रव्यों में कौन-कौन से द्रव्य किन-किन द्रव्यों से द्रव्यार्थता, प्रदेशार्थता तथा द्रव्यप्रदेशार्थता की दृष्टि से अल्प या बहुत या तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

हे आयुष्मन् गौतम! नैगम - व्यवहार सम्मत अवक्तव्य द्रव्य द्रव्यार्थता की दृष्टि से सबसे न्यून-कम हैं। अनानुपूर्वी द्रव्य द्रव्यार्थता की दृष्टि से (अवक्तव्य द्रव्यों से) विशेषाधिक हैं एवं आनुपूर्वी द्रव्य द्रव्यार्थता की अपेक्षा से (अनानुपूर्वी द्रव्यों की अपेक्षा से) असंख्यातगुने हैं।

प्रदेशार्थता की दृष्टि से नैगम - व्यवहारनय सम्मत अनानुपूर्वी द्रव्य अप्रदेशी होने से सबसे कम हैं। प्रदेशार्थता की दृष्टि से अवक्तव्य द्रव्य (अनानुपूर्वी द्रव्यों से) विशेषाधिक हैं तथा आनुपूर्वी द्रव्य प्रदेशार्थता की दृष्टि से (अवक्तव्य द्रव्यों से) असंख्यात गुने हैं।

द्रव्यार्थ - प्रदेशार्थता की दृष्टि से नैगम व्यवहारनय सम्मत अवक्तव्य द्रव्य, द्रव्य रूप में सबसे अल्प हैं। द्रव्यार्थता और अप्रदेशार्थता की अपेक्षा से अनानुपूर्वी द्रव्य (अवक्तव्य द्रव्यों से) विशेषाधिक हैं। अवक्तव्य द्रव्य प्रदेशार्थता की अपेक्षा से विशेषाधिक हैं। आनुपूर्वी द्रव्य द्रव्यार्थता की अपेक्षा से असंख्यात गुने हैं। इसी प्रकार प्रदेशार्थता की अपेक्षा से भी असंख्यातगुने हैं।

यही अनुगम का स्वरूप है। यहाँ नैगम-व्यवहार नयानुरूप क्षेत्रानुपूर्वी का विवेचन परिसमाप्त होता है।

विवेचन - अंगप्रविष्ट एवं अंगबाह्य के रूप में आगमों के दो प्रकार हैं। तीर्थंकर देव द्वारा त्रिपदी के रूप में प्ररूपित देशना का गणधर लोक कल्याण की दृष्टि से प्रश्नोत्तरों के रूप में वर्णन करते हैं। यह पद्धति जन-जन के लिए सिद्धान्तों को समझने की दृष्टि से उपयोगी है।

अंग बाह्य आगम भी सैद्धांतिक दृष्टि से अंगप्रविष्ट के अनुरूप ही हैं। उनमें भी यत्र-तत्र प्रश्नोत्तरों की शैली प्राप्त होती है। जहाँ-जहाँ वर्णित विषयों का अंगवाङ्मय से शाब्दिक दृष्ट्या अध्याहार या उदाहरण के रूप में सीधा संबंध है, वहाँ-वहाँ संभवतः प्रश्नोत्तरात्मक शैली का प्रयोग हुआ है, सर्वत्र नहीं। इसी कारण अंग आगमों का अनुसरण करते हुए अंग बाह्य में भी कतिपय स्थानों पर **'भंते'** और **'गोयमा'** संबोधनों का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है।

अनुयोगद्वार मूल आगमों में अन्तिम है। इसमें भी अनेक स्थानों पर **भंते** और **गोयमा** का इसी दृष्टि से उपयोग हुआ है।

रचनाकार विनयातिशयवश अपनी लघुता व्यक्त करने हेतु भी उस तरह की शैली को अपना सकते हैं, ऐसा संभावित है। इससे वर्णित विषय की महिमा और गंभीरता वृद्धिंगत हो जाती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अतः अनुयोग द्वार सूत्र में जहाँ-जहाँ भी **'भंते'** और **'गोयमा'** युक्त संबोधनक्रम प्राप्त हों, वहाँ-वहाँ यह स्पष्टीकरण ज्ञातव्य है।

(१०३)

अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी

से किं तं संगहस्स अणोवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी?

संगहस्स अणोवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी पंचविहा पण्णत्ता। तंजहा - अट्ठपयपरूवणया १ भंगसमुक्कित्तणया २ भंगोवदंसणया ३ समोयारे ४ अणुगमे ५।

भावार्थ - संग्रहनयानुसार अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी किस प्रकार की है?

संग्रहनय सम्मत अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी पांच प्रकार की कही गई है - १. अर्थपद प्ररूपणता २. भंग समुत्कीर्तनता ३. भंगोपदर्शनता ४. समवतार ५. अनुगम।

से किं तं संगहस्स अट्ठपयपरूवणया?

संगहस्स अट्ठपयपरूवणया - तिपएसोगाढा आणुपव्वी, चउप्पएसोगाढा आणुपुव्वी जाव दसपएसोगाढा आणुपुव्वी, संखिज्जपएसोगाढा आणुपुव्वी, असंखिज्जपएसोगाढा आणुपुव्वी, एगपएसोगाढा अणाणुपुव्वी, दुपएसोगाढा अवत्तव्वए। सेत्तं संगहस्स अट्ठपयपरूवणया।

एयाए णं संगहस्स अट्ठपयपरूवणयाए किं पओयणं?०

संगहस्स अट्ठपयपरूवणयाए संगहस्स भंगसमुक्कित्तणया कज्जइ।

भावार्थ - संग्रहनय सम्मत अर्थपद प्ररूपणता का क्या स्वरूप है?

संग्रहनय सम्मत अर्थपद प्ररूपणता त्रिप्रदेशावगाह युक्त आनुपूर्वी, चतुःप्रदेशावगाह युक्त आनुपूर्वी यावत् दस प्रदेशावगाह युक्त आनुपूर्वी, संख्यात प्रदेशावगाह युक्त आनुपूर्वी, असंख्यात प्रदेशावगाह युक्त आनुपूर्वी, एक प्रदेशावगाह युक्त अनानुपूर्वी, द्विप्रदेशावगाह युक्त अवक्तव्य रूप है।

यह संग्रहनय सम्मत अर्थ पद प्ररूपणा का निरूपण है। इस संग्रहनय सम्मत अर्थपद प्ररूपणता का क्या प्रयोजन है?

संग्रहनय सम्मत अर्थपद प्ररूपणता द्वारा संग्रहनय सम्मत भंग समुत्कीर्तनता की जाती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - जिस प्रकार संग्रहनय के मत से द्रव्यानुपूर्वी में बहुत से त्रिप्रदेशी स्कन्धों को सामान्यतया एकत्व की विविक्षा से एक आनुपूर्वी कहा है। इसी प्रकार अनानुपूर्वी में भी बहुत से परमाणु पुद्गलों को एवं अवक्तव्य में बहुत से दो प्रदेशी स्कन्धों को एकत्व की विविक्षा से एक माना गया है। वैसे ही यहाँ क्षेत्रानुपूर्वी में बहुत से त्रिप्रदेशावगाढ़ द्रव्यों को एकत्व की विविक्षा से एक आनुपूर्वी माना है। इसी प्रकार अनानुपूर्वी एवं अवक्तव्य के विषय में भी समझना चाहिये।

से किं तं संगहस्स भंगसमुक्कित्तणया? संगहस्स भंगसमुक्कित्तणया-अत्थि आणुपुव्वी १ अत्थि अणाणुपुव्वी २ अत्थि अवत्तव्वए ३ अहवा अत्थि आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वी य एवं जहा दव्वाणुपुव्वीए संगहस्स तहा भाणियव्वा जाव सेत्तं संगहस्स भंगसमुक्कित्तणया।

भावार्थ - संग्रहनय सम्मत भंगसमुत्कीर्तनता का क्या स्वरूप है?

संग्रहनय सम्मत भंग समुत्कीर्तनता - आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी, अवक्तव्य अथवा आनुपूर्वी - अनानुपूर्वी रूप है, शेष वर्णन जैसा द्रव्यानुपूर्वी में आया है, उसी प्रकार यहाँ कथन करने योग्य है यावत् संग्रहनय सम्मत भंगसमुत्कीर्तनता का स्वरूप है।

एयाए णं संगहस्स भंगसमुक्कित्तणयाए किं पओयणं?

एयाए णं संगहस्स भंगसमुक्कित्तणयाए भंगोवदंसणया कज्जइ।

भावार्थ - संग्रहनय सम्मत भंगसमुत्कीर्तनता का क्या प्रयोजन है?

इस संग्रहनय सम्मत भंगसमुत्कीर्तनता से भंगोपदर्शनता का आख्यान होता है।

से किं तं संगहस्स भंगोवदंसणया?

संगहस्स भंगोवदंसणया - तिपएसोगाढा आणुपुव्वी १ एगपएसोगाढे अणाणुपुव्वी २ दुपएसोगाढा अवत्तव्वए ३ अहवा तिपएसोगाढा य एगपएसोगाढा य आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वी य एवं जहा दव्वाणुपुव्वीए संगहस्स तहा खेत्ताणुपुव्वीए वि भाणियव्वं जाव सेत्तं संगहस्स भंगोवदंसणया।

भावार्थ - संग्रहनय सम्मत भंगोपदर्शनता का क्या स्वरूप है?

संग्रहनय सम्मत भंगोपदर्शनता - १. बहुत त्रिप्रदेशावगाह युक्त एक आनुपूर्वी २. बहुत एक प्रदेशावगाहयुक्त एक अनानुपूर्वी तथा ३. बहुत द्विप्रदेशावगाहयुक्त एक अवक्तव्य अथवा बहुत त्रिप्रदेशावगाह, बहुत एक प्रदेशावगाह, एक आनुपूर्वी, एक अनानुपूर्वी रूप है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार इस क्षेत्रानुपूर्वी के विवेचन में शेष वर्णन संग्रहनय सम्मत द्रव्यानुपूर्वी की भांति कथनीय है यावत् यह भंगोपदर्शनता का स्वरूप है।

से किं तं समोयारे?

समोयारे-संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं कहिं समोयरंति? किं आणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति? अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति? अवत्तव्वयदव्वेहिं समोयरंति?

तिण्णि वि सट्ठाणे समोयरंति। सेत्तं समोयारे।

भावार्थ - समवतार का क्या स्वरूप है?

संग्रहनयानुरूप आनुपूर्वी द्रव्य कहाँ समवतरित होते हैं? क्या वे आनुपूर्वी द्रव्यों में समवतरित होते हैं? अनानुपूर्वी द्रव्यों में समवतरित होते हैं? अवक्तव्य द्रव्यों में समवतरित होते हैं?

ये तीनों ही अपने-अपने स्थानों में समवतरित होते हैं। यह समवतार का स्वरूप है।

से किं तं अणुगमे? अणुगमे अट्ठविहे पण्णत्ते। तंजहा-

गाहा - संतपयपरूवणया, दव्वपमाणं च खित्त फुसणा य।

कालो य अंतरं भाग, भावे अप्पाबहुं णत्थि॥१॥

भावार्थ - अनुगम कितने प्रकार का है?

अनुगम आठ प्रकार का प्रतिपादित हुआ है यथा -

गाथा - १. सत्पदप्ररूपणता २. द्रव्यप्रमाण ३. क्षेत्र ४. स्पर्शना ५. काल ६. अंतर ७. भाग ८. भाव। यहाँ अल्पबहुत्व का नास्तित्व है।

संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं किं अत्थि णत्थि?

णियमा अत्थि। एवं दुण्णि वि। सेसगदाराइं जहा दव्वाणुपुव्वीए संगहस्स तहा खेत्ताणुपुव्वीए वि भाणियव्वाइं जाव सेत्तं अणुगमे। सेत्तं संगहस्स अणोवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी। सेत्तं अणोवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी।

भावार्थ - क्या संग्रहनय सम्मत आनुपूर्वी द्रव्य हैं या नहीं है?

(वे) नियमतः हैं।

इसी प्रकार शेष दोनों भी ज्ञातव्य हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार क्षेत्रानुपूर्वी के शेष द्वार पूर्व वर्णित द्रव्यानुपूर्वी की भांति आख्येय हैं यावत् यह अनुगम का स्वरूप है।

यह संग्रहनय सम्मत क्षेत्रानुपूर्वी का निरूपण है।

इस प्रकार क्षेत्रानुपूर्वी अनौपनिधिकी का विवेचन परिसमाप्त होता है।

(१०४)

औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी

से किं तं उवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी?

उवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता। तंजहा - पुव्वाणुपुव्वी १ पच्छाणुपुव्वी २ अणाणुपुव्वी य ३।

भावार्थ - औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी के कितने प्रकार हैं?

औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी तीन प्रकार की प्रतिपादित हुई हैं - १. पूर्वानुपूर्वी २. पश्चानुपूर्वी और ३. अनानुपूर्वी।

से किं तं पुव्वाणुपुव्वी?

पुव्वाणुपुव्वी-अहोलोए १ तिरियलोए २ उड्ढलोए ३। सेत्तं पुव्वाणुपुव्वी।

शब्दार्थ - अहोलोए - अधोलोक, तिरियलोए - तिर्यक् लोक, उड्ढलोए - ऊर्ध्वलोक।

भावार्थ - पूर्वानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

अधोलोक, तिर्यक्लोक एवं ऊर्ध्वलोक - यों क्रमानुसार क्षेत्र या लोक का निर्देश करना पूर्वानुपूर्वी कहा जाता है।

यह पूर्वानुपूर्वी का स्वरूप है।

से किं तं पच्छाणुपुव्वी?

पच्छाणुपुव्वी-उड्ढलोए ३ तिरियलाए २ अहोलोए १। सेत्तं पच्छाणुपुव्वी।

भावार्थ - पश्चानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

पश्चानुपूर्वी ऊर्ध्वलोक, तिर्यक्लोक एवं अधोलोक - इस विपरीत क्रम से आख्यात है।

यह पश्चानुपूर्वी का निरूपण है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से किं तं अणाणुपुव्वी?

अणाणुपुव्वी-एयाए चेव एगाइयाए एगुत्तरियाए तिगच्छगयाए सेढीए अण्णमण्णब्भासो दुरूवूणो। सेत्तं अणाणुपुव्वी।

भावार्थ - अनानुपूर्वी किसे कहा जाता है?

एक से शुरू कर, एक-एक की वृद्धि द्वारा निर्मित तीन-तीन की श्रेणी में परस्पर गुणन करने पर प्राप्त राशि में से प्रारम्भिक और अंतिम - दो भंगों का परिवर्जन करने पर जो भंग अवशिष्ट रहते हैं, वह अनानुपूर्वी है।

यह अनानुपूर्वी का निरूपण है।

अधोलोक क्षेत्रानुपूर्वी

अहोलोयखेत्ताणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता। तंजहा - पुव्वाणुपुव्वी १ पच्छाणुपुव्वी २ अणाणुपुव्वी ३।

भावार्थ - अधोलोक क्षेत्रानुपूर्वी तीन प्रकार की प्रतिपादित हुई है -

१. पूर्वानुपूर्वी २. पश्चानुपूर्वी एवं ३. अनानुपूर्वी।

से किं तं पुव्वाणुपुव्वी?

पुव्वाणुपुव्वी-रयणप्पभा १ सक्करप्पभा २ वालुयप्पभा ३ पंकप्पभा ४ धूमप्पभा ५ तमप्पभा ६ तमतमप्पभा ७। सेत्तं पुव्वाणुपुव्वी।

भावार्थ - पूर्वानुपूर्वी कितने प्रकार की है?

पूर्वानुपूर्वी - १. रत्नप्रभा २. शर्कराप्रभा ३. बालुकाप्रभा ४. पंकप्रभा ५. धूमप्रभा ६. तमःप्रभा ७. तमस्तमःप्रभा, पूर्वानुपूर्वी इस क्रमानुसार सात प्रकार की है।

से किं तं पच्छाणुपुव्वी?

पच्छाणुपुव्वी-तमतमप्पभा ७ जाव रयणप्पभा १। सेत्तं पच्छाणुपुव्वी।

भावार्थ - पश्चानुपूर्वी कितने प्रकार की है?

यह तमस्तमःप्रभा यावत् रत्नप्रभा पर्यन्त (व्यतिक्रम - विपरीत क्रम से) सात प्रकार की है।

यह पश्चानुपूर्वी का विवेचन है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से किं तं अणाणुपुव्वी?

अणाणुपुव्वी-एयाए चेव एगाइयाए एगुत्तरियाए सत्तगच्छगयाए सेढीए अण्णमण्णब्भासो दुरूवूणो। सेत्तं अणाणुपुव्वी।

भावार्थ - अनानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

एक से प्रारम्भ कर सात तक एक-एक को बढ़ाते जाने से विनिर्मित श्रेणी के अंकों का परस्पर गुणन करने पर प्राप्त राशि में से आद्य और अंतिम भंगों को निष्कासित कर देने पर अवशिष्ट राशिमूलक भंग अनानुपूर्वी रूप हैं।

यह अनानुपूर्वी का निरूपण है।

तिरियलोयखेत्ताणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता। तंजहा - पुव्वाणुपुव्वी १ पच्छाणुपुव्वी २ अणाणुपुव्वी ३।

भावार्थ - तिर्यक्लोक क्षेत्रानुपूर्वी तीन प्रकार की कही गई है - १. पूर्वानुपूर्वी २. पश्चानुपूर्वी ३. अनानुपूर्वी।

से किं तं पुव्वाणुपुव्वी? पुव्वाणुपुव्वी -

गाहाओ - जंबूदीवे लवणे, धायइ कालोय पुक्खरे वरुणे।
खीर घय खोय णंदी, अरुणवरे कुंडले रुयगे॥१॥
आभरण◆ वत्थ गंधे, उप्पल तिलए य पुढवि णिहिरयणे।
वासहर दह णईओ, विजया वक्खार कप्पिंदा॥२॥
कुरु मंदर आवासा, कूडा णक्खत्त चंद सूरा य।
देवे णागे जक्खे, भूए य सयंभुरमणे य॥३॥

सेत्तं पुव्वाणुपुव्वी।

भावार्थ - पूर्वानुपूर्वी का कैसा स्वरूप है?

गाथाएँ - मध्यलोक क्षेत्र पूर्वानुपूर्वी का स्वरूप इस प्रकार है -

---

◆ जंबुद्दीवाओ खलु, णिरंतरा सेसया असंखइमा।
भुयगवर कुसवरावि य, कोंचवराभरणमाई य।
वायणंतरे एसा गाहा वि लब्भइ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जंबूद्वीप, लवण समुद्र, धातकीखण्ड द्वीप, कालोदधि समुद्र, पुष्कर द्वीप, पुष्करोद समुद्र, वरुण द्वीप, वरुणोद समुद्र, क्षीर द्वीप, क्षीरोद समुद्र, घृत द्वीप, घृतोद समुद्र, इक्षुवर द्वीप, इक्षुवर समुद्र, नंदी द्वीप, नंदी समुद्र, अरुणवर द्वीप, अरुणवर समुद्र, कुण्डल द्वीप, कुण्डल समुद्र, रुचक द्वीप, रुचक समुद्र हैं॥१॥

आभरण ※ - अलंकार, वस्त्र, गंध, उत्पल - कमल विशेष, तिलक, पद्म, निधि, रत्न, वर्षधर, ह्रद, नदी, विजय, वक्षस्कार, कल्पेन्द्र, कुरु, मंदर, आवास, कूट, नक्षत्र, चंद्र एवं सूर्य देव, नाग, यक्ष, भूत आदि के पर्यायवाची नामानुरूप द्वीप समुद्र असंख्यात हैं तथा अंत में स्वयंभूरमण द्वीप तथा समुद्र हैं॥२,३॥

यह पूर्वानुपूर्वी का विवेचन है।

विवेचन - जीवाभिगम सूत्र के अनुसार अरुणद्वीप से लेकर सूर्य द्वीप तक सभी द्वीप एवं समुद्र त्रिप्रत्ययावतार (तीन-तीन नामों वाले) आये हुए हैं। जैसे - १. अरुण द्वीप २. अरुण समुद्र ३. अरुणवर द्वीप ४. अरुणवर समुद्र ५. अरुणवरावभास द्वीप ६. अरुणवरावभास समुद्र। इसी प्रकार सूर्य द्वीप तक समझना चाहिये। अंत में पांच द्वीप समुद्र एक-एक नाम के आये हुए हैं यथा- १. देव द्वीप, देव समुद्र २. नाग द्वीप, नाग समुद्र ३. यक्ष द्वीप, यक्ष समुद्र ४. भूत द्वीप, भूत समुद्र ५. स्वयंभूरमण द्वीप, स्वयंभूरमण समुद्र।

पश्चानुपूर्वी

से किं तं पच्छाणुपुव्वी ?

पच्छाणुपुव्वी - सयंभूरमणे य जाव जंबूदीवे। सेत्तं पच्छाणुपुव्वी।

भावार्थ - पश्चानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

स्वयंभूरमण समुद्र यावत् जंबू द्वीप पर्यन्त विपरीत क्रम से ये सारे पश्चानुपूर्वी रूप हैं।

यह पश्चानुपूर्वी का निरूपण है।

※ वाचनांतर में इस गाथा के पहले निम्नांकित गाथा प्राप्त होती है - जंबूद्वीप से लेकर समस्त द्वीप - समुद्र बिना किसी अन्तर के एक दूसरे को आवृत किए हुए हैं - घेरे हुए हैं। इनके आगे असंख्यात - असंख्यात द्वीप समुद्रों के अनंतर - अन्तर के बिना संलग्न भुजगवर एवं उनके अनंतर असंख्यात द्वीप समुद्रों के पश्चात् कुशलवर द्वीप समुद्र हैं एवं इसके बाद भी असंख्यात द्वीप समुद्रों के पश्चात् कोंचवर संज्ञक द्वीप हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अनानुपूर्वी

से किं तं अणाणुपुव्वी?

अणाणुपुव्वी-एयाए चेव एगाइयाए एगुत्तरियाए असंखेज्जगच्छगयाए सेढीए अण्णमण्णब्भासो दुरूवूणो। सेत्तं अणाणुपुव्वी।

भावार्थ - अनानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

एक से प्रारम्भ कर असंख्यात पर्यन्त, श्रेणी स्थापित कर, श्रेणीगत अंकों का परस्पर गुणन करने पर जो राशि प्राप्त हो, उसमें से प्रारम्भिक और अंतिम इन दो भंगों को छोड़ कर बीच के समस्त भंग (मध्यलोक क्षेत्र) अनानुपूर्वी रूप हैं।

यह अनानुपूर्वी का विवेचन है।

उड्ढलोयखेत्ताणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता। तंजहा - पुव्वाणुपुव्वी १ पच्छाणुपुव्वी २ अणाणुपुव्वी ३।

भावार्थ - ऊर्ध्वलोक क्षेत्रानुपूर्वी तीन प्रकार की बतलाई गई है - १. पूर्वानुपूर्वी २. पश्चानुपूर्वी एवं ३. अनानुपूर्वी।

ऊर्ध्वलोक पूर्वानुपूर्वी

से किं तं पुव्वाणुपुव्वी ?

पुव्वाणुपुव्वी - सोहम्मे १ ईसाणे २ सणंकुमारे ३ माहिंदे ४ बंभलोए ५ लंतए ६ महासुक्के ७ सहस्सारे ८ आणए ९ पाणए १० आरणे ११ अच्चुए १२ गेवेज्जविमाणे १३ अणुत्तरविमाणे १४ ईसिपब्भारा १५। सेत्तं पुव्वाणुपुव्वी।

भावार्थ - (ऊर्ध्वलोक) पूर्वानुपूर्वी का कैसा स्वरूप है?

उसका स्वरूप इस प्रकार है -

१. सौधर्मकल्प २. ईशान ३. सनत्कुमार ४. माहेन्द्र ५. ब्रह्मलोक ६. लांतक ७. महाशुक्र ८. सहस्रार ९. आनत १०. प्राणत ११. आरण १२. अच्युत १३. ग्रैवेयक विमान १४. अनुत्तर विमान १५. ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी - इस क्रम से ऊर्ध्वलोक के देवक्षेत्रों का प्रतिपादन (ऊर्ध्वलोक) पूर्वानुपूर्वी है। यह पूर्वानुपूर्वी का विवेचन है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पश्चानुपूर्वी

से किं तं पच्छाणुपुव्वी?

पच्छाणुपुव्वी - ईसिपब्भारा १५ जाव सोहम्मे १। सेत्तं पच्छाणुपुव्वी।

भावार्थ - पश्चानुपूर्वी का कैसा स्वरूप है?

१५ ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी से लेकर यावत् १ सौधर्मकल्प पर्यन्त क्षेत्रों का उल्टे क्रम से उपपादन करना, ऊर्ध्वलोक क्षेत्र पश्चानुपूर्वी है। यह पश्चानुपूर्वी का प्रतिपादन है।

से किं तं अणाणुपुव्वी?

अणाणुपुव्वी-एयाए चेव एगाइयाए एगुत्तरियाए पण्णरसगच्छगयाए सेढीए अण्णमण्णब्भासो दुरूवूणो। सेत्तं अणाणुपुव्वी।

भावार्थ - अनानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

एक से प्रारम्भ कर एकोत्तर वृद्धि द्वारा निर्मित पन्द्रह तक की श्रेणी में स्थित अंकों का परस्पर गुणन करने पर प्राप्त फलरूप राशि में से आद्य (प्रारम्भिक) और अंतिम दो भंगों को कम कर देने पर अवशिष्ट भंग ऊर्ध्वलोक क्षेत्र की अनानुपूर्वी के ज्ञापक हैं।

यह अनानुपूर्वी का वर्णन है।

औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी का अन्यविध निरूपण

अहवा उवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता। तंजहा - पुव्वाणुपुव्वी १ पच्छाणुपुव्वी २ अणाणुपुव्वी य ३।

भावार्थ - अथवा औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी तीन प्रकार की निरूपित हुई है -

१. पूर्वानुपूर्वी २. पश्चानुपूर्वी ३. अनानुपूर्वी।

से किं तं पुव्वाणुपुव्वी?

पुव्वाणुपुव्वी - एगपएसोगाढे, दुपएसोगाढे जाव दसपएसोगाढे जाव संखिज्जपएसोगाढे, असंखिज्जपएसोगाढे। सेत्तं पुव्वाणुपुव्वी।

भावार्थ - (औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी के प्रथम भेद) पूर्वानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूर्वानुपूर्वी एक प्रदेशावगाढ़, द्विप्रदेशावगाढ यावत् दशप्रदेशावगाढ यावत् संख्यात प्रदेशावगाढ, असंख्यात प्रदेशावगाढ रूप है। यह पूर्वानुपूर्वी का विवेचन है।

से किं तं पच्छाणुपुव्वी?

पच्छाणुपुव्वी - असंखिज्जपएसोगाढे, संखिज्जपएसोगाढे जाव एगपएसोगाढे। सेत्तं पच्छाणुपुव्वी।

भावार्थ - पश्चानुपूर्वी कैसी है?

असंख्यातप्रदेशावगाढ तथा संख्यातप्रदेशावगाढ से लेकर यावत् एकप्रदेशावगाढ पर्यन्त व्यतिक्रम से पश्चानुपूर्वी ज्ञातव्य है।

यह (औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी) पश्चानुपूर्वी का स्वरूप है।

से किं तं अणाणुपुव्वी?

अणाणुपुव्वी - एयाए चेव एगाइयाए एगुत्तरियाए असंखिज्जगच्छगयाए सेढीए अण्णमण्णब्भासो दुरूवूणो। सेत्तं अणाणुपुव्वी। सेत्तं उवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी। सेत्तं खेत्ताणुपुव्वी।

भावार्थ - अनानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

एक से प्रारंभ कर एक-एक की वृद्धि करते हुए असंख्यात प्रदेश पर्यन्त स्थापित श्रेणी के अन्तरवर्ती अंकों का गुणन करने से प्राप्त राशि में से शुरु के एवं अंत के दो रूपों को कम करने से अवशिष्ट राशि (क्षेत्र विषयक) अनानुपूर्वी का स्वरूप है।

यह अनानुपूर्वी का वर्णन है।

यह औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी का निरूपण है।

इस प्रकार क्षेत्रानुपूर्वी का वर्णन परिसमाप्त होता है।

(१०५)

कालानुपूर्वी का निरूपण

से किं तं कालाणुपुव्वी?

कालाणुपुव्वी दुविहा पण्णत्ता। तंजहा-उवणिहिया य १ अणोवणिहिया य २।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - कालानुपूर्वी कितने प्रकार की है?

कालानुपूर्वी दो प्रकार की है - १. औपनिधिकी एवं २. अनौपनिधिकी।

(१०६)

तत्थ णं जा सा उवणिहिया सा ठप्पा।

भावार्थ - उनमें जो औपनिधिकी है, वह स्थाप्य है?

तत्थ णं जा सा अणोवणिहिया सा दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - णेगमववहाराणं १ संगहस्स य २।

भावार्थ - इनमें जो अनौपनिधिकी है, वह द्विविध बतलाई गई है - १. नैगम-व्यवहार सम्मत २. संग्रह सम्मत।

(१०७)

नैगमव्यवहारानुरूप अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी

से किं तं णेगमववहाराणं अणोवणिहिया कालाणुपुव्वी?

णेगमववहाराणं अणोवणिहिया कालाणुपुव्वी पंचविहा पण्णत्ता। तंजहा - अट्ठपयपरूवणया १ भंगसमुक्कित्तणया २ भंगोवदंसणया ३ समोयारे ४ अणुगमे ५।

भावार्थ - नैगम-व्यवहारनयानुरूप अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी कितने प्रकार की है?

नैगमव्यवहारनयानुरूप अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी पाँच प्रकार की बतलाई गई है - १. अर्थपदप्ररूपणता २. भंगसमुत्कीर्तनता ३. भंगोपदर्शनता ४. समवतार एवं ५. अनुगम।

(१०८)

(अ) अर्थपदप्ररूपणता

से किं तं णेगमववहाराणं अट्ठपयपरूवणया?

णेगमववहाराणं अट्ठपयपरूवणया-तिसमयट्ठिइए आणुपुव्वी जाव दससमयट्ठिइए आणुपुव्वी, संखिज्जसमयट्ठिइए आणुपुव्वी, असंखिज्जसमयट्ठिइए आणुपुव्वी,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एगसमयट्ठिइए अणाणुपुव्वी, दुसमयट्ठिइए अवत्तव्वए, तिसमयट्ठिइयाओ आणुपुव्वीओ, एगसमयट्ठिइयाओ अणाणुपुव्वीओ, दुसमयट्ठिइयाइं अवत्तव्वगाइं। सेत्तं णेगमववहाराणं अट्ठपयपरूवणया।

भावार्थ - नैगमव्यवहार सम्मत अर्थपदप्ररूपणता का क्या स्वरूप है?

नैगमव्यवहार सम्मत अर्थपदप्ररूपणता का प्रतिपादन इस प्रकार है -

त्रिसमयस्थितियुक्त यावत् दशसमयस्थितियुक्त, संख्यातसमय स्थिति युक्त, असंख्यात समयस्थितियुक्त द्रव्य आनुपूर्वी रूप हैं।

एक समयस्थितियुक्त द्रव्य आनुपूर्वी एवं द्विसमयस्थितियुक्त द्रव्य अवक्तव्य, त्रिसमयस्थितियुक्त अनेक द्रव्य आनुपूर्वियाँ, एक समयस्थितियुक्त अनेक द्रव्य आनुपूर्वियाँ, द्विसमयस्थितियुक्त अनेक द्रव्य अवक्तव्य रूप हैं।

यह नैगम-व्यवहार सम्मत अर्थपदप्ररूपणता का स्वरूप है।

विवेचन - द्रव्यानुपूर्वी में द्रव्य की प्रधानता रहती है, जबकि कालानुपूर्वी में काल की। आशय यह है कि द्रव्यानुपूर्वी में परमाणु अनानुपूर्वी, द्व्यणुक अवक्तव्यक और त्र्याणुकादि द्रव्य आनुपूर्वी माना जाता है। परन्तु कालानुपूर्वी में एक समय की स्थिति रखने वाले सभी द्रव्य अनानुपूर्वी, दो समय की स्थिति रखने वाले अवक्तव्यक और त्र्यादि समयों की स्थिति वाले द्रव्य आनुपूर्वी के रूप में माने जाते हैं। यही इन दोनों में अन्तर है।

एयाए णं णेगमववहाराणं अट्ठपयपरूवणयाए किं पओयणं ?०

णेगमववहाराणं अट्ठपयपरूवणयाए णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया कज्जइ।

भावार्थ - इस नैगम व्यवहारनयानुरूप अर्थपदप्ररूपणता का क्या प्रयोजन है?

नैगम व्यवहारनयानुरूप अर्थपदप्ररूपणता से भंगसमुत्कीर्तनता की जाती है।

(१०९)

(ब) भंगसमुत्कीर्तनता

से किं तं णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया-अत्थि आणुपुव्वी १ अत्थि अणाणुपुव्वी २ अत्थि अवत्तव्वए ३ एवं दव्वाणुपुव्वीगमेणं कालाणुपुव्वीए वि ते चेव छब्बीसं भंगा भाणियव्वा जाव सेत्तं णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया।

भावार्थ - नैगमव्यवहारनय सम्मत भंगसमुत्कीर्तनता का क्या स्वरूप है?

नैगमव्यवहारनय सम्मत भंगसमुत्कीर्तनता - १. आनुपूर्वी २. अनानुपूर्वी एवं ३. अवक्तव्य के रूप में पूर्ववर्णित छब्बीस भंग द्रव्यानुपूर्वी के विवेचन के सदृश यहाँ कालानुपूर्वी के वर्णन में भणनीय-कथनीय हैं यावत् यह नैगमव्यवहारानुरूप भंगसमुत्कीर्तनता है।

एयाए णं णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणयाए किं पओयणं?

एयाए णं णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणयाए णेगमववहाराणं भंगोवदंसणया कज्जइ।

भावार्थ - इस नैगमव्यवहारनय सम्मत भंगसमुत्कीर्तनता का क्या प्रयोजन है?

नैगमव्यवहारनय सम्मत भंगसमुत्कीर्तनता से भंगोपदर्शनता की जाती है।

(११०)

(स) भंगोपदर्शनता

से किं तं णेगमववहाराणं भंगोवदंसणया?

णेगमववहाराणं भंगोवदंसणया-तिसमयट्ठिइए आणुपुव्वी १ एगसमयट्ठिइए अणाणुपुव्वी २ दुसमयट्ठिइए अवत्तव्वए ३ तिसमयट्ठिइयाओ आणुपुव्वीओ ४ एगसमयट्ठिइयाओ अणाणुपुव्वीओ ५ दुसमयट्ठिइयाणं अवत्तव्वगाइं ६।

अहवा तिसमयट्ठिइए य एगसमयट्ठिइए य आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वी य एवं तहा दव्वाणुपुव्वीगमेणं छव्वीसं भंगा भाणियव्वा जाव सेत्तं णेगमववहाराणं भंगोवदंसणया।

भावार्थ - नैगम व्यवहारनय सम्मत भंगोपदर्शनता का क्या स्वरूप है?

नैगम व्यवहारनय सम्मत भंगोपदर्शनता का स्वरूप इस प्रकार है - १. त्रिसमयस्थितियुक्त द्रव्य आनुपूर्वी २. एक समयस्थितियुक्त द्रव्य अनानुपूर्वी ३. द्विसमयस्थितियुक्त द्रव्य अवक्तव्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

४. त्रिसमयस्थितियुक्त अनेक द्रव्य आनुपूर्वियाँ ५. एक समयस्थितियुक्त अनेक द्रव्य अनानुपूर्वियाँ तथा ६. द्विसमयस्थितियुक्त अनेक द्रव्य अवक्तव्य (बहुवचन) हैं।

अथवा, त्रिसमयस्थितिक एवं एकसमयस्थितिक द्रव्य, आनुपूर्वी तथा अनानुपूर्वी के रूप में यहाँ छब्बीस भंग द्रव्यानुपूर्वी के पाठ की तरह ग्राह्य हैं यावत् यह नैगमव्यवहार सम्मत भंगोपदर्शनता का स्वरूप है।

(१११)

(द) समवतार

से किं तं समोयारे? समोयारे - णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं कहिं समोयरंति? किं आणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति? अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति? अवत्तव्वयदव्वेहिं समोयरंति?

एवं तिण्णि वि सट्ठाणे समोयरंति इति भाणियव्वं। सेत्तं समोयारे।

भावार्थ - समवतार का क्या स्वरूप है? नैगम-व्यवहार सम्मत आनुपूर्वी द्रव्य कहाँ समवतरित होते हैं? क्या आनुपूर्वी द्रव्यों में समवतरित होते हैं? अनानुपूर्वी द्रव्यों में समवतरित होते हैं? अवक्तव्य द्रव्यों में समवतरित होते हैं?

(यहाँ यह ज्ञातव्य है) तीनों ही स्व-स्व स्थानों में समवतरित होते हैं, ऐसा पूर्वानुसार कथनीय है।

यह समवतार का विवेचन है।

(११२)

अनुगम एवं इसके भेद

से किं तं अणुगमे? अणुगमे णवविहे पण्णत्ते। तंजहा -

गाहा - संतपयपरूवणया, दव्वपमाणं च खित्तं फुसणा य।
कालो य अंतरं भाग, भावे अप्पाबहुं चेव॥१॥

भावार्थ - अनुगम कितने प्रकार का है?

अनुगम नौ प्रकार का बतलाया गया है -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गाथा - १. सत्पदप्ररूपणता २. द्रव्यप्रमाण ३. क्षेत्र ४. स्पर्शना ५. काल ६. अंतर ७. भाग ८. भाव एवं ६. अल्पबहुत्व॥१॥

णेगमववहाराणं आणुपुव्वी दव्वाइं किं अत्थि णत्थि?

णियमा तिण्णि वि अत्थि।

भावार्थ - नैगम-व्यवहार सम्मत आनुपूर्वी द्रव्यों का क्या अस्तित्व है या नहीं?

नियमतः तीनों ही द्रव्य हैं।

णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं किं संखिज्जाइं? असंखिज्जाइं? अणंताइं?

णो संखिज्जाइं, णियमा असंखिज्जाइं, णो अणंताइं। एवं दुण्णि वि।

भावार्थ - नैगमव्यवहारानुरूप आनुपूर्वी द्रव्य क्या संख्यात, असंख्यात, अनंत हैं?

(वे) न संख्यात हैं और न अनंत हैं, (वरन्) नियमतः असंख्यात हैं।

यही तथ्य शेष दोनों (अनानुपूर्वी एवं अवक्तव्य) के संदर्भ में ज्ञातव्य है।

णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं लोगस्स किं संखिज्जइभागे होज्जा? असंखिज्जइभागे होज्जा? संखेज्जेसु भागेसु होज्जा? असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा? सव्वलोए होज्जा?

एगं दव्वं पडुच्च संखिज्जइभागे वा होज्जा, असंखिज्जइभागे वा होज्जा, संखेज्जेसु भागेसु वा होज्जा, असंखेज्जेसु भागेसु वा होज्जा, (प)देसूणे वा लोए होज्जा। णाणादव्वाइं पडुच्च णियमा सव्वलोए होज्जा। (आए संतरेण वा सव्वपुच्छासु होज्जा) एवं अणाणुपुव्वीदव्वाणि अवत्तव्वगदव्वाणि वि जहा खेत्ताणुपुव्वीए। एवं फुसणा कालाणुपुव्वीए वि तहा चेव भाणियव्वा।

भावार्थ - नैगम-व्यवहारनयानुरूप आनुपूर्वी (अनेक) द्रव्य क्या लोक के संख्यात भाग में होते हैं? असंख्यात भाग में होते हैं? संख्यात भागों में होते हैं? असंख्यात भागों में होते हैं? (या) सर्वलोक में होते हैं?

एक द्रव्य की प्रतीति से वे लोक के संख्यात भाग में होते हैं अथवा असंख्यात भाग में होते हैं अथवा संख्यात भागों में होते हैं या असंख्यात भागों में होते हैं या देश कम लोक में होते हैं। अनेक द्रव्यों की अपेक्षा से वे नियम से समस्त लोक में होते हैं। (आदेश या संदर्भ के अंतर से सभी प्रश्नों पर यह विधि लागू है।)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसी प्रकार अनानुपूर्वी द्रव्यों एवं अवक्तव्य द्रव्यों के संदर्भ में क्षेत्रानुपूर्वी में आए वर्णन के अनुसार ग्राह्य है।

इसी भाँति कालानुपूर्वी के इस संदर्भ में स्पर्शनाद्वार का विवेचन (क्षेत्रानुपूर्वी की तरह) कथनीय है।

णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं कालओ केवच्चिरं होंति?

एगं दव्वं पडुच्च जहण्णेणं तिण्णि समया, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं। णाणादव्वाइं पडुच्च सव्वद्धा।

भावार्थ - नैगम-व्यवहारानुरूप आनुपूर्वी द्रव्य कालापेक्षया कितनी समयावधि पर्यन्त रहते हैं?

एक द्रव्य की अपेक्षा से जघन्यतः तीन समय एवं उत्कृष्टतः असंख्यात काल पर्यन्त रहते हैं। अनेक द्रव्यों की अपेक्षा से वे सर्वकालिक हैं।

णेगमववहाराणं अणाणुपुव्वीदव्वाइं कालओ केवच्चिरं होंति?

एगं दव्वं पडुच्च अजहण्णमणुक्कोसेणं एक्कं समयं, णाणादव्वाइं पडुच्च सव्वद्धा।

शब्दार्थ - **अजहण्णमणुक्कोसेणं** - अजघन्य-अनुत्कृष्ट।

भावार्थ - नैगमव्यवहार सम्मत अनानुपूर्वी द्रव्य कालापेक्षया कितनी समयावधि पर्यन्त रहते हैं?

एक द्रव्य की प्रतीति से (अनानुपूर्वी द्रव्यों की) अजघन्य और अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय, (परन्तु) अनेक द्रव्यापेक्षया सर्वकालिक होती है।

अवत्तव्वगदव्वाणं पुच्छा?

एगं दव्वं पडुच्च अजहण्णमणुक्कोसेणं दो समया, णाणादवाइं पडुच्च सव्वद्धा।

भावार्थ - अवक्तव्य द्रव्यों के संदर्भ में भी यही प्रश्न है -

एक द्रव्य की अपेक्षा से (अवक्तव्य द्रव्यों की) अजघन्य और अनुत्कृष्ट स्थिति दो समय, (परन्तु) नाना द्रव्यों की अपेक्षा सर्वकालिक होती है।

णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाणमंतरं कालओ केवच्चिरं होइ?

एगं दव्वं पडुच्च जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं दो समया। णाणादव्वाइं पडुच्च णत्थि अंतरं।

भावार्थ - नैगम-व्यवहार सम्मत आनुपूर्वी द्रव्यों का कालापेक्षया कितना अंतर होता है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एक द्रव्य की प्रतीति से जघन्यतः एक समय तथा उत्कृष्टतः दो समय होता है। अनेक द्रव्यों की अपेक्षा से इनमें कोई अन्तर नहीं होता।

णेगमववहाराणं अणाणुपुव्वीदव्वाणं अंतरं कालओ केवच्चिरं होइ?

एगं दव्वं पडुच्च जहण्णेणं दो समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं। णाणादव्वाइं पडुच्च णत्थि अंतरं।

भावार्थ - नैगम-व्यवहार सम्मत अनानुपूर्वी द्रव्यों का कालापेक्षया कितना अन्तर होता है?

एक द्रव्यापेक्षया जघन्यतः दो समय तथा उत्कृष्टतः असंख्यात काल होता है। अनेक द्रव्यों की अपेक्षा से कोई अन्तर नहीं होता।

णेगमववहाराणं अवत्तव्वगदव्वाणं पुच्छा?

एगं दव्वं पडुच्च जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं। णाणादव्वाइं पडुच्च णत्थि अंतरं।

भावार्थ - नैगम-व्यवहार सम्मत अवक्तव्य द्रव्यों के संदर्भ में भी यही प्रश्न है?

एक द्रव्यापेक्षया कम से कम एक समय तथा अधिक से अधिक असंख्यात काल का होता है। (परन्तु) नानाद्रव्यापेक्षया कोई अन्तर नहीं होता।

भागभावअप्पाबहुं चेव जहा खेत्ताणुपुव्वीए तहा भाणियव्वाइं जाव सेत्तं अणुगमे। सेत्तं णेगमववहाराणं अणोवणिहिया कालाणुपुव्वी।

भावार्थ - (अनुगम के ७ वें, ८ वें एवं ९ वें भेद) भाग, भाव एवं अल्पबहुत्व के विषय में क्षेत्रानुपूर्वी में आए (अनुगम के) विवेचनानुसार जानना चाहिए यावत् यह अनुगम का स्वरूप है।

यहाँ नैगम-व्यवहारानुरूप अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी का विवेचन परिसमाप्त होता है।

(११३)

संग्रहनयानुरूप अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी

से किं तं संगहस्स अणोवणिहिया कालाणुपुव्वी?

संगहस्स अणोवणिहिया कालाणुपुव्वी पंचविहा पण्णत्ता। तंजहा - अट्ठपयपरूवणया १ भंगसमुक्कित्तणया २ भंगोवदंसणया ३ समोयारे ४ अणुगमे ५।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - संग्रहनय सम्मत अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी के कितने भेद हैं?

संग्रहनय सम्मत अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी पाँच प्रकार की बतलाई गई है -

१. अर्थपदप्ररूपणता २. भंगसमुत्कीर्तनता ३. भंगोपदर्शनता ४. समवतार और ५. अनुगम।

(११४)

से किं तं संगहस्स अट्ठपयपरूवणया?

संगहस्स अट्ठपयपरूवणया-एयाइं पंच वि दाराइं जहा खेत्ताणुपुव्वीए संगहस्स कालाणुपुव्वीए वि तहा भाणियव्वाणि। णवरं ठिई-अभिलावो जाव सेत्तं अणुगमे। सेत्तं संगहस्स अणोवणिहिया कालाणुपुव्वी।

शब्दार्थ - **अभिलावो** - अभिलाप-पाठ।

भावार्थ - संग्रहनयानुरूप अर्थ पद प्ररूपणता का क्या स्वरूप है?

संग्रहनय सम्मत अर्थ पद प्ररूपणता आदि पांचों द्वारों का विवेचन इस कालानुपूर्वी के संदर्भ में क्षेत्रानुपूर्वी की भांति कथनीय है। विशेष बात यह है, 'प्रदेशावगाहयुक्त' के स्थान पर 'स्थिति' ऐसा पाठ ग्राह्य है यावत् यह अनुगम का स्वरूप है।

इस प्रकार संग्रहनयानुरूप अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी का विवेचन संपन्न होता है।

(११५)

औपनिधिकी कालानुपूर्वी

से किं तं उवणिहिया कालाणुपुव्वी?

उवणिहिया कालाणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता। तंजहा - पुव्वाणुपुव्वी १ पच्छाणुपुव्वी २ अणाणुपुव्वी ३।

से किं तं पुव्वाणुपुव्वी?

पुव्वाणुपुव्वी - समए १ आवलिया २ आणापाणू ३ थोवे ४ लवे ५ मुहुत्ते ६ अहोरत्ते ७ पक्खे ८ मासे ९ उऊ १० अयणे ११ संवच्छरे १२ जुगे १३ वाससए १४ वाससहस्से १५ वाससयसहस्से १६ पुव्वंगे १७ पुव्वे १८ तुडियंगे १९ तुडिए २०अडडंगे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२१ अडडे २२ अववंगे २३ अववे २४ हुहुयंगे २५ हुहुए २६ उप्पलंगे २७ उप्पले २८ पउमंगे २९ पउमे ३० णलिणंगे ३१ णलिणे ३२ अत्थणिउरंगे ३३ अत्थणिउरे ३४ अउयंगे ३५ अउए ३६ णउयंगे ३७ णउए ३८ पउयंगे ३९ पउए ४० चूलियंगे ४१ चूलिया ४२ सीसपहेलियंगे ४३ सीसपहेलिया ४४. पलिओवमे ४५ सागरोवमे ४६ ओसप्पिणी ४७ उस्सप्पिणी ४८ पोग्गलपरियट्टे ४९ अतीतद्धा ५० अणागयद्धा ५१ सव्वद्धा ५२। सेत्तं पुव्वाणुपुव्वी।

भावार्थ - औपनिधिकी कालानुपूर्वी कितने प्रकार की है?

औपनिधिकी कालानुपूर्वी तीन प्रकार की प्रज्ञप्त हुई है - १. पूर्वानुपूर्वी २. पश्चानुपूर्वी एवं ३. अनानुपूर्वी।

पूर्वानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

निम्नांकित रूप (बढ़ते क्रम) से पदों का व्यवस्थापन करना पूर्वानुपूर्वी है - यथा - १. समय २. आवलिका ३. आनप्राण ४. स्तोक ५. लव ६. मुहूर्त्त ७. अहोरात्र ८. पक्ष ९. मास १०. ऋतु ११. अयन १२. संवत्सर १३. युग १४. वर्षशत १५. वर्षसहस्त्र १६. वर्षशतसहस्त्र १७. पूर्वांग १८. पूर्व १९. त्रुटितांग २०. त्रुटित २१. अडडांग २२. अडड २३. अववांग २४. अवव २५. हुहुकांग २६. हुहुक २७. उत्पलांग २८. उत्पल २९. पद्मांग ३०. पद्म ३१. नलिनांग ३२. नलिन ३३. अर्थनिपुरांग ३४. अर्थनिपुर ३५. अयुतांग ३६. अयुत ३७. नयुतांग ३८. नयुत ३९. प्रयुतांग ४०. प्रयुत ४१. चूलिकांग ४२. चूलिका ४३. शीर्षप्रहेलिकांग ४४. शीर्ष प्रहेलिका ४५. पल्योपम ४६. सागरोपम ४७. अवसर्पिणी ४८. उत्सर्पिणी ४९. पुद्गल परावर्त ५०. अतीताद्धा ५१. अनागताद्धा ५२. सर्वाद्धा।

यह पूर्वानुपूर्वी का विवेचन है।

से किं तं पच्छाणुपुव्वी?

पच्छाणुपुव्वी-सव्वद्धा ५२ अणागयद्धा ५१ जाव समए १। सेत्तं पच्छाणुपुव्वी।

भावार्थ - पश्चानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

५२. सर्वाद्धा ५१. अनागताद्धा यावत् १. समय पर्यन्त पदों का विपरीत क्रम में संस्थापन पश्चानुपूर्वी है।

यह पश्चानुपूर्वी का निरूपण है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से किं तं अणाणुपुव्वी?

अणाणुपुव्वी-एयाए चेव एगाइयाए एगुत्तरियाए अणंतगच्छगयाए सेढीए अण्णमण्णब्भासो दुरूवूणो। सेत्तं अणाणुपुव्वी।

भावार्थ - अनानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

इन्हीं (उपर्युक्त उदाहरणानुसार समय आदि) को एक से शुरू कर एक-एक की उत्तरोत्तर वृद्धि करते हुए अनंत-सर्वाद्धा पर्यन्त प्राप्त राशि में परस्पर गुणन करने से प्राप्त राशि में से प्रथम एवं अंतिम राशि को अलग करने से बची शेष राशि अनानुपूर्वी है।

यह अनानुपूर्वी का वर्णन है।

औपनिधिकी कालानुपूर्वी का अन्यविध निरूपण

अहवा उवणिहिया कालाणुपुव्वी तिविहपण्णत्ता। तंजहा - पुव्वाणुपुव्वी १ पच्छाणुपुव्वी २ अणाणुपुव्वी ३।

से किं तं पुव्वाणुपुव्वी? पुव्वाणुपुव्वी - एगसमयट्ठिइए, दुसमयट्ठिइए, तिसमयट्ठिइए जाव दससमयट्ठिइए, संखिज्जसमयट्ठिइए, असंखिज्जसमयट्ठिइए। सेत्तं पुव्वाणुपुव्वी।

से किं तं पच्छाणुपुव्वी? पच्छाणुपुव्वी- असंखिज्जसमयट्ठिइए जाव एगसमयट्ठिइए। सेत्तं पच्छाणुपुव्वी?

से किं तं अणाणुपुव्वी?

अणाणुपुव्वी-एयाए चेव एगाइयाए एगुत्तरियाए असंखिज्जगच्छगयाए सेढीए अण्णमण्णब्भासो दुरूवूणो। सेत्तं अणाणुपुव्वी। सेत्तं उवणिहिया कालाणुपुव्वी। सेत्तं कालाणुपुव्वी।

भावार्थ - अथवा, औपनिधिकी कालानुपूर्वी तीन प्रकार की प्रज्ञप्त हुई है - १. पूर्वानुपूर्वी २. पश्चानुपूर्वी एवं ३. अनानुपूर्वी।

पूर्वानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

एकसमय स्थितिक, द्विसमय स्थितिक, त्रिसमयस्थितिक यावत् दस समय स्थितिक, संख्यात समय स्थितिक, असंख्यात समय स्थितिक - इस क्रम से पदों की स्थापना करना पूर्वानुपूर्वी है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यह पूर्वानुपूर्वी का विवेचन है।

पश्चानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

असंख्यात समय स्थितिक यावत् एक समय स्थितिक पर्यन्त विपरीत क्रम में पदविन्यास पश्चानुपूर्वी है।

यह पश्चानुपूर्वी का विवेचन है।

अनानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

एक-एक के क्रम से (क्रमशः) वृद्धि करते हुए असंख्यात पर्यन्त प्राप्त श्रेणी में परस्पर गुणन से प्राप्त राशि में से प्रथम एवं अंतिम राशि को छोड़ने पर प्राप्त अवशिष्ट भंग अनानुपूर्वी रूप हैं।

यह अनानुपूर्वी का विवेचन है।

यह औपनिधिकी कालानुपूर्वी का विवेचन है।

इस प्रकार कालानुपूर्वी का विवेचन परिसंपन्न होता है।

(११६)

उत्कीर्तनानुपूर्वी का स्वरूप

से किं तं उक्कित्तणाणुपुव्वी?

उक्कित्तणाणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता। तंजहा - पुव्वाणुपुव्वी १ पच्छाणुपुव्वी २ अणाणुपुव्वी य ३।

से किं तं पुव्वाणुपुव्वी?

पुव्वाणुपुव्वी-उसभे १ अजिए २ संभवे ३ अभिणंदणे ४ सुमई ५ पउमप्पहे ६ सुपासे ७ चंदप्पहे ८ सुविही ९ सीयले १० सेज्जंसे ११ वासुपुज्जे १२ विमले १३ अणंते १४ धम्मे १५ संती १६ कुंथू १७ अरे १८ मल्ली १९ मुणिसुव्वए २० णमी २१ अरिट्ठणेमी २२ पासे २३ वद्धमाणे २४। सेत्तं पुव्वाणुपुव्वी।

से किं तं पच्छाणुपुव्वी?

पच्छाणुपुव्वी - वद्धमाणे २४ जाव उसभे १। सेत्तं पच्छाणुपुव्वी।

से किं तं अणाणुपुव्वी?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अणाणुपुव्वी-एयाए चेव एगाइयाए एगुत्तरियाए चउवीसगच्छगयाए सेढीए अण्णमण्णब्भासो दुरूवूणो। सेत्तं अणाणुपुव्वी। सेत्तं उक्कित्तणाणुपुव्वी।

शब्दार्थ - उक्कित्तणाणुपुव्वी - उत्कीर्तनानुपूर्वी।

भावार्थ - उत्कीर्तनानुपूर्वी कितने प्रकार की है?

उत्कीर्तनानुपूर्वी - पूर्वानुपूर्वी, पश्चानुपूर्वी एवं अनानुपूर्वी के रूप में तीन प्रकार की प्रज्ञापित हुई है।

पूर्वानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

१. ऋषभ २. अजित ३. संभव ४. अभिनंदन ५. सुमति ६.पद्मप्रभ ७. सुपार्श्व ८. चन्द्रप्रभ ९. सुविधि १०. शीतल ११. श्रेयांस १२. वासुपूज्य १३. विमल १४. अनंत १५. धर्म १६. शांति १७. कुन्थु १८. अर १९. मल्लि २०. मुनिसुव्रत २१. नमि २२. अरिष्टनेमि २३. पार्श्व एवं २४. वर्धमान -

इस क्रम से (इन पवित्र नामों का) उत्कीर्तन - उच्चारण करना पूर्वानुपूर्वी है।

यह पूर्वानुपूर्वी का विवेचन है।

पश्चानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

२४. वर्द्धमान से प्रारम्भ कर यावत् १. ऋषभ पर्यन्त (विपरीत क्रम से) उत्कीर्तन करना - नाम उच्चारण करना पश्चानुपूर्वी है।

अनानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

(उपर्युक्त उदाहरणानुसार ऋषभ से लेकर वर्द्धमान पर्यन्त) एक से लेकर एक-एक की वृद्धि करते हुए चौबीस पर्यन्त श्रेणी को स्थापित कर, परस्पर गुणा करने से प्राप्त राशि में से प्रथम और अंतिम भंग को कम करने से अवशिष्ट भंग अनानुपूर्वी रूप हैं।

यह उत्कीर्तनानुपूर्वी का निरूपण है।

(११७)

गणनानुपूर्वी का निरूपण

से किं तं गणणाणुपुव्वी?

गणणाणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता। तंजहा - पुव्वाणुपुव्वी १ पच्छाणुपुव्वी २ अणाणुपुव्वी ३।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से किं तं पुव्वाणुपुव्वी ?

पुव्वाणुपुव्वी-एगो, दस, सयं, सहस्सं, दससहस्साइं, सयसहस्सं दससयसहस्साइं, कोडी, दसकोडीओ, कोडीसयं, दसकोडिसयाइं। सेत्तं पुव्वाणुपुव्वी।

से किं तं पच्छाणुपुव्वी?

पच्छाणुपुव्वी-दसकोडिसयाइं जाव ए(क्को)गो। सेत्तं पच्छाणुपुव्वी।

से किं तं अणाणुपुव्वी?

अणाणुपुव्वी-एयाए चेव एगाइयाए एगुत्तरियाए दसकोडिसयगच्छगयाए सेढीए अण्णमण्णब्भासो दुरूवूणो। सेत्तं अणाणुपुव्वी। सेत्तं गणणाणुपुव्वी।

भावार्थ - गणनानुपूर्वी कितने प्रकार की है?

गणनानुपूर्वी - १. पूर्वानुपूर्वी २. पश्चानुपूर्वी एवं ३. अनानुपूर्वी के रूप में तीन प्रकार की प्रज्ञप्त हुई है।

पूर्वानुपूर्वी का कैसा स्वरूप है?

एक, दस, सौ, हजार, दस हजार, एक लाख, दस लाख, एक करोड़, दस करोड़, सौ करोड़, हजार करोड़ - यों क्रमशः गणना पूर्वानुपूर्वी है। यह पूर्वानुपूर्वी का निरूपण है।

पश्चानुपूर्वी किस प्रकार की है?

हजार करोड़ से प्रारंभ कर (व्यतिक्रम से) यावत् एक तक की गणना करना पश्चानुपूर्वी है।

यह पश्चानुपूर्वी का स्वरूप है।

अनानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

इन्हीं को एक से प्रारंभ कर एक-एक की वृद्धि करते हुए हजार करोड़ तक की स्थापित श्रेणी के अंकों का परस्पर गुणन करने पर जो राशि - भंग प्राप्त हों, उनमें से आदि और अंत के दो भंगों को कम करने पर अवशिष्ट रहे भंग अनानुपूर्वी रूप हैं।

यह अनानुपूर्वी का विवेचन है।

इस प्रकार गणनानुपूर्वी का वर्णन परिसमाप्त होता है।

विवेचन - आगमकार गिनती की अपेक्षा कोटि (करोड़) से आगे की संख्या को दस कोटि, सौ कोटि आदि के रूप में बताते हैं। इसी गिनती में आगे बढ़ कर कोटि कोटि आदि के रूप में बताते हैं। अरब, खरब आदि शब्दों का प्रयोग नहीं करते हैं। यह आगमकारों के वर्णन करने की

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विशिष्ट शैली है। कोटि कोटि आदि शब्दों के द्वारा अनेक अंकों की संख्या को भी बताया जा सकता है। लौकिक व्यवहार (सरकारी कार्यों) में भी प्रमुख रूप से करोड़ तक की संख्या को ही गिनती में लिया जाता है। इसके आगे दस करोड़, सौ करोड़, हजार करोड़ इत्यादि के रूप में राशियों को बता दिया जाता है।

(११८)

संस्थानानुपूर्वी का विवेचन

से किं तं संठाणाणुपुव्वी?

संठाणाणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता। तंजहा - पुव्वाणुपुव्वी १ पच्छाणुपुव्वी २ अणाणुपुव्वी ३।

से किं तं पुव्वाणुपुव्वी?

पुव्वाणुपुव्वी-समचउरंसे १ णिग्गोहमंडले २ साई ३ खुज्जे ४ वामणे ५ हुंडे ६। सेत्तं पुव्वाणुपुव्वी।

से किं तं पच्छाणुपुव्वी?

पच्छाणुपुव्वी - हुंडे ६ जाव समचउरंसे १। सेत्तं पच्छाणुपुव्वी।

से किं तं अणाणुपुव्वी?

अणाणुपुव्वी - एयाए चेव एगाइयाए एगुत्तरियाए छगच्छगयाए सेढीए अण्णमण्णब्भासो दुरूवूणो। सेत्तं अणाणुपुव्वी। सेत्तं संठाणाणुपुव्वी।

शब्दार्थ - संठाणाणुपुव्वी - संस्थानानुपूर्वी।

भावार्थ - संस्थानानुपूर्वी कितने प्रकार की है?

संस्थानानुपूर्वी - १. पूर्वानुपूर्वी २. पश्चानुपूर्वी एवं ३. अनानुपूर्वी के रूप में तीन प्रकार की परिज्ञापित हुई है।

पूर्वानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

(निम्नांकित क्रम से) संस्थानों के विन्यास को पूर्वानुपूर्वी कहते हैं - १. समचतुरस्रसंस्थान २. न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थान ३. सादिसंस्थान ४. कुब्जसंस्थान ५. वामनसंस्थान ६. हुंडसंस्थान।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यह पूर्वानुपूर्वी का वर्णन है।

पश्चानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

६. हुंडसंस्थान से लेकर यावत् १. समचतुरस्रसंस्थान पर्यन्त विपरीत क्रम से इन संस्थानों का विन्यास पश्चानुपूर्वी है। यह पश्चानुपूर्वी का विवेचन है।

अनानुपूर्वी का कैसा स्वरूप है?

प्रथम (समचतुरस्र संस्थान) से प्रारंभ कर हुंडसंस्थान पर्यन्त उत्तरोत्तर एक-एक की वृद्धि करते जाने से निष्पन्न श्रेणी में विद्यमान संख्या का परस्पर गुणन करने पर, गुणनफल के रूप में प्राप्त राशि में से आदि और अन्त - दो भंगों को कम करने से अवशिष्ट भंग अनानुपूर्वी रूप हैं।

यह अनानुपूर्वी का वर्णन है।

इस प्रकार संस्थानानुपूर्वी का विवेचन समाप्त होता है।

विवेचन - संस्थानानुपूर्वी का संबंध संस्थान से है। **'सम्यक् स्थियते यस्मिन् तत्संस्थानम्'** - जिसमें भलीभाँति स्थित हुआ जाता है, उसे संस्थान कहा जाता है। तदनुसार संस्थान का अर्थ आकार या आकृति है। इस सूत्र में पंचेन्द्रिय जीव के छह संस्थानों का उल्लेख हुआ है। इसका तात्पर्य यह है कि उनके दैहिक आकार आंगिक भिन्नता के आधार पर छह प्रकार के होते हैं। इन छहों का संक्षेप में वर्णन इस प्रकार है -

१. समचतुरस्र संस्थान - सम+चतुः+अस्र - इन तीन के मेल से समचतुरस्र शब्द बना है। 'सम' - समान का, 'चतुः' - चार का तथा 'अस्र' - दैहिक कोनों (किनारों) का वाचक है।

''समाः चतस्रोऽस्रयो यस्मिन् यत्र वा तत् समचतुरस्रम्'' - जिस देह के चारों कोण समान हों, उसे समचतुरस्र कहा जाता है। पलाथी मारकर बैठने पर जिस देह के चारों कोने समान हों, वह समचतुरस्र संस्थान है। अर्थात् इस संस्थान में आसन और कपाल का, दोनों जानुओं का, बाएँ स्कंध और दाहिने जानु का, दाहिने स्कंध और बाएँ जानु का अन्तर समान होता है।

दूसरे प्रकार से इसकी व्याख्या यों भी की जाती है कि सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार जिस देह के समग्र अवयव समुचित प्रमाणयुक्त हों, उसे समचतुरस्र संस्थान के रूप में अभिहित किया जाता है।

२. न्यग्रोधपरिमंडल संस्थान - न्यग्रोध का अर्थ बरगद का पेड़ है। परिमंडल का तात्पर्य उसका विस्तार या फैलाव है। बरगद का वृक्ष ऊपरी भाग में विशेष फैला हुआ होता है और नीचे के भाग में संकुचित होता है। उसी प्रकार जिस दैहिक आकार में नाभि के ऊपर का भाग विस्तार युक्त हो, नीचे का भाग हीन अवयव युक्त हो उसे न्यग्रोध परिमंडल संस्थान कहते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३. सादि संस्थान - 'सादि' शब्द 'स+आदि' से बना है। 'स' का तात्पर्य 'साथ' है तथा 'आदि' का अर्थ प्रारंभिक भाग है। नाभि से नीचे का भाग यहाँ आदि से गृहीत है। क्योंकि दैहिक वर्णन में देहयष्टि का प्रारंभ चरणों से माना गया है। इससे आगे बढ़ते-बढ़ते मस्तक तक वर्णन होता है। इस क्रम को उत्सेध कहा जाता है। इस संस्थान में नाभि से नीचे का भाग प्रमाणोपेत तथा ऊपर का भाग हीन होता है।

कहीं-कहीं सादि संस्थान को साची संस्थान भी कहा गया है। साची का अर्थ शाल्मली या सेमल का वृक्ष है। उसका नीचे का तना जितना परिपुष्ट होता है, उतना ऊपर का भाग नहीं होता। उसी प्रकार जिस शरीर में नाभि के नीचे का भाग परिपुष्ट तथा ऊपर का भाग हीन होता है, वह साची संस्थान है।

४. कुब्ज संस्थान - जिस देह में हाथ, पैर, मस्तक, ग्रीवा आदि अंग प्रमाणोपेत या पूर्ण हों, परन्तु वक्ष, उदर, पीठ आदि वक्र या टेढ़े-मेढ़े हों, उसे कुब्ज संस्थान कहा जाता है।

५. वामन संस्थान - जिस देह में वक्ष, पीठ, उदर आदि प्रमाणोपेत हों किन्तु हाथ, पैर आदि अवयव हीन होते हैं, उसे वामन संस्थान कहा जाता है। बौने व्यक्तियों का यही संस्थान है।

६. हुंड संस्थान - जिस देह के समस्त अंग अप्रमाणोपेत हों, बेढंगे हों, अर्थात् एक भी अवयव शास्त्रोक्त प्रमाणानुसार न हो, वह हुंड संस्थान है।

(११९)

समाचारी - आनुपूर्वी का निरूपण

से किं तं सामायारीआणुपुव्वी?

सामायारी आणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता। तंजहा- पुव्वाणुपुव्वी १ पच्छाणुपुव्वी २ अणाणुपुव्वी ३।

से किं तं पुव्वाणुपुव्वी? पुव्वाणुपुव्वी-

गाहा - इच्छा-मिच्छा-तहक्कारो, आवस्सिया य णिसीहिया।

आपुच्छणा य पडिपुच्छा, छंदणा य णिमंतणा॥१॥

उवसंपया य काले समायारी भवे दसविहा उ। सेत्तं पुव्वाणुपुव्वी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से किं तं पच्छाणुपुव्वी?

पच्छाणुपुव्वी-उवसंपया जाव इच्छागारो। सेत्तं पच्छाणुपुव्वी।

से किं तं अणाणुपुव्वी?

अणाणुपुव्वी-एयाए चेव एगाइयाए एगुत्तरियाए दसगच्छगयाए सेढीए अण्णमण्णब्भासो दुरूवूणो। सेत्तं अणाणुपुव्वी। सेत्तं सामायारी आणुपुव्वी।

भावार्थ - समाचारी - आनुपूर्वी कितने प्रकार की होती है?

समाचारी - आनुपूर्वी तीन प्रकार की प्रतिपादित हुई है - १. पूर्वानुपूर्वी २. पश्चानुपूर्वी एवं ३. अनानुपूर्वी।

पूर्वानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

गाथा - १. इच्छाकार २. मिथ्याकार ३. तथाकार ४. आवश्यकी ५. नैषेधिकी ६. आपृच्छना ७. प्रतिपृच्छना ८. छंदना ९. निमंत्रणा और १०. उपसंपदा के क्रम विन्यास से इन पदों की स्थापना करना पूवानुपूर्वी है। यह पूर्वानुपूर्वी का स्वरूप है।

पश्चानुपूर्वी का कैसा स्वरूप है?

१०. उपसंपदा से लेकर यावत् १. इच्छाकार पर्यन्त विपरीत क्रम में इन (१०) पदों का संस्थापन पश्चानुपूर्वी है।

अनानुपूर्वी का कैसा स्वरूप है?

एक (इच्छाकार) से लेकर एक-एक की उत्तरोत्तर वृद्धि करते हुए दस (उपसंपदा) तक की संस्थाओं को श्रेणी रूप में व्यवस्थित कर परस्पर गुणा करने से प्राप्त राशि में से प्रथम और अंतिम भंग को हटाने पर शेष भंग अनानुपूर्वी रूप हैं।

यह अनानुपूर्वी का वर्णन है।

इस प्रकार समाचारी आनुपूर्वी का विवेचन संपन्न होता है।

विवेचन - संयमानुकूल आचार विधा, जिससे आत्म-साधना परिपुष्ट हो, संयताचरणशील पुरुष जिसका आचरण करते रहे हों, वैसी संयममूलक कृत्यविधा समाचारी है।

जैन दर्शन में आचार का सर्वाधिक महत्त्व है। मनोवैज्ञानिक रूप में उस पर अग्रसर होने के लिए विशेष उपक्रम स्वीकार किए गए हैं। उनका एक मात्र यही उद्देश्य है कि साधक आत्म

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परिपंथी प्रत्यवायों/बाधाओ को दूर करता हुआ आत्मोन्नयन के पथ पर उत्तरोत्तर गतिशील होता रहे। समाचारी के क्रमानुसार दस प्रकार हैं -

१. इच्छाकार - सत्कर्म के पूर्व सदिच्छा का उद्‌भव होता है जो सहज है। अतएव बिना किसी दवाब के आन्तरिक प्रेरणा से व्रतादि का आचरण करना इच्छाकार कहा जाता है।

२. मिथ्याकार - जब तक साधना में पूर्णता नहीं आती, प्रमादवश अकृत्य का सेवन भी हो जाता है। वैसा होने पर यह चिन्तन करते हुए कि मैंने यह मिथ्या, असत् आचरण किया है, वैसा न हो, यों पश्चात्ताप करना मिथ्याकार है। यह आत्मसम्मार्जन का विशिष्ट हेतु है।

३. तथाकार - **'विणयमूलो धम्मो'** - के अनुसार जैन धर्म विनयमूलक है। धार्मिक जीवन में गुरु का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। गुरु के वनों को तथा या तथ्य (तहत्ति) कह कर आदर देना, तथाकार है।

४. आवश्यकी - आवश्यक कार्य हेतु स्थान से बाहर जाने का गुरु से निवेदन करना आवश्यकी है।

५. नैषेधिकी - कोई भी कार्य कर वापस आने पर स्थान में प्रवेश करने की सूचना देना नैषेधिकी है। इसका आशय जो कार्य करना था, अब वह अपेक्षित नहीं है, हो चुका है। यों इसमें उसका प्रतिषेध किया जाता है।

६. आपृच्छना - कोई भी कार्य करने से पहले गुरुवर से पूछना, उनकी आज्ञा प्राप्त करना पृच्छना है।

७. प्रतिपृच्छना - कार्य को शुरू करते समय पुनः गुरुवर्य से पूछना अथवा किसी कार्य के लिए गुरु ने मना कर दिया हो तो कुछ देर पश्चात् कार्य की अनिवार्यता निवेदित करते हुए पूछना, प्रतिपृच्छना है।

८. छन्दना - सांभोगिक - समान आचार विधा, परम्परा समन्वित साधुओं से अपने द्वारा लाया हुआ आहार आदि ग्रहण करने का निवेदन करना।

९. निमंत्रण - 'आहार आदि लाकर आपको दूंगा' - यों निवेदन कर अन्य साधुओं को तदर्थ आमंत्रित करना।

१०. उपसंपदा - श्रुत आदि प्राप्त करने हेतु अन्य साधुओं की अधीनता स्वीकार करना, उसके अनुशासन में रहना।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(१२०)

भावानुपूर्वी का विवेचन

से किं तं भावाणुपुव्वी?

भावाणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता। तंजहा - पुव्वाणुपुव्वी १ पच्छाणुपुव्वी २ अणाणुपुव्वी ३।

से किं तं पुव्वाणुपुव्वी?

पुव्वाणुपुव्वी-उदइए १ उवसमिए २ खाइए ३ खओवसमिए ४ पारिणामिए ५ सण्णिवाइए ६। सेत्तं पुव्वाणुपुव्वी।

से किं तं पच्छाणुपुव्वी?

पच्छाणुपव्वी-सण्णिवाइए ६ जाव उदइए १। सेत्तं पच्छाणुपुव्वी।

से किं तं अणाणुपुव्वी?

अणाणुपुव्वी-एयाए चेव एगाइयाए एगुत्तरियाए छगच्छगयाए सेढीए अण्णमण्णब्भासो दुरूवूणो। सेत्तं अणाणुपुव्वी। सेत्तं भावाणुपुव्वी। सेत्तं आणुपुव्वी।

॥ आणुपुव्वी त्ति पयं समत्तं॥

भावार्थ - भावानुपूर्वी कितने प्रकार की है?

विवेचन - भावानुपूर्वी तीन प्रकार की है - १. पूर्वानुपूर्वी २. पश्चानुपूर्वी तथा ३. अनानुपूर्वी।

पूर्वानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

१. औदयिक २. औपशमिक ३. क्षायिक ४. क्षायोपशमिक ५. पारिणामिक एवं ६. सान्निपातिक- इस क्रम से भावों का व्यवस्थापन पूर्वानुपूर्वी है। यह पूर्वानुपूर्वी का वर्णन है।

पश्चानुपूर्वी का कैसा स्वरूप है?

सान्निपातिक भाव से लेकर यावत् औदयिक भाव तक भावों को विपरीत क्रम से स्थापित करना, पश्चानुपूर्वी है। यह पश्चानुपूर्वी का वर्णन है।

अनानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एक (औदयिक) से लेकर एक-एक की उत्तरोत्तर वृद्धि करते हुए छह (सान्निपातिक) तक एक श्रेणी स्थापित करना तथा तदगत संख्याओं का परस्पर गुणन कर प्राप्त भंगों में से प्रथम एवं अंतिम भंग को हटा देने पर अवशिष्ट शेष भंग अनानुपूर्वी रूप हैं। यह अनानुपूर्वी का वर्णन है।

इस प्रकार भावानुपूर्वी का विवेचन परिसमाप्त होता है।

यहाँ आनुपूर्वी पद सम्पन्न होता है।

विवेचन - ''भवतीति भावः'' के अनुसार वस्तु का परिणाम या पर्याय भाव कहा जाता है। इसका संबंध जीव और अजीव दोनों से है। क्योंकि पर्याय परिवर्तन रूप भाव दोनों में प्राप्त होते हैं। यहाँ प्रयुक्त भाव शब्द अन्तःकरण की परिणति विशेष का द्योतक है अथवा उसके परिणाम विशेष हैं।

दूसरे शब्दों में, पर्यायों की ये विभिन्न अवस्थाएं - जीव का कर्म - संचय, संवरण, निर्धारण और परिणमन ही भाव कहलाती है।

भावों का संक्षिप्त निरूपण इस प्रकार हैं -

१. औदयिक - चार गतियाँ, चार कषाय, तीन वेद, छह लेश्याएं, मिथ्यादर्शन, अज्ञान, असंयम एवं असिद्ध - ये औदयिक भाव हैं।

कर्मों के विपाक से औदयिक भाव निष्पत्ति पाते हैं। विपाक का शाब्दिक अर्थ 'पकना' है। अर्थात् एक निश्चित समय के उपरान्त कर्मफल प्रकट होते हैं, उदित होते हैं, अपना प्रभाव दिखलाने लगते हैं। जल में मैल के मिश्रण से दृष्टिगोचर होने वाली स्थिति से इसे समझा जा सकता है। निम्नांकित इक्कीस औदयिक भाव हैं -

नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव- इन चतुर्गति में से किसी एक का, नाम कर्म के उदय से क्रोध, मान, माया, लोभ - चार कषायों में से किसी एक का, वेद-मोहनीय - स्त्री, पुरुष, नपुंसक में से किसी एक का तथा कृष्ण, नील, कापोत, तेजो, पद्म व शुक्ल - इन छह लेश्याओं में से किसी एक का अवश्य ही आविर्भाव रहता है। इसी प्रकार मिथ्यात्व मोहनीय के उदय से मिथ्यादर्शन का, ज्ञानावरणीय से अज्ञान का, अनन्तानुबंधी से असंयम का तथा वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र से असिद्धत्व का भाव उदय में रहता है।

२. औपशमिक - जो भाव सत्ता में विद्यमान रहते हैं, किन्तु कर्मों के अनुदित होने से उपशांत या अव्यक्त रहते हैं, वे औपशमिक भाव हैं। औपशमिक भाव सम्यक्त्व एवं चारित्र रूप दो प्रकार के हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

औपशमिक शब्द उपशम से बना है। 'उपशम' का तात्पर्य शान्त होने से है अर्थात् जैसे तेलगत मैल आदि अवशिष्ट पदार्थ जब तलछट के रूप में नीचे बैठ जाते हैं तो ऊर्ध्ववर्ती पदार्थ में स्वच्छता आ जाती है, उसी प्रकार यहाँ कर्मों की उपस्थिति तो होती है, परन्तु वे उदय में नहीं आ पाते।

औपशमिक भाव दो प्रकार के होते हैं -

१. सम्यक्त्व और २. चारित्र

दर्शन-मोहनीय कर्म के उपशम से सम्यक्त्व का तथा चारित्र मोहनीय कर्म के उपशम से चारित्र का आविर्भाव होता है अर्थात् औपशमिक भावों के उदय से दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय कर्मों के प्रदेश और विपाक दोनों प्रकार के उदय नहीं हो पाते हैं। ये कुछ समय के लिए ढक जाते हैं - उपशांत हो जाते हैं।

यहाँ यह ध्यातव्य है, उपशम भाव में जीव ग्यारहवें गुणस्थान तक की स्थिति प्राप्त कर लेता है। अतः यह एक प्रकार से आत्म-विशुद्धि का भी द्योतक है।

३. क्षायिक - जो कर्मों के क्षय से निष्पन्न होते हैं, वे क्षायिक भाव कहे जाते हैं। वे ज्ञान, दर्शन, लाभ, दान, भोग, उपभोग, वीर्य, सम्यक्त्व एवं चारित्र रूप हैं।

जैसे मैल के पूर्णतः निष्कासन से जल में नितान्त स्वच्छता उद्भासित होती है, वैसे ही कर्मावरणों के सर्वथा नाश से आत्मा के निर्मल भाव प्रवाहित होते हैं। ये नौ प्रकार के हैं। केवल ज्ञानावरण, केवल दर्शनावरण के क्षय से केवलज्ञान, केवल दर्शन तथा पंचविध अन्तराय के क्षय से दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य इन पांच लब्धियों से एवं दर्शन मोहनीय कर्म के क्षय से सम्यक्त्व तथा चारित्र मोहनीय कर्म के क्षय से चारित्र का आविर्भाव होता है।

४. क्षायोपशमिक - जो क्षय एवं उपशम से निष्पन्न होते हैं, वे भाव क्षायोपशमिक कहे जाते हैं। चार ज्ञान, तीन अज्ञान, तीन दर्शन, दान आदि पांच लब्धियाँ, सर्वविरति एवं देशविरति - ये क्षायोपशमिक भाव हैं।

इस अवस्था में कर्म-पुद्गलों का कुछ अंश उदय में आता है तथा कुछ भाग उपशांत रहता है अर्थात् यहाँ क्षय और उपशम - ये दोनों स्थितियाँ ही दृष्टिगत होती हैं। यह स्थिति ठीक वैसे ही है, जैसे पोस्त (अफीम) के डोडे को धोने से उसकी कुछ मादकता क्षीण हो जाती है एवं कुछ समायी रहती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चतुर्विध ज्ञानावरण के क्षयोपशम से मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्याय आविर्भूत होते हैं। त्रिविध अज्ञानावरण के क्षयोपशम से मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान और अवधि ज्ञान प्रकट होते हैं। त्रिविध दर्शनावरण के क्षयोपशम से चक्षु-दर्शन, अचक्षु-दर्शन एवं अवधि-दर्शन का उद्भव होता है। पंचविध अन्तराय के क्षयोपशम से दान-लाभादि पांच लब्धियों की प्राप्ति होती है। अनन्तानुबंधी चतुष्क - क्रोध, मान, माया, लोभ तथा दर्शनमोहनीय के क्षयोपशम से सम्यक्त्व उपलब्धि होती है। अनन्तानुबंधी, अप्रत्याख्यानी, प्रत्याख्यानावरण तथा संज्वल रूप क्रोध, मान, माया, लोभ के क्षयोपशम से चारित्र - सर्वविरति का भाव समुदित होता है।

अनन्तानुबंधी - क्रोध, मान, माया, लोभ तथा प्रत्याख्यानावरण - क्रोध, मान, माया, लोभ- इन आठ के क्षयोपशम से देश-विरति का भाव प्रकटित होता है। इस प्रकार ऊपर अठारह क्षायोपशमिक पर्यायों का निर्देश किया गया है।

५. पारिणामिक - द्रव्यों के परिणामात्मक भाव पारिणामिक हैं। जीवत्व, भव्यत्व एवं अभव्यत्व आदि भाव उन्हीं में समाविष्ट हैं।

द्रव्य का स्वाभाविक स्वरूपात्मक परिणमन, पारिणामिक भाव है अर्थात् ये द्रव्य के मूल स्वभाव रूप में हैं। अतः ये न तो कर्मों के उदय से, न उपशम से, न क्षय से और न ही क्षयोपशम से उत्पन्न होते हैं। अनादि सिद्ध आत्म द्रव्य के साथ परिणति रूप में सम्बद्ध होने के कारण ही ये पारिणामिक हैं।

जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व - ये तीन उनमें मुख्य भाव हैं। इसके अतिरिक्त अस्तित्व, अन्यत्व, कर्तृत्व, भोक्तृत्व, गुणत्व, प्रदेशत्व, असंख्यात प्रदेशत्व, असर्वगतत्त्व, अरूपत्व आदि भी यहाँ गणनीय हैं।

६. सान्निपातिक - 'एकाधिकानां निपतनं मलनं वा सन्निपातः' - एक से अधिक का मिलना सन्निपात कहा जाता है। सन्निपात से 'सान्निपातिक' विशेषण निष्पन्न होता है। भावों के साथ संलग्न यह विशेषण एकाधिक भावों के मिलन या मिश्रण का द्योतक है।

यह सन्निपात शब्द आयुर्वेद शास्त्र में भी विशेष रूप से प्रचलित है। वात, पित्त, कफ - जब तीनों दोष मिल जाते हैं तब उसे सन्निपात कहा जाता है। रोगी की वह दशा सान्निपातिक कही जाती है। इसमें रोगी उन्माद ग्रस्त हो जाता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(१२१)

नामाधिकार प्ररूपणा

से किं तं णामे?

णामे दसविहे पण्णत्ते। तंजहा - एगणामे १ दुणामे २ तिणामे ३ चउणामे ४ पंचणामे ५ छणामे ६ सत्तणामे ७ अट्ठणामे ८ णवणामे ९ दसणामे १०।

भावार्थ - नाम कितने प्रकार का है?

नाम के दस भेद बतलाए गए हैं - १. एक नाम २. दो नाम ३. तीन नाम ४. चार नाम ५. पाँच नाम ६. छह नाम ७. सात नाम ८. आठ नाम ९. नौ नाम १०. दस नाम।

(१२२)

एक नाम

से किं तं एगणामे? एगणामे -

गाहा - णामाणि जाणि काणि वि, दव्वाण गुणाण पज्जवाणं च।
तेसिं आगमणिहसे, 'णामं' ति परूविया सण्णा॥१॥

सेत्तं एगणामे।

शब्दार्थ - णामाणि - नाम, **जाणि** - जो, **काणि** - कौन से, **दव्वाण** - द्रव्यों के, **गुणाण** - गुणों के, **पज्जवाणं** - पर्यायों के, **णिहसे** - निकष-कसौटी, **सण्णा** - संज्ञा।

भावार्थ - एक नाम किसे कहा जाता है?

गाथा - द्रव्य, गुण तथा पर्याय आदि जो हैं, उन सबको आगम रूप कसौटी पर कस कर अर्थात् सम्यक् समीक्षण कर एक नाम से प्ररूपित किया गया है (जो सत् है)॥१॥

विवेचन - इस जगत् में जीव, अजीव, गुण, पर्याय इत्यादि के रूप में जितने भी पदार्थ हैं, उन सबका संसूचन करने हेतु उनके वाचक शब्द नाम कहे जाते हैं। इसका आशय यह है कि सत्ता के रूप में संसार के समस्त पदार्थों को देखा जाय तो उनके लिए सत् संज्ञा या नाम का प्रयोग होता है। **'अस्तीति सत्'** - जो अस्तित्व लिए हैं, वह सत् है। अतः यह एक नाम सबका - समस्त का वाचक बन गया है। इस एक नाम के अन्तर्गत समस्त पदार्थ जिनका अस्तित्व है, समाविष्ट हो जाते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(१२३)

द्विनाम का स्वरूप

से किं तं दुणामे?

दुणामे दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - एगक्खरिए य १ अणेगक्खरिए य २।

शब्दार्थ - दुणामे - द्विनाम, **एगक्खरिए** - एकाक्षरिक, **अणेगक्खरिए** - अनेकाक्षरिक।

भावार्थ - द्विनाम के कितने प्रकार हैं?

द्विनाम के एकाक्षरिक तथा अनेकाक्षरिक के रूप में दो प्रकार हैं।

से किं तं एगक्खरिए?

एगक्खरिए अणेगविहे पण्णत्ते। तंजहा - ह्री, श्री, धी, स्त्री। सेत्तं एगक्खरिए ✿।

भावार्थ - एकाक्षरिक कितने प्रकार के हैं?

एकाक्षरिक द्विनाम अनेक प्रकार के परिज्ञापित किए गए हैं, जैसे - ह्री, श्री, धी, स्त्री।

यह एकाक्षरिक का स्वरूप है।

विवेचन - इस सूत्र में एकाक्षरिक नामों के जो ह्री आदि उदाहरण दिए गए हैं, वे संस्कृत के रूप हैं। प्राकृत पाठ के साथ उदाहरण के रूप में संस्कृत के शब्द दिए जायं यह संगति घटित नहीं होती। पाठान्तर में **ही, सी, धी, थी** - ये अक्षर दिए गए हैं। ये प्राकृत के रूप हैं, मूल पाठ में ये ग्राह्य होने चाहिये। ऐसी संभावना की जाती है। तत्त्व (वास्तविकता) तो ज्ञानीगम्य है।

इस संबंध में व्याकरण की दृष्टि से यह ज्ञातव्य है कि स्वर-व्यंजनात्मक, वर्णमाला का प्रत्येक वर्ण, 'अक्षर' कहा जाता है। क्योंकि वह मूल रूप में कभी नष्ट नहीं होता। अर्थात् वर्ण और अक्षर दोनों समानार्थक हैं। स्वरों और व्यंजनों के रूप में वर्णमाला के दो भाग हैं। स्वरों के उच्चारण में किसी अन्य की आवश्यकता नहीं होती। व्यंजनों का स्पष्ट उच्चारण करने में स्वरों का योग अपेक्षित होता है। यहाँ पाठान्तर में जो उदाहरण दिए गए हैं, उनमें यद्यपि व्याकरण की दृष्टि से ह+इ=ही, स+इ=सी, ध+ई=धी, थ्+ई=थी - ये दो-दो अक्षरों के

✿ १ ही, २ सी (अवब्भंसे), ३ धी, ४ थी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सम्मिलित रूप हैं किन्तु प्राकृत पद्धति से एकाकी स्वर अथवा स्वरमिश्रित एक व्यंजन अक्षर के रूप में यहाँ लिए गए हैं। अतएव 'ह्री' आदि को एकाक्षरिक कहा गया है।

से किं तं अणेगक्खरिए?

अणेगक्खरिए-कण्णा, वीणा, लया, माला। सेत्तं अणेगक्खरिए।

भावार्थ - अनेकाक्षरिक कितने प्रकार के हैं?

अनेकाक्षरिक अनेक प्रकार के कहे गए हैं। जैसे - कन्या, वीणा, माला, लता आदि।

यह अनेकाक्षरिक का स्वरूप है।

विवेचन - कन्या, वीणा आदि शब्दों में एक से अधिक या अनेक अक्षरों का योग है, इसलिए इनकी संज्ञा अनेकाक्षरिक है।

एकाक्षरिक एवं अनेकाक्षरिक के रूप में द्विविधता के कारण द्विनाम की संगति या सार्थकता है।

अहवा दुणामे दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - जीवणामे य १ अजीवणामे य २।

भावार्थ - अथवा, द्विनाम दो प्रकार का बतलाया गया है - जीव नाम और अजीव नाम।

से किं तं जीवणामे?

जीवणामे अणेगविहे पण्णत्ते। तंजहा - देवदत्तो, जण्णदत्तो, विण्हुदत्तो, सोमदत्तो। सेत्तं जीवणामे।

भावार्थ - जीवनाम कितने प्रकार का है?

जीवनाम अनेक प्रकार का निरूपित हुआ है, जैसे - देवदत्त, यज्ञदत्त, विष्णुदत्त, सोमदत्त।

यह जीवनाम का निरूपण है।

से किं तं अजीवणामे?

अजीवणामे अणेगविहे पण्णत्ते। तंजहा - घडो, पडो, कडो, रहो। सेत्तं अजीवणामे।

शब्दार्थ - **घडो** - घट-घड़ा, **पडो** - पट-वस्त्र, **कडो** - कट-चटाई या कड़ा, **रहो** - रथ।

भावार्थ - अजीव नाम कितने प्रकार का है?

अजीव नाम अनेक प्रकार का परिज्ञापित हुआ है, जैसे - घट, पट, कट, रथ इत्यादि।

यह अजीव नाम का स्वरूप है।

विवेचन - जगत् जीव और अजीव दो पदार्थों का समन्वय है। चैतन्ययुक्त जीव और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चैतन्यविरहित अजीव हैं। जीव कहने मात्र से संसारगत समस्त जीवों की व्यावहारिक पहचान नहीं होती। अतएव उन्हें भिन्न-भिन्न नाम दिए गए हैं। जिनसे उनकी पहचान होती है। यही बात अजीव तत्त्व के साथ है। वहाँ भी अजीव पदार्थों के भिन्न-भिन्न पर्यायों के अनुरूप अलग-अलग नाम दिए गए हैं, जिनसे उनकी भिन्नता या पार्थक्य की पहचान होती है। इसी पद्धति से लोकव्यवहार सधता है।

जीव-अजीव की द्विविधता के कारण यहाँ द्विनाम की संगति है।

अहवा दुणामे दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - विसेसिए य १ अविसेसिए य २। अविसेसिए-दव्वे। विसेसिए - जीवदव्वे, अजीवदव्वे य। अविसेसिए-जीवदव्वे। विसेसिए-णेरइए, तिरिक्खजोणिए, मणुस्से, देवे।

शब्दार्थ - **विसेसिए** - विशेषित, **अविसेसिए** - अविशेषित।

भावार्थ - अथवा, द्विनाम द्विप्रकार का बतलाया गया है - विशेषित तथा अविशेषित।

अविशेषित द्रव्य रूप एवं विशेषित जीव द्रव्य एवं अजीव द्रव्य रूप है।

(अन्य अपेक्षा से) यदि जीव द्रव्य को अविशेषित मानते हैं तब नैरयिक, तिर्यंचयोनिक, मनुष्य और देव - (जीव के ये भिन्न-भिन्न गति रूप पर्याय) विशेषित होंगे।

विवेचन - उपर्युक्त सूत्र में आए 'विशेषित-अविशेषित' न्याय शास्त्र में वर्णित सामान्य और विशेष के द्योतक हैं। द्रव्य की दृष्टि से जीव और अजीव सामान्य की कोटि में आते हैं क्योंकि दोनों में द्रव्यत्व सामान्य है। इसलिए इस दृष्टि से वहाँ विशेषता या वैशिष्ट्य का अंकन नहीं होता। अतः द्रव्य रूप में जीव और अजीव को अविशेषित शब्द से अभिहित किया गया है। किन्तु द्रव्य के जीव और अजीव के रूप में दो भेदों पर विचार किया जाता है तब उनमें परस्पर गुण, पर्याय आदि की दृष्टि से विशेषता या भिन्नता होती है। इसी क्रम से आगे जब जीव और उसकी विभिन्न गतियों पर विचार किया जाता है तब जीव पद की अविशेषित संज्ञा तथा चतुर्गतियों की अविशेषित संज्ञा होती है।

अविसेसिए-णेरइए। विसेसिए - रयणप्पहाए, सक्करप्पहाए, वालुयप्पहाए, पंकप्पहाए, धूमप्पहाए, तमाए, तमतमाए। अविसेसिए-रयणप्पहापुढविणेरइए। विसेसिए - पज्जत्तए य, अपज्जत्तए य। एवं जाव अविसेसिए - तमतमापुढविणेरइए। विसेसिए - पज्जत्तए य, अपज्जत्तए य।

शब्दार्थ - **पज्जत्तए** - पर्याप्ति युक्त, **अपज्जत्तए** - अपर्याप्ति युक्त।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - नैरयिक अविशेषित हैं तथा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा एवं तमस्तमः प्रभा के नारक विशेषित हैं।

यदि रत्नप्रभा नरक के नैरयिक अविशेषित माने जाते हैं तब रत्नप्रभा के पर्याप्त नारक एवं अपर्याप्त नारक विशेषित हैं। इसी प्रकार यावत् तमस्तमः प्रभा भूमि के नैरयिकों को अविशेषित मानने पर पर्याप्त-अपर्याप्त रूप विशेषित मूलक विवेचन ग्राह्य होगा।

अविसेसिए - तिरिक्खजोणिए। विसेसिए - एगिंदिए, बेइंदिए, तेइंदिए, चउरिंदिए, पंचिंदिए।

अविसेसिए - एगिंदिए। विसेसिए - पुढविकाइए, आउकाइए, तेउकाइए, वाउकाइए, वणस्सइकाइए।

अविसेसिए - पुढविकाइए। विसेसिए - सुहुमपुढविकाइए य, बायरपुढविकाइए य।

अविसेसिए-सुहुमपुढविकाइए। विसेसिए- पज्जत्तयसुहुमपुढविकाइए य, अपज्जत्तयसुहुम-पुढविकाइए य।

अविसेसिए - बायरपुढविकाइए। विसेसिए - पज्जत्तयबायर-पुढविकाइए य, अपज्जत्तयबायर-पुढविकाइए य।

एवं आउकाइए, तेउकाइए, वाउकाइए, वणस्सइकाइए, अविसेसियविसेसिय-पज्जत्तयअपज्जत्तयभेएहिं भाणियव्वा।

भावार्थ - तिर्यंच योनिक जीव अविशेषित हों तो एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय प्राणी विशेषित होंगे।

यदि एकेन्द्रिय जीव विशेषित माने जाते हैं तब पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तैजस्कायिक, वायुकायिक तथा वनस्पतिकायिक जीव विशेषित होंगे।

पृथ्वीकायिक जीव अविशेषित हैं, सूक्ष्मपृथ्वीकायिक एवं बादरकायिक विशेषित हैं।

यदि सूक्ष्मपृथ्वीकायिक अविशेषित हैं तो पर्याप्ति युक्त एवं पर्याप्ति रहित सूक्ष्मकायिक विशेषित होंगे।

बादर पृथ्वीकायिक अविशेषित हैं तथा पर्याप्ति युक्त एवं पर्याप्ति रहित बादर पृथ्वीकायिक विशेषित हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसी प्रकार अप्‌काय, तैजस्‌काय, वायुकाय एवं वनस्पतिकाय के संदर्भ में विशेषित-अविशेषित, पर्याप्त-अपर्याप्त संज्ञक विवेचन ग्राह्य है।

अविसेसिए-बेइंदिए। विसेसिय-पज्जत्तयबेइंदिए य, अपज्जत्तयबेइंदिए य। एवं तेइंदिय चउरिंदिया वि भाणियव्वा।

भावार्थ - द्वीन्द्रिय जीव अविशेषित हों तो पर्याप्ति-अपर्याप्ति युक्त द्वीन्द्रिय विशेषित हैं। इसी प्रकार त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय भी कथनीय हैं।

अविसेसिए - पंचिंदियतिरिक्खजोणिए। विसेसिए-जलयरपंचिंदिय-तिरिक्खजोणिए, थलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए, खहयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए।

अविसेसिए - जलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए। विसेसिए-संमुच्छिमजलयर-पंचिंदियतिरिक्खजोणिए य, गब्भवक्कंतियजलयर-पंचिंदियतिरिक्खजोणिए य।

अविसेसिए - संमुच्छिम जलयरपंचिंदिय-तिरिक्खजोणिए। विसेसिए-पज्जत्तय-संमुच्छिमजलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए य, अपज्जत्तयसंमुच्छिम जलयरपंचिंदिय-तिरिक्खजोणिए य।

अविसेसिए - गब्भवक्कंतियजलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए। विसेसिए - पज्जत्तयगब्भवक्कंतियजलयर-पंचिंदियतिरिक्खजोणिए य, अपज्जत्तयगब्भ-वक्कंतिय-जलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए य।

शब्दार्थ - खहयर - खेचर-गगनचर, **गब्भवक्कंतिय** - गर्भव्युत्क्रांतिक-गर्भोत्पन्न।

भावार्थ - पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीव अविशेषित हैं तो जलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यंच योनिक, स्थलचर-पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक तथा खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक विशेषित हैं।

यदि जलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यंच योनिक को अविशेषित मानते हैं तब सम्मूर्च्छिम-जलचर-पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक तथा गर्भव्युत्क्रान्तिक जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक को विशेषित मानना होगा

यदि सम्मूर्च्छिम-जलचर-पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक अविशेषित होंगे तो पर्याप्ति युक्त सम्मूर्च्छिम जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक तथा पर्याप्ति रहित सम्मूर्च्छिम जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक विशेषित होंगे।

(पुनश्च), गर्भव्युत्क्रान्तिक जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक अविशेषित हैं तो पर्याप्ति युक्त

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गर्भव्युत्क्रान्तिक जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक तथा पर्याप्ति रहित गर्भव्युत्क्रान्तिक जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक विशेषित होंगे।

अविसेसिएथलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए। विसेसिए-चउप्पयथलयर-पंचिंदियतिरिक्खजोणिए य, परिसप्पथलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए य।

अविसेसिए-चउप्पयथलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए। विसेसिए-सम्मुच्छिम-चउप्पयथलयर-पंचिंदियतिरिक्खजोणिए य, गब्भवक्कंतिय चउप्पयथलयर-पंचिंदियतिरिक्खजोणिए य।

अविसेसिए - सम्मुच्छिमचउप्पयथलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए। विसेसिए - पज्जत्तयसम्मुच्छिम चउप्पयथलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए य, अपज्जत्तयसम्मुच्छिम चउप्पयथलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए य।

अविसेसिए - गब्भवक्कंतियचउप्पय- थलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए। विसेसिए - पज्जत्तयगब्भवक्कंतियचउप्पय-थलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए य, अपज्जत्तयगब्भवक्कंतियचउप्पयथलयरपंचिंदिय तिरिक्खजोणिए य।

अविसेसिए-परिसप्पथलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए। विसेसिए-उरपरिसप्प-थलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए य, भुयपरिसप्पथलयर-पंचिंदियतिरिक्खजोणिए य। एए वि सम्मुच्छिमा पज्जत्तगा अपज्जत्तगा य गब्भवक्कंतिया वि पज्जत्तगा अपज्जत्तगा य भाणियव्वा।

शब्दार्थ - परिसप्प - परिसर्प-रेंगकर चलने वाले प्राणी, **उरपरिसप्प** - छाती के बल रेंगने वाले, **भुयपरिसप्प** - भुजाओं के बल रेंगने वाले।

भावार्थ - थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक अविशेषित हैं किन्तु चतुष्पद थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक तथा परिसर्प थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक विशेषित हैं।

यदि चतुष्पद थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक को अविशेषित मानते हैं तो सम्मूर्च्छिम चतुष्पद थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक तथा गर्भव्युत्क्रान्तिक चतुष्पद थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक को विशेषित मानना होगा।

यदि सम्मूर्च्छिम चतुष्पद थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीव अविशेषित हैं तो पर्याप्ति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

युक्त सम्मूर्च्छिम चतुष्पद थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीव तथा अपर्याप्त सम्मूर्च्छिम चतुष्पद थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीव विशेषित होंगे।

यदि गर्भव्युत्क्रान्तिक चतुष्पद थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीव अविशेषित होंगे तो पर्याप्त गर्भव्युत्क्रान्तिक चतुष्पद थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीव तथा अपर्याप्ति युक्त गर्भव्युत्क्रान्तिक चतुष्पद थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीव विशेषित होंगे।

परिसर्प थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीव अविशेषित हैं तो छाती के बल रेंगकर चलने वाले थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीव एवं भुजाओं के बल रेंगकर चलने वाले थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीव विशेषित होंगे।

इसी प्रकार सम्मूर्च्छिम पर्याप्ति युक्त एवं पर्याप्ति रहित तथा गर्भव्युत्क्रान्तिक जीव भी पर्याप्ति एवं अपर्याप्ति के रूप में ऊपर की तरह कथनीय हैं।

अविसेसिए - खहयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए। विसेसिए - सम्मुच्छिम-खहयर-पंचिंदिय-तिरिक्खजोणिए य, गब्भवक्कंतियखहयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए य।

अविसेसिए - सम्मुच्छिमखहयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए। विसेसिए-पज्जत्तय-सम्मुच्छिमखहयर-पंचिंदियतिरिक्खजोणिए य, अपज्जत्तयसम्मुच्छिमखहयर-पंचिंदियतिरिक्खजोणिए य।

अविसेसिए - गब्भवक्कंतियखहयरपंचिंदिय-तिरिक्खजोणिए। विसेसिए - पज्जत्तयगब्भवक्कंतियखहयर-पंचिंदिय-तिरिक्खजोणिए य, अपज्जत्तयगब्भ-वक्कंतियखहयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए य।

भावार्थ - गगनचारी-पंचेन्द्रिय-तिर्यंचयोनिक जीव अविशेषित हैं तो सम्मूर्च्छिम गगनचारी पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीव एवं गर्भव्युत्क्रान्तिक गगनचारी पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीव विशेषित होंगे।

यदि सम्मूर्च्छिम गगनचारी पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीव अविशेषित होंगे तो पर्याप्तियुक्त सम्मूर्च्छिम गगनचारी पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीव तथा पर्याप्ति रहित सम्मूर्च्छिम गगनचारी पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीवों को विशेषित मानना होगा।

यदि गर्भव्युत्क्रान्तिक गगनचारी पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीव को अविशेषित मानते हैं तो पर्याप्तियुक्त गर्भव्युत्क्रान्तिक गगनचारी पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीव एवं पर्याप्ति रहित गर्भव्युत्क्रान्तिक गगनचारी पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीवों को विशेषित मानना होगा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अविसेसिए - मणुस्से। विसेसिए - सम्मुच्छिममणुस्से य, गब्भवक्कंतियमणुस्से य।

अविसेसिए-सम्मुच्छिममणुस्से। विसेसिए - पज्जत्तगसम्मुच्छिममणुस्से य, अपज्जत्तगसम्मुच्छिममणुस्से य।

अविसेसिए - गब्भवक्कंतियमणुस्से। विसेसिए - कम्मभूमिओ य, अकम्म-भूमिओ य, अंतदीवओ य, संखिज्जवासाउय, असंखिज्ज-वासाउय, पज्जत्ता-पज्जत्तओ।

शब्दार्थ - मणुस्से - मनुष्य।

भावार्थ - मनुष्य अविशेषित हैं तो सम्मूर्च्छिम मनुष्य और गर्भव्युत्क्रान्तिक मनुष्य विशेषित होंगे।

यदि सम्मूर्च्छिम मनुष्य को अविशेषित मानते हैं तो पर्याप्तियुक्त सम्मूर्च्छिम मनुष्य एवं पर्याप्ति रहित सम्मूर्च्छिम मनुष्य को विशेषित मानना होगा।

यदि गर्भव्युत्क्रान्तिक मनुष्य को अविशेषित मानेंगे तो कर्मभूमिक, अकर्मभूमिक, अन्तर्द्वीपिक, संख्यातवर्षायुष्ययुक्त, असंख्यातवर्षायुष्ययुक्त तथा पर्याप्तियुक्त एवं पर्याप्ति रहित मनुष्यों को विशेषित मानना होगा।

विवेचन - उपर्युक्त सूत्र में सम्मूर्च्छिम मनुष्य के भी पर्याप्त और अपर्याप्त इस प्रकार दो भेद किये हैं। अन्यत्र आगमों में सम्मूर्च्छिम मनुष्य को नियमा अपर्याप्त होना ही बताया है। यहाँ पर जो पर्याप्त अपर्याप्त कहा है उसका आशय इस प्रकार से समझना चाहिये - सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में सभी की स्थिति एक सरीखी नहीं होती है उनमें उत्कृष्ट (सबसे अधिक) स्थिति वाले मनुष्यों को पर्याप्त एवं उससे कम स्थिति वाले मनुष्यों को अपर्याप्त समझना चाहिये। इस प्रकार अपेक्षा से अपर्याप्त एवं पर्याप्त भेद इनमें हो सकते हैं। वास्तव में तो सभी सम्मूर्च्छिम मनुष्य चौथी श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति की अपूर्णता में ही काल करने वाले होने से वे अपर्याप्त ही कहलाते हैं।

अविसेसिए-देवे। विसेसिए - भवणवासी, वाणमंतरे, जोइसिए, वेमाणिए य।

अविसेसिए - भवणवासी। विसेसिए - असुरकुमारे १ णागकुमारे २ सुवण्णकुमारे ३ विज्जुकुमारे ४ अग्गिकुमारे ५ दीवकुमारे ६ उदहिकुमारे ७ दिसाकुमारे ८ वाउकुमारे ९ थणियकुमारे १०।

सव्वेसिं पि अविसेसिय-विसेसियपज्जत्तग-अपज्जत्तगभेया भाणियव्वा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - देव अविशेषित हैं तो भवनवासी, वाणव्यंतर, ज्योतिष्क और वैमानिक विशेषित हैं।

यदि भवनवासी को अविशेषित मानेंगे तो १. असुरकुमार २. नागकुमार ३. सुपर्णकुमार ४. विद्युत्कुमार ५. अग्निकुमार ६. द्वीपकुमार ७. उदधिकुमार ८. दिक्कुमार ९. वायुकुमार और १०. स्तनितकुमार को विशेषित मानना होगा।

इन सभी में अविशेषित-विशेषित, तदनन्तर पर्याप्ति-अपर्याप्ति के भेद कथनीय हैं।

अविसेसिए-वाणमंतरे। विसेसिए - पिसाए १ भूए २ जक्खे ३ रक्खसे ४ किण्णरे ५ किंपुरिसे ६ महोरगे ७ गंधव्वे ८। एएसिं पि अविसेसियविसेसिय-पज्जत्तगअपज्जत्तगभेया भाणियव्वा।

भावार्थ - वाणव्यंतर अविशेषित हैं तो १. पिशाच २. भूत ३. यक्ष ४. राक्षस ५. किन्नर ६. किंपुरुष ७. महोरग तथा ८. गंधर्व - ये आठ विशेषित होंगे।

पूर्वानुसार यहाँ भी (क्रमशः) अविशेषित - विशेषित एवं पर्याप्ति - अपर्याप्ति के भेद से अवशिष्ट वर्णन ज्ञातव्य है।

अविसेसिए-जोइसिए। विसेसिए - चंदे १ सूरे २ गहगणे ३ णक्खत्ते ४ तारारूवे ५। एएसिं पि अविसेसियविसेसियपज्जत्तयअपज्जत्तयभेया भाणियव्वा।

भावार्थ - ज्योतिष्क अविशेषित हों तो १. चन्द्र २. सूर्य ३. ग्रह ४. नक्षत्र एवं ५. तारा रूप विशेषित होंगे।

यहाँ भी (पूर्वगत विवेचनानुसार) अविशेषित - विशेषित तथा उनके पर्याप्त - अपर्याप्त भेद से अवशिष्ट वर्णन जानना चाहिये।

अविसेसिए-वेमाणिए। विसेसिए-कप्पोवगे य, कप्पातीतए य।

अविसेसिए- कप्पोवगे। विसेसिए - सोहम्मए १ ईसाणए २ सणंकुमारए ३ माहिंदिए ४ बंभलोयए ५ लंतयए ६ महासुक्कए ७ सहस्सारए ८ आणयए ९ पाणयए १० आरणए ११ अच्चुयए १२। एएसिं पि अविसेसियविसेसियअपज्जत्तगपज्जत्तगभेया भाणियव्वा।

अविसेसिए - कप्पातीतए। विसेसिए - गेवेज्जए य, अणुत्तरोववाइए य। अविसेसिए- गेवेज्जए। विसेसिए - हेट्ठिमगेवेज्जए १ मज्झिमगेवेज्जए २ उवरिमगेवेज्जए ३। अविसेसिए - हेट्ठिमगेवेज्जए। विसेसिए - हेट्ठिमहेट्ठिमगेवेज्जए १

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हेट्ठिममज्झिमगेवेज्जए २ हेट्ठिमउवरिमगेवेज्जए ३। अविसेसिए - मज्झिमगेवेज्जए। विसेसिए - मज्झिमहेट्ठिमगेवेज्जए मज्झिमहेट्ठिमगेवेज्जए १ मज्झिममज्झिम-गेवेज्जए २ मज्झिमउवरिमगेवेज्जए ३। अविसेसिए-उवरिमगेवेज्जए। विसेसिए - उवरिमहेट्ठिमगेवेज्जए १ उवरिममज्झिमगेवेज्जए २ उवरिमउवरिमगेवेज्जए ३। एएसिं सव्वेसिं अविसेसियविसेसियअपज्जत्तगपज्जत्तगभेया भाणियव्वा।

शब्दार्थ - **हेट्ठिम** - अधःस्थानिक, **मज्झिम** - मध्यस्थानवर्ती, **उवरिम** - उपरिस्थानवर्ती, **हेट्ठिमहेट्ठिम** - निम्नातिनिम्न।

भावार्थ - वैमानिक अविशेषित हैं तो कल्पोपपन्न एवं कल्पातीत देव विशेषित होंगे।

यदि कल्पोपपन्न को अविशेषित मानेंगे तो १. सौधर्म २. ईशान ३. सनत्कुमार ४. माहेन्द्र ५. ब्रह्मलोक ६. लांतक ७. महाशुक्र ८. सहस्रार ९. आनत १०. प्राणत ११. आरण १२. अच्युत - (विमानवासी देव) को विशेषित मानना होगा।

इस प्रकार प्रत्येक के संदर्भ में अविशेषित-विशेषित तदनंतर पर्याप्त-अपर्याप्त के रूप में शेष वर्णन भणनीय है।

यदि कल्पातीत देव को अविशेषित मानते हैं तो ग्रैवेयक एवं अनुत्तरोपपातिक देवों को विशेषित मानना होगा। ग्रैवेयक देव अविशेषित होंगे तो अधः स्थानवर्ती ग्रैवेयक, मध्य स्थानवर्ती ग्रैवेयक तथा ऊपरिस्थानवर्ती ग्रैवेयक विशेषित होंगे।

अधः स्थानवर्ती ग्रैवेयक अविशेषित हैं तो १. अधः-अधः स्थानिक ग्रैवेयक २. अधः-मध्यम स्थानिक ग्रैवेयक ३. अधः-उपरि स्थानिक ग्रैवेयक विशेषत होंगे।

यदि मध्यस्थानिक ग्रैवेयक को अविशेषित मानेंगे तो १. मध्य-अधः-स्थानिक ग्रैवेयक २. मध्य-मध्यस्थानिक ग्रैवेयक ३. मध्य-उपरि-स्थानिक ग्रैवेयक विशेषित होंगे।

उपरिस्थानिक ग्रैवेयक अविशेषित हों तो १. उपरी-अधः-स्थानिक ग्रैवेयक २. उपरि-मध्य-स्थानिक ग्रैवेयक ३. उपरि-उपरि स्थानिक ग्रैवेयक विशेषित होंगे।

इस प्रकार इन सभी में (पूर्व विवेचनानुसार) अविशेषित - विशेषित तदनंतर पर्याप्ति-अपर्याप्ति के भेद से अवशिष्ट वर्णन ज्ञातव्य है।

अविसेसिए - अणुत्तरोववाइए। विसेसिए - विजयए १ वेजयंतए २ जयंतए ३ अपराजियए ४ सव्वट्ठसिद्धए य ५। एएसिं पि सव्वेसिं अविसेसियविसेसिय-अपज्जत्तगपज्जत्तगभेया भाणियव्वा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - यदि अनुत्तरोपपातिक देव अविशेषित हों तो १. विजय २. वैजयंत ३. जयंत ४. अपराजित ५. सर्वार्थसिद्ध विमानवर्ती देव विशेषित होंगे।

ये सभी भी (पूर्व वर्णनानुसार) अविशेषित-विशेषित तदनंतर पर्याप्ति-अपर्याप्ति के भेद से वर्णनीय हैं।

अविसेसिए - अजीवदव्वे। विसेसिए - धम्मत्थिकाए १ अधम्मत्थिकाए २ आगासत्थिकाए ३ पोग्गलत्थिकाए ४ अद्धासमए य ५। अविसेसिए - पोग्गलत्थिकाए। विसेसिए - परमाणुपोग्गले, दुपएसिएतिपएसिए जाव अणंतपएसिए य। सेत्तं दुणामे ।

भावार्थ - यदि अजीव द्रव्य अविशेषित हों तो १. धर्मास्तिकाय २. अधर्मास्तिकाय ३. आकाशास्तिकाय ४. पुद्गलास्तिकाय ५. काल विशेषित होंगे।

यदि पुद्गलास्तिकाय को अविशेषित माना जाय तो परमाणुपुद्गल द्विप्रदेशिक पुद्गल यावत् अनंतप्रदेशिक पुद्गल विशेषित होंगे।

यह द्विनाम का निरूपण है।

विवेचन - उपर्युक्त सूत्रों में अविशेषित और विशेषित की अपेक्षा से विवेचन किया गया है। जैसा पहले ज्ञापित हुआ है, यह न्यायदर्शन सम्मत सामान्य (अविशेषित) और विशेष (विशेषित) के आधार पर है। प्रत्येक वस्तु सामान्य-विशेषात्मक होती है।

जैसे - संसारवर्ती समस्त घटों में घटत्व सामान्य है। अर्थात् घटत्व की दृष्टि से वे सामान्य या अविशेषित हैं किन्तु रूप, आकार, वर्णन इत्यादि की दृष्टि से वे विशेषित हो जाते हैं क्योंकि घटत्व सामान्य के बावजूद विविध प्रकार के वैशिष्ट्य भी उनमें प्राप्त हैं।

सामान्य संग्रहनय का विषय है। सामान्य के अन्तर्गत तत्सदृश सभी वस्तुएं भी आ जाती हैं। विशेष व्यवहार नय का विषय है, जहाँ विभिन्न वस्तुओं के बहिर्वर्ती लक्षणों के आधार पर अंकन होता है।

(१२४)

त्रिनाम

से किं तं तिणामे?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तिणामे तिविहे पण्णत्ते। तंजहा - दव्वणामे १ गुणणामे २ पज्जवणामे य ३।

भावार्थ - त्रिनाम के कितने भेद हैं?

त्रिनाम तीन प्रकार का बतलाया गया है - १. द्रव्यनाम २. गुणनाम तथा ३. पर्यायनाम।

विवेचन - इस सूत्र में द्रव्यनाम, गुणनाम एवं पर्यायनाम के रूप में त्रिनाम का वर्णन है। **'द्रवति-विविधान् पर्यायान् प्राप्नोतीति द्रव्यम्''** - जो विभिन्न पर्यायों या अवस्थाओं को प्राप्त करता है, उसे द्रव्य कहा जाता है। द्रव्य का यह व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है।

''गुणपर्यायाश्रयोद्रव्यम्'' - जैन न्याय में द्रव्य की यह परिभाषा दी गई है, जिसका अभिप्राय यह है, जिसमें गुण एवं पर्याय हों, उसे गुण कहते हैं।

वर्तमान, भूत और भविष्यत् - तीनों कालों में रहने वाला असाधारण धर्म गुण कहा जाता है। प्रतिसमय परिवर्तित होने वाली अवस्था को पर्याय कहा जाता है।

गुण ध्रुव-नित्यव्यापी हैं, पर्याय उत्पन्न होते हैं, विनष्ट होते हैं। इसी दृष्टि से **''उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्तं सत्''** द्रव्य की यह परिभाषा की गई है।

मूल स्वरूप की दृष्टि से द्रव्य में ध्रुवता है। निरन्तर परिवर्तनशील अवस्थाओं की दृष्टि से अध्रुवता या उत्पादव्ययता है। इन तीनों को लेकर त्रिनाम का निरूपण किया गया है।

द्रव्यनाम

से किं तं दव्वणामे?

दव्वणामे छव्विहे पण्णत्ते। तंजहा - धम्मत्थिकाए १ अधम्मत्थिकाए २ आगासत्थिकाए ३ जीवत्थिकाए ४ पुग्गलत्थिकाए ५ अद्धासमए य ६। सेत्तं दव्वणामे।

भावार्थ - द्रव्यनाम कितने प्रकार का है?

द्रव्यनाम छह प्रकार का है - १. धर्मास्तिकाय २. अधर्मास्तिकाय ३. आकाशास्तिकाय ४. जीवास्तिकाय ५. पुद्गलास्तिकाय तथा ६. काल।

यह द्रव्यनाम का स्वरूप है।

गुणनाम

से किं तं गुणणामे?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गुणणामे पंचविहे पण्णत्ते। तंजहा-वण्णणामे १ गंधणामे २ रसणामे ३ फासणामे ४ संठाणणामे ५।

भावार्थ - गुण कितने प्रकार के हैं?

गुण पांच प्रकार के प्रतिपादित हुए हैं - १. वर्णनाम २. गंधनाम ३. रसनाम ४. स्पर्शनाम ५. संस्थाननाम।

वर्णनाम

से किं तं वण्णणामे?

वण्णणामे पंचविहे पण्णत्ते। तंजहा - कालवण्णणामे १ णीलवण्णणामे २ लोहियवण्णणामे ३ हालिद्दवण्णणामे ४ सुक्किल्लवण्णणामे ५। सेत्तं वण्णणामे।

भावार्थ - वर्णनामं कितने प्रकार का है?

वर्णनाम पांच प्रकार का प्रतिपादित हुआ है - १. काला - कृष्ण वर्णनाम २. नील वर्णनाम ३. लोहित वर्णनाम ४. हारिद्र वर्णनाम (हल्दीवत्-पीतवर्णनाम) ५. शुक्ल वर्णनाम।

यह वर्णनाम का निरूपण है।

विवेचन - वर्ण का तात्पर्य रंग से है। मूलतः वर्ण पांच प्रकार के हैं, जिनका प्रस्तुत सूत्र में उल्लेख है और भी अनेक वर्ण जो पाए जाते हैं, इन्हीं पांच में से भिन्न-भिन्न वर्णों के संयोग या सम्मिश्रण से बनते हैं।

से किं तं गंधणामे?

गंधणामे दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - सुरभिगंधणामे य १ दुरभिगंधणामे य २। सेत्तं गंधणामे।

भावार्थ - गंधनाम के कितने प्रकार हैं?

गंधनाम के दो प्रकार कहे गये हैं - १. सुरभिगंधनाम (सुगंध) तथा २. दुरभिगंधनाम (दुर्गन्ध)।

यह गंधनाम का स्वरूप है।

से किं तं रसणामे?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रसणामे पंचविहे पण्णत्ते। तंजहा - तित्तरसणामे १ कडुयरसणामे २ कसायरसणामे ३ अंबिलरसणामे ४ महुररसणामे य ५। सेत्तं रसणामे।

शब्दार्थ - तित्त - तीखा, **कडुय** - कडुआ, **कसाय** - कसैला, **अंबिल** - आम्ल-खट्टा, **महुर** - मधुर-मीठा।

भावार्थ - रसनाम के कितने भेद हैं?

रसनाम के पांच प्रकार प्रज्ञप्त हुए हैं -

१. तिक्तरसनाम २. कटुकरसनाम ३. कषायरसनाम ४. आम्लरसनाम तथा ५. मधुररसनाम।

यह रसनाम का विवेचन है।

स्पर्शनाम

से किं तं फासणामे?

फासणामे अट्ठविहे पण्णत्ते। तंजहा - कक्खडफासणामे १ मउयफासणामे २ गरुयफासणामे ३ लहुयफासणामे ४ सीयफासणामे ५ उसिणफासणामे ६ णिद्धफासणामे ७ लुक्खफासणामे य ८। सेत्तं फासणामे।

शब्दार्थ - कक्खडफास - कर्कश स्पर्श, **मउयफास** - मृदुक स्पर्श, **गरुयफास** - गुरुक-भारी स्पर्श, **लहुयफास** - हल्का स्पर्श, **सीयफास** - शीतस्पर्श, **उसिणफास** - गर्म स्पर्श, **णिद्धफास** - स्निग्ध-चिकना स्पर्श, **लुक्खफास** - लूखा-रूक्ष स्पर्श।

भावार्थ - स्पर्शनाम कितने प्रकार का है?

स्पर्शनाम आठ प्रकार का है - १. कर्कशस्पर्शनाम २. मृदुलस्पर्शनाम ३. गुरुकस्पर्शनाम ४. लघुकस्पर्शनाम ५. शीतस्पर्शनाम ६. उष्णस्पर्शनाम ७. स्निग्धस्पर्शनाम ८. रूक्षस्पर्शनाम।

यह स्पर्शनाम का निरूपण है।

संस्थाननाम

से किं तं संठाणणामे?

संठाणणामे पंचविहे पण्णत्ते। तंजहा - परिमंडलसंठाणणामे १ वट्टसंठाणणामे २ तंससंठाणणामे ३ चउरंससंठाणणामे ४ आययसंठाणणामे ५। सेत्तं संठाणणामे। सेत्तं गुणणामे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ - **वट्ट** - वृत्त, **तंस** - त्र्यस्र-तीन कोनों से युक्त, **चउरंस** - चतुरस्र, **आयय** - आयत - परस्पर समान लम्बाई एवं समान चौड़ाई युक्त।

भावार्थ - संस्थान नाम के कितने भेद होते हैं?

संस्थाननाम के पांच भेद बतलाए गए हैं -

१. परिमंडल संस्थाननाम २. वृत्त संस्थाननाम ३. त्र्यस्र संस्थाननाम ४. चतुरस्र संस्थाननाम तथा ५. आयत संस्थाननाम।

यह संस्थाननाम का स्वरूप है।

इस प्रकार गुणनाम का विवेचन परिसमाप्त होता है।

विवेचन - पहले भी इस संदर्भ में विवेचन किया गया है। अब यह इसका अन्यविध विवेचन है। इस संबंध में ज्ञातव्य है कि पहले जो संस्थान का विवेचन हुआ है, वह जीव के शरीर की विशिष्ट आकृतियों से संबद्ध है। यहाँ संस्थान का संबंध दैनंदिन व्यवहार में आने वाली वस्तुओं के आकार-प्रकार से तथा रेखा गणित (Geometry) द्वारा परिकल्पित विशिष्ट आकृतियों से है। इन भेदों का संक्षेप में अभिप्राय इस प्रकार हैं -

१. परिमंडल - जो आकार थाली, सूरज या चन्द्रमण्डल की तरह समान रूप से गोल हो, मध्य में जरा भी रिक्त न हो।

२. वृत्त - वह गोल आकार जो कटक-कड़े (आभूषण) के समान गोल हो, मध्य से रिक्त हो।

३. त्र्यस्र - त्रिकोण वह स्थान है, जिसके तीन कोने हो। इसे रेखागणित में त्रिभुज (Triangle) कहा जाता है।

यह भी यहाँ ज्ञातव्य है कि तीनों भुजाएं समान या असमान भी होती है, अतः यह अनेक प्रकार का हो सकता है।

४. चतुरस्र - इसमें लम्बाई-चौड़ाई समान होती है। इसे वर्ग (Square) कहा जाता है।

५. आयत - इस संस्थान में लम्बाई अधिक तथा चौड़ाई कम होती है।

पर्यायनाम

से किं तं पज्जवणामे?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पज्जवणामे अणेगविहे पण्णत्ते। तंजहा - एगगुणकालए, दुगुणकालए, तिगुणकालए जाव दसगुणकालए, संखिज्जगुणकालए, असंखिज्जगुणकालए, अणंतगुणकालए। एवं णीललोहियहालिद्दसुक्किल्ला वि भाणियव्वा।

एगगुणसुरभिगंधे, दुगुणसुरभिगंधे, तिगुणसुरभिगंधे जाव अणंतगुणसुरभिगंधे। एवं दुरभिगंधो वि भाणियव्वो।

एगगुणतित्ते जाव अणंतगुणतित्ते। एवं कडुयकसाय-अंबिलमहुरा वि भाणियव्वा। एगगुणकक्खडे जाव अणंतगुणकक्खडे। एवं मउयगरुयलहुय-सीयउसिणणिद्धलुक्खा वि भाणियव्वा। सेत्तं पज्जवणामे।

भावार्थ - पर्यायनाम के कितने भेद हैं?

पर्यायनाम के अनेक भेद कहे हैं, जैसे - एकगुण - अंश काला, द्विगुणकाला, त्रिगुणकाला यावत् दसगुण काला, संख्यातगुणकाला, असंख्यातगुणकाला तथा अनंतगुणकाला।

इसी प्रकार नीले, लाल, पीले एवं श्वेत के संदर्भ में भी इसी भांति वर्णन योजनीय है।

एकगुण सुरभिगंध, द्विगुण सुरभिगंध, त्रिगुण सुरभिगंध यावत् अनंतगुण सुरभिगंध हैं।

इसी प्रकार दुरभिगंध (दुर्गन्ध) भी वर्णनीय है।

एकगुणतिक्त यावत् अनंतगुणतिक्त पर्यन्त हैं। इसी प्रकार कटुक, कषाय, आम्ल और मधुर के संबंध में भी ग्राह्य है।

एकगुणकर्कश यावत् अनंतगुणकर्कश हैं। इसी प्रकार मृदुक, गुरुक, लघुक, शीत, उष्ण, स्निग्ध एवं रूक्ष के संबंध में भी ज्ञातव्य है।

यह पर्याय नाम की वक्तव्यता है।

विवेचन - उपर्युक्त सूत्र में पर्याय नाम के भेदों में एक गुण, दो गुण यावत् अनन्त गुण काले आदि वर्णादि बीस बोलों को बताया गया है। यद्यपि एक गुण आदि के भेदों से रहित वर्णादि बीस बोलों को भी पर्याय नाम के भेदों में कहा जा सकता है, किन्तु ये बीस बोल तो पुद्गलों के साथ में लम्बे काल तक रह सकते हैं इसलिए इन्हें आगे गुण प्रमाण के वर्णन में गुणों के अन्तर्गत कहा गया है। एक गुण आदि अवस्थाएं अल्पकालीन होने से इन्हें ही यहाँ पर पर्याय नाम के भेदों में बताया गया है। ऐसा टीका में खुलासा किया गया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

त्रिनाम का अन्य व्याख्याक्रम

गाहाओ -

तं पुण णामं तिविहं, इत्थी पुरिसं णपुंसगं चेव।
एएसिं तिण्हं पि(य), अंतम्मि य परूवणं वोच्छं॥१॥
तत्थ पुरिसस्स अंता, आ ई ऊ ओ हवंति चत्तारि।
ते चेव इत्थियाओ, हवंति ओकारपरिहीणा॥२॥
अंतिय इंतिय उंतिय, अंताय णपुंसगस्स बोद्धव्वा।
एएसिं तिण्हं पि य, वोच्छामि णिदंसणे एत्तो॥३॥
आगारंतो 'राया', ईगारंतो 'गिरी' य 'सिहरी' य।
ऊगारंतो 'विण्हू', 'दुमो' य अंता उ पुरिसाणं॥४॥
आगारंता 'माला', ईगारंता 'सिरी' य 'लच्छी' य।
ऊगारंता 'जंबू', 'वहू' य अंताउ इत्थीणं॥५॥
अंकारंतं 'धण्णं', इंकारंतं णपुंसगं 'अत्थिं'।
उंकारंतं 'पीलुं', 'महुं' च अंता णपुंसाणं॥६॥
सेत्तं तिणामे।

शब्दार्थ - इत्थी - स्त्रीलिंग, **पुरिसं** - पुल्लिंग, **य** - च-और, **अंतम्मि** - अंत में, **परूवणं** - प्ररूपण, **वोच्छं** - विवक्षित है, **हवंति** - होते हैं, **ओकारपरिहीणा** - ओकार वर्जित, **बोद्धव्वा** - बोधव्य-ज्ञातव्य, **वोच्छामि** - कहूँगा, **णिदंसणे** - निदर्शन, **आगारंतो** - जिसके अंत में आकार हो, **ईगारंतो** - जिसके अंत में ईकार हो, **गिरी** - पर्वत, **सिहरी** - पर्वत, **विण्हू** - विष्णु, **दुमो** - द्रुम-वृक्ष, **सिरी** - श्री, **लच्छी** - लक्ष्मी, **ऊगारंता** - ऊकार अंत में, **जंबू** - जामुन, **वहू** - वधू, **इत्थीणं** - स्त्रीलिंग वाची शब्दों का, **धण्णं** - धन्य, **अत्थिं** - अस्थि, **पीलुं** - पीलू-वृक्ष विशेष, **महुं** - मधु, **णपुंसाणं** - नपुंसकों का।

भावार्थ - गाथाएं - पुनश्च नाम के तीन भेद कहे गए हैं, जो स्त्री, पुरुष एवं नपुंसक लिंग से संबद्ध हैं। इन तीनों के अंतिम अक्षरों का निरूपण यहाँ विवक्षित है॥१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उनमें पुल्लिंग के अंत में आ, ई, ऊ, ओ - ये चार होते हैं। स्त्रीलिंग में भी ये ही तीन होते हैं किन्तु ओकार नहीं होता॥२॥

अं, इं तथा उं - ये नपुंसकलिंग के अंत में ज्ञातव्य हैं। इन तीनों के उदाहरणों की विवक्षा करूँगा। आकारान्त पुल्लिंग-राया (राजा), ईकारान्त पुल्लिंग - गिरी तथा सिहरी (गिरी एवं शिखरी), ऊकारान्त विण्हू (विष्णु) तथा ओकारान्त पुल्लिंग - दुमो (द्रुम-वृक्ष) है॥३,४॥

आकारान्त स्त्रीलिंग - माला, ईकारान्त स्त्रीलिंग-सिरी तथा लच्छी, ऊकारान्त स्त्रीलिंग - जंबू, वहू होते हैं॥५॥

अंकारान्त नपुंसकलिंग - धण्णं, इकारान्त नपुंसकलिंग-अत्थिं, उंकारान्त नपुंसकलिंग - पीलुं तथा महुं होते हैं॥६॥

यह त्रिनाम का स्वरूप है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में पुल्लिंग, स्त्रीलिंग एवं नपुंसकलिंग की दृष्टि से तीनों प्रकार के शब्दों के आगे लगने वाले प्रत्ययों की चर्चा है। यह व्याकरण शास्त्र का विषय है। जो लिंगानुशासन के अन्तर्गत आख्यात है। संस्कृत, प्राकृत एवं पालि में तीन लिंग माने गये हैं। तीनों के रूप भिन्न-भिन्न होते हैं। यद्यपि लिंगों के संदर्भ में व्याकरण में अतिनिश्चित नियमन प्राप्त नहीं होता किन्तु अधिकांशतः तीनों लिंगों की पहचान के लिए कतिपय विशेष प्रत्यय निर्धारित हैं, जो स्वरात्मक हैं। "लिङ्गं लोकात्" - व्याकरण में ऐसी उक्ति है। जिसका आशय यह है कि लोकप्रयोगानुसार लिंग ज्ञातव्य है। इस सूत्र में उन प्रमुख प्रत्ययों का उल्लेख है, जो तीनों लिंगों में, भिन्न-भिन्न रूप में योजित किए जाते हैं।

(१२५)

चतुर्नाम

से किं तं चउणामे ?

चउणामे चउव्विहे पण्णत्ते। तंजहा - आगमेणं १ लोवेणं २ पयईए ३ विगारेणं ४।

शब्दार्थ - लोवेणं - लोप से, **पयईए** - प्रकृति से।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - चतुर्नाम के कितने प्रकार हैं?

चतुर्नाम के चार प्रकार प्रतिपादित हुए हैं - १. आगमनिष्पन्न २. लोपनिष्पन्न ३. प्रकृतिनिष्पन्न तथा ४. विकारनिष्पन्न।

से किं तं आगमेणं?

आगमेणं - पद्माणि, पयांसि, कुण्डाणि✡। सेत्तं आगमेणं।

से किं तं लोवेणं?

लोवेणं - ते अत्र=तेऽत्र, पटो अत्र=पटोऽत्र, घटो अत्र=घटोऽत्र। सेत्तं लोवेणं।

से किं तं पगईए?

पगईए - अग्नी एतौ, पटू इमौ, शाले एते, माले इमे। सेत्तं पगईए।

से किं तं विगारेणं?

विगारेणं - दण्डस्य+अग्रं=दंडाग्र, सा+आगता=साऽऽगता, दधि+इदं=दधीदं, णदी+इह=णदीह, मधु+उदकं=मधूदकं, वधू+ऊहः=वधूहः। सेत्तं विगारेणं।

सेत्तं चउणामे।

भावार्थ - आगमनिष्पन्न किस प्रकार का है?

पद्मानि, पयांसि, कुंडानि आदि आगम निष्पन्न (के उदाहरण) हैं। यह आगमनिष्पन्न का स्वरूप है।

लोपनिष्पन्न का क्या स्वरूप है?

ते अत्र = तेऽत्र, पटो अत्र = पटोऽत्र, घटो अत्र = घटोऽत्र - ये लोपनिष्पन्न (के उदाहरण) हैं। यह लोपनिष्पन्न का वर्णन है।

प्रकृतिनिष्पन्न किस प्रकार का है?

अग्नी एतौ, पटू इमौ, शाले एते, माले इमे - ये प्रकृतिनिष्पन्न (के उदाहरण) हैं। यह प्रकृतिनिष्पन्न का निरूपण हैं।

विकारनिष्पन्न किस प्रकार का है?

✡ १ पोम्माइं, २ पयाइं, ३ कुंडाइं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दण्डस्य+अग्रं=दंडाग्रं, सा+आगता=साऽऽगता, दधि+इदं=दधीदं, णदी+इह=णदीह, मधु+उदकं=मधूदकं, वधू+ऊहः=वधूहः - ये विकारनिष्पन्न (के उदाहरण) हैं।

यह चतुर्नाम का निरूपण है।

विवेचन - चतुर्नाम के अन्तर्गत चार प्रकार से निष्पन्न होने वाले शब्द रूपों, संधिरूपों की चर्चा है।

१. आगमनिष्पन्न - प्रथम भेद आगमनिष्पन्न है। मूल शब्द के आगे जो प्रत्यय, शब्दांश आदि जुड़ते हैं, उनके जुड़ने पर जो रूप बनता है, पद बनता है, वह आगम निष्पन्न होता है। **'विभक्त्यन्तं पदम्'** के अनुसार नाम या शब्द के आगे विभक्ति लगने पर ही वह शब्द पद बनता है, वाक्य में प्रयोग योग्य होता है। इसमें पद्मानि, पयांसि, कुण्डानि - ये उदाहरण दिए हैं, वे क्रमशः पद्म, पयस्, कुण्ड शब्द के प्रथमा एवं द्वितीया विभक्ति के बहुवचन के रूप हैं, जो आगमनिष्पन्न है। उदाहरणार्थ 'पद्म' शब्द के प्रथमा बहुवचन में 'जस्' और द्वितीया बहुवचन में 'शस्' जुड़ता है। यहाँ तदनन्तर लोपादिद्वारा 'शि' हो जाता है। 'श्' का लोप होने से 'इ' शेष रहता है। **'नुमयमः'** (सारस्वत व्याकरण, २१६/५) सूत्र से 'नुम्' का आगम होता है। यहाँ आनुबंधिक लोप हो जाने पर 'न्' रहता है।

''नः उपाधायाः'' (सारस्वत व्याकरण, २२१/७) सूत्र से 'न' के पूर्ववर्ती 'म' में उपधावृद्धि हो जाने से तथा **'स्वरहीनेन परेण संयोज्यम्'** से 'न्' एवं 'इ' का संयोग होने से पद्मानि सिद्ध होता है। यही प्रक्रिया पयांसि एवं कुण्डानि में ज्ञातव्य है।

२. लोपनिष्पन्न - संधि नियमों के अनुसार जब किसी वर्ण का लोप हो जाता है तथा लोप होने पर सम्मिलित संधि पदों का जो स्वरूप निष्पन्न होता है, वह लोपनिष्पन्न कहलाता है। यहाँ इस संदर्भ में तेऽत्र, पटोऽत्र, घटोऽत्र - ये तीन उदाहरण दिए हैं।

तेऽत्र में - ते 'तत्' शब्द का प्रथमा बहुवचन का रूप है। 'विभक्त्यन्तं पदम्' के अनुसार यह पद है। जिसके अन्त में 'ए' है।

सारस्वत व्याकरणानुसार **'एदोतोऽतः'** (सारस्वत व्याकरण, ५१/१६) सूत्रानुसार पद के अन्त में आने वाले 'ए' और 'ओ' के आगे 'अ' आ जाय तो उसका लोप हो जाता है। तदनुसार यहाँ 'ए' के आगे आए 'अ' का लोप हुआ है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसी प्रकार पटोऽत्र, घटोऽत्र में मूल पद क्रमशः पटः, घटः हैं, जो ''अतोऽत्युः'' (सारस्वत व्याकरण, १०९/६) सूत्रानुसार पटो, घटो में परिवर्तित हो जाते हैं। इन पदों के अन्त में ओकार है। यहाँ भी पूर्वानुसार 'एदोतोऽतः' सूत्रानुसार 'अ' का लोप हो जाता है।

३. प्रकृतिनिष्पन्न - प्रकृतिनिष्पन्न नाम का तात्पर्य पंचसंधि के अन्तर्गत प्रकृतिभाव संज्ञक संधि से है। इसका तात्पर्य यह है कि जहाँ संधि नियम तो लागू हों किन्तु उनका स्वरूप परिवर्तित न हो। क्योंकि व्याकरण की पद्धति है, जो नियम पहले आये हैं, यदि उनका बाधक नियम बाद में आ जाय तो पूर्व नियम कार्यकर नहीं होता - यथा - **''परेण पूर्व बाधोहि प्रायशो दृश्यतामिह''।**

यहाँ प्रकृतिनिष्पन्न नामों के अग्नीएतौ, पटूइमौ, शाले एते, माले इमे - ये चार उदाहरण दिए हैं।

अग्नी एतौ में - 'अग्नी' - अग्नि के प्रथमा द्विवचन का रूप है। एतौ - एतत् सर्वनाम के पुल्लिङ्ग द्विवचन का रूप है।

पटू इमौ में - 'पटू' शब्द पटु के प्रथमा द्विवचन का रूप है। इमौ (इदम् शब्द) पुल्लिंग (अयम्) के प्रथमा द्विवचन का रूप है।

शाले एते - यहाँ 'शाले' आकारान्त 'शाला' शब्द के प्रथमा द्विवचन का रूप है। 'एते' एतत् शब्द के प्रथमा द्विवचन का रूप है।

इसी प्रकार माले एते में भी ज्ञातव्य है।

यहाँ **''टवे द्विव्वे''** (सारस्वत व्याकरण, ६६/२) सूत्रानुसार पद के अन्त में आने वाले ई, ऊ और ए के साथ आगे आने वाले अक्षरों की संधि नहीं होती। इन उदाहरणों में 'टवे द्विव्वे' सूत्र पूर्वोक्त संधि नियमों को बाधित करता है, अतः ये अपने मूल रूप में ही विद्यमान रहते हैं।

४. विकारनिष्पन्न - किसी वर्ण का रूप परिवर्तन विकार कहा जाता है। **''सर्वेर्णे दीर्घः सह''** (सारस्वत व्याकरण, २/५२) इस सूत्र के अनुसार एक समान स्वर वर्ण के आगे तत्सदृश स्वर वर्ण आ जाय तो पहला दीर्घ हो जाता है। अ+अ=आ, इ+इ=ई इत्यादि।

यहाँ दण्डस्य+अग्रं=दण्डाग्रम, सा+आगता=साऽऽगता, दधि+इदं=दधीदं, नदी+ईहते=नदीहते, मधु+उदकं=मधूदकं, बहु+ऊहते=बहूहते।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(१२६)

पंचनाम

से किं तं पंचणामे?

पंचणामे पंचविहे पण्णत्ते। तंजहा-णामिकं ✧ १ णैपातिकं २ आख्यातिकं ३ औपसर्गिकं ४ मिश्रम् ५। 'अश्व' इति णामिकं, 'खलुं' इति णैपातिकं, 'धावति' इति आख्यातिकं, 'परि'इत्यौपसर्गिकं, 'संयत' इति मिश्रम्। सेत्तं पंचणामे।

भावार्थ - पंचनाम कितने प्रकार का है?

पंचनाम पाँच प्रकार का प्रतिपादित हुआ है - १. नामिक २. नैपातिक ३. आख्यातिक ४. औपसर्गिक एवं ५. मिश्र।

इनके उदाहरण इस प्रकार हैं - अश्व नामिक है, खलु नैपातिक है, धावति आख्यातिक है, परि औपसर्गिक है तथा संयत मिश्र है।

यह पंचनाम का निरूपण है।

विवेचन - उपर्युक्त सूत्र में जिन पाँच भेदों का उल्लेख है, उनमें समग्र शब्द समवाय का समावेश हो जाता है। जितने भी प्रकार के शब्द प्राप्त हैं, उनकी निष्पत्ति में इन पाँचों भेदों का या तन्मूलक विधा का मुख्य आधार है। इनका विश्लेषण इस प्रकार है -

१. नामिक - संसार में जितने भी पदार्थ हैं, उनकी पहचान के लिए विभिन्न नाम दिए गए हैं। वे नाम जाति, व्यक्ति, भाव इत्यादि के आधार पर भिन्न-भिन्न हैं। व्याकरण में जातिवाचक, व्यक्तिवाचक, भाववाचक संज्ञाओं के रूप में जो भेद किया गया है, उसका यही तात्पर्य है।

(पाठ में) सूत्र के उदाहरण में अश्व शब्द का नामिक के रूप में उल्लेख है। 'अश्व' चतुष्पद जन्तुविशेष का नाम है। यह जातिवाचक संज्ञा है। इसी प्रकार व्यक्ति के नाम भी नामिक में आते हैं। वचन, लिङ्ग, कारक आदि के भेद से इनके विविध रूप बनते हैं।

✧ णामियं १ णेवाइयं २ अक्खाइयं ३ ओवसग्गियं ४ मिस्सं ५। 'आस' त्ति णामियं, 'खलु' त्ति णेवाइयं 'धावइ' त्ति अक्खाइयं 'परि' त्ति ओवसग्गियं, 'संजय' त्ति मिस्सं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२. नैपातिक - नैपातिक के मूल में निपात है। "**निपतति इति निपातः, तत्संबद्धं नैपातिकं**" - अर्थात् जो विशेष रूप में आगत है, प्रयुक्त है, जिनमें लिंग, वचन, कारक इत्यादि के परिणामस्वरूप कोई परिवर्तन नहीं होता। समस्त अव्यय पद निपात में आ जाते हैं।

पाणिनीय व्याकरण (लघुसिद्धान्त कौमुदी) में कहा है -

सदृशं त्रिषु लिङ्गेशु, सर्वासु च विभक्तिसु।
सर्वेषु चैव वचनेषु, यत्न व्येति तदव्ययम्॥

इसमें नूनं, खलु आदि उदाहरण ज्ञातव्य है।

३. आख्यातिक - इसके मूल में आख्यात शब्द हैं, जो क्रिया का बोधक है। भाषा वाक्यों से बनती है, वाक्य शब्दों से बनते हैं। क्रियाओं के अभाव में वाक्य रचना संभव नहीं होती। परस्मैपदी, आत्मनेपदी एवं उभयपदी के रूप में तीन प्रकार की धातुओं से क्रियाएँ बनती हैं। कृदन्त आदि पद भी उनसे बनते हैं।

जैसे - धावति, रोदति, क्रियते आदि।

४. औपसर्गिक - साधारणतः बाईस (संस्कृत व्याकरण में चौबीस) उपसर्ग माने गए हैं। धातु के पूर्व में जुड़ कर ये अर्थ परिवर्तित करते हैं। कहा गया है -

उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते।
प्रहाराऽऽहार संहार विहार परिहारवत्॥

बाईस उपसर्ग ये हैं -

प्र, परा, अप, सम्, अनु, अव्, निस्, निर्, दुस्, दुर्, वि, आङ्, नि, अधि, अपि, अति, सु, उत्, अभि, प्रति, परि, उप।

५. मिश्र - वे पद जो उपसर्ग और धातु आदि के मेल से बनते हैं। जैसे - संयत उदाहरण में 'सम्' उपसर्ग और 'यत्' धातु का योग है।

(१२७)

षट्नाम

से किं तं छण्णामे?

छण्णामे छव्विहे पण्णत्ते। तंजहा - उदइए १ उवसमिए २ खइए ३ खओवसमिए ४ पारिणामिए ५ सण्णिवाइए ६।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से किं तं उदइए?

उदइए दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - उदइए य १ उदयणिप्फण्णे य २।

से किं तं उदइए?

उदइए-अट्ठण्हं कम्मपयडीणं उदएणं। सेत्तं उदइए।

से किं तं उदयणिप्फण्णे?

उदयणिप्फण्णे दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - जीवोदयणिप्फण्णे य १ अजीवोदयणिप्फण्णे य २।

शब्दार्थ - **अट्ठण्हं** - आठों के, **कम्मपयडीणं** - कर्मप्रकृतियों के।

भावार्थ - छह नाम कितने प्रकार का है?

इसके छह भेद बतलाए गए हैं - १. औदयिक २. उपशमिक ३. क्षायिक ४. क्षायोपशमिक ५. पारिणामिक एवं ६. सान्निपातिक।

औदयिक (भाव) कितने प्रकार का है?

यह दो प्रकार का निरूपित हुआ है - १. औदयिक २. उदयनिष्पन्न।

औदयिक का क्या स्वरूप है?

(ज्ञानावरणीय आदि) कर्म-प्रकृतियों के उदय से जनित भाव औदयिक है। यह औदयिक का निरूपण है।

उदयनिष्पन्न कैसा है?

यह दो प्रकार का प्रज्ञप्त हुआ है - १. जीवोदय निष्पन्न एवं २. अजीवोदय निष्पन्न।

विवेचन - यहाँ औदयिक भाव के जीवोदयनिष्पन्न और अजीवोदयनिष्पन्न के रूप में दो भेद किए गए हैं। इनका आशय इस प्रकार है। कर्मोदय के जीव और अजीव दो माध्यम हैं। कर्मोदयजनित अवस्थाएँ, जो जीव को साक्षात् प्रभावित करती हैं अथवा कार्मिक उदय से जीव में जो-जो पर्याय निष्पन्न होते हैं, उन्हें जीवोदय निष्पन्न कहा जाता है क्योंकि उनका माध्यम जीव है। जो-जो अवस्थाएँ अजीव के माध्यम से उत्पन्न होती हैं, उन्हें अजीवोदयनिष्पन्न कहा जाता है।

जीवोदय निष्पन्न के भेद

से किं तं जीवोदयणिप्फण्णे?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जीवोदयणिप्फण्णे अणेगविहे पण्णत्ते। तंजहा- णेरइए, तिरिक्खजोणिए, मणुस्से, देवे, पुढविकाइए जाव तसकाइए, कोहकसाई जाव लोहकसाई, इत्थीवेयए, पुरिसवेयए, णपुंसगवेयए, कण्हलेसे जाव सुक्कलेसे, मिच्छादिट्ठी, सम्मदिट्ठी, सम्मामिच्छादिट्ठी, अविरए, असण्णी, अण्णाणी, आहारए, छउमत्थे सजोगी, संसारत्थे, असिद्धे। सेत्तं जीवोदयणिप्फण्णे।

शब्दार्थ - **कोहकसाइ** - क्रोधकाषायिक, **इत्थीवेइए** - स्त्रीवेदिक, **कण्ह** - कृष्ण, **मिच्छदिट्ठी** - मिथ्यादृष्टि, **सम्म** - सम्यक्, **अविरए** - अविरत, **असण्णी** - असंज्ञी, **अण्णाणी** - अज्ञानी, **आहारए** - आहारक, **छउमत्थे** - छद्मस्थ, **सजोगी** - सयोगी, **संसारत्थे**- संसारस्थ।

भावार्थ - जीवोदय निष्पन्न के कितने प्रकार हैं?

जीवोदय निष्पन्न के अनेक प्रकार निरूपित हुए हैं - जैसे - नैरयिक, तिर्यंचयोनिक, मनुष्य, देव, पृथ्वीकायिक यावत् त्रसकायिक, क्रोधकाषायिक यावत् लोभकाषायिक, स्त्रीवेदिक, पुरुषवेदिक, नपुंसकवेदिक, कृष्ण लेश्या युक्त यावत् शुक्ल लेश्यायुक्त, मिथ्यादृष्टि, सम्यक्दृष्टि, सम्यक्मिथ्यादृष्टि, अविरत - विरति रहित, असंज्ञी, अज्ञानी, आहारक, छद्मस्थ, सयोगी, संसारस्थ एवं असिद्ध - ये जीवोदय निष्पन्न भाव हैं।

यह जीवोदयनिष्पन्न का निरूपण है।

विवेचन - जीवोदय निष्पन्न के भेदों में तीन दृष्टियाँ बताई है। यद्यपि तीनों दृष्टियाँ श्रद्धान-चेतना युक्त होने से वे अरूपी होने से यहाँ पर नहीं होकर क्षायोपशमिक, औपशमिक एवं क्षायिक भाव में होनी चाहिये किन्तु यहाँ इन्हें औदयिक भाव में लिया गया है इसका कारण इस प्रकार समझा जाता है - यहाँ पर 'दृष्टि' शब्द से भगवती सूत्र शतक १२ उद्देशक ५ में अरूपी के भेदों में तीन दृष्टियों को बताया गया है वह यहाँ पर नहीं समझना चाहिये। मिथ्यात्व मोह, सम्यक्त्व मोह एवं मिश्र मोह के उदय से जो विकृति होती है उसे ही यहाँ पर दृष्टि शब्द से समझना चाहिये। क्योंकि उदय निष्पन्न के सभी भेद कर्म उदयजन्य होने से रूपी ही होते हैं। अतः यहाँ पर दृष्टि शब्द से भी मिथ्यात्व मोह आदि की उदयजन्य अवस्थाओं को ही समझना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अजीवोदयनिष्पन्न के प्रकार

से किं तं अजीवोदयणिप्फण्णे?

अजीवोदयणिप्फण्णे अणेगविहे पण्णत्ते। तंजहा - उरालियं वा सरीरं, उरालियसरीरपओगपरिणामियं वा दव्वं, वेउव्वियं वा सरीरं, वेउव्वियसरीरपओग-परिणामियं वा दव्वं, एवं आहारगं सरीरं तेयगं सरीरं कम्मगसरीरं च भाणियव्वं। पओगपरिणामिए वण्णे, गंधे, रसे, फासे। सेत्तं अजीवोदयणिप्फण्णे। सेत्तं उदयणिप्फण्णे। सेत्तं उदइए।

शब्दार्थ - **उरालियं** - औदारिक, **वेउव्वियं** - वैक्रिय, **आहारगं** - आहारक, **तेयगं** - तैजस्, **कम्मग** - कार्मण।

भावार्थ - अजीवोदयनिष्पन्न औदयिक भाव कितने प्रकार का है?

अजीवोदय निष्पन्न औदयिक भाव अनेक प्रकार का बतलाया गया है। यथा - १. औदारिक शरीर २. औदारिक शरीर के प्रयोग से परिणामित द्रव्य ३. वैक्रिय शरीर ४. वैक्रिय शरीर के प्रयोग से परिणामित द्रव्य ५-६. आहारक शरीर एवं आहारक शरीर के प्रयोग से परिणामित द्रव्य ७-८. तैजस शरीर एवं तैजस शरीर के प्रयोग से परिणामित द्रव्य ९-१०. कार्मण शरीर एवं कार्मण शरीर के प्रयोग से परिणामित द्रव्य एवं ११-१४. वर्ण, गन्ध, रस तथा स्पर्श ये अजीवोदयनिष्पन्न और औदयिक भाव हैं। यह उदयनिष्पन्न भाव का विवेचन हैं। इस प्रकार औदयिक भाव का विवेचन परिसमाप्त होता है।

औपशमिक भाव

से किं तं उवसमिए?

उवसमिए दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - उवसमे य १ उवसमणिप्फण्णे य २।

से किं तं उवसमे?

उवसमे मोहणिज्जस्स कम्मस्स उवसमेणं। सेत्तं उवसमे।

शब्दार्थ - **मोहणिज्जस्स** - मोहनीय का, **कम्मस्स** - कर्म का।

भावार्थ - औपशमिक भाव कितने प्रकार का है?

औपशमिक भाव दो प्रकार का है - १. उपशम २. उपशम निष्पन्न।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उपशम का क्या स्वरूप है?

मोहनीय कर्म के उपशम से होने वाला भाव उपशम कहा जाता है।

से किं तं उवसमणिप्फण्णे?

उवसमणिप्फण्णे अणेगविहे पण्णत्ते। तंजहा - उवसंतकोहे जाव उवसंतलोभे, उवसंतपेज्जे, उवसंतदोसे उवसंतदंसणमोहणिज्जे, उवसंतचरित्त मोहणिज्जे, उवसामिया सम्मत्तलद्धी, उवसामिया चरित्तलद्धी, उवसंतकसायछउमत्थवीयरागे। सेत्तं उवसमणिप्फण्णे। सेत्तं उवसमिए।

शब्दार्थ - **उवसंत पेज्जे** - उपशांतप्रेम - उपशांत राग, **उवसंतलद्धी** - उपशांत लब्धि, **उवसंतदोसे** - उपशांत द्वेष, **उवसंतकसाय** - **छउमत्थवीयरागे** - उपशांत कषाय छद्मस्थ वीतराग।

भावार्थ - उपशमनिष्पन्न भाव कितने प्रकार का है?

उपशमनिष्पन्न भाव अनेक प्रकार का कहा गया है - उपशांत क्रोध यावत् उपशांत लोभ, उपशांत राग, उपशांत द्वेष, उपशांत दर्शन मोहनीय, उपशांत चारित्र मोहनीय, उपशांत सम्यक्त्व लब्धि, उपशांत चारित्र लब्धि, उपशांत कषाय छद्मस्थ वीतराग - ये उपशम निष्पन्न भाव हैं।

उपशम निष्पन्न का यह निरूपण है। यों औपशमिक भाव का निरूपण सम्पन्न होता है।

विवेचन - उपर्युक्त सूत्र में आये हुए कुछ शब्दों का आशय इस प्रकार है - **'उवसामिया सम्मत्तलद्धी'** एवं **'उवसंतदंसणमोहणिज्जे'** इन दोनों में कार्य एवं कारण भाव का संबंध है। अर्थात् औपशमिक सम्यक्त्वलब्धि कार्य है एवं उपशांत दर्शन मोहनीय कारण है। इसी प्रकार **'उवसामिया चरित्तलद्धी'** एवं **'उवसंतचरित्त मोहणिज्जे'** इन दोनों शब्दों में भी कार्य कारण भाव का संबंध समझना चाहिये।

औपशमिक सम्यक्त्व लब्धि चौथे गुणस्थान से हो सकती है। औपशमिक चारित्र लब्धि ग्यारहवें गुणस्थान में ही होती है।

क्षायिक भाव

से किं तं खइए?

खइए दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - खइए य १ खयणिप्फण्णे य २।

से किं तं खइए?

खइए - अट्ठण्हं कम्मपयडीणं खएणं। सेत्तं खइए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - क्षायिक भाव के कितने प्रकार हैं?

क्षायिक भाव दो प्रकार का कहा गया है - १. क्षायिक तथा २. क्षयनिष्पन्न।

क्षायिक क्या है?

आठ कर्म प्रकृतियों के क्षय से जो होता है, वह क्षायिक है।

क्षयनिष्पन्न

से किं तं खयणिप्फण्णे?

खयणिप्फण्णे अणेगविहे पण्णत्ते। तंजहा - उप्पण्णणाणदंसणधरे, अरहा, जिणे, केवली, खीणआभिणिबोहिय णाणावरणे, खीणसुयणाणावरणे, खीणओहिणाणावरणे, खीणमणपज्जवणाणावरणे, खीणकेवलणाणावरणे, अणावरणे, णिरावरणे, खीणावरणे, णाणावरणिज्जकम्मविप्पमुक्के, केवलदंसी, सव्वदंसी, खीणणिद्दे, खीणणिद्दाणिद्दे, खीणपयले, खीणपयलापयले, खीणथीणगिद्धी, खीणचक्खुदंसणावरणे, खीणअचक्खुदंसणावरणे, खीणओहिदंसणावरणे, खीणकेवलदंसणावरणे, अणावरणे, णिरावरणे, खीणावरणे, दरिसणावरणिज्जकम्मविप्पमुक्के, खीणसायावेयणिज्जे, खीणअसायावेयणिज्जे, अवेयणे, णिव्वेयणे, खीणवेयणे, सुभासुभवेयणिज्जकम्मविप्पमुक्के, खीणकोहे जाव खीणलोहे, खीणपेज्जे, खीणदोसे, खीणदंसणमोहणिज्जे, खीणचरित्तमोहणिज्जे, अमोहे, णिम्मोहे, खीणमोहे, मोहणिज्जकम्मविप्पमुक्के, खीणणेरइयाउए, खीणतिरिक्खजोणियाउए, खीणमणुस्साउए, खीणदेवाउए, अणाउए, णिराउए, खीणाउए, आउकम्मविप्पमुक्के, गइ-जाइ-सरीरंगोवंग-बंधण-संघायण-संघयण-संठाण-अणेगबोंदिविंदसंघायविप्पमुक्के, खीणसुभणामे, खीणअसुभणामे, अणामे, णिण्णामे, खीणणामे, सुभासुभणामकम्मविप्पमुक्के, खीणउच्चागोए, खीणणीयागोए, अगोए, णिग्गोए, खीणगोए, उच्चणीयगोत्तकम्मविप्पमुक्के, खीणदाणंतराए, खीणलाभंतराए, खीणभोगंतराए, खीणउवभोगंतराए, खीणवीरियंतराए, अणंतराए, णिरंतराए, खीणंतराए, अंतरायकम्मविप्पमुक्के, सिद्धे,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बुद्धे, मुत्ते, परिणिव्वुए, अंतगडे, सव्वदुक्खप्पहीणे। सेत्तं खयणिप्फण्णे। सेत्तं खइए।

शब्दार्थ - **उप्पण्णणाणदंसणधरे** - उत्पन्न ज्ञान दर्शन धर, **खीण** - क्षीण, **चक्खु** - चक्षु, **परिणिव्वुए** - परिनिर्वृत।

भावार्थ - क्षयनिष्पन्न कितने प्रकार का है?

क्षयनिष्पन्न अनेक प्रकार का है - उत्पन्न ज्ञान-दर्शन धर, अर्हत्, जिन, केवली, क्षीण-आभिनिबोधिक ज्ञानावरण युक्त, क्षीण श्रुत ज्ञानावरण युक्त, क्षीण अवधिज्ञानावरण युक्त, क्षीणमनः पर्यव ज्ञानावरण युक्त, क्षीण केवल ज्ञानावरण युक्त, अविद्यमान आवरण युक्त, निरावरण युक्त, क्षीणावरण युक्त, ज्ञानावरणीय कर्म विप्रमुक्त, केवलदर्शी, सर्वदर्शी, क्षीणनिद्र, क्षीणनिद्रानिद्र, क्षीणप्रचल, क्षीण प्रचलाप्रचल, क्षीण स्त्यानगृद्धि, क्षीण चक्षुदर्शनावरण युक्त, क्षीण अचक्षु-दर्शनावरण युक्त, क्षीण अवधिदर्शनावरण युक्त, क्षीण केवल दर्शनावरण युक्त, अनावरण, निरावरण, क्षीणावरण, दर्शनावरणीयकर्म विप्रमुक्त, क्षीणसातावेदनीय, क्षीणअसाता वेदनीय, अवेदन, निर्वेदन, क्षीण वेदन, शुभाशुभ-वेदनीय कर्म विप्रमुक्त, क्षीण क्रोध यावत् क्षीणलोभ, क्षीणराग, क्षीणद्वेष, क्षीणदर्शन मोहनीय, क्षीण चारित्र मोहनीय, अमोह, निर्मोह, क्षीणमोह, मोहनीय कर्म विप्रमुक्त, क्षीण नरकायुष्क, क्षीणतिर्यंचायुष्क, क्षीण मनुष्यायुष्क, क्षीणदेवायुष्क, अनायुष्क, निरायुष्क, क्षीणायुष्क, आयुकर्म विप्रमुक्त, गति-जाति-शरीर-अंगोपांग-बंधन-संघात-संहनन-अनेक शरीरवृन्द संघात विप्रमुक्त, क्षीण-शुभनाम, क्षीण सुभगनाम, अनाम, निर्नाम, क्षीणनाम, शुभाशुभनामकर्मविप्रमुक्त, क्षीण-उच्चगोत्र, क्षीणनीचगोत्र, अगोत्र, निर्गोत्र, क्षीणगोत्र, शुभाशुभ गोत्र कर्म विप्रमुक्त, क्षीणदानान्तराय, क्षीणलाभान्तराय, क्षीण भोगान्तराय, क्षीण-उपभोगान्तराय, क्षीण-वीर्यान्तराय, अन्तराय, निरंतराय, क्षीणान्तराय, अन्तराय कर्म विप्रमुक्त, सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, परिनिर्वृत, अंतकृत, सर्वदुःखप्रहीण।

यह क्षयनिष्पन्न क्षायिक भाव का स्वरूप है। इस प्रकार क्षायिक भाव का निरूपण समाप्त होता है।

विवेचन - उपर्युक्त क्षायिक भाव के वर्णन में-आठ कर्मों की उत्तर प्रकृतियों के संक्षिप्त तरीके से ३१ भेद करके उनके क्षय से होने वाले गुणों का वर्णन किया गया है। ज्ञानावरणीय एवं दर्शनावरणीय कर्म की क्रमशः पांच व नौ प्रकृतियों के क्षय से होने वाले गुणों को बताकर फिर पांचों प्रकृतियों के पूर्ण क्षय से होने वाले नामों (अर्हत्, जिन, केवली) को एवं नौ प्रकृतियों के पूर्ण क्षय से होने वाले नामों (केवलदर्शी, सर्वदर्शी) को बताया गया है एवं दोनों

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कर्मों के क्षय से होने वाले तीन नाम - अनावरण, निरावरण, क्षीणावरण बताये हैं। इससे यह फलित होता है कि ज्ञानावरणीय एवं दर्शनावरणीय कर्म के आवरण से जो गुण आच्छादित थे वे गुण इन दोनों कर्मों के क्षय होने से सद्भूत नामवाले (केवलज्ञान, केवलदर्शन) प्रकट हुए। जैसे बादलों के आवरण से सूर्य विमान ढका हुआ था, वह बादलों के हट जाने से वास्तविक रूप से प्रकट होता है, वैसा ही इन दोनों कर्मों के क्षय से नवीन गुण उत्पन्न होने से आगमकारों ने - 'उत्पन्न ज्ञान, दर्शन धर' शब्द के रूप में बताया है। शेष छह कर्मों के क्षय से नवीन नाम वाला कोई गुण उत्पन्न नहीं होकर उन-उन कर्मों का पूर्ण अभाव होना ही गुणों के रूप में बताया गया है। क्योंकि जीव के मौलिक गुण तो ज्ञान एवं दर्शन ही बताते गये हैं। दो कर्मों के क्षय से सकारात्मक गुणों एवं शेष छह कर्मों के क्षय से निषेधात्मक गुणों की प्राप्ति होती है। ऐसा आगमकारों के द्वारा बताया गया है। यहाँ पर ३१ गुणों का वर्णन किया गया है इसी पाठ के वर्णन से अपेक्षा से आठ कर्मों की मूल प्रकृतियों के क्षय से आठ गुणों को कहना भी अनुचित नहीं है।

क्षायोपशमिक भाव

से किं तं खओवसमिए?

खओवसमिए दुविहे पण्णत्ते। तंजहा-खओवसमे य १ खओवसमणिप्फण्णे य २।

से किं तं खओवसमे?

खओवसमे - चउण्हं घाइकम्माणं खओवसमेणं, तंजहा-णाणावरणिज्जस्स १ दंसणावरणिज्जस्स २ मोहणिज्जस्स ३ अंतरायस्स खओवसमेणं ४। सेत्तं खओवसमे।

शब्दार्थ - **घाइकम्माणं** - घाति कर्मों को।

भावार्थ - क्षायोपशमिक भाव कितने प्रकार का होता है?

क्षायोपशमिक भाव दो प्रकार का बतलाया गया है - १. क्षयोपशम २. क्षयोपशम निष्पन्न।

क्षयोपशम का क्या स्वरूप है?

चार घाति कर्मों के क्षयोपशम से होने वाला भाव क्षयोपशम भाव है। ये चार घाति कर्म- १. ज्ञानावरणीय २. दर्शनावरणीय ३. मोहनीय एवं ४. अंतराय हैं। यह क्षयोपशम का स्वरूप है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्षयोपशम-निष्पन्न

से किं तं खओवसमणिप्फण्णे?

खओवसमणिप्फण्णे अणेगविहे पण्णत्ते। तंजहा - खओवसमिया आभिणिबोहियणाणलद्धी जाव खओवसमिया मणपज्जवणाणलद्धी, खओवसमिया मइअण्णाणलद्धी, खओवसमिया सुयअण्णाणलद्धी, खओवसमिया विभंग-णाणलद्धी, खओवसमिया चक्खुदंसणलद्धी, खओवसमिया अचक्खुदंसणलद्धी, खओवसमिया ओहिदंसणलद्धी, एवं सम्मदंसणलद्धी मिच्छादंसणलद्धी सम्ममिच्छादंसणलद्धी, खओवसमिया सामाइयचरित्तलद्धी, एवं छेदोवट्ठावणलद्धी परिहारविसुद्धियलद्धी सुहुमसंपरायचरित्तलद्धी, एवं चरित्ताचरित्तलद्धी, खओवसमिया दाणलद्धी, एवं लाभलद्धी भोगलद्धी उवभोगलद्धी, खओवसमिया वीरियलद्धी, एवं पंडियवीरियलद्धी बालवीरियलद्धी बालपंडियवीरियलद्धी, खओवसमिया सोइंदियलद्धी जाव फासिंदियलद्धी, खओवसमिए आयारंगधरे, एवं सुयगडंगधरे ठाणंगधरे समवायंगधरे विवाहपण्णत्तिधरे णायाधम्मकहाधरे उवासगदसा० अंतगडदसा० अणुत्तरोववाइयदसा० पण्हावागरणधरे विवागसुयधरे, खओवसमिए दिट्ठिवायधरे, खओवसमिए णवपुव्वी जाव चउद्दसपुव्वी, खओवसमिए गणी, खओवसमिए वायए। सेत्तं खओवसम-णिप्फण्णे। सेत्तं खओवसमिए।

शब्दार्थ - आभिणिबोहियणाणलद्धी - आभिनिबोधिक ज्ञान लब्धि, **सोइंदियलद्धी** - श्रोत्रेन्द्रिय लब्धि, **वायए** - वाचक।

भावार्थ - क्षयोपशम निष्पन्न का क्या स्वरूप है?

क्षयोपशम निष्पन्न अनेक प्रकार का प्रज्ञप्त हुआ है - क्षायोपशमिकी आभिनिबोधिक ज्ञानलब्धि यावत् क्षायोपशमिकी मनः पर्याय ज्ञान लब्धि, क्षायोपशमिकी मति - अज्ञान लब्धि, क्षायोपशमिकी श्रुत-अज्ञान लब्धि, क्षायोपशमिकी विभंग-ज्ञानलब्धि, क्षायोपशमिकी चक्षुदर्शन लब्धि, इसी प्रकार अचक्षुदर्शनलब्धि, अवधिदर्शनलब्धि, सम्यग्दर्शनलब्धि, मिथ्यादर्शनलब्धि, सम्यग्मिथ्यादर्शन लब्धि, क्षायोपशमिकी सामायिक चारित्रलब्धि, छेदोपस्थापन लब्धि,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परिहारविशुद्धि लब्धि, सूक्ष्म सांपरायिकलब्धि, चारित्राचारित्रलब्धि, क्षायोपशमिकी दान-लाभ-भोग-उपभोगलब्धि, क्षायोपशमिकी वीर्यलब्धि, पंडित वीर्य लब्धि, बाल वीर्य लब्धि, बाल पंडित वीर्य लब्धि, क्षायोपशमिकी श्रोत्रेन्द्रिय लब्धि यावत् क्षायोपशमिकी स्पर्शनेन्द्रिय लब्धि, क्षायोपशमिकी आचारांगधर, सूत्रकृतांगधर, स्थानांगधर, समवायांगधर, व्याख्याप्रज्ञप्तिधर, ज्ञाताधर्मकथांगधर, उपासकदशांगधर, अन्तकृद्दशांगधर, अनुत्तरोपपातिकदशांगधर, प्रश्नव्याकरणधर, क्षायोपशमिक विपाकश्रुतधर, क्षायोपशमिक दृष्टिवादधर, क्षायोपशमिक नवपूर्वधर यावत् चौदह पूर्वधर, क्षायोपशमिक गणी, क्षायोपशमिक वाचक। ये सब क्षयोपशम निष्पन्न भाव हैं।

यह क्षायोपशमिक भाव का निरूपण है।

विवेचन - जैन दर्शन में कर्मवाद का जैसा सूक्ष्म, तलस्पर्शी एवं गंभीर विवेचन हुआ है, वह वास्तव में विलक्षण है। भगवती, प्रज्ञापना आदि सूत्रों तथा षट्खण्डागम एवं उन पर वीरसेनाचार्य रचित धवलाटीका में विभिन्न स्थलों पर जो कर्म सिद्धान्त का अतीव सूक्ष्म विश्लेषण हुआ है, वह प्रत्येक तत्त्व जिज्ञासु के लिए पठनीय एवं मननीय है। जीवन का जो भी स्वरूप है, उसके पीछे कर्मों की ऐसी परम्परा या श्रृंखला जुड़ी है, जिसके परिणाम स्वरूप उन्नति-अवनति, उत्थान-पतन, वैभव-दारिद्र्य, प्रज्ञा-मूढ़ता इत्यादि घटित होते हैं। कर्म आत्मा के शुद्ध स्वरूप को विविध रूप में आवृत किए रहते हैं। प्रत्येक कर्म के साथ उसकी अत्यधिक विभिन्नता पूर्ण अवस्थाएं जुड़ी हैं। उनकी तरतमता, न्यूनाधिकता, विशदता-अविशदता इत्यादि के परिणाम- स्वरूप आत्म-शक्ति प्रतिबद्ध रहती है। ज्यों-ज्यों आत्म-पराक्रम, तपश्चरण, संयम तथा निर्जरा मूलक उपक्रमों द्वारा वे कर्म जिन-जिन स्थितियों, अवस्थाओं में तरतम रूप से क्षय प्राप्त करते हैं, त्यों-त्यों वे शक्तियाँ, योग्यताएँ, विशेषताएं, जो आच्छन्न थीं, प्राकट्य पा लेती हैं। ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूप आत्म स्वभाव विविध रूप में अभ्युदित होने लगता है। यहाँ जो क्षयनिष्पन्न भावों का वर्णन हुआ है, वे उन-उन कर्म प्रकृतियों के क्षय के निष्पत्ति पाते हैं, जिनके कारण वे अवरुद्ध थे।

क्षय और उपशम में यह भेद है कि कर्मों की प्रकृतियाँ जब क्षय प्राप्त करती हैं, क्षीण हो जाती हैं, वह बाधा सर्वथा उच्छिन्न हो जाती है, जो आत्म-विकास का अवरोध करती थी।

जिस प्रकार बीज अग्नि में जल जाता है, तो फिर वह उगता नहीं। कर्मक्षय ऐसी ही स्थिति है, कहा है -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दग्धे बीजे यथाऽत्यन्तं न प्ररोहति अङ्कुरः।
कर्म बीजे तथा दग्धे न प्ररोहति भवांकुरः॥

उपशम उस अग्निपुंज के समान है, जिसके ऊपर राख की परत आ गयी है किन्तु भीतर अग्नि विद्यमान है। परत के हटते ही वह जला देता है। उपशम में कर्म सर्वथा क्षीण नहीं होता। वह उपशांत होता है। क्षायोपशमिक में कर्म की कुछ प्रकृतियाँ क्षीण होती हैं, कुछ उपशांत होती हैं। कर्मों के सर्वथा क्षय हुए बिना मुक्ति संभव नहीं है। इसीलिए "**कृत्स्नकर्मक्षयो मोक्षः**' यह कहा गया है। इन तीनों ही भावों का उपर्युक्त शास्त्रों में तथा उत्तरवर्ती कर्मग्रन्थों में जो विशद विवेचन हुआ है, वह वास्तव में बड़ा अद्‌भुत है। जिज्ञासुओं के लिए यह बड़ा बोधप्रद है।

विशेष ज्ञातव्य - यहाँ पर क्षायोपशमिक भाव में सम्यग्दर्शनलब्धि, मिथ्यादर्शनलब्धि एवं सम्यग्मिथ्या-दर्शनलब्धि इन तीन लब्धियों को बताया गया है। भगवती सूत्र शतक १२ उद्देशक ५ में अरूपी के भेदों में जो तीन दृष्टियाँ बताई गई हैं, उन्हीं को यहाँ पर तीन लब्धियों के नाम से बताया गया है।

मिथ्यात्व मोहनीय कर्म रूपी होने से मिथ्यात्व मोह को रूपी कहा गया है। मिथ्यात्व मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से आत्मा के जो अध्यवसाय होते हैं उन्हें मिथ्यादर्शन कहते हैं। आत्मा के परिणाम अरूपी होने से मिथ्यादर्शन को भी अरूपी माना गया है। इसी प्रकार सम्यग्दर्शन एवं मिश्रदर्शन को भी समझना चाहिये। मिथ्यात्व मोहनीय कर्म के पूर्ण क्षय से तो क्षायिक सम्यक्त्व होता है वह क्षायिक भाव के वर्णन में बताया गया है।

पारिणामिक भाव

से किं तं पारिणामिए?

पारिणामिए दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - साइपारिणामिए य १ अणाइपारिणामिए य २।

से किं तं साइपारिणामिए?

साइपारिणामिए अणेगविहे पण्णत्ते। तंजहा -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गाहा - जुण्णसुरा जुण्णगुलो, जुण्णघयं जुण्णतंदुला चेव।
अब्भा य अब्भरुक्खा, सण्णा गंधव्वणगरा य॥१॥

उक्कावाया, दिसादाहा, गज्जियं, विज्जू, णिग्घाया, जूवया, जक्खादित्ता, धूमिया, महिया, रउग्घाया, चंदोवरागा, सूरोवरागा, चंदपरिवेसा, सूरपरिवेसा, पडिचंदा, पडिसूरा, इंदधणू, उदगमच्छा, कविहसिया, अमोहा, वासा, वासधरा, गामा, णगरा, घरा, पव्वया, पायाला, भवणा, णिरया-रयणप्पहा, सक्करप्पहा, वालुयप्पहा, पंकप्पहा, धूमप्पहा, तमप्पहा, तमतमप्पहा, सोहम्मे जाव अच्चुए, गेवेज्जे, अणुत्तरे, ईसिप्पब्भारा, परमाणुपोग्गले, दुपएसिए जाव अणंतपएसिए। सेत्तं साइपारिणामिए।

शब्दार्थ - जुण्णसुरा - जीर्ण मदिरा - पुरानी शराब, **जुण्णगुलो** - पुराना गुड़, **जुण्णघयं**- पुराना घृत, **जुण्णतंदुला** - पुराने चावल, **अब्भा** - मेघ, **अब्भरुक्खा** - वृक्ष के आकार में बादल, **सण्णा** - संध्या, **गंधव्वणगरा** - देवों के द्वारा कृत नगर, **उक्कावाया** - उल्कापात, **दिसादाहा** - दिग्दाह, **गज्जियं** - गर्जित, **विज्जू** - बिजली, **णिग्घाया** - निर्घात, **जूवया** - यूपक-संध्या की प्रभा एवं चन्द्रप्रभा का मिश्रण, **जक्खादित्ता** - यक्षादीप्त - यक्ष आदि व्यंतर देवों द्वारा आकाश में विद्युत की तरह किया गया प्रकाश, **धूमिया** - धूमिका, **महिया** - महिका-काली और सफेद धुँअर, **रउग्घाया** - रजउद्घात - चारों ओर धूल का फैल जाना, **चंदोवरागा** - चंद्रोपराग - चन्द्रग्रहण, **सूरोवरागा** - सूर्योपराग - सूर्यग्रहण, **चंदपरिवेसा** - चन्द्रपरिवेश, **सूरपरिवेसा** - सूर्यपरिवेश-चन्द्र/सूर्य के चारों और पुद्गल परमाणु निर्मित कुण्डलाकार परिमंडल, **पडिचंदा** - प्रतिचन्द्र - उत्पातादादिसूचक द्वितीय चन्द्र परिदर्शन, **पडिसूरा** - प्रतिसूर्य-उत्पातादादिसूचक द्वितीय सूर्य का दर्शन, **इंदधणू** - इन्द्रधनुष, **उदगमच्छा** - उदगमत्स्य - इन्द्रधनुष के खण्ड, उत्पात विशेष, **कविहसिया** - कपिहसित - कभी-कभी आकाश में सुनाई देने वाली अति कर्ण कटु आवाज, **अमोहा** - अमोघ - सूर्य बिंब के नीचे यदाकदा दिखाई देती काली रेखा, **वासा** - वर्ष-भरतादि क्षेत्र, **वासधरा** - वर्षधर - पर्वत विशेष, **गामा** - ग्राम, **णगरा** - नगर शहर, **घरा** - गृह, **पव्वया** - पर्वत, **पायाला** - पाताल।

भावार्थ - पारिणामिक भाव कितने प्रकार का है?

Jain Education International　　For Personal & Private Use Only　　www.jainelibrary.org

पारिणामिक भाव दो प्रकार का बतलाया गया है - १. सादिपारिणामिक एवं २. *अनादिपारिणामिक।*

सादिपारिणामिक भाव कितने प्रकार का है?

सादिपारिणामिक भाव के (निम्नांकित रूप में) अनेक प्रकार हैं -

गाथा - जीर्णसुरा, जीर्णगुड़, जीर्णघृत, जीर्णचावल, अभ्र, अभ्रवृक्ष, संध्या, गंधर्वनगर हैं॥१॥

(इनके साथ-साथ) उल्कापात, दिग्दाह, मेघगर्जन, विद्युत्, निर्घात, यूपक, यक्षादीप्त, धूमिका, महिका, रजउद्घात, चन्द्रग्रहण, सूर्य ग्रहण, चन्द्र परिवेश, सूर्यपरिवेश, प्रतिचन्द्र, प्रतिसूर्य, इन्द्रधनुष, जलमत्स्य - इन्द्र धनुष के खण्ड, कपिहास्य, अमोघ, भरतादि क्षेत्र, हिमवान् आदि पर्वत, ग्राम, नगर, गृह, पर्वत, पाताल, भवन, नरक - रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा, तमस्तमः प्रभा, सौधर्म यावत् अच्युत, ग्रैवेयक, अनुत्तरोपपातिक, ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी, परमाणु पुद्गल, द्विप्रदेशिक स्कन्ध यावत् अनंतप्रदेशिक स्कन्ध आदि सादिपारिणामिक भाव हैं।

से किं तं अणाइपारिणामिए?

अणाइपारिणामिए-धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, आगासत्थिकाए, जीवत्थिकाए, पुग्गलत्थिकाए, अद्धासमए, लोए, अलोए, भवसिद्धिया अभवसिद्धिया। सेत्तं अणाइपारिणामिए। सेत्तं पारिणामिए।

भावार्थ - अनादिपारिणामिक भाव कैसा है?

धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, काल, लोक, अलोक, भवसिद्धिक, अभवसिद्धिक - ये अनादिपारिणामिक हैं।

यह पारिणामिक का स्वरूप है।

विवेचन - **'परिणमते इति परिणामः'** जो क्षण-प्रतिक्षण परिणमित, परिणत होता है, अवस्थांतर प्राप्त करता है, उसे परिणाम कहा जाता है। जैन दर्शन के अनुसार द्रव्य मूलतः ध्रुव या अविनश्वर है। किन्तु उसमें एक अवस्था का नाश तथा दूसरी अवस्था की उत्पत्ति होती रहती है। इसलिए उसे एकान्ततः नित्य नहीं कहा जा सकता। इसी कारण जैन दर्शन परिणामनित्यत्ववादी है। इससे एकांतनित्यत्ववादी वेदांत और एकांत अनित्यत्ववादी या क्षणिकवादी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बौद्ध दर्शन का निरसन हो जाता है। **'उत्पादव्यय-ध्रौव्य युक्तं सत्'** - जैन दर्शन द्वारा स्वीकृत यह परिभाषा इसी भाव की द्योतक है।

द्रव्य में होने वाले परिणमन से जो भाव निष्पन्न होते हैं, उन्हें पारिणामिक कहा जाता है। वे सादि और अनादि के रूप में दो प्रकार के हैं। उदाहरण के रूप में जीर्ण मदिरा, जीर्ण गुड़ आदि का जो उल्लेख किया गया है, उसका आशय यह है कि उसका अभिनव रूप ज्यों-ज्यों नष्ट होता है, जीर्ण रूप त्यों-त्यों बनता रहता है। इस प्रकार जीर्णत्व का सादित्व सिद्ध होता है। इसी प्रकार अन्यान्य उदाहरण भी ज्ञातव्य हैं क्योंकि वे बनते हैं, मिट जाते हैं, मिटने पर जो नए बनते हैं, वे आदि सहित हैं।

धर्मास्ति, अधर्मास्ति आदि पांच अस्तिकाय, काल, लोक, अलोक, भवसिद्धिक आदि अनादिकालीन हैं, शाश्वत हैं, स्व-स्व रूप में परिणमनशील हैं। मदिरा, गुड़ आदि की तरह जीर्णत्व, अभिनव आदि भाव इनसे उद्भूत नहीं होते, अतः ये अनादिपारिणामिक हैं।

सान्निपातिक भाव

से किं तं सण्णिवाइए?

सण्णिवाइए - एएसिं चेव उदइयउवसमियखइयखओवसमियपारिणामियाणं भावाणं दुगसंजोएणं तिगसंजोएणं चउक्कसंजोएणं पंचगसंजोएणं जे णिप्फज्जंति सव्वे ते सण्णिवाइए णामे। तत्थ णं दस दुयसंजोगा, दस तियसंजोगा पंच चउक्कसंजोगा, एगे पंचकसंजोगे।

कठिन शब्दार्थ - दुगसंजोएणं - दो का संयोग, **णिप्फज्जंति** - निष्पन्न होते हैं, **एक्के**- एक।

भावार्थ - सान्निपातिक भाव का कैसा स्वरूप है?

औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक एवं पारिणामिक इन पांचों में से दो के संयोग, तीन के संयोग, चार के संयोग एवं पांच के संयोग से जिन भावों की निष्पत्ति होती है, वे सान्निपातिक हैं।

उनमें से दो के संयोग से दस, तीन के संयोग से दस, चार के संयोग से पांच तथा पांच के संयोग से यह एक ही भंग वाला भाव निष्पन्न होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तत्थ णं जे ते दस दुगसंजोगा ते णं इमे - अत्थि णामे उदइयउवसमणिप्फण्णे१ अत्थि णामे उदइयखाइगणिप्फण्णे २ अत्थि णामे उदइयखओवसमणिप्फण्णे ३ अत्थि णामे उदइयपारिणामियणिप्फण्णे ४ अत्थि णामे उवसमियखयणिप्फण्णे ५ अत्थि णामे उवसमियखओवसमणिप्फण्णे ६ अत्थि णामे उवसमियपारिणामिय-णिप्फण्णे ७ अत्थि णामे खइयखओवसमणिप्फण्णे ८ अत्थि णामे खइयपारिणा-मियणिप्फण्णे ९ अत्थि णामे खओवसमियपारिणामियणिप्फण्णे १०।

भावार्थ - दो-दो के संयोग से होने वाले दस भंग, इस प्रकार हैं - १. औदयिक-औपशमिक के संयोग से २. औदयिक तथा क्षायिक के संयोग से ३. औदयिक - क्षायोपशमिक के संयोग से ४. औदयिक एवं पारिणामिक के संयोग से ५. औपशमिक - क्षायिक के संयोग से ६. औपशमिक - क्षायोपशमिक के संयोग से ७. औपशमिक - पारिणामिक के संयोग से ८. क्षायिक - क्षायोपशमिक के संयोग से ९. क्षायिक - पारिणामिक के संयोग से १०. क्षायोपशमिक-पारिणामिक के संयोग से निष्पन्न होने वाले भाव दस भंगों के रूप में अभिहित हैं।

कयरे से णामे उदइयउवसमणिप्फण्णे?

उदइए त्ति मणुस्से, उवसंता कसाया एस णं से णामे उदइयउवसमणिप्फण्णे।

कयरे से णामे उदइयखयणिप्फण्णे?

उदइए त्ति मणुस्से, खइयं सम्मत्तं, एस णं से णामे उदइयखयणिप्फण्णे।

कयरे से णामे उदइयखओवसमणिप्फण्णे?

उदइए त्ति मणुस्से, खओवसमियाइं इंदियाइं, एस णं से णामे उदइयखओवस-मणिप्फण्णे।

कयरे से णामे उदइयपारिणामियणिप्फण्णे?

उदइए त्ति मणुस्से, पारिणामिए जीवे, एस णं से णामे उदइयपारिणामिय-णिप्फण्णे।

कयरे से णामे उवसमियखयणिप्फण्णे?

उवसंता कसाया, खइयं सम्मत्तं, एस णं से णामे उवसमियखयणिप्फण्णे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कयरे से णामे उवसमियखओवसमणिप्फण्णे?

उवसंता कसाया, खओवसमियाइं इंदियाइं, एस णं से णामे उवसमिय-खओवसमणिप्फण्णे।

कयरे से णामे उवसमियपारिणामियणिप्फण्णे?

उवसंता कसाया, पारिणामिए जीवे, एस णं से णामे उवसमियपारिणामिय-णिप्फण्णे।

कयरे से णामे खइयखओवसमणिप्फण्णे?

खइयं सम्मत्तं, खओवसमियाइं इंदियाइं, एस णं से णामे खइय-खओवसमणिप्फण्णे।

कयरे से णामे खइयपारिणामियणिप्फण्णे?

खइय सम्मत्तं, पारिणामिए जीवे, एस णं से णामे खइयपारिणामियणिप्फण्णे।

कयरे से णामे खओवसमियपारिणामियणिप्फण्णे?

खओवसमियाइं इंदियाइं, पारिणामिए जीवे, एस णं से णामे खओवसमिय-पारिणामियणिप्फण्णे।

शब्दार्थ - कयरे - कैसा।

भावार्थ - प्रश्न - औदयिक तथा औपशमिक भाव के संयोग से होने वाले भंग का क्या स्वरूप है?

उत्तर - औदयिक भाव में मनुष्य गति तथा औपशमिक भाव में उपशांत कषाय को गृहीत किया जाता है। इन दोनों का समन्वित रूप औदयिक-औपशमिक भाव है॥१॥

प्रश्न - औदयिक-क्षायिक के संयोग से होने वाले भाव का क्या स्वरूप है?

उत्तर - औदयिक भाव में मनुष्य गति तथा क्षायिक भाव में क्षायिक सम्यक्त्व का ग्रहण होता है। दोनों का समन्वित रूप औदयिक-क्षयनिष्पन्न है॥२॥

प्रश्न - औदयिक एवं क्षायोपशमिक भाव के संयोग से होने वाले भंग का क्या स्वरूप है?

उत्तर - औदयिक भाव में मनुष्य गति तथा क्षायोपशमिक भाव में इन्द्रियों का ग्रहण है। इस प्रकार दोनों के सम्मिश्रण से होने वाला औदयिक-क्षायोपशमिक भाव है॥३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न - औदयिक-पारिणामिक भाव के संयोग से होने वाले भंग का क्या स्वरूप है?

उत्तर - औदयिक भाव में मनुष्य गति तथा पारिणामिक भाव में जीवत्व का ग्रहण है। औदयिक-पारिणामिक भाव का यह स्वरूप है॥४॥

प्रश्न - औपशमिक तथा क्षायिक के संयोग से होने वाले भंग का क्या स्वरूप है?

उत्तर - औपशमिक भाव में उपशांत कषाय तथा क्षायिक भाव में सम्यक्त्व का ग्रहण है। दोनों का समन्वित रूप औपशमिक-क्षायिक संयोग निष्पन्न है॥५॥

प्रश्न - औपशमिक तथा क्षायोपशमिक भावों के संयोग से निष्पन्न भंग का क्या स्वरूप है?

उत्तर - औपशमिक भाव में उपशांत कषाय तथा क्षायोपशमिक भाव में इन्द्रियाँ गृहीत हैं। इन दोनों के संयोग से औपशमिक-क्षायोपशमिक भाव निष्पत्ति पाता है॥६॥

प्रश्न - औपशमिक तथा पारिणामिक भावों के संयोग से निष्पन्न भंग का क्या स्वरूप है?

उत्तर - औपशमिक भाव में उपशांत कषाय तथा पारिणामिक भाव में जीवत्व का ग्रहण है। दोनों का समन्वित रूप औपशमिक-पारिणामिक भाव है॥७॥

प्रश्न - क्षायिक और पारिणामिक भावों के संयोग से निष्पन्न भंग का क्या स्वरूप है?

उत्तर - क्षायिक भाव में क्षायिक सम्यक्त्व का और पारिणामिक भाव में जीवत्व का ग्रहण है। दोनों के संयोग से क्षायिक-पारिणामिक भंग निष्पन्न होता है॥८॥

प्रश्न - क्षायोपशमिक और पारिणामिक भाव के संयोग से होने वाले भंग का क्या स्वरूप है?

उत्तर - क्षायोपशमिक भाव में इन्द्रियों का तथा पारिणामिक भाव में जीवत्व का ग्रहण है। दोनों का संयोग क्षायोपशमिक-पारिणामिक भाव का स्वरूप है॥९॥

त्रिकसंयोगी सान्निपातिक भाव

तत्थ णं जे ते दस तिगसंजोगा ते णं इमे-अत्थि णामे उदइयउवसमिखयणिप्फण्णे १ अत्थि णामे उदइयउवसमियखओवसमणिप्फण्णे २ अत्थि णामे उदइयउवसमियपारिणामियणिप्फण्णे ३ अत्थि णामे उदइयखइयखओवसमणिप्फण्णे ४ अत्थि णामे उदइयखइयपारिणामियणिप्फण्णे ५ अत्थि णामे उदइयखओवसमियपारिणामियणिप्फण्णे ६ अत्थि णामे उवसमियखइयखओवसमणिप्फण्णे ७ अत्थि णामे उवसमियखइयपारिणामियणिप्फण्णे ८ अत्थि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णामे उवसमियखओवसमियपारिणामियणिप्फण्णे ९ अत्थि णामे खइय-खओवसमियपारिणामियणिप्फण्णे १०।

भावार्थ - त्रिकसंयोगज सान्निपातिक भाव दस हैं -

१. औदयिक-औपशमिक-क्षायिक निष्पन्न,

२. औदयिक-औपशमिक-क्षायोपशमिक निष्पन्न,

३. औदयिक-औपशमिक-पारिणामिक निष्पन्न,

४. औदयिक-क्षायिक-क्षायोपशमिक निष्पन्न,

५. औदयिक-क्षायिक-पारिणामिक निष्पन्न,

६. औदयिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिक निष्पन्न,

७. औपशमिक-क्षायिक-क्षायोपशमिक निष्पन्न,

८. औपशमिक-क्षायिक-पारिणामिक निष्पन्न,

९. औपशमिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिक निष्पन्न,

१०. क्षायिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिक निष्पन्न।

कयरे से णामे उदइयउवसमियखयणिप्फण्णे?

उदइए त्ति मणुस्से, उवसंता कसाया, खइयं सम्मत्तं, एस णं से णामे उदइयउवसमियखयणिप्फण्णे।

कयरे से णामे उदइयउवसमियखओवसमणिप्फण्णे?

उदइए त्ति मणुस्से, उवसंता कसाया, खओवसमियाइं इंदियाइं, एस णं से णामे उदइयउवसमियखओवसमणिप्फण्णे।

कयरे से णामे उदइयउवसमियपारिणामियणिप्फण्णे?

उदइए त्ति मणुस्से, उवसंता कसाया, पारिणामिए जीवे, एस णं से णामे उदइयउवसमियपारिणामियणिप्फण्णे।

कयरे से णामे उदइयखइयखओवसमणिप्फण्णे?

उदइए त्ति मणुस्से, खइयं सम्मत्तं, खओवसमियाइं इंदियाइं, एस णं से णामे उदइयखइयखओवसमणिप्फण्णे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कयरे से णामे उदइयखइयपारिणामियणिप्फण्णे?

उदइए त्ति मणुस्से, खइयं सम्मत्तं, पारिणामिए जीवे, एस णं से णामे उदइयखइयपारिणामियणिप्फण्णे।

कयरे से णामे उदइयखओवसमियपारिणामियणिप्फण्णे?

उदइए त्ति मणुस्से, खओवसमियाइं इंदियाइं, पारिणामिए जीवे, एस णं से णामे उदइयखओवसमियपारिणामियणिप्फण्णे।

कयरे से णामे उवसमियखइयखओवसमणिप्फण्णे?

उवसंता कसाया, खइयं सम्मत्तं, खओवसमियाइं इंदियाइं, एस णं से णामे उवसमियखइयखओवसमणिप्फण्णे।

कयरे से णामे उवसमिइयखइयपारिणामियणिप्फण्णे?

उवसंता कसाया, खइयं सम्मत्तं, पारिणामिए जीवे, एस णं से णामे उवसमियखइयपारिणामियणिप्फण्णे।

कयरे से णामे उवसमियखओवसमियपारिणामियणिप्फण्णे?

उवसंता कसाया, खओवसमियाइं इंदियाइं, पारिणामिए जीवे एस णं से णामे उवसमियखओवसमियपारिणामियणिप्फण्णे।

कयरे से णामे खइयखओवसमियपारिणामियणिप्फण्णे?

खइयं सम्मत्तं, खओवसमियाइं इंदियाइं, पारिणामिए जीवे, एस णं से णामे खइयखओवसमियपारिणामियणिप्फण्णे।

भावार्थ - प्रश्न - औदयिक-औपशमिक-क्षायिक भाव के संयोग से होने वाले भंग का क्या स्वरूप है?

उत्तर - औदयिक भाव में मनुष्य गति, औपशमिक भाव में उपशांत कषाय तथा क्षायिक भाव में क्षायिक सम्यक्त्व का ग्रहण है। इन तीनों का सम्मिलन औदयिक-औपशमिक-क्षायिक भाव का स्वरूप है॥१॥

प्रश्न - औदयिक-औपशमिक एवं क्षायोपशमिक भाव के संयोग से होने वाले भंग का क्या स्वरूप है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - औदयिक भाव में मनुष्य गति, औपशमिक भाव में उपशांत कषाय तथा क्षायोपशमिक भाव में इन्द्रियाँ गृहीत हैं। इन तीनों का समन्वय औदयिक-औपशमिक-क्षायोपशमिक भाव का स्वरूप है॥२॥

प्रश्न - औदयिक-औपशमिक-पारिणामिक भंग का क्या स्वरूप है?

उत्तर - औदयिक भाव में मनुष्य गति, औपशमिक भाव में उपशांत कषाय तथा पारिणामिक भाव में जीवत्व को लिया जाता है। इस प्रकार इन तीनों का समन्वित रूप औदयिक-औपशमिक-पारिणामिक भाव का स्वरूप है॥३॥

प्रश्न - औदयिक-क्षायिक-क्षायोपशमिक भावों के संयोग से होने वाले भंग का क्या स्वरूप है?

उत्तर - औदयिक भाव में मनुष्य गति, क्षायिक भाव में क्षायिक सम्यक्त्व तथा क्षायोपशमिक भाव में इन्द्रियाँ गृहीत हैं। यह इन तीनों के समन्वित रूप औदयिक-क्षायिक-क्षायोपशमिक भाव का स्वरूप है॥४॥

प्रश्न - औदयिक-क्षायिक-पारिणामिक भावों के सम्मिश्रण से होने वाले भंग का क्या स्वरूप है?

उत्तर - औदयिक भाव में मनुष्य गति, क्षायिक भाव में क्षायिक सम्यक्त्व तथा पारिणामिक भाव में जीवत्व का ग्रहण है। यह औदयिक-क्षायिक-पारिणामिक भंग का स्वरूप है॥५॥

प्रश्न - औदयिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिक भावों के समन्वय से निष्पन्न भंग का क्या स्वरूप है?

उत्तर - औदयिक भाव में मनुष्य गति, क्षायोपशमिक भाव में इन्द्रियाँ तथा पारिणामिक भाव में जीवत्व का ग्रहण है। यह औदयिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिक भाव निष्पन्न भंग का स्वरूप है॥६॥

प्रश्न - औपशमिक-क्षायिक-क्षायोपशमिक भावों के समन्वय से समुत्पन्न भंग का क्या स्वरूप है?

उत्तर - औपशमिक भाव में उपशांत कषाय, क्षायिक भाव में क्षायिक सम्यक्त्व तथा क्षायोपशमिक भाव में इन्द्रियों का ग्रहण है। यह औपशमिक-क्षायिक-क्षायोपशमिक भाव निष्पन्न भंग का स्वरूप है॥७॥

प्रश्न - औपशमिक-क्षायिक-पारिणामिक भाव निष्पन्न भंग का कैसा स्वरूप है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - औपशमिक भाव में उपशांत कषाय, क्षायिक भाव में क्षायिक सम्यक्त्व तथा पारिणामिक भाव में जीवत्व ग्रहण है। यह औपशमिक-क्षायिक-पारिणामिक भाव समुत्पन्न भंग का स्वरूप है॥८॥

प्रश्न - औपशमिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिक भाव निष्पन्न भंग का कैसा स्वरूप है?

उत्तर - औपशमिक भाव में उपशांत कषाय, क्षायोपशमिक भाव में इन्द्रियाँ तथा पारिणामिक भाव में जीवत्व गृहीत हैं। यह औपशमिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिक भावों के समन्वय से निष्पन्न भंग का स्वरूप है॥९॥

प्रश्न - क्षायिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिक भाव निष्पन्न भंग का कैसा स्वरूप है?

उत्तर - क्षायिक भाव में क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायोपशमिक भाव में इन्द्रियाँ तथा पारिणामिक भाव में जीवत्व का ग्रहण है। यह क्षायिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिक भावों से निष्पन्न भंग का स्वरूप है॥१०॥

चतुसंयोगी सान्निपातिक भाव

तत्थ णं जे ते पंच चउक्कसंजोगा ते णं इमे - अत्थि णामे उदइयउवसमिय-खइयखओवसमणिप्फण्णे १ अत्थि णामे उदइयउवसमियखइय-पारिणामिय-णिप्फण्णे २ अत्थि णामे उदइयउवसमियखओवसमियपारिणामियणिप्फण्णे ३ अत्थि णामे उदइयखइयखओवसमियपारिणामियणिप्फण्णे ४ अत्थि णामे उवसमियखइयखओवसमियपारिणामियणिप्फण्णे ५।

भावार्थ - चार भावों के संयोग से होने वाले सान्निपातिक भाव से पाँच भंग बनते हैं, जो निम्नांकित हैं -

१. औदयिक-औपशमिक-क्षायिक-क्षायोपशमिक निष्पन्न,

२. औदयिक-औपशमिक-क्षायिक-पारिणामिक निष्पन्न,

३. औदयिक-औपशमिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिक निष्पन्न,

४. औदयिक-क्षायिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिक निष्पन्न,

५. औपशमिक-क्षायिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिक निष्पन्न।

ये चार भावों के संयोग से समुत्पन्न पाँच भंग हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कयरे से णामे उदइयउवसमियखइयखओवसमणिप्फण्णे?

उदइए त्ति मणुस्से, उवसंता कसाया, खइयं सम्मत्तं, खओवसमियाइं इंदियाइं, एस णं से णामे उदइयउवसमियखइयखओवसमणिप्फण्णे।

कयरे से णामे उदइयउवसमियखइयपारिणामियणिप्फण्णे?

उदइए त्ति मणुस्से, उवसंता कसाया, खइयं सम्मत्तं, पारिणामिए जीवे, एस णं से णामे उदइयउवसमियखइयपारिणामियणिप्फण्णे।

कयरे से णामे उदइयउवसमियखओवसमियपारिणामियणिप्फण्णे?

उदइए त्ति मणुस्से, उवसंता कसाया, खओवसमियाइं इंदियाइं, पारिणामिए जीवे, एस णं से णामे उदइयउवसमियखओवसमियपारिणामियणिप्फण्णे।

कयरे से णामे उदइयखइयखओवसमियपारिणामियणिप्फण्णे?

उदइए त्ति मणुस्से, खइयं सम्मत्तं, खओवसमियाइं इंदियाइं, पारिणामिए जीवे, एस णं से णामे उदइयखइयखओवसमियपारिणामियणिप्फण्णे।

कयरे से णामे उवसमियखइयखओवसमियपारिणामियणिप्फण्णे?

उवसंता कसाया, खइयं सम्मत्तं, खओवसमियाइं इंदियाइं, पारिणामिए जीवे, एस णं से णामे उवसमियखइयखओवसमियपारिणामियणिप्फण्णे।

भावार्थ - **प्रश्न** - औदयिक-औपशमिक-क्षायिक-क्षायोपशमिक निष्पन्न भंग का क्या स्वरूप है?

उत्तर - औदयिक भाव में मनुष्य गति, औपशमिक भाव में उपशांत कषाय, क्षायिक भाव में क्षायिक सम्यक्त्व तथा क्षायोपशमिक भाव में इन्द्रियों का ग्रहण है। यह औदयिक-औपशमिक-क्षायिक-क्षायोपशमिक भंग का स्वरूप है॥१॥

प्रश्न - औदयिक-औपशमिक-क्षायिक-पारिणामिक निष्पन्न भंग का कैसा स्वरूप है?

उत्तर - औदयिक भाव में मनुष्य गति, औपशमिक भाव में उपशांत कषाय, क्षायिक भाव में क्षायिक सम्यक्त्व तथा पारिणामिक भाव में जीवत्व का ग्रहण है। यह औदयिक-औपशमिक-क्षायिक-पारिणामिक भाव निष्पन्न भंग का स्वरूप है॥२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न - औदयिक-औपशमिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिक भाव से होने वाले भंग का क्या स्वरूप है?

उत्तर - औदयिक भाव में मनुष्य गति, औपशमिक भाव में उपशांत कषाय, क्षायोपशमिक भाव में इन्द्रियाँ तथा पारिणामिक भाव में जीवत्व का ग्रहण है। यह औदयिक-औपशमिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिक भाव निष्पन्न भंग का स्वरूप है॥३॥

प्रश्न - औदयिक-क्षायिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिक भाव निष्पन्न भंग का कैसा स्वरूप है?

उत्तर - औदयिक भाव में मनुष्य गति, क्षायिक भाव में क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायोपशमिक भाव में इन्द्रियाँ तथा पारिणामिक भाव में जीवत्व गृहीत है। यह औदयिक-क्षायिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिक निष्पन्न भंग का स्वरूप है॥४॥

प्रश्न - औपशमिक-क्षायिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिक भाव निष्पन्न भंग का क्या स्वरूप है?

उत्तर - औपशमिक भाव में उपशांत कषाय, क्षायिक भाव में क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायोपशमिक भाव में इन्द्रियाँ तथा पारिणामिक भाव में जीवत्व का ग्रहण है। यह औपशमिक-क्षायिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिक निष्पन्न भंग का स्वरूप है॥५॥

पंचसंयोगज सान्निपातिक भाव

तत्थ णं जे से एक्के पंचगसंजोए से णं इमे - अत्थि णामे उदइयउवसमियखइयखओवसमियखइयखओवसमियपारिणामियणिप्फण्णे।

कयरे से णामे उदइय उवसमियखइयखओवसमियपारिणामियणिप्फण्णे?

उदइए त्ति मणुस्से, उवसंता कसाया, खइयं सम्मत्तं, खओवसमियाइं इंदियाइं, पारिणामिए जीवे, एस णं से णामे उदइय उवसमियखइयखओवसमियपारिणामियणिप्फण्णे। सेत्तं सण्णिवाइए। सेत्तं छण्णामे।

भावार्थ - पंचसंयोग निष्पन्न सान्निपातिक भाव से केवल एक भंग बनता है, जो औदयिक-औपशमिक-क्षायिक-क्षायोपशमिक एवं पारिणामिक भाव के रूप में है।

औदयिक-औपशमिक-क्षायिक-क्षायोपशमिक एवं पारिणामिक भावों के संयोग से निष्पन्न सान्निपातिक भंग का क्या स्वरूप है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

औदयिक में मनुष्य गति, औपशमिक में उपशांत कषाय, क्षायिक भाव में क्षायिक सम्यक्त्व क्षायोपशमिक में इन्द्रियाँ तथा पारिणामिक भाव में जीवत्व का ग्रहण है। यह औदयिक-औपशमिक-क्षायिक-क्षायोपशमिक एवं पारिणामिक भावों के संयोग से निष्पन्न भंग का स्वरूप है।

यह सान्निपातिक भाव का स्वरूप है। इस प्रकार छह नाम का विवेचन परिसमाप्त होता है।

विवेचन - सान्निपातिक भाव के वर्णन में जो २६ भंग बताये गये हैं उनमें से २० भंग तो शून्य होते हैं। छह भंग घटित होते हैं अर्थात् वे ६ भंग जीवों में पाये जाते हैं। उनका वर्णन इस प्रकार हैं -

१. द्विक संयोगी नववां भंग - 'क्षायिक-पारिणामिक' - यह भंग सिद्ध भगवान् में पाया जाता है। क्षायिक सम्यक्त्व और पारिणामिक भाव में जीवत्व इस प्रकार यह भंग होता है।

२. त्रिक संयोगी पांचवां भंग - 'औदयिक-क्षायिक-पारिणामिक' यह भंग तेरहवें चौदहवें गुणस्थान वाले केवलियों में पाया जाता है। औदयिक-मनुष्य गति, क्षायिक सम्यक्त्व एवं चारित्र, पारिणामिक - जीवत्व इस प्रकार यह भंग पाता है।

३. त्रिक संयोगी छट्ठा भंग - 'औदयिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिक' - यह भंग चारों गति के जीवों में होता है। औदयिक भाव में-नारक आदि गतियाँ, क्षायोपशमिक भाव में-इन्द्रियाँ, पारिणामिक भाव में-जीवत्व। इस प्रकार यह भंग पाता है।

४. चतुःसंयोगी तीसरा भंग - 'औदयिक-औपशमिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिक'- यह भग भी नारक आदि चारों गतियों में पाया जाता है। औदयिक भाव में - नारक आदि चार गतियाँ, औपशमिक भाव में-उपशम सम्यक्त्व (चारों गति के संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवों में सर्वप्रथम उपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति होने से तथा मनुष्य गति में तो उपशम श्रेणी में भी उपशम सम्यक्त्व होने से) क्षायोपशमिक भाव में-इन्द्रियाँ, पारिणामिक भाव में-जीवत्व। इस प्रकार यह भंग पाता है।

५. चतुःसंयोगी चौथा भंग - 'औदयिक-क्षायिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिक' यह भंग भी चारों गतियों में पाया जाता है। औदयिक भाव में नारक आदि गतियाँ, क्षायिक भाव में क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायोपशमिक भाव में इन्द्रियाँ और पारिणामिक भाव में जीवत्व। इस प्रकार यह भंग पाता है।

६. पंच संयोगी एक भंग - 'औदयिक-औपशमिक-क्षायिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिक' यह भंग ग्यारहवें गुणस्थान वाले क्षायिक सम्यक्त्वी जीवों में पाया जाता है। औदयिक भाव में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मनुष्य गति, औपशमिक भाव में औपशमिक चारित्र, क्षायिक भाव में - क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायोपशमिक भाव में इन्द्रियाँ, पारिणामिक भाव में - जीवत्व। इस प्रकार यह भंग पाता है।

उपर्युक्त प्रकार से जीवों में प्राप्त छह भंगों का कारण सहित स्पष्टीकरण किया गया है।

(१२८)

सप्तनाम

से किं तं सत्तणामे?

सत्तणामे सत्तसरा पण्णत्ता। तंजहा -

गाहा - सज्जे रिसहे गंधारे, मज्झिमे पंचमे सरे।
धे(रे)वए चेव णेसाए, सरा सत्त वियाहिया॥१॥

शब्दार्थ - **सत्तणामे** - सात नाम, **सत्तसरा** - सात स्वर।

भावार्थ - सप्तनाम का क्या स्वरूप है?

सप्तनाम में सात स्वरों का प्रतिपादन हुआ है, जिनके नाम इस प्रकार हैं -

गाथा - १. षड्ज २. ऋषभ ३. गांधार ४. मध्यम ५. पंचम ६. धैवत एवं ७. निषाद॥१॥

सप्तस्वरों के उच्चारण स्थान

एएसि णं सत्तण्हं सराणं सत्त सरट्ठाणा पण्णत्ता। तंजहा -

गाहाओ - सज्जं च अग्गजीहाए, उरेण रिसहं सरं।
कंठुग्गएण गंधारं, मज्झजीहाए मज्झिमं॥१॥
णासाए पंचमं बूया, दंतोट्ठेण य धेवयं।
भमुहक्खेवेण णेसायं, सरट्ठाणा वियाहिया॥२॥

शब्दार्थ - **सरट्ठाणा** - स्वरस्थान, **अग्गजीहाए** - जीभ के आगे का भाग, **उरेण** - हृदय से, **सरं** - स्वर, **कंठुग्गएण** - कंठस्थित द्वारा, **मज्झजीहाए** - जीभ के बीच से, **बूया**- ब्रूयात-कथन करना चाहिए, **दंतोट्ठेण** - दंतोष्ठ द्वारा - दाँत एवं ओठ से, **भमुहक्खेवेण** - तनी हुई भृकुटी एवं मूर्धा द्वारा, **णेसायं** - निषाद से, **वियाहिया** - कहे गए हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - इन सात स्वरों के सात उच्चारण स्थान हैं, जो इस प्रकार कहे गए हैं -

गाथाएं - षड्ज का जीभ का आगे का भाग, ऋषभ का वक्षस्थल, गांधार का कंठ, मध्यम का जिह्वा का मध्य भाग, पंचम का नासिका, धैवत का दन्त और ओष्ठ का संयोग तथा निषाद का वेग से तनी हुई भृकुटी के साथ मूर्धा - ये उच्चारण स्थान कहे गए हैं॥ १-२॥

जीवनिश्रित सात स्वर

सत्तसरा जीवणिस्सिया पण्णत्ता। तंजहा -

गाहा - सज्जं रवइ मऊरो, कुक्कुडो रिसभं सरं।
हंसो रवइ गंधारं, मज्झिमं च गवेलगा॥१॥
अह कुसुमसंभवे काले, कोइला पंचमं सरं।
छटुं च सारसा कुंचा, णेसायं सत्तमं गओ॥२॥

शब्दार्थ - **जीवणिस्सिया** - जीवनिश्रित - सचेतन प्राणी द्वारा उच्चारित, **मऊरो** - मयूर, **कुक्कुडो** - मुर्गा, **रवइ** - शब्द करता है, उच्चारित करता है, **गवेलगा** - गवेलक - भेड़, **अह** - अथ, **कुसुमसंभवे काले** - बसंत ऋतु में, **कोइला** - कोकिला, **सारसा** - सारस, **कुंचा** - क्रौञ्च, **गओ** - गज - हाथी।

भावार्थ - जीवनिश्रित सात स्वर इस प्रकार परिज्ञापित हुए हैं -

गाथाएं - मयूर षड्ज स्वर में, मुर्गा ऋषभ स्वर में, हंस गंधार स्वर में, भेड़ मध्यम स्वर में, कोयल - बसंत ऋतु में पंचम स्वर में, सारस तथा क्रौञ्च पक्षी छठे - धैवत स्वर में तथा हाथी सप्तम - निषाद स्वर में बोलता है॥१-२॥

अजीवनिश्रित सात स्वर

सत्तसरा अजीवणिस्सिया पण्णत्ता। तंजहा -

सज्जं रवइ मुयंगो, गोमुही रिसहं सरं।
संखो रवइ गंधारं, मज्झिमं पुण झल्लरी॥१॥
चउच्चरणपइट्ठाणा, गोहिया पंचमं सरं।
आडंबरो रेवइयं, महाभेरी य सत्तमं॥२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ - **मुयंगो** - मृदंग, **गोमुही** - गोमुखी - वाद्य विशेष, **संखो** - शंख, **झल्लरी**-झालर, **चउच्चरणपइट्ठाणा** - चार चरणों पर अवस्थित-गोधिका वाद्य विशेष, **गोहिया** - गोधिका, **आडंबरो** - ढोल, **महाभेरी** - बड़ा नगारा, **सरलक्खणा** - स्वर लक्षण।

भावार्थ - अजीवनिश्रित सात स्वर इस प्रकार प्रज्ञप्त हुए हैं -

गाथाएँ - मृदंग में षड्ज स्वर, गोमुखी संज्ञक वाद्य से ऋषभ स्वर, शंख से गांधार स्वर, झालर से मध्यम स्वर, चरणचतुष्टयाश्रित गोधिका संज्ञक वाद्य से पंचम स्वर, ढोल से धैवत स्वर तथा महाभेरी से सप्तम - निषाद स्वर निकलता है॥१-२॥

विवेचन - स्वरों की निष्पत्ति जीवों - सचेतन प्राणियों से होती ही है, जिनका सूत्रकार ने मयूर आदि के रूप में विवेचन किया है। इन विभिन्न पशु-पक्षियों के रवों, ध्वनियों का स्वरों के उदाहरणों के रूप में उल्लेख हुआ है, उसका यह अभिप्राय है कि उनकी बोली सहजतया सद्रूप होती है क्योंकि उनका दैहिक गठन, ध्वनि का उद्गम, ऊर्ध्वगमन तथा ध्वनियंत्र में समागम का एक ऐसा विशेष ढांचा होता है, जिससे सहजतया उक्त स्वर निःसृत होते हैं - निकलते हैं। जैसे - कोयल की बसन्त ऋतु में पंचम स्वर में निकलती हुई ध्वनि, जिसे कूक कहा जाता है, स्वाभाविक है।

मनुष्य के देहगत वाणी या ध्वनि के उद्गम स्थान, उच्चारण स्थान (Vochal Chord) ऐसे बने होते हैं कि अभ्यास द्वारा सातों ही स्वरों का निस्सारण, उच्चारण किया जा सकता है, जिसके लिए लम्बी साधना की आवश्यकता होती है।

भिन्न-भिन्न वाद्य यंत्र जो धातु, चर्म आदि से बने होते हैं, मानवीय प्रयोग द्वारा भिन्न-भिन्न स्वरों को निकालते हैं। अर्थात् वहाँ मानवीय प्रयत्न अपेक्षित हैं किन्तु उनसे निकलने वाले स्वर अपनी-अपनी संरचना के अनुसार वैविध्यपूर्ण होते हैं। यही कारण है कि मृदंग, पटह और महाभेरी यद्यपि तीनों चर्मनद्ध वाद्य हैं किन्तु तीनों में रचना-वैविध्य से निकलने वाले स्वरों में भी भिन्नता होती है।

संगीतकार जब स्वरों का उच्चारण या संगान करता है, तो अपने द्वारा प्रयुज्यमान स्वरों के अनुरूप वाद्य ध्वनियों का सहयोग लेता है। अर्थात् लयात्मक एवं तालात्मक वाद्यों के साथ उसका स्वर संगान प्रस्फुटित होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सप्तस्वरों के लक्षण, फल

एएसि णं सत्तण्हं सराणं सत्त सरलक्खणा पण्णत्ता। तंजहा -

गाहाओ - सज्जेणं लहई वित्तिं, कयं च ण विणस्सइ।
गावो पुत्ता य मित्ता य, णारीणं होइ वल्लहो॥१॥
रिसहेणं उ एस(पसे)ज्जं, सेणावच्चं धणाणि य।
वत्थगंधमलंकारं, इत्थिओ सयणाणि य॥२॥
गंधारे गीयजुत्तिण्णा, वज्जवित्ती कलाहिया।
हवंति कइणो धण्णा, जे अण्णे सत्थपारगा॥३॥
मज्झिमसरमंता उ, हवंति सुहजीविणो।
खायई पियई देई, मज्झिमसरमस्सिओ॥४॥
पंचमसरमंता उ, हवंति पुहवीपई।
सूरा संगहकत्तारो, अणेगगणणायगा॥५॥
रेवयसरमंता उ, हवंति दुहजीविणो।
साउणिया* वाउरिया, सोयरिया य मुट्ठिया॥६॥
णिसायसरमंता उ, होंति कलहकारगा।
जंघाचरा* लेहवाहा, हिंडगा भारवाहगा॥७॥

शब्दार्थ - **सत्तण्हं** - सात का, **लहई** - लभते - प्राप्त करता है, **वित्तिं** - वृत्ति - आजीविका, **कयं** - कृत - किया हुआ प्रयत्न, **विणस्सइ** - नष्ट होता है, **गावो** - गायें, **पुत्ता** - पुत्र, **मित्ता** - मित्र, **णारीणं** - स्त्रियों का, **होइ** - होता है, **वल्लहो** - वल्लभ - प्रिय, **एसज्जं** - ऐश्वर्य, **सेणावच्चं** - सेनापतित्व, **इत्थिओ** - स्त्रियाँ, **सयणाणि** - उत्तम

---

* १ **पाढंतरं** - कुचेला य कुवित्ती य, चोरा चंडालमुट्ठिया। २. पायचारित्ति अट्ठो।

शब्दार्थ - कुचेला - गंदे वस्त्रों वाले, **कुवित्ती** - कुत्सित वृत्ति युक्त।

भावार्थ - (धैवत स्वर वाले व्यक्ति) मैले, कुचैल वस्त्र धारक, कुत्सित वृत्ति युक्त, चोर, चांडाल एवं मौष्टिक होते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शयन - बिछौने, **गीयजुत्तिण्णा** - गीत युक्ति वेत्ता - संगीतकला विशारद, **वज्जवित्त** - उत्तम वृत्ति युक्त, **कलाहिया** - कला विशेषज्ञ, **हवंति** - होते हैं, **कइणो** - कवि, **धण्णा** - धन्य, **अण्णे** - अन्य, **सत्थपारगा** - शास्त्र पारगामी, **सरमंता** - स्वरज्ञ, **सुहजीविणो** - सुखपूर्वक जीने वाले, **खायई** - खाते, **पियई** - पीते हैं, **देई** - देते हैं, **मज्झिमसरमस्सिओ** - मध्यमस्वरमाश्रित, **पुहवीपई** - पृथ्वीपति - राजा, **सूरा** - शूरवीर, **संगहकत्तारो** - संग्रह करने वाले, **अणेगगणणायगा** - अनेक गणों के नायक, **रेवयसरमंता** - (रैवत) धैवत सुरनिपुण पुरुष, **दुहजीविणो** - दुःखजीवी - कष्ट पूर्वक जीने वाले, **साउणिया** - शाकुनिक - पक्षियों को मारने वाले, **वाउरिया** - जाल बिछाकर हिरण आदि को पकड़ने वाले, **सोयरिया** - शूअरों का आखेट करने वाले, **मुट्ठिया** - मौष्टिक - मुक्कों द्वारा जीव मारने वाले, **कलहकारगा** - कलहकारक - झगडालू, **जंघाचरा** - पादचारी, **लेहवाहा** - पत्रवाहक, **हिंडगा** - भटकने वाले, **भारवाहगा** - भार ढोने वाले।

भावार्थ - इन सात स्वरों के तत्-तत् फलानुरूप सात स्वर लक्षण प्रतिपादित हुए हैं -

गाथाएं - जो मनुष्य षड्ज स्वर में निपुण होता है, उसे आजीविका सुलभ होती है। उसका प्रयत्न निरर्थक नहीं जाता। उसे गोधन, पुत्र, मित्र आदि का संयोग प्राप्त होता है। स्त्रियों के लिए वह प्रिय होता है॥१॥

ऋषभ स्वर में निष्णात पुरुष ऐश्वर्यशाली होता है। सेनापति पद, धन-धान्य, वस्त्र, सुगंधित पदार्थ, आभरण, स्त्री, शयनासन आदि प्राप्त करता है॥२॥

गांधार स्वरवेत्ता व्यक्ति संगीतकला विशारद एवं उत्तम आजीविका वाले होते हैं। कलाविदों में गण्य तथा कवित्व प्रतिभा युक्त एवं अन्य शास्त्रों में पारंगत होते हैं॥३॥

मध्यम स्वरभाषी सुखजीवी होते हैं। यथारुचि खाते-पीते हैं एवं बांटते हैं॥४॥

पंचम स्वरसाधक भूमिपति - राजा एवं शूरवीर होते हैं। अच्छे व्यक्तियों के संग्राहक-सुयोग्य व्यक्तियों से कार्य लेने वाले एवं अनेक गणों - समुदायों के नायक होते हैं॥५॥

धैवत स्वर वाले मनुष्य दुःख जीवी - कष्ट पूर्ण जीवन जीने वाले होते हैं। वे शाकुनिक, वागुरिक, शौकरिक एवं मौष्टिक होते हैं॥६॥

निषाद स्वर वाले व्यक्ति कलहकारक पादचारी, पत्रवाहक, भटकने वाले, बोझा ढोने वाले होते हैं॥७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सात स्वरों के ग्राम एवं मूर्च्छनाएं

एएसि णं सत्तण्हं सराणं तओ गामा पण्णत्ता। तंजहा - सज्जगामे १ मज्झिमगामे २ गंधारगामे ३।

सज्जगामस्स णं सत्त मुच्छणाओ पण्णत्ताओ। तंजहा -

गाहा - मग्गी कोरविया हरिया, रयणी य सारकंता य।
छट्ठी य सारसी णाम, सुद्धसज्जा य सत्तमा॥१॥

शब्दार्थ - तओ - तीन, गामा - ग्राम, मुच्छणाओ - मूर्च्छनाएं।

भावार्थ - इन सात स्वरों के तीन ग्राम बतलाए गए हैं - १. षड्जग्राम २. मध्यमग्राम एवं ३ गांधारग्राम।

षड्जग्राम की सात मूर्च्छनाएं प्रज्ञप्त हुई हैं -

गाथा - १. मार्गी (मंगी) २. कौरविका ३. हरिता ४. रजनी ५. स्वरकांता ६. सारसी तथा ७. शुद्धसज्जा॥१॥

मज्झिमगामस्स णं सत्त मुच्छणाओ पण्णत्ताओ। तंजहा -

उत्तरमंदा रयणी, उत्तरा उत्तरासमा।
समोक्कंता य सोवीरा अभिरूवा होइ सत्तमा॥१॥

भावार्थ - मध्यमग्राम की सात मूर्च्छनाएं कही गई हैं, जो इस प्रकार हैं -

गाथा - १. उत्तरमंदा २. रजनी ३. उत्तरा ४. उत्तरासमा ५. समवकांता ६. सौवीरा एवं ७. अभिरूपा।

गंधारगामस्स णं सत्त मुच्छणाओ पण्णत्ताओ। तंजहा -

णंदी य खुड्डिया पूरिमा य, चउत्थी य सुद्धगंधारा।
उत्तरगंधारा वि य, सा पंचमिया हवइ मुच्छा॥१॥
सुट्ठुत्तरमायामा, सा छट्ठी सव्वओ य णायव्वा।
अह उत्तरायया कोडिमा य, सा सत्तमी मुच्छा॥२॥

भावार्थ - गांधारग्राम की सात मूर्च्छनाएं प्रज्ञप्त हुई हैं -

गाथा - १. नंदी २. क्षुद्रिका ३. पूरिमा ४. शुद्ध गांधारा ५. उत्तर गांधारा ६. सुष्ठुतर आयामा ७. उत्तरायत्ता या कोटिमा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - उपर्युक्त सूत्र में आए ग्राम और मूर्च्छना शब्द संगीत शास्त्र में विशिष्ट अर्थों के द्योतक हैं।

ग्राम - ग्राम शब्द संग्रह या समूह का पर्याय है। संगीत शास्त्र में भी यह शब्द इसी अर्थ को लिए हुए हैं। यहाँ इसका आशय सप्तस्वरों के समूह से है। इसे स्वरग्राम या संक्षेप में ग्राम से अभिहित किया जाता है। किसी राग विशेष में जो स्वर लगते हैं, उनको स्वरग्राम (विशिष्ट स्वर समूह) कहते हैं।

मूर्च्छना - यह शब्द वाद्ययंत्रों और इनमें भी मुख्यतः तार वाद्यों के संदर्भ में एक तकनीकी शब्द है। तार वाद्यों में बाह्य तारों के अलावा तुम्बी में नीचे सूक्ष्म तारों की बंधनी होती है। ज्यों ही बाह्य तारों को झंकृत किया जाता है, त्यों ही बंधनी के तार भी झंकृत होते हैं किन्तु उनकी ध्वनि मंद होने से सुनाई नहीं पड़ती। परन्तु जब बाह्य तारों की ध्वनि बंद हो जाती है तब बंधनी के तारों की क्रमशः विलीन होती मंद ध्वनि अतिमधुर एवं आनंदप्रद रूप में सुनाई पड़ती है। यह मूर्च्छित कर देने वाली सी मंद ध्वनि होने से इसे 'मूर्च्छना' कहा जाता है। मूर्च्छना के स्वर सभी तारवाद्यों और विशेषतः सितार, सरोद, वीणा आदि यंत्रों में सुनाई देते हैं।

संस्कृत हिन्दी शब्दकोश (वामन शिवराम आप्टे) में मूर्च्छना के इन पर्यायों का उल्लेख है✲ - स्वरारोहण, स्वरविन्यास, स्वरों का नियमित आरोहण-अवरोहण, सुखद स्वरसंधान करना, लय परिवर्तित करना, स्वरसामंजस्य, स्वरमाधुर्य।

स्फुटी भवद्ग्राम विशेष मूर्च्छनाम् (शिशुपालवध १/१०)

(संगीत में विशिष्ट ग्रामों के साथ विविध मूर्च्छनाएं स्फुटित हो रही थीं)

वर्णानामपि मूर्च्छनान्तरगतं तारं विरामे मृदु (मृच्छकटिकम्-३/५)

(संगान में विविध स्वरों के आरोह से अवरोह में आने पर तंत्री में सुनाई देने वाली, मृदु ध्वनि मूर्च्छना है)

आचार्य भरत के मत में गाते समय गले को कम्पाने से ही मूर्च्छना उद्भूत होती है। अन्य कई स्वर के सूक्ष्म विराम को भी मूर्च्छना कहते हैं।

संगीत दामोदर में भी षड्ज, मध्यम एवं गांधार के रूप में तीन ग्राम बतलाए गए हैं लेकिन उनकी सात-सात मूर्च्छनाओं में आगमगत नामों से भिन्नता है। इनके नाम एम. आर. ए. एस. नागेन्द्रनाथ वासु के इन्साइक्लोपीडिया इन्द्रिका (भाग १८) के अनुसार ये हैं -

---

✲ संस्कृत हिन्दी शब्द कोश, पृष्ठ ८१०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१. षड्जग्राम - ललिता, मध्यमा, चित्रा, रोहिणी, मतङ्गजा, सौवीरी एवं षण्डमध्या।

२. मध्यमग्राम - पञ्चमा, मत्सरी, मृदु, मध्यमा, शुद्धा, अन्ता, कलावती, तीव्रा।

३. गान्धारग्राम - रौद्री, ब्राह्मी, वैष्णवी, खेदरी, सुरा, नादावती, विशाला।

पुनश्च - 'ग्राम' क्रमिक सात स्वरों का समुच्चय है तथा ग्राम के सातवें भाग का, जिसमें सांगीतिक तन्मयता उत्कृष्टावस्था पा लेती है, मूर्च्छना है।

प्रस्तुत आगम में तथा यहां किए गए विवेचन में मूर्च्छनाओं के भेदों में जो अन्तर प्राप्त होता है, उससे प्रतीत होता है, संगीत शास्त्र में विविध अपेक्षाओं से स्वरग्राम, मूर्च्छना, आरोह-अवरोह, लय आदि पर उत्तरोत्तर चिन्तन, मंथन होता रहा है। ललित कलाओं में सर्वोत्कृष्ट एवं सूक्ष्मतम कला होने के कारण अनुभूतिपूर्ण तारतम्य होना स्वाभाविक है। उसी का परिणाम भेदों की भिन्नता आदि का प्राकट्य है।

इतना अवश्य कहा जा सकता है कि धर्म, अध्यात्म और तत्त्वदर्शन के साथ-साथ जैनागमों में अन्यान्य शास्त्रों पर भी गहन विवेचन हुआ है, जो उनके सार्वजनीन अनेकान्तवादी दृष्टिकोण का परिचायक है। तभी तो यह माना जाता है कि चतुर्दश पूर्वों में, जो आज प्राप्त नहीं है, व्याकरण, न्याय, दर्शन, संगीत, काव्य, भूगोल, खगोल, अर्थशास्त्र इत्यादि का विशद विवेचन हुआ है।

सप्तस्वरोत्पत्ति

सत्तसरा कओ हवंति?, गीयस्स का हवइ जोणी?।
कइसमया ओसासा?, कइ वा गीयस्स आगारा?॥१॥
सत्तसरा णाभीओ, हवंति गीयं च रुइयजोणी।
पायसमा ऊसासा, तिण्णि य गीयस्स आगारा॥२॥
आइमउ आरभंता, समुव्वहंता य मज्झयारम्मि।
अवसाणे उज्झंता, तिण्णि य गीयस्स आगारा॥३॥

शब्दार्थ - जोणी - योनि - उत्पत्ति स्थान, **ओसासा** - उच्छ्वास, **आगारा** - आकार, **णाभीओ** - नाभि से, **रुइय** - रुदन, **पायसमा** - पादसम - चरणानुरूप, **आइमउ** - प्रारंभ में मृदु स्वर से, **आरभंता** - प्रारम्भ करते हुए, **समुव्वहंता** - समुद्वाह करते हैं - आगे बढ़ाते हैं, **अवसाणे** - अंत में, **उज्झंता** - छोड़ देते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - गाथाएँ - सातों स्वरों का उद्भव कहाँ से होता है?

गीत का उत्पत्ति स्थान क्या है? उसके उच्छ्वास कियत्कालिक होते हैं? गीत के कितने आकार - रूप होते हैं?॥१॥

सातों स्वरों का उद्भव नाभि से होता है। गीत की उत्पत्ति रुदन - त्रासदी (Tragedy) से होती है। उच्छ्वास गीत के चरणों के अनुरूप होते हैं। गीत के तीन आकार या स्वरूप हैं। आदि में उसको मृदु से प्रारम्भ किया जाता है, मध्य में समुद्वाह - उसी रूप में संचार किया जाता है तथा अन्त में परिसमापन किया जाता है। ये गीत के तीन आकार हैं॥२-३॥

विवेचन - इस सूत्र में गीत के उद्भव के संबंध में विशेष रूप से चर्चा की गई है। **''गीतं च रुन्नजोणियं''** - अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। गीत - जिसे गीतिकाव्य भी कहा जा सकता है, संगीतात्मक काव्य प्रस्तुति है। काव्य या संगीत के मूल में आधार के रूप में भाव अपेक्षित हैं। साहित्य शास्त्र में उसे स्थायी भाव कहा गया है, जो प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में अव्यक्त रूप में विद्यमान रहता है। काव्य या गीत सुखान्त और दुःखान्त के रूप में दो प्रकार के बताए गए हैं। आज की भाषा में उन्हें कामदी (Comady) और त्रासदी (Tragedy) कहा जाता है। कामदी का ही विकसित रूप श्रृंगार रस है। श्रृंगार लौकिक रति या प्रेम पर आधारित है, जो कुछेक अपवादों के साथ मानव मात्र के लिए अतिप्रिय है।

इस संदर्भ में पाश्चात्य और भारतीय वाङ्मय में एक महत्त्वपूर्ण संयोग और मिलता है, जो आगम के प्रस्तुत पद के साथ सर्वथा संगति लिए है।

संस्कृत में वाल्मीकि आदि कवि हैं, जिन्होंने रामायण की रचना की। व्याध द्वारा बाण से आहत, भूमि पर तड़पते क्रौञ्च पक्षी को देखकर पेड़ पर बैठी क्रौञ्ची के विलाप को ज्योंही वाल्मीकी ने सुना, उनका हृदय शोक से विगलित हो उठा (उनका) अन्तस् रो उठा। तब शोक विह्वल हृदय से सहज रूप से उनके मुख से निम्नांकित पंक्तियाँ निकल पड़ी -

मा निषाद् प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

अरे व्याघ! तुम्हें कभी भी प्रतिष्ठा और शांति प्राप्त नहीं होगी। तुमने कितना नृशंस और निर्मम कार्य कर डाला, क्रौञ्च युगल में से एक को मार जो दिया।

'शोकः श्लोकत्वमागतः' - शोक श्लोक बन गया। वाल्मीकी रामायण आदि काव्य कहा जाता है, जिसका उद्भव यह श्लोक है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शोक, दुःख या रुदन ही वह स्थिति है, जो हृदय को भाव विह्वल बना देती है। सुख-सुविधा या अनुकूलता से यह काव्य घटित होता है।

संस्कृत वाङ्मय में प्रसिद्ध कवि भवभूति हुए हैं, जिन्होंने 'उत्तर रामचरितम्' की रचना की। जिसमें राम द्वारा निर्वासित सीता के जीवन की करुण कथा है। भवभूति ने स्वयं इसके लिए लिखा है - **'अपि ग्रावा रोदिति, दलति वज्रस्यापि हृदयम्'**-जिसे सुनकर शीला भी रोने लग जाय, वज्र का हृदय भी विदीर्ण हो जाय। उन्होंने निम्नांकित श्लोक में इस बात को ओर भी स्पष्ट किया है -

एको रसः करुण एव निमित्त भेदाद,
भिन्नः पृथक् पृथगिवाश्रयते निवर्तान।
आवर्तबुद्बुदतरंगमयान् विकारान्,
अम्भो यथा सलिलमेव हि तत्समस्तम्✤॥

वस्तुतः रस करुण ही है और तो सब उसके भिन्न-भिन्न विवर्त हैं - उसी से समुत्पन्न या (उसके) अंश रूप हैं। आवर्त, बुद्बुद् तरंगें - ये सभी भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हैं किन्तु हैं तो सब जल ही।

बाल्मीकी और भवभूति का निरूपण आगम के इस पद का सर्वथा समर्थन करते हैं क्योंकि रुदन का प्रसव शोक है। शोक करुण रस का स्थायी भाव है।

पाश्चात्य जगत् में अरस्तू नामक बहुत बड़े विद्वान् हुए (३८४ ई० पू०) जो सिकन्दर के गुरु थे। उन्होंने अनेक विषयों पर महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की, जिसमें काव्य शास्त्र (Poetics) भी है। इसमें उन्होंने अत्यंत प्रसिद्ध विरेचन सिद्धान्त (Cathersis) की विवेचना की, जो शोक या त्रासदी पर आधारित है। पाश्चात्य काव्य सिद्धान्तों पर उनके इस सिद्धान्त का बहुत प्रभाव पड़ा।

शेक्सपीयर के समस्त नाटक त्रासदी या दुःख पर आधारित हैं।

वास्तव में दुःख या शोक ही वह मनःस्थिति है, जो कविता के लिए अपेक्षित 'साधारणीकरण' (Generalisation) का भाव अभ्युदित होता है।

इससे यह सिद्ध है कि आगमकार ने काव्य के यथार्थ, मौलिक उत्स - उत्पत्ति स्थल का रुदन के रूप में यथार्थ अंकन किया है।

✤ उत्तररामचरितम् ३. ४७

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गीतगायक की कुशलता

छद्दोसे अट्ठगुणे, तिण्णि य वित्ताइं दो य भणिईओ।

जो णाही सो गाहिइ, सुसिक्खिओ रंगमज्झम्मि।।४।।

शब्दार्थ - **अट्ठगुणे** - आठ गुण, **भणिइओ** - उक्ति प्रकार, **वित्ताइं** - वृत्त, **णाही** - विज्ञ, **गाहिइ** - गाता है, **सुसिक्खिओ** - भली भांति शिक्षित, **रंगमज्झम्मि** - रंगमंच पर।

भावार्थ - (जिसने) गीत के छह दोषों, आठ गुणों, तीन वृत्तों तथा दो उक्ति प्रकारों को भली-भांति जाना है - यथावत् शिक्षण प्राप्त किया है, वह रंगमंच पर गीत प्रस्तुति कर सकता है।।४।।

गीत के छह दोष

भीयं दुयं उप्पिच्छं, उत्तालं च कमसो मुणेयव्वं।

कागस्सरमणुणासं, छद्दोसा होंति गेयस्स।।५।।

शब्दार्थ - **भीयं** - भीतियुक्त, **दुयं** - द्रुत, **उप्पिच्छं** - उप्पिच्छ - गान के बीच श्वास टूटना, **उत्तालं** - ताल के विपरीत, **कमसो** - क्रमशः, **मुणेयव्वं** - ज्ञातव्य, **कागस्सरं** - कौवे जैसा कर्कश स्वर, **अणुणासं** - अनुनासिक - नासिका का अधिक - अनपेक्षित उपयोग।

भावार्थ - गीत के छह दोष निम्नांकित हैं -

१. भय (झिझक) या घबराहट के साथ गाना,

२. अनावश्यक तीव्रता,

३. उप्पिच्छ - गान के मध्य श्वास टूटना,

४. ताल के विपरीत जाना,

५. कौवे की तरह कर्कश स्वर,

६ अनावश्यक नासिका का प्रयोग- अननुनासिक पदों का भी अनुनासिक (नासिका से) की तरह उच्चारण।।५।।

गीत के आठ गुण

पुण्णं रत्तं च अलंकियं च वत्तं च तहेवमविघुट्ठं।

महुरं समं सुललियं, अट्ठगुणा होंति गेयस्स।।६।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उरकंठसिरविसुद्धं च, गिज्जंते मउयरिभियपयबद्धं।

समतालपडुक्खेवं, सत्तस्सरसीभरं गीयं॥७॥

अक्खरसमं पयसमं तालसमं लयसमं च गेहसमं।

णीससिओससियसमं संचारसमं सरा सत्त॥८॥

णिद्दोसं सारमंतं च हेउजुत्तमलंकियं।

उवणीयं सोवयारं च, मियं महुरमेव य॥६॥

शब्दार्थ - **पुण्णं** - पूर्ण, **रत्तं** - रक्त - अनुरक्तता - तन्मयता, **अलंकियं** - अलंकृत, **वत्तं** - व्यक्त, **अविघुट्ठं** - विकृत घोष या ध्वनि, **गिज्जंते** - गाया जाता है, **रिभिय** - स्वर युक्त, **समताल पडुक्खेवं** - गीत, ताल - वाद्य ध्वनि एवं नर्तक के पादक्षेप की संगति, **सत्तस्सरसीभरं** - सातों स्वरों का वर्षा की फुहार की तरह प्रस्फुटन, **गेहसमं** - वीणा आदि वाद्य यंत्रों द्वारा गृहीत ध्वनि के अनुरूप, **णीससिओससियसमं** - संगान में निःश्वास और उच्छ्वास के क्रम का समुचित सामंजस्य, **संचारसमं** - तन्तुवाद्यों के संचार के अनुरूप गायन, **णिद्दोसं** - निर्दोष - दोष रहित, **सारमंतं** - सारयुक्त - विशिष्ट भाव युक्त, **हेउजुत्तमलंकियं** - हेतु युक्ति अलंकृत, **उवणीय** - उपनीत - उपसंहार युक्त, **सोवयारं** - उपचार या अविरोध युक्त, **मियं**- मित - परिमित पद एवं अक्षर युक्त।

भावार्थ - गीत के आठ गुण माने गए हैं -

१. **पूर्णता** - गीत गत स्वरों के आरोह - अवरोह आदि समस्त गीत विद्याओं का सम्यक् निर्वाह।

२. **रत्त** - गेय राग में तन्मयता।

३. **अलंकृत** - तदनुकूल स्वरों का सुंदर संयोजन।

४. **व्यक्त** - गीतगत पदों के स्वरों एवं व्यंजनों का स्पष्ट उच्चारण।

५. **अविघुष्ट** - विकृत या विश्रृंखलित ध्वनिक्रम का वर्जन।

६. **मधुर** - कर्णप्रिय स्वर द्वारा प्रस्तुतीकरण।

७. **सम** - सुर, ताल एवं लय का सुंदर सामंजस्य।

८. **सुललित** - आलाप लालित्य॥६॥

गीत के अन्य गुण इस प्रकार हैं -

१. **उरोविशुद्ध** - वक्ष स्थल से।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२. **कंठविशुद्ध** - गले से।

३. **शिरोविशुद्ध** - मस्तक से - स्वर विशुद्ध या विशद रूप में निःसृत हो।

४. **मृदुक** - कोमल स्वर में उच्चारित हो।

५. **पदबद्ध** - विशिष्ट - पद - रचना - संयुक्त हो।

६. **समताल प्रत्युत्क्षेप** - गीत के संगान में ताल, वाद्य, ध्वनि एवं नृत्यकार का पाद संचालन परस्पर समता सामञ्जस्य लिए हुए हो।

७. **सप्त स्वर सीभर** - सातों स्वरों का संप्रयोग हल्की-हल्की वर्षा की फुहारों की तरह स्फीतता से युक्त हो॥७॥

प्रकारान्तर से गीत के गुण इस प्रकार भी हैं -

१. **अक्षरसम** - उसमें ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, निरनुनासिक, सानुनासिक आदि अक्षर यथावत् उच्चारित हों।

२. **पदसम** - स्वर के अनुरूप पदों का उपयोग हो।

३. **तालसम** - ताल वादन के अनुसार स्वर संगान।

४. **लयसम** - लय के अनुसार गान।

५. **ग्रहसम** - वीणा आदि वाद्यों के तन्तुओं से व्यक्त धुन के अनुरूप ज्ञान।

६. **निश्वसितोच्छ्वसितसम** - गान करते समय श्वास लेने और छोड़ने का क्रम स्वर के अनुरूप हो।

७. **संचारसम** - वीणा आदि तन्तुवाद्यों के तारों से झंकृत ध्वनि के अनुरूप गान हो॥८॥

गेय पदों के आठ गुण इस प्रकार प्रज्ञप्त हुए हैं -

१. **निर्दोष** - मात्रादि दोष रहित।

२. **सारयुक्त** - विशिष्ट आशय युक्त।

३. **हेतुयुक्त** - अर्थोपपादक।

४. **अलंकृत** - अनुप्रास, उपमादि अलंकारों से युक्त।

५. **अपनीय** - उपसंहार युक्त।

६. **सोपचार** - यथाक्रम अविरुद्ध, शब्दार्थमय।

७. **मित** - परिमित पद, अक्षर युक्त

८. **मधुर** - श्रुतिप्रिय, माधुर्य युक्त हो॥९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गीत के वृत्त एवं भाषा

समं अद्धसमं चेव, सव्वत्थ विसमं च जं।
तिण्णि वित्तपयाराइं, चउत्थं णोवलब्भइ॥१०॥
सक्कया पायया चेव, भणिईओ होंति दोण्णि वा।
सरमंडलम्मि गिज्जंते, पसत्था इसिभासिया॥११॥

शब्दार्थ - **वित्तपयाराइं** - वित्त प्रकार, **चउत्थं** - चौथा, **णोवलब्भइ** - प्राप्त नहीं होता, **सक्कया** - संस्कृत, **पायया** - प्राकृत, **भणिइओ** - भाषायें, **सरमंडलम्मि** - स्वर मंडल में, **पसत्था** - उत्तम, **इसिभासिया** - ऋषिभाषित - ऋषियों द्वारा भाषित या आर्ष।

भावार्थ - गीत के वृत्त तीन प्रकार के होते हैं -

१. **सम** - जिसमें छन्द के चारों चरण समान गण या मात्रा युक्त हों,

२. **अर्द्ध सम** - जिसके प्रथम-तृतीय एवं द्वितीय-चतुर्थ पद गण एवं मात्राओं की दृष्टि से समान हो,

३. **सर्वविषम** - जिसके चारों चरण असमान या भिन्न-भिन्न हों।

इन तीनों के अतिरिक्त चौथा भेद प्राप्त नहीं होता॥१०॥

संस्कृत और प्राकृत - ये दोनों भाषाएं गीत के लिए अभिहित हुई हैं। ये स्वरमंडल में संगानोपयोगी हैं, उत्तम ऋषिभाषित - आर्ष हैं॥११॥

संगातृ-प्रकार

केसी गायइ महुरं, केसी गायइ खरं च रुक्खं च।
केसी गायइ चउरं, केसी य विलंबियं दुयं केसी॥१२॥
विस्सरं ✽ पुण केरिसी?।
गोरी गायइ महुरं, सामा गायइ खरं च रुक्खं च।
काली गायइ चउरं, काणा य विलंबियं दुयं अंधा॥१३॥
विस्सरं ✽ पुण पिंगला।

✽ १-२ गाहाहिगपयाइमेयाइं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ - केसी - कौनसी, **खरं** - परुष - कठोर, **चउरं** - कुशलता पूर्वक, **विलंबियं**- विलंबित - लम्बा प्रवाह, **दुयं** - द्रुत, **विस्सरं** - विस्वर - विपरीत स्वर युक्त - बेसुरा, **सामा** - षोडशवर्षीया युवती, **पिंगला** - भूरे रंग की स्त्री।

भावार्थ - कौन गायिका मधुर, कौन कठोर, रूक्ष, कौन कौशलयुक्त - विधिवत्, कौन विपरीत, कौन द्रुत, कौन गायिका बेसुरा गाती है?

षोडश वर्षीया युवती मधुर स्वर में, कृष्ण वर्णा परुष - कठोर और रूक्ष स्वर में, गौरवर्णा - विधि अनुरूप स्वर में, कानी - विलंबित स्वर में, अंधी द्रुत स्वर में, पिंगला - बेसुरे स्वर में गाती है॥१२-१३॥

उपसंहार

सत्तसरा तओ गामा, मुच्छणा इक्कवीसई।
ताणा एगूणपण्णासं, सम्मत्तं सरमंडलं॥१४॥
सेत्तं सत्तणामे।

भावार्थ - इस प्रकार सात स्वर, तीन ग्राम एवं इक्कीस मूर्च्छनायें होती हैं। (प्रत्येक स्वर सात तानों में गाये जाने के कारण) स्वरों के (७×७=४९) उनचास भेद होते हैं॥१४॥

इस प्रकार सप्तनाम का वर्णन परिसमाप्त होता है।

विवेचन - स्थानांग सूत्र के सातवें स्थान में भी सात स्वरों का विस्तार से वर्णन किया गया है। यहाँ के पाठ से वहाँ पर कहीं-कहीं पर कुछ पाठ में भिन्नता है। आशय दोनों का एक ही प्रकार का है।

इन सात स्वरों का टीकाकार ने भी संक्षिप्त में ही अर्थ किया है। विस्तार से विवेचन भरत के नाट्य शास्त्र आदि लौकिक ग्रन्थों से जान लेना चाहिये।

(१२९)

अष्टनाम

से किं तं अट्ठणामे?
अट्ठणामे - अट्ठविहा वयणविभत्ती पण्णत्ता। तंजहा -
णिद्देसे पढमा होइ, बिइया उवएसणे।

तइया करणम्मि कया, चउत्थी संपयावणे॥१॥

पंचमी य अवायाणे, छट्ठी सस्सामिवायणे।

सत्तमी सण्णिहाणत्थे, अट्ठमाऽऽमंतणी भवे॥२॥

शब्दार्थ - **वयणविभत्ती** - वचन विभक्ति, **णिद्देसे** - निर्देश, **पढमा** - प्रथम, **बिइया**- द्वितीय, **उवएसणे** - उपदेशन में - उपदेश क्रिया में, **तइया** - तृतीय, **करणम्मि** - करण में साधकतम कारण में, **कया** - की गई है - बतलाई गई है, **चउत्थी** - चतुर्थी, **संपयावणे** - संप्रदान में, **अपादायाणे** - अपादान में, **सस्सामिवायणे** - स्व - स्वामित्व कथन में, **सत्तमी** - सातवीं, **सण्णिहाणत्थे** - सन्निधान - आधार में, **अट्ठमा** - आठवीं, **आमंतणी** - आमंत्रण - संबोधन में, **भवे** - होती है।

भावार्थ - अष्टनाम का क्या आशय है?

आठ प्रकार की वचन विभक्तियाँ अष्टनाम के अन्तर्गत प्रज्ञप्त हुई हैं।

गाथाएं - निर्देश में प्रथमा, उपदेशन में द्वितीया, करण में तृतीया, संप्रदान में चतुर्थी, अपादान में पंचमी, स्वस्वामित्व प्रतिपादन में षष्ठी, सन्निधान में सप्तमी तथा आमंत्रण में अष्टमी विभक्ति होती है॥१, २॥

विवेचन - ये आठों विभक्तियाँ व्याकरण में निर्देशित आठों कारकों का रूप लिए हुए हैं।

प्रथमा विभक्ति वाक्य के कर्त्ता का निर्देश करती है, जो क्रियमाण कार्य का निर्वाहक होता है।

'उपदेशन' का तात्पर्य कर्म कारक से है। जिस पर कर्त्ता का फल पड़े वह कर्म है। **'क्रियतेतिकर्मः'** - अर्थात् जो क्रिया के फल का आश्रय हो, वह कर्म है।

कर्त्ता को क्रिया का संपादन करने में साधन की आवश्यकता होती है। **''साधकतमं कारणं करणम्''** - अर्थात् क्रिया सिद्धि का जो अनन्य हेतु होता है, वह करण है। 'संप्रदान' किसी के निमित्त कार्य करने के अर्थ में प्रयुक्त होता है। किसी को दिया जाता है, वहाँ चतुर्थी विभक्ति या संप्रदान कारक का प्रयोग होता है। संप्रदान वहीं होता है, जहाँ कोई वस्तु देकर वापस न ली जाय। जैसे **गृही मुनये भिक्षा ददाति**। यहाँ संप्रदान कारक का प्रयोग हुआ है। परन्तु **''रजकाय वस्त्रं ददाति''** में 'रजकाय' में चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग अशुद्ध है क्योंकि वस्त्र वापस लिए जाते हैं।

'अपादान' यहाँ अप+आदान - ये दो शब्द हैं। आदान का तात्पर्य ग्रहण से है। अपादान का तात्पर्य पृथक् होने से है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'स्वस्वामित्व' का आशय षष्ठि विभक्ति से है।

'सन्निधान' आश्रय, आधार आदि का द्योतक है, जहाँ पर क्रिया की निष्पत्ति है।

'आमंत्रण' बोधन या अष्टमी विभक्ति की सूचक है।

तत्थ पढमा विभत्ती, णिद्देसे 'सो इमो अहं व' त्ति।
बिइया पुण उवएसे 'भण कुणसु इमं व तं व' त्ति॥३॥
तइया करणम्मि कया 'भणियं च कयं ज तेण व मए' वा।
'हंदि णमो साहाए' हवइ चउत्थी पयाणम्मि॥४॥
'अवणय गिण्ह य एत्तो, इउ' त्ति वा पंचमी अवायाणे।
छट्ठी तस्स इमस्स वा, गयस्स वा सामिसंबंधे॥५॥
हवइ पुण सत्तमी तं, इमम्मि आहारकालभावे य।
आमंतणी भवे अट्ठमी उ, जह 'हे जुवाण' त्ति॥६॥

सेत्तं अट्ठणामे।

शब्दार्थ - **सो** - वह, **इमो** - यह, **अहं** - मैं, **कुणसु** - करो, **इमं** - इसको, **तं** - उसको, **करणम्मि** - करण में, **कया** - किसके द्वारा, **तेण** - उसके द्वारा, **मए** - मेरे द्वारा, **हंदि** - हो, **णमो** - नमस्कार, **साहाए** - स्वाहा, **पयाणम्मि** - प्रदान करने में, **अवणय** - अपनय - दूर करो, **गिण्ह** - ग्रहण करो, **एत्तो** - यहाँ से, **तस्स** - उसका, **इमस्स** - इसका, **गयस्स** - गए हुए की या गज की, **इमम्मि** - इसमें, **जह** - यथा, **हे जुवाण** - हे युवन्।

भावार्थ - गाथाएँ - प्रथमा विभक्ति निर्देश में होती है, जैसे - वह, यह और मैं। द्वितीया विभक्ति उपदेश में होती है, - जैसे - इसको कहो, वह करो॥३॥

तृतीया विभक्ति करण में होती है, जैसे - किसके द्वारा कहा गया, उसके द्वारा या मेरे द्वारा किया गया।

चतुर्थी विभक्ति 'संप्रदान' में होती है। नमः (जिनाय), स्वाहा (अग्नेय) - इसके उदाहरण हैं॥४॥

पंचमी में अपादान होती है। यहाँ से हटाओ, यहाँ से ले लो - इसके उदाहरण हैं। छठी विभक्ति स्वामित्व संबंध में होती है। जैसे - उसका, इसका, गए हुए का या हाथी का॥५॥

सप्तमी विभक्ति आधार, काल एवं भाव में होती है। "इसमें (इमम्मि)" इसका उदाहरण है। अष्टमी विभक्ति आमंत्रण में होती है, जैसे - हे युवन्!॥६॥

यह अष्टनाम का स्वरूप है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(१३०)

नव नाम

से किं तं णवणामे?

णवणामे-णवकव्वरसा पण्णत्ता। तंजहा -

गाहाओ - वीरो सिंगारो अब्भुओ य, रोद्दो य होइ बोद्धव्वो।

वेलणओ बीभच्छो, हासो कलुणो पसंतो य॥१॥

शब्दार्थ - **कव्वरसा** - काव्य रस।

भावार्थ - नवनाम (नौ) किन्हें कहा जाता है?

काव्य में नौ रस नव नाम के रूप में निरूपित हुए हैं। वे इस प्रकार हैं -

१. वीर २. श्रृंगार ३. अद्भुत ४. रौद्र ५. व्रीडनक (लज्जा) ६. बीभत्स ७. हास्य ८. करुण तथा ९. प्रशांत॥१॥

विवेचन - रस का काव्य में सर्वाधिक महत्त्व है। आचार्य भरत ने इस संबंध में लिखा है -

यथा बीजाद् भवेद् वृक्षो वृक्षात् पुष्पं फलं तथा।

तथा मूलं रसाः सर्वे तेभ्यो भावा व्यवस्थिताः॥

जैसे बीज से वृक्ष उत्पन्न होता है, वृक्ष के पुष्प और फल लगते हैं, उसी प्रकार रस भावों का मूल है, सभी भाव उस पर टिके हुए हैं✿।

जैसे प्राणी के शरीर में आत्मा का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है, उसी प्रकार काव्य में रस का असाधारण महत्त्व है। विद्वानों ने काव्य पुरुष की कल्पना की है, उसमें शब्द और अर्थ को काव्य का शरीर बतलाया है और रस को काव्य की आत्मा कहा है। काव्यशास्त्र में रस पर बहुत ही सूक्ष्म चर्चा हुई है, उसके उद्भव, परिपाक एवं विकास आदि पक्षों पर विशद विश्लेषण किया गया है।

रस निष्पत्ति के संबंध में कहा गया है -

"तत्र विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रस निष्पत्ति॥"

✿ नाट्य शास्त्र - ६, ३८।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विभाव, अनुभाव तथा संचारी भावों के संयोग से रस निष्पन्न होता है✳।

'रस्यते-इति रसः' रस या आनन्द प्रदान करने के कारण इसकी रस संज्ञा है। काव्य शास्त्रियों ने रसात्मक आनन्द को ब्रह्मानन्द-सहोदर कहा है। यदि काव्य में रस न हो तो अलंकार, गुण आदि होने पर भी वह वास्तव में काव्य की श्रेणी में नहीं आता। इसीलिए साहित्य दर्पण में लिखा है - **'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्'** रसात्मक या रसयुक्त वाक्य काव्य है✡।

रस पर अनेक विद्वानों ने ग्रन्थ रचना की है, जिनमें पंडितराज जगन्नाथ का 'रसगंगाधर' अत्यन्त प्रसिद्ध है।

१. वीर रस

तत्थ परिच्चायम्मि य, (दाण)तवचरणसत्तुजणविणासे य।
अणणुसयधिइपरक्कम-,लिंगो वीरो रसो होइ॥१॥
वीरो रसो जहा-
सो णाम महावीरो, जो रज्जं पयहिऊण पव्वइओ।
कामकोहमहासत्तु-, पक्खणिग्घायणं कुणइ॥२॥

शब्दार्थ - परिच्चायम्मि - परित्याग में, **तव-चरण** - तपश्चरण में - तपस्या में, **सत्तुजणविणासे** - शत्रुजन का विनाश करने में, **अणणुसय** - गर्व या पश्चात्ताप का अभाव, **धिइ** - धृति-धैर्य, **परक्कम** - पराक्रम, **लिंगो (चिण्हो)** - लिंग - चिह्न या स्वरूप, **रज्जं** - राज्य, **पयहिऊण**- परित्याग कर, **पव्वइओ** - प्रव्रजित-दीक्षित, **कामकोह** - काम तथा क्रोध, **महासत्तुपक्ख** - महाशत्रु पक्ष, **णिग्घायणं** - निर्घातन-विनाश, **कुणइ** - करते हैं (किया)।

भावार्थ - गाथाएँ - परित्याग करने में जरा भी अभिमान न करना, तपश्चरण में धैर्य रखना, स्थिर रहना, काम तथा क्रोध रूपी महाशत्रुओं के पक्ष का नाश करना - यह वीर रस का लक्षण है।

जैसे - राज्य का परित्याग कर जो प्रव्रजित हुए, काम, क्रोध जैसे महान् शत्रुओं का जिन्होंने विनाश किया, वे इसी कारण महावीर हैं॥१,२॥

✳ नाट्यशास्त्र - ६, ३१।
✡ साहित्य दर्पण - १, ३।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - काव्यशास्त्र में वीर रस के अन्तर्गत चार प्रकार के नायकों का उल्लेख है - १. धर्मवीर, २. दयावीर, ३. दानवीर एवं ४. युद्धवीर।

इसका तात्पर्य यह है कि धर्माराधना, करुणा, दानशीलता तथा युद्ध-कौशल - इन चारों में ही पराक्रम की आवश्यकता है। केवल समरभूमि में शौर्य और पराक्रम का प्रदर्शन करने वाला ही एक मात्र वीर नहीं है। धर्म क्षेत्र में भी जो आत्मबल और शक्ति का प्रदर्शन करता है, वह भी वीर है क्योंकि ऐसा करना कोई साधारण बात नहीं है। धर्म के क्षेत्र में राग, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि ऐसे दुर्जेय भावशत्रु हैं, जिन्हें नष्ट करने के लिए बहुत बड़े शौर्य की आवश्यकता है।

इसी प्रकार करुणा, दया या अनुकम्पा करना भी बड़ी वीरता का कार्य है, क्योंकि वैसा करने में अपने प्राण संकट में डालने होते हैं। इसी कारण करुणाशील पुरुष को भी वीर कहा गया है।

किसी के पास विपुल धन-वैभव हो सकता है, किन्तु उसके लिए दानशील होना बड़ा कठिन है। धन के प्रति मनुष्य में एक ऐसी तीव्र आसक्ति बनी रहती है कि उसका परित्याग करना, विसर्जन करना, किसी दूसरे के सहयोग हेतु देना बहुत कठिन है। कहा गया है -

शतेषु जायते शूरः, सहस्रेषु च पण्डितः।
वक्ता शत-सहस्रेषु, दाता भवति वा न वा॥

अर्थात् सैंकड़ों में कोई एक शूरवीर - युद्ध में पराक्रमी होता है, हजारों में कोई एक पण्डित - ज्ञानी होता है तथा लाखों में कोई एक वक्ता होता है किन्तु दाता या दानी तो कोई होता है या नहीं होता। इसका तात्पर्य यह है कि शूरवीर, पण्डित या वक्ता होना तो सहज सम्भव है किन्तु दानी या दानवीर होना बहुत कठिन है।

इस सूत्र में जो वीर रस का उदाहरण दिया गया है, वह धर्मवीर से संबंधित है। धर्मवीर का आध्यात्मिक दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्व है क्योंकि काम-क्रोध, राग-द्वेष आदि शत्रुओं का क्षय कर जो समस्त कर्म-बंधनों को काट डालता है, वह जन्म-मरण से, आवागमन से मुक्त हो जाता है, मोक्ष प्राप्त कर लेता है, जीवन का परम साध्य अधिगत कर लेता है, परमानन्दमय, शाश्वतसुख संपन्न हो जाता है। आत्मसाम्राज्य का अधिपति बन जाता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२. श्रृंगार रस

सिंगारो णाम रसो, रइसंजोगाभिलाससंजणणो।

मंडणविलासविब्बोय-, हासलीलारमणलिंगो॥१॥

सिंगारो रसो जहा -

महुरविलाससललियं, हियउम्मायणकरं जुवाणाणं।

सामा सद्दुद्दामं, दाएई मेहलादामं॥२॥

शब्दार्थ - **सिंगारो** - श्रृंगार, **रइसंजोगाभिलास-संजणणो** - रति एवं संयोग की अभिलाषा उत्पन्न करने वाला, **मंडण** - आभरण-सज्जा, **विलास** - कामोत्तेजक कटाक्ष आदि की चेष्टायें, **विब्बोय** - विकारोत्पादक दैहिक प्रवृत्तियाँ, **हास** - हास्य, **लीला** - गति या चाल आदि की सुन्दरता, **रमण** - क्रीड़ा, **लिंगो** - चिह्न या लक्षण।

भावार्थ - जो रति-प्रेम और संयोग की अभिलाषा उत्पन्न करता है, जिसमें अलंकरण सज्जा, विलास कामोत्पादक क्रिया कलाप, हास्य, मोहक गति आदि की चेष्टा तथा रमण काम क्रीड़ा का सन्निवेश होता है, वह श्रृंगार रस है॥१,२॥

३. अद्भुत रस

विम्हयकरो अपुव्वो, अणुभूयपुव्वो य जो रसो होइ।

हरिसविसाउप्पत्ति-, लक्खणो अब्भुओ णाम॥१॥

अब्भुओ रसो जहा -

अब्भुयतरमिह एत्तो, अण्णं किं अत्थि जीवलोगम्मि?

जं जिणवयणे अत्था, तिकालजुत्ता मुणिज्जंति॥२॥

शब्दार्थ - **विम्हयकरो** - विस्मयोत्पादक-आश्चर्यजनक, **अपुव्वो** - अपूर्व-जैसा पहले कभी अनुभूत नहीं हुआ, **अणुभूयपुव्वो** - भूतपूर्व-पहले अनुभव में आया हुआ, **हरिसविसा-उप्पत्तिलक्खणो** - हर्ष तथा विषाद-दुःख को उत्पन्न करना जिसका लक्षण है। **अब्भुओ** - अद्भुत, **अब्भुयतरं** - अद्भुततर-अत्यधिक आश्चर्यजनक, **इह** - इस संसार में, **एत्तो** - इससे, **अण्णं** - अन्य या दूसरा, **अत्थि** - है, **जीवलोगम्मि** - जीवलोक में-संसार में,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जिणवयणेण - जिनेन्द्र प्रभु के वचन से, **अत्था** - अर्थ-पदार्थ, **तिकालजुत्ता** - त्रिकालयुक्त-वर्तमान, भूत तथा भविष्य - तीनों कालों से संबंधित, **मुणिज्जंति** - जाने जाते हैं।

भावार्थ - जिसका कभी पहले अनुभव नहीं हुआ है अथवा अनुभव हुआ है, वैसा विस्मय या आश्चर्य जो उत्पन्न करता है, वह अद्भुत रस होता है। वह हर्ष या विषाद उत्पन्न करता है। उसका यह लक्षण है॥१॥

अद्भुत रस का उदाहरण इस प्रकार है - इस जीवलोक में - संसार में इससे अद्भुत-आश्चर्यकारी और क्या है कि जिनेश्वर देव के वचन से तीनों कालों से संबंधित सभी पदार्थों का ज्ञान हो जाता है॥२॥

विवेचन - अद्भुत रस का यहाँ जो उदाहरण दिया गया है, वह धार्मिक या तात्त्विक है। संसार में भिन्न-भिन्न प्रकार के विविध पदार्थ हैं, उन सब को भली-भाँति जान पाना कदापि संभव नहीं है, चाहे कोई कितना ही प्रयास करे किन्तु तीर्थंकर देव की वाणी का यह अद्भुत प्रभाव है कि उस द्वारा सभी पदार्थ जाने जाते हैं क्योंकि वे ज्ञानावरणीय आदि कर्मों के सर्वथा क्षीण होने से सर्वज्ञ, सर्वदर्शी होते हैं।

संसार में भी ऐसे अनेक दृश्य, कार्य दिखलाई पड़ते हैं, जिनकी विचित्र संरचना को देखकर मनुष्य आश्चर्य में पड़ जाता है। कई अद्भुत दृश्य, कार्य या रचनाएँ ऐसी होती है, जो दर्शकों को प्रिय लगती हैं। वे ऐसा आश्चर्य उत्पन्न करती हैं, जिससे मन में हर्ष होता है। कई ऐसे दृश्य, पदार्थ या भाव होते हैं जो मन के प्रतिकूल होते हैं, अप्रिय होते हैं। अतएव वे मन में विषाद या पीड़ा उत्पन्न करते हैं, क्योंकि मानव का यह स्वभाव है कि वह सदा प्रियता या मनोज्ञता को चाहता है, उससे हर्षित, प्रसन्न होता है। वह अप्रियता या प्रतिकूलता को नहीं चाहता। वैसी स्थिति उसके मन के लिए कष्टोत्पादक होती है।

४. रौद्र रस

भयजणणरूवसद्दंधयार-, चिंता कहासमुप्पण्णो।
संमोहसंभमविसाय, मरणलिंगो रसो रोद्दो॥१॥
रोद्दो रसो जहा - भिउडिविडंबियमुहो, संदट्ठोट्ठ इय रुहिरमाकिण्णो।
हणसि पसुं असुरणिभो, भीमरसिय अइरोद्द! रोद्दोऽसि॥२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ - **भयजणण** - भयोत्पादक, **रूवसद्दंधयार-चिंता-कहा** - रूप, शब्द, अंधकार, चिंता एवं कथा, **समुप्पण्णो** - समुत्पन्न, **सम्मोह** - विवेक-वैकल्य-विवेक हीनता, **संभम** - आकुलता-बैचेनी, **विसाय** - विषाद-दुःख, **मरणलिंगो** - मृत्यु लक्षण रूप, **भिउडिविडंबियमुहो**- भृकुटि को उपर चढ़ाकर विकराल मुख युक्त, **संदट्ठोट्ठ** - सदंष्ट-ओष्ठ-ओठों को काटते हुए, **रुहिरमाकिण्णो** - रुधिर या रक्त से व्याप्त, **असुरणिभो** - राक्षस के सदृश, **हणसि** - मारते हो, **भीमरसिय** - भयानक शब्द, **अइरोद्द** - अत्यन्त रौद्र-भीषण रूप युक्त।

भावार्थ - जो भयजनक रूप, शब्द, अंधकार-नैराश्यपूर्ण चिंतन एवं कथन से उत्पन्न होता है तथा जो सम्मोह, संभ्रम, विषाद तथा (मरण भीति रूप) शरण युक्त होता है, वह रौद्र रस है॥१॥

रौद्र रस का उदाहरण इस प्रकार है - ललाट पर भौंहें चढ़ाकर अपने मुख को विकृत बनाते हुए, ओठों को काटते हुए, रुधिर से व्याप्त, भयानक शब्द करते हुए, राक्षस की तरह तुम पशु की हत्या कर रहे हो। तुम अत्यन्त रौद्र-भयानक, साक्षात रौद्र रस हो।

विवेचन - पुप्फभिक्खू एवं संघ द्वारा प्रकाशित मूल सूत्र वाली प्रति में **'मरणलिंगो'** के स्थान पर **'सरणलिंगो'** पाठ भी मिलता है।

यद्यपि **सरणलिंगो** का आशय भी रौद्र रस में घटित तो हो सकता है क्योंकि भयजनक पिशाच आदि के रौद्र रूप को देखकर वैसे शब्द सुन कर एवं अंधकार आदि में भयभीत बना हुआ व्यक्ति भयजनक पिशाच आदि को भगाने में समर्थ ऐसे शक्तिशाली की शरण की इच्छा कर सकता है।

अनुयोग चूर्णि, हारिभद्रीयवृत्ति एवं मल्लधारी वृत्ति तथा श्री जंबूविजय जी संपादित अनुयोगद्वार में **मरणलिंगो** शब्द ही मिलता है। वहां पाठान्तर भी नहीं दिया है। अतः **मरणलिंगो** शब्द ही उचित प्रतीत होता है।

आचार्य भरत ने जिन नौ रसों का उल्लेख किया है, उनमें एक भयानक नामक रस भी है। भय उसका स्थायी भाव है। आगमकार ने उसको पृथक् रस के रूप में नहीं लिया है। रौद्र रस में ही उसका समावेश हो गया है क्योंकि रौद्र रस का स्वरूप भी भीषण या भयोत्पादक है। आचार्य भरत के अनुसार रौद्र रस का स्थायी भाव क्रोध है। क्रोध एक ऐसा भाव है, जिसके कारण व्यक्ति का रूप बहुत विकराल और भीषण हो जाता है। ये देखते हुए रौद्र रस में भयानक रस का अन्तर्भाव बहुत ही संगत प्रतीत होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

५. व्रीडनक रस

विणओवयारगुज्झगुरु-दारमेरावइक्कमुप्पणो।
वेलणओ णाम रसो, लज्जा संकाकरणलिंगो॥१॥
वेलणओ रसो जहा -
किं लोइयकरणीओ, लज्जणीयतरं ति लज्जयामु त्ति।
वारिजम्मि गुरुयणो, परिवंदइ जं बहुप्पोत्तं॥२॥

शब्दार्थ - **विणओवयार** - विनय करने योग्य माता-पिता, गुरुजन आदि के (समक्ष), **गुज्झ** - गुह्य-गोपनीय-छिपाने योग्य, **गुरुदार** - गुरु पत्नी, **मेरावइक्कमुप्पण्णो** - मर्यादा के अतिक्रमण या उल्लंघन से उत्पन्न, **वेलणओ** - व्रीडनक, **लज्जासंकाकरणलिंगो** - लज्जा तथा संकोच लक्षण रूप, **लोइयकरणीओ** - लौकिक करणीय, **लज्जणीयतरं** - अत्यन्त लज्जास्पद, **लज्जयामु** - लज्जायुक्त, **होमो** - होती है, **वारिज्जम्मि** - वर्जनीय, **गुरुयणो** - गुरुजन-सास-ससुर आदि पूज्यजन , **परिवंदइ** - प्रशंसा करते हैं, **जं** - जो, **बहुप्पोत्तं** - वधू का वस्त्र।

भावार्थ - विनय करने योग्य गुरुजनों के गुप्त रहस्य का प्रकाशन या उनके समक्ष अपने गुप्त रहस्य का प्रकटीकरण, गुरुपत्नी आदि के साथ मर्यादा का अतिक्रमण व्रीडनक नामक रस है। लज्जा तथा शंका या संकोच इसकी पहचान है। इसका उदाहरण इस प्रकार है -

एक नव परिणीता वधू कहती है कि सास-ससुर आदि गुरुजन नववधू के सुहागरात के (रक्त रंजित) वस्त्र का, जो वर्जनीय है, प्रदर्शन कर प्रशंसा करते हैं (यह वधू अक्षतयोनि-अकृतसंगमा है) यह लोकव्यवहार अत्यंत लज्जास्पद है। हम नववधुएँ इसे देखकर अत्यन्त लज्जित होती हैं।

विवेचन - व्रीडनकरस क्या होता है? इस तथ्य को समझाने के लिए शास्त्रकार ने एक उदाहरण प्रस्तुत किया है। उदाहरण में शास्त्रकार ने एक देश की कुलाचार परम्परा का उल्लेख किया है। किसी देश में यह कुलाचार है कि कोई युवक विवाह करके नववधू को घर लेकर आता है और प्रथम सुहागरात को अपनी नवविवाहिता पत्नी के साथ सहवास करता है। उस संगम से यदि नवोढ़ा का अधोवस्त्र रक्तरंजित हो जाता है तो उसे देखकर सारे परिवार में प्रसन्नता की लहर दौड़ जाती है। इससे सारे पारिवारिकजन यह समझ लेते हैं कि नववधू सच्चरित्रा है, अकृतसंगमा है, विवाह से पूर्व यह अक्षतयोनि रही है, इसने किसी भी पुरुष से

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समागम न करके स्वयं को सर्वथा पवित्र रखा है। अपनी प्रसन्नता व्यक्त करने के लिए तथा नववधू के सतीत्व को प्रमाणित करने के लिए उसके सास-ससुर आदि पारिवारिक मुखिया लोग उस रक्तरंजित अधोवस्त्र को प्रत्येक घर में ले जाकर दिखाते हैं और उक्त नववधू की प्रशंसा करते हुए नहीं अघाते। अपने कुल की इस परम्परा को देखकर तथा अपने रक्तरंजित अधोवस्त्र की खुलेआम चर्चा सुनकर वह नववधू अत्यन्त लज्जित होती है। लज्जा के मारे वह अपनी आँख जमीन में गढ़ाए रखती है।

प्रस्तुत उदाहरण में नववधू की लज्जाशीलता को व्यक्त करते हुए व्रीडनकरस प्रदर्शित किया गया है। वस्तुतः सहृदय व्यक्ति का मानस अपनी अनाचरणीय प्रवृत्ति के प्रकट होने तथा उसकी सर्वत्र चर्चा फैलने से वह लज्जा के भार से अत्यधिक दब जाता है। उस मनःस्थिति में व्रीडनकरस अपने पूरे यौवन में साकार हो उठता है।

६. बीभत्स रस

असुइकुणिमदुद्दंसण-, संजोगब्भासगंधणिप्फण्णो।
णिव्वेयऽविहिंसालक्खणो, रसो होइ बीभच्छो॥१॥

बीभच्छो रसो जहा -

असुइमलभरियणिज्झर-, सभावदुग्गंधिसव्वकालं पि।
धण्णा उ सरीरकलिं, बहुमलकलुसं विमुंचंति॥२॥

शब्दार्थ - असुइ - अशुचि-मलमूत्र आदि अपवित्र पदार्थ, **कुणिम** - मृत देह-लाश, **दुद्दंसण-संजोगब्भासगंधणिप्फण्णो** - दूषित दर्शन के संयोग तथा दुर्गन्ध से उत्पन्न, **णिव्वेय**-निर्वेद, **अविहिंसा** - हिंसा से बचना, **भरियणिज्झर** - भरे हुए झरने, **सभावदुग्गंधि** - स्वभावतः दुर्गन्ध युक्त, **सव्वकालं** - सब समय, **धण्णा** - धन्य, **सरीरकलिं** - दैहिक कलेवर को, अथवा सर्वकलहमूल शरीर को, **बहुमलकलुसं** - अत्यधिक मल से कलुषित।

भावार्थ - अपवित्र मलमूत्र आदि से युक्त शरीर मृत देह को पुनः-पुनः देखने से, उनसे निकलने वाली दुर्गन्ध से जो उत्पन्न होता है, वह बीभत्स रस है। निर्वेद-भवोद्वेग तथा हिंसा आदि पाप कार्यों से निवृत्त रहने का भाव जो मन में उत्पन्न होता है, वह उसका लक्षण है। इसका उदाहरण इस प्रकार है -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वे महापुरुष धन्य हैं, जो अपवित्र मल से परिपूर्ण निर्झर सदृश सब समय स्वभावतः दुर्गन्ध युक्त कलहमूल अत्यधिक कलुषित देहगत मूर्च्छा, आसक्ति या मोह का त्याग कर देते हैं॥१,२॥

विवेचन - बीभत्स रस का स्थायी भाव घृणा है। जो शरीर बाहर से देखने में अत्यंत सुन्दर, मनोज्ञ प्रतीत होता है, यदि उसके भीतर के स्वरूप का चिन्तन किया जाय तो वह मलमूत्र, मांस, रुधिर, मज्जा आदि घृणित पदार्थों का पुञ्ज है। उसके वैसे रूप का चिन्तन अथवा प्रत्यक्ष दर्शन, मृत देह का दर्शन में अत्यन्त घृणा का भाव उत्पन्न करता है। सहज ही व्यक्ति सोचने लगता है कि ऐसे घृणायोग्य देह के साथ ममत्व के बंधन में बंधे रहना, उस पर अत्यन्त आसक्ति एवं मूर्च्छा रखना उसकी बहुत बड़ी भूल है। ऐसा चिन्तन उसके मन में वैराग्य उत्पन्न करता है, उसे लौकिक पदार्थों के प्रति ग्लानि का भाव उत्पन्न होता है एवं हिंसा आदि परिहेय कार्यों से दूर रहने की भावना उत्पन्न होती है। इस प्रकार वह संसार के सच्चे स्वरूप को समझ कर आत्मोत्थान के पथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा प्राप्त करता है।

७. हास्य रस

रूववयवेसभासा-,विवरीयविलंबणासमुप्पण्णो।
हासो मणप्पहासो, पगासलिंगो रसो होइ॥१॥
हासो रसो जहा-
पासुत्तमसीमंडिय-, पडिबुद्धं देवरं पलोयंती।
ही जह थणभरकंपण-, पणमियमज्झा हसइ सामा॥२॥

शब्दार्थ - **विवरीयविलंबणासमुप्पण्णो** - विपरीतता के आलम्बन से उत्पन्न, **मणप्पहासो** - मानसिक प्रहास, **पगासलिंगो** - मुखादि विकास रूप-अट्टहास आदि, **पासुत्तमसीमंडियपडिबुद्धं** - प्रातः सोकर उठे हुए, काजल की रेखाओं से मंडित मुख युक्त, **देवरं** - देवर (पति का कनिष्ठ भ्राता), **पलोयंती** - प्रलोकयन्ती-देखती हुई, **ही** - आश्चर्य बोधक अव्यय, **जह** - यथा, **थणभरकंपण** - स्तनों के भार से कम्पित, **पणमियमज्झा** - झुके हुए देह के मध्य भाग से युक्त, **सामा** - युवती (श्यामा)।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - गाथाएँ - रूप, अवस्था, वेश, भाषा आदि की विपरीतता एवं विडम्बना से हास्यरस उत्पन्न होता है। उससे अनन्य, असाधारण हर्ष की अनुभूति होती है तथा अट्टहास आदि उसके पहचान चिह्न हैं॥१॥

यथा - प्रातःकाल सोकर उठे देवर को देखकर जिसके मुख पर काजल की काली रेखाएँ थी, षोडशी युवती (भाभी) जिसका मध्य भाग स्तनों के भार से झुका था, ही-ही कर हंस पड़ी॥२॥

८. करुण रस

पियविप्पओगबंध-,वहवाहिविणिवायसंभमुप्पण्णो।
सोइयविलवियपम्हाण-, रुण्णलिंगो रसो करुणो॥१॥

करुणो रसो जहा -

पज्झायकिलामिययं, बाहागयपप्पुयच्छियं बहुसो।
तस्स विओगे पुत्तिय!, दुब्बलयं ते मुहं जायं॥२॥

शब्दार्थ - पियविप्पओग - प्रियजन का विरह, **वह** - वध-मृत्यु, **बाहि** - व्याधि, **विणिवाय** - विनिपात-संकट, **संभमुप्पण्णो** - शत्रु आदि के भय से उत्पन्न, **सोइय** - शोक, **विलविय** - विलाप, **पम्हाण** - प्रम्लान-अत्यधिक म्लानता, **रुण्णलिंगो** - रुदन लक्षण, **पज्झायकिलामिययं** - अत्यन्त चिन्ताग्रस्त एवं क्लान्त, **बाहागयपप्पुयच्छियं** - वाष्पागत प्रप्लुताक्षिकम् - आँसुओं के आने (रोने) से नयन (आँखे) व्याप्त (भरे) रहते हैं, **बहुसो** - अत्यधिक, **दुब्बलयं** - दुर्बल, **जायं** - हो गया है।

भावार्थ - करुण रस का उदाहरण इस प्रकार है -

(किसी विरह पीड़िता स्त्री के प्रति अभिभावक की उक्ति) -

प्रिय का वियोग, बंध, वध, व्याधि, संकटजनित व्याकुलता से जो उत्पन्न होता है, शोक, विलाप, चिन्ता, रुदन जिसका लक्षण है, वह करुण रस है॥१॥

हे पुत्री! अपने प्रियतम के विरह से उसकी बार-बार चिन्ता से क्लांत बने हुए, मुर्झाए हुए तथा पीड़ा के कारण आँखों से झरते हुए आँसुओं को तुम पोंछ रही हो, ऐसा तुम्हारा मुख बहुत दुर्बल हो गया है॥२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

९. प्रशान्त रस

णिद्दोसमणसमाहाण-, संभवो जो पसंतभावेणं।

अविकारलक्खणो सो, रसो पसंतो त्ति णायव्वो॥१॥

पसंतो रसो जहा-

सब्भावणिव्विगारं, उवसंतपसंतसोमदिट्ठीयं।

ही जह मुणिणो सोहइ, मुहकमलं पीवरसिरीयं॥२॥

शब्दार्थ - **णिद्दोसमणसमाहाण** - हिंसा आदि दोषरहित, मनःसमाधि से उत्पन्न, **पसंतभावेणं** - प्रशांत भाव से, **अविकारलक्खणो** - विकार शून्यता रूप लक्षण युक्त, **णायव्वो** - जानने योग्य, **सब्भावणिव्विगारं** - सद्भावजनित निर्विकार, **उवसंतपसंतसोमदिट्ठीयं**- उपशांत-प्रशांत सौम्यदृष्टि युक्त, **ही** - आत्मोल्लासबोधक अव्यय, **सोहइ** - शोभा पाते हैं, **मुहकमलं** - मुख रूपी कमल, **पीवरसिरीयं** - उत्तम-विशिष्ट शोभायुक्त।

भावार्थ - जो हिंसा आदि दोषरहित, मनःसमाधि से उत्पन्न प्रशांत भाव से युक्त होता है तथा विकार-शून्यता जिसका लक्षण है, उसे प्रशांत रस जानना चाहिए॥१॥

प्रशांत रस का उदाहरण इस प्रकार है -

सद्भावयुक्त, विकार रहित प्रशांत भाव से जो उत्पन्न होता है। कितने उल्लास का विषय है, सद्भावयुक्त, विकारशून्य, उपशांत-प्रशांत सौम्यदृष्टिमय, अत्यधिक कांतियुक्त मुनिवर्य का मुखकमल शोभित होता है।

यह कितने आनन्द का विषय है॥२॥

विवेचन - निर्वेद - प्रशांत रस का स्थायीभाव है, जो तितिक्षा, विरक्ति, संयमानुभूति, तीव्रतम मुमुक्षा इत्यादि भावों से परिपुष्ट होकर रस रूप में परिणत होता है। यह उस आध्यात्मिक परमानंद का उद्भावक है, जिसकी साधक, मुनिजन, योगी सदैव आशा लिए रहते हैं। चैतसिक मालिन्य का अपाकरण कर विशुद्ध आत्मभाव का संचार इस रस में समुद्भूत होता है।

सुप्रसिद्ध काव्यशास्त्री अभिनवगुप्त ने 'अभिनव भारती' में शान्त रस को ही एक मात्र मूल रस समुद्घोषित किया है -

स्वं स्वं निमित्तमासाद्य शान्ताद् भावः प्रवर्तते।

पुनर्निमित्तापाये च शान्त एवोपलीयते॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एक मात्र शान्त रस ही ऐसा है, जिसमें अपने-अपने निमित्तों का आश्रय लेकर विभिन्न भाव भिन्न-भिन्न रसों के रूप में परिणत होते हैं। फिर वे उसी में उपलीन हो जाते हैं।

जैनाचार्यों तथा मुनियों द्वारा रचित संस्तवनात्मक साहित्य शान्त रस का अति उत्तम उदाहरण है।

एए णव कव्वरसा, बत्तीसादोसविहिसमुप्पण्णा।
गाहाहिं मुणियव्वा, हवंति सुद्धा वा मीसा वा॥३॥ सेत्तं णवणामे।

शब्दार्थ - **एए** - ये, **कव्वरसा** - काव्यरस, **बत्तीसादोसविहिसमुप्पण्णा** - बत्तीस दोषों के निवारण की विधि से उत्पन्न, **मुणियव्वा** - ज्ञातव्य, **सुद्धा** - शुद्ध, **मीसा** - मिश्र।

भावार्थ - पूर्वोक्त गाथाओं में व्याख्यात नौ रस, बत्तीस काव्य दोष वर्जनपूर्वक विमुक्त होते हुए शुद्ध एवं मिश्र के रूप में दो प्रकार के हैं॥३॥

यह नवनाम का स्वरूप है।

विवेचन - पूर्व प्रसंग में काव्यपुरुष की चर्चा की गई है। जिस प्रकार व्यक्ति में काणत्व, खञ्जत्व, बधिरत्व, पंगुत्व आदि दोष होते हैं, उसी प्रकार काव्यशास्त्रियों ने काव्य में भी दुश्रवत्व, पुनरुक्तत्व, न्यूनपदत्व, अधिकपदत्व, संकीर्णत्व इत्यादि दोष बताये हैं।

जिस प्रकार काणत्व, खञ्जत्व आदि दोषों से विमुक्त पुरुष का व्यक्तित्व उज्ज्वल और प्रभावक होता है, उसी प्रकार दोषशून्य काव्य उत्तम श्रेणी का होता है। यही कारण है कि आचार्य मम्मट ने काव्य की परिभाषा करते हुए लिखा है -

''तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि।''★

यहाँ तद् शब्द काव्य का सूचक है, जिसकी पहली विशेषता दोषरहितता है, जो **''शब्दार्थौ''** के **''अदोषौ''** विशेषण द्वारा प्रकट की गई है।

यहाँ शुद्ध और मिश्र के रूप में रसों के दो प्रकार बतलाए हैं, उसका यह आशय है - जहाँ एक ही रस का प्रयोग हो, उसे शुद्ध तथा जहाँ एक ही स्थान पर एकाधिक रसों का प्रयोग हो, उसे मिश्रित कहा जाता है।

★ काव्य प्रकाश - १, ४।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(१३१)

दस नाम

से किं तं दसणामे?

दसणामे दसविहे पण्णत्ते। तंजहा - गोण्णे १ णोगोण्णे २ आयाणपएणं ३ पडिवक्खपएणं ४ पाहण्णयाए ५ अणाइयसिद्धंतेणं ६ णामेणं ७ अवयवेणं ८ संजोगेणं ९ पमाणेणं १०।

शब्दार्थ - **गोण्णे** - गुणनिष्पन्न, **णोगोण्णे** - गुणविरहित, **पाहण्णयाए** - प्राधान्य निष्पन्न, **अणाइयसिद्धंतेणं** - अनादिसिद्धान्त निष्पन्न।

भावार्थ - दसनाम कितने प्रकार के हैं?

दस नाम दस प्रकार के प्रज्ञापित हुए हैं -

१. गौणनिष्पन्न २. नोगौण निष्पन्न ३. आदानपद निष्पन्न ४. प्रतिपक्षपद निष्पन्न ५. प्राधान्य निष्पन्न ६. अनादिसिद्धांत निष्पन्न ७. नाम निष्पन्न ८. अवयव निष्पन्न ९. संयोग निष्पन्न एवं १०. प्रमाण निष्पन्न।

१. गौणनाम

से किं तं गोण्णे?

गोण्णे-खमइ त्ति खमणो, तवइ त्ति तवणो, जलइ त्ति जलणो, पवइ त्ति पवणो। सेत्तं गोण्णे।

शब्दार्थ - **खमइ** - क्षमा करता है, **तवइ** - तप करता है, **जलइ** - प्रज्वलित होता है, **पवइ** - प्रवाहित होता है।

भावार्थ - गौण नाम का क्या स्वरूप है?

गौण नाम गुणनिष्पन्न होता है - जो क्षमा करता है, वह क्षमण कहलाता है। जो तपता है, वह तपन - सूर्य है। जो प्रज्वलित होता है, वह जलन (अग्नि) है। जो प्रवाहित होती है, उसे पवन कहा जाता है।

विवेचन - भाषा में तीन प्रकार के शब्दों का प्रयोग होता है, जो यौगिक, रूढ और योगरूढ के नाम से विश्रुत हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यौगिक वे होते हैं, जिनका अर्थ उन शब्दों की व्युत्पत्ति के अनुसार लगता है। यहाँ वर्णित गौण नाम यौगिक श्रेणी में आते हैं। ये उन्हीं अर्थों को ज्ञापित करते हैं, जो तद्गत धातु में सन्निहित हैं।

२. नोगौण नाम

से किं तं णोगोण्णे?

अकुंतो सकुंतो, अमुग्गो समुग्गो, अमुद्दो समुद्दो, अलालं पलालं, अकुलिया सकुलिया, णो पलं असइ त्ति पलासो, अमाइवाहए माइवाहए, अबीयवावए बीयवावए, णो इंदगोवए इंदगोवे। सेत्तं णोगोण्णे।

भावार्थ - नोगौण नाम का क्या स्वरूप है?

(जो गुणनिष्पन्न या व्युत्पत्तिप्रसूत अर्थ प्रकट नहीं करता, वह अगौण नाम है।)

कुन्त - इस शब्द का अर्थ भाला है। अकुन्त का अर्थ भाले से रहित है। 'सकुन्त' का अर्थ भाला सहित है। पक्षी कुन्त रहित होते हुए भी सकुन्त कहा जाता है। यह व्युत्पत्ति के विपरीत अर्थ है क्योंकि जिसके पास कुन्त या भाला हो, उसे ही सकुन्त कहा जाना चाहिए।

मुद्ग (मुग्ग) - मुद्ग का अर्थ मूँग है। अमुद्ग (अमुग्ग) का अर्थ मूंग रहित जबकि समुद्ग (समुग्ग) का अर्थ मूँग सहित है। जवाहिरात डालने की डिबिया को समुद्ग कहा जाता है। यहाँ समुद्ग का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ फलित नहीं होता।

मुद्रा (मुद्दा) - मुद्रा का तात्पर्य अंगूठी से है। अमुद्र का अर्थ अंगूठी रहित एवं 'समुद्र' का अर्थ अंगूठी सहित है। फिर भी सागर को समुद्र कहा जाता है।

लाल - 'लाल' का अर्थ मुख की 'लार' है। 'अलाल' का अर्थ लार रहित है। 'पलाल' का अर्थ प्रचुर लार युक्त है। फिर भी एक घास विशेष को 'पलाल' कहा जाता है, जिसमें 'लाल' का किंचिद्मात्र भी सद्भाव नहीं है।

कुलिका (कुलिया) - 'कुलिका' का अर्थ भित्ति या दीवार है। 'अकुलिका' दीवार रहित है। 'सकुलिका' दीवार सहित का बोधक है। फिर भी 'पक्षिणी' की 'सकुलिका' संज्ञा है।

पल - 'पल' का अर्थ 'मांस' है। 'पलं अश्नात्तीति पलाशः' - जो मांस भक्षण करता है, उसे पलाश कहा जाता है किन्तु पलाश वृक्ष विशेष की संज्ञा है, जहाँ मांसाशन (मांसभक्षण) रूप गुण घटित नहीं होता।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मातृवाहक (माइवाहए) - 'मातृवाहक' उसे कहा जाता है जो माता को कंधों पर वहन करे, उठाए। जो वैसा नहीं होता उसे अमातृवाहक (अमाइवाहए) कहा जाता है। किन्तु भाषा में विकलेन्द्रिय (द्वीन्द्रिय) जीव विशेष की मातृवाहक संज्ञा है, जो व्युत्पत्ति लभ्यानुसार माता को कंधों पर वहन नहीं करता।

बीजवपक (बीयवावए) - जो बीज को बोता है, उसे बीजवपक कहा जाता है तथा जो बीज का वपन नहीं करता, वह अबीजवपक (अबीयवावए) है। किन्तु (द्वीन्द्रिय) जीव विशेष को बीजवपक कहा जाता है, जहाँ व्युत्पत्ति की संगति नहीं है।

इन्द्रगोप (इंदगोवए) - इन्द्रगोप का अर्थ इन्द्र की गाय का पालक है। किन्तु वर्षा का लाल रंग का कोमल कीट (त्रीन्द्रिय जीव) विशेष इन्द्रगोप कहा जाता है। यह इन्द्र की गायों का पालक नहीं होता।

यह नोगौण का स्वरूप है।

३. आदानपद निष्पन्न नाम

से किं तं आयाणपएणं?

आयाणपएणं-(धम्मोमंगलं चूलिया) आवंती, चाउरंगिज्जं, असंखयं, अहातत्थिज्जं, अद्दइज्जं, जण्णइज्जं, पुरिसइज्जं (उसुयारिज्जं), एलइज्जं, वीरियं, धम्मो, मग्गो, समोसरणं, जमईयं। सेत्तं आयाणपएणं।

भावार्थ - आदानपद का क्या तात्पर्य है?

आदानपद से आवंती, चातुरंगिज्जं, असंखयं, अहातत्थिज्जं, अद्दइज्जं, जण्णइज्जं, पुरिसइज्जं (उसुकारिज्जं), वीरियं, धम्म, मग्ग, समोसरणं, जमईयं गृहीत है।

विवेचन - आदान का अर्थ ग्रहण करना या लेना है। आगमों के कतिपय अध्ययनों के नामकरण में एक विशेष पद्धति या शैली प्राप्त होती है। किसी भी आगम अध्ययन के प्रारम्भ में जिन पदों का उल्लेख होता है अर्थात् जिनसे वह आगम प्रारम्भ होता है, उन पदों के आधार पर उस अध्ययन का नाम रखा जाना आदान निक्षेप नाम है। इसका अभिप्राय यह है कि उस अध्ययन के महत्त्वपूर्ण विषय का उसके शीर्षक से ही संसूचन हो जाता है, जिससे पाठकों के मन में विशेष जिज्ञासा जागृत होती है। इस सूत्र में दिये गए उदाहरण इसी कोटि के हैं, जिनका अभिप्राय निम्नांकित है -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आवंती - आचारांग सूत्र के पंचम अध्ययन के प्रारम्भ में '**आवंती केयावंती**' पद आया है। तदनुसार इस अध्ययन का नाम आवन्ती रखा गया है।

चातुरंगिज्जं (चाउरंगियं) - उत्तराध्ययन के तीसरे अध्ययन के प्रारम्भ में '**चत्तारि परमंगाणि दुल्लहाणीह जंतुणो**' यह पद है। इसके आधार पर इसका नाम '**चाउरंगियं**' रखा गया है।

असंखयं - उत्तराध्ययन सूत्र के चौथे अध्ययन के आदि में प्रयुक्त '**असंखयं जीवियं मा पमायए**' - इस गाथा पद के अनुसार इस अध्ययन का नाम '**असंखयं**' है।

अहातत्थिज्जं - सूत्रकृतांग सूत्र (प्रथम श्रुतस्कन्ध) के तेरहवें अध्ययन का नाम उसकी प्रथम गाथा '**अहातत्थिज्जं**' के आधार पर किया गया है।

अद्दइज्जं - सूत्रकृतांग सूत्र के द्वितीय श्रुतस्कन्ध के छठे अध्ययन का नामकरण उसकी पहली गाथा - '**पुराकडं अद्दइज्जं सुणेह**' - के आधार पर हुआ है।

जण्णइज्जं - उत्तराध्ययन सूत्र के पच्चीसवें अध्ययन के प्रारम्भ की गाथा में आए '**जण्ण**' पद के आधार पर यह नाम रखा गया है -

माहणकुलसंभूओ आसि विप्पो महायसो।
जायई जम जण्णंमि जयघोसो त्ति नामओ॥

उसुकारिज्जं - उत्तराध्ययन सूत्र के चौदहवें अध्ययन की पहली गाथा में आए हुए '**उसुयार**' पद के आधार पर यह नाम रखा गया है।

एलइज्जं - उत्तराध्ययन सूत्र के सातवें अध्ययन के प्रारम्भ में आए '**एलयं**' पद के आधार पर इस अध्ययन का यह नाम रखा गया है।

वीरियं - सूत्रकृतांग सूत्र के अष्टम अध्ययन का नाम इसकी पहली गाथा में आए '**वीरियं**' पद के अनुसार है।

धम्म - यह नाम सूत्रकृतांग सूत्र (प्रथम श्रुतस्कन्ध) के नवम् अध्ययन की पहली गाथानुसार है।

मग्ग - सूत्रकृतांग सूत्र (प्रथम श्रुतस्कन्ध) के ग्यारहवें अध्ययन की प्रथम गाथानुसार इस अध्यन का नाम '**मग्गज्झयणं**' रखा है।

समोसरणं - सूत्रकृतांग सूत्र (प्रथम श्रुतस्कन्ध) के बारहवें अध्ययन की प्रथम गाथा में आए '**समोसरणाणिमाणि**' पद के आधार पर रखा गया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जमईयं - सूत्रकृतांग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध के पन्द्रहवें अध्ययन की प्रथम गाथा में आए 'जमईयं' पद के आधार पर इस अध्ययन का यह नाम रखा गया है।

४. प्रतिपक्षपद निष्पन्न नाम

से किं तं पडिवक्खपएणं?

पडिवक्खपएणं - णवसु गामागर-णगर-खेडकब्बड-मडंब-दोणमुह-पट्टणासम-संवाह- सण्णिवेसेसु सण्णिविस्समाणेसु - असिवा सिवा, अग्गी सीयलो, विसं महुरं, कल्लालघरेसु अंबिलं साउयं, जे लत्तए से अलत्तए, जे लाउए से अलाउए, जे सुंभए से कुसुंभए, आलवंते विवलीयभासए। सेत्तं पडिवक्खपएणं।

शब्दार्थ - **पडिवक्खपएणं** - प्रतिपक्ष पद द्वारा, **णवसु** - नवीनों में, **गाम** - ग्राम, **सण्णिविस्समाणेसु** - बसाए जाने पर, **असिवा** - अशुभकारिणी, **सिवा** - श्रृगाली (गीदड़ी), **अग्गी** - अग्नि, **सीयलो** - शीतल, **विसं** - जहर, **महुरं** - मधुर, **कल्लालघरेसु** - मदिरा विक्रेता के घरों में, **अंबिलं** - अम्ल, **साउयं** - स्वादिष्ट, **जे** - जो, **लत्तए** - रक्त वर्ण युक्त, **अलत्तए** - अलक्तक - महावर रचना, **लाउए** - लाबू - पात्र, **अलाउए** - तूंबिका का पत्र, **सुंभए** - शुभ वर्ण युक्त, **कुसुंभए** - कुसुमल संज्ञक वस्त्र, **आलवंते** - आलापकारी - बोलने वाला, **विवलीयभासए** - विपरीत भाषी।

भावार्थ - प्रतिपक्षपद निष्पन्न नाम का क्या अभिप्राय है?

प्रतिपक्ष पद का आशय इस प्रकार है -

नए ग्राम, आकार, नगर, खेट, कर्बट, मडंब, द्रोणमुख, पट्टन, आश्रम, संवाह, सन्निवेश, बसाए जाने पर गीदड़ी जो अशुभ सूचक है, (उसके लिए) शिवा (कल्याणकारिणी) के नाम से अभिहित है। अग्नि जो उष्ण है, उसे शीतल, विष को मधुर, कलाल-मदिरा विक्रेता के घर में स्थित खट्टी खराब को स्वादिष्ट लक्त-रक्त या लाल रंग के महावर को अलक्तक (अरक्तक), पात्र को अपात्र (तूंबिका पात्र विशेष होते हुए भी अलावू-अपात्र), शुंभक - गहरे लाल वस्त्र को कुसुंभक (लाल वर्ण रहित) कहना, आलापक - बोलने वाले को विपरीत भाषक - उल्टा बोलने वाला कहा जाता है।

यह प्रतिपक्षपद निष्पन्न नाम है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - प्रतिपक्षपद निष्पन्न नाम के अन्तर्गत उन शब्दों का उल्लेख है, जो अपने अर्थ के अनुरूप भाव व्यक्त करने में अक्षम किन्तु लोकव्यवहार में अशुभवर्जन की दृष्टि से उन्हें वैसा स्वीकार किया जाता है।

जैसे - श्रृंगाली का शब्दकोश में शिवा का अर्थ शुभकारिणी है। किन्तु व्यवहार में गीदड़ी को लोकव्यवहार में, मांगलिक कार्यों में अशुभ माना जाता है। यथा - जब नये ग्राम, नगर आदि बसाए जाते हैं तब यदि गीदड़ी दिखाई दे तो अशुभ होते हुए भी अशुभ दोष वर्जन हेतु उसे शिवा कहा जाता है।

इसी प्रकार लक्तक (रक्तक) को अलक्तक कहा जाता है। **'रलयोर्साम्यम्'** - र और ल की समानता से अलक्तक - अरक्तक का सूचक है। रक्त अशुचि द्योतक है। इस निवारण हेतु लाल महावर को अरक्तक कहा जाता है।

इसी प्रकार अन्य शब्दों के साथ भी प्रतिपक्ष पद निष्पन्नता का भाव संगति लिए हुए हैं।

नोगौणपदनिष्पन्न से इसे पृथक् मानने का कारण यह है कि नोगौणपद में तो नामकरण का कारण कुन्तादि के प्रवृत्ति निमित्त का अभाव है। जबकि इसमें प्रतिपक्ष धर्म वाचक शब्द मुख्य है।

५. प्रधानपद निष्पन्न नाम

से किं तं पाहण्णयाए?

पाहण्णयाए असोगवणे, सत्तवण्णवणे, चंपगवणे, चूयवणे, णागवणे, पुण्णागवणे, उच्छुवणे, दक्खवणे, सालिवणे। संत्तं पाहण्णयाए।

शब्दार्थ - **असोगवणे** - अशोक वन, **सत्तवण्णवणे** - सप्तपर्ण वन, **उच्छुवणे** - गन्ने का वन।

भावार्थ - प्रधानपद का क्या स्वरूप है?

अशोकवन, सप्तपर्णवन, चंपकवन, आम्रवन, नागवन, पुन्नागवन, इक्षुवन, द्राक्षावन, सालवन - ये प्रधानपद नाम सूचक हैं।

यह प्रधान पद का विवेचन है।

विवेचन - इस सूत्र में आए हुए शब्द विभिन्न वृक्षों के वनों या उपवनों के सूचक हैं। जिस उपवन में अशोक के वृक्ष बहुलता प्रधानता से हों तथा अन्य जातीय वृक्ष कम हों, बाहुल्य की दृष्टि से उसे 'अशोक वन' कहा जाता है।

यही तथ्य सूत्र में वर्णित अन्य उदाहरणों में लागू होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

६. अनादि सिद्धांत निष्पन्न नाम

से किं तं अणाइयसिद्धंतेणं?

अणाइयसिद्धंतेणं-धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, आगासत्थिकाए, जीवत्थिकाए, पुग्गलत्थिकाए, अद्धासमए। सेत्तं अणाइयसिद्धंतेणं।

भावार्थ - अनादि सिद्धांत नाम कैसा है?

धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्‌गलास्तिकाय और काल- ये अनादि सिद्धांत निष्पन्न नाम हैं।

यह अनादि सिद्धांत निष्पन्न नाम का स्वरूप है।

विवेचन - **'सिद्धः अन्तः यस्य सः सिद्धान्तः'** - जिसका परिणाम सिद्ध, सर्वथा प्रमाणित, सुनिश्चित है, उसे सिद्धान्त कहा जाता है। अनादि का अर्थ आदि रहित है। जो शब्द जिन अर्थों में अनादिकाल से सिद्ध हैं, अनादिसिद्धांतनाम हैं। उनका वाच्य-वाचक भाव अनादिकाल से उसी रूप में सुप्रमाणित है।

गौणनाम से इस अनादिसिद्धान्तनाम में यह अन्तर है कि गौणनाम का अभिधेय तो अपने स्वरूप का परित्याग भी कर देता है। जबकि अनादि सिद्धान्त नाम न कभी बदला है, न बदलेगा। वह सदैव रहता है, इसलिए सूत्रकार ने इसका पृथक् निर्देश किया है।

७. नामनिष्पन्न नाम

से किं तं णामेणं?

णामेणं - पिउपियामहस्स णामेणं उण्णामिज्ज(ए)इ। सेत्तं णामेणं।

शब्दार्थ - पिउपियामहस्स - पिता और पितामह के, **उण्णामिज्जइ** - अनुरूप नाम युक्त।

भावार्थ - नाम का क्या स्वरूप है?

पिता तथा पितामह के नाम से उन्नामित - निष्पन्न नाम नामनिष्पन्न नाम है।

विवेचन - पिता या पितामह आदि विशिष्ट पूर्व पुरुषों के नाम से भी नाम निष्पन्न होते हैं। उन्हें व्याकरण में 'अपत्य वाचक' कहा गया है। अपत्य का अर्थ पुत्र-पौत्रादि संतति है।

जैसे - **'दशरथस्य पुत्रः - दाशरथी'** - दशरथ के पुत्र को दाशरथी कहा जाता है। **'वशिष्ठस्य पुत्रं पुमान् वाशिष्ठः'** - वशिष्ठ के पुत्र (संतति) वाशिष्ठ, जमदग्नि के वंशज

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जामदग्न्यः (श्री परशुराम), पाण्डु के पुत्र पाण्डव कहलाए। ये ऐसे नाम हैं, जिनका संबंध अपने पूर्वजों से हैं। ये नामनिष्पन्न नामों के उदाहरण हैं।

अथवा पिता, पितामह आदि के नामों में कुछ फर्क करके संतान आदि का नाम दिया जाता है। जैसे - बल नाम वाले व्यक्ति के पुत्र का नाम महाबल, शतबल आदि होना नामनिष्पन्न नाम है।

८. अवयवनिष्पन्न नाम

से किं तं अवयवेणं?

अवयवेणं -

सिंगी सिही विसाणी, दाढी पक्खी खुरी णही वाली।
दुपय चउप्पय बहुप्पय, णंगुली केसरी कउही॥१॥
परियरबंधेण भडं, जाणिज्जा महिलियं णिवसणेणं।
सित्थेण दोणवायं, कविं च एक्काए गाहाए॥२॥

सेत्तं अवयवेणं।

शब्दार्थ - सिंगी - सींग युक्त, **सिही** - शिखी - मस्तक पर कलंगी युक्त, **विसाणी**- विषाणी - सींग वाला, **दाढी** - दाढ़ (जबड़े) वाला, **पक्खी** - पाँखों वाला, **खुरी** - खुर वाला, **णही** - नखों वाला, **णंगुली** - पूंछ वाला, **केसरी** - गले पर अयाल (बालों) वाला, **कउही** - थूही वाला, **परियर-बंधेण** - कमरबंध से, **भडं** - योद्धा को, **जाणिज्जा** - जानना चाहिए, **महिलियं** - स्त्री को, **णिवसणेणं** - वस्त्रों द्वारा, **सित्थेण** - कण द्वारा, **दोणवायं** - द्रोणपाकं - माप विशेष।

भावार्थ - अवयवनिष्पन्न नाम का क्या अभिप्राय है?

जो अवयव - शरीर के भाग या अंग विशेष के आधार पर नाम दिया जाता है, वह अवयव निष्पन्न है।

गाथाएं - जिस पशु के श्रृंग होते हैं, उसे श्रृंगी, शिखा होती है उसे शिखी (पुनश्च) विषाण युक्त को विषाणी, विशेष प्रकार की तीव्र द्रंष्ट्रायुक्त को दंष्ट्री (दाढ़ी), पंख, खुर, नख तथा बाल के आधार पर क्रमशः पक्षी, खुरी, नखी तथा बाली नाम होते हैं। दो पैरों, चार पैरों एवं बहुत से पैरों के आधार पर क्रमशः द्विपद, चतुष्पद एवं बहुपद नाम होता है। लांगूल केशर एवं ककुद के आधार पर क्रमशः लांगूली, केशरी एवं ककुदी संज्ञाएं हैं॥१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कमरबंध से योद्धा की, वस्त्रों से महिला की, कणभर से द्रोण परिमित पाक की तथा एक गाथा या श्लोक से कवि की पहचान होती है॥२॥

विवेचन - अवयव का अर्थ शरीर का अंग या अंश विशेष है। किसी मनुष्य, पशु, पदार्थ आदि का नाम किसी विशेष अंग या अंश के आधार पर किया जाता है, उसे अवयव निष्पन्न कहा जाता है। किसी प्राणी के और भी अनेक सामान्य अंग होते हैं किन्तु उसके किसी विशेष अंग का जो औरों के नहीं होता, आधार लेकर यह नाम निष्पत्ति होती है।

'श्रृंगे यस्य स्थः सः श्रृंगी', 'शिखा यस्य अस्ति सः शिखी', 'विषाणे यस्य स्थः सः विषाणी' इत्यादि के रूप में इनकी व्युत्पत्तियाँ ज्ञातव्य हैं। समर भूमि में जाने को उद्यत योद्धा स्फूर्ति हेतु कमर में वस्त्र बांधता है, उसे परिकर (कवच) बंध कहा जाता है। उससे युक्त व्यक्ति को देखते ही यह अनुमित होता है कि यह अवश्य ही योद्धा है। यद्यपि उसने और भी वस्त्र धारण कर रखे हैं किन्तु परिकर बंध युद्धापेक्षित वैशिष्ट्य का द्योतक है।

द्रोण-परिमित पाक का उल्लेख आया है, वह प्राचीन माप विशेष का परिचायक है। प्राचीन भारत में मागध मान, कलिंग मान के रूप में दो तौलमाप की प्रणालियाँ प्रचलित थीं। द्रोण मागधमान के अन्तर्गत एक परिमाण विशेष था। मागधमान का उत्तर भारत में अधिक प्रचलन था क्योंकि प्राचीनकाल में मगध का महत्त्वपूर्ण स्थान था। उत्तर भारत की केन्द्रीय सत्ता मगध से संचालित होती थी।

भाव प्रकाश में मागधमान का विस्तार से वर्णन हुआ है -

तीस परमाणुओं का एक त्रसरेणु होता है। उसे वंशी भी कहा जाता है। जाली में पड़ती हुई सूर्य की किरणों में जो छोटे-छोटे सूक्ष्म रजकण दिखाई देते हैं, उनमें से प्रत्येक की संख्या त्रसरेणु या वंशी है। छह त्रसरेणु की एक मरीचि होती है। छह मरीचि की एक राजिका या राई होती है। तीन राई का एक सरसों, आठ सरसों का एक जौ, चार जौ की एक रत्ती, छह रत्ती का एक मासा होता है। मासे के पर्यायवाची हेम और धानक भी हैं। चार मासे का एक शाण होता है, धरण और टंक इसके पर्यायवाची हैं। दो शाण का एक कोल होता है। उसे क्षुद्रक, वटक एवं द्रङ्क्षण भी कहा जाता है। दो कोल का एक कर्ष होता है। पाणिमानिका, अक्ष, पिचु पाणितल, किंचित्पाणि, तिन्दुक, विडाल-पदक, षोडशिका, करमध्य, हंसपद, सुवर्ण, कवलग्रह तथा उदुम्बर इसके पर्यायवाची हैं। दो कर्ष का एक अर्धपल (आधा पल) होता है। उसे शुक्ति या अष्टमिक भी कहा जाता है। दो शुक्ति का एक पल होता है। मुष्टि, आम्र, चतुर्थिका

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रकुंच, षोडशी तथा बिल्व भी इसके नाम हैं। दो पल की एक प्रसृति होती है, उसे प्रसृत भी कहा जाता है। दो प्रसृतियों की एक अंजलि होती है। कुडव, अर्ध शरावक तथा अष्टमान भी उसे कहा जाता है। दो कुडव की एक मानिका होती है। उसे शराव तथा अष्टपल भी कहा जाता है। दो शराव का एक प्रस्थ होता है अर्थात् प्रस्थ में ६४ (चौसट्ठ) तोले होते हैं। पहले ६४ तोले का ही सेर माना जाता था, इसलिए प्रस्थ को सेर का पर्यायवाची माना जाता है। चार प्रस्थ का एक आढक होता है, उसको भाजन, कांस्यपात्र तथा चौसठ पल का होने से चतुःषष्टिपल भी कहा जाता है★।

★ चरकस्य मतं वैद्यैराद्यैर्यस्मान्मतं ततः।
विहाय सर्वमानानि मागधं मानमुच्यते॥
त्रसरेणुर्बुधैः प्रोक्तस्त्रिंशता परमाणुभिः।
त्रसरेणुस्तु पर्यायनाम्ना वंशी निगद्यते॥
जालान्तरगतैः सूर्यकरैर्वंशी विलोक्यते।
षड्वंशीभिर्मरीचिः स्यात्ताभिः षड्भिश्च राजिका॥
तिसृभी राजिकाभिश्च सर्षपः प्रोच्यते बुधैः।
यवोऽष्टसर्षपैः प्रोक्तो गुञ्जा स्यात्तच्चतुष्टयम्॥
षड्भिस्तु रक्तिकाभिः स्यान्माषको हेमधानकौ।
माषैश्चतुर्भिः शाणः स्याद्धरणः स निगद्यते॥
टङ्कः स एव कथितस्तद्द्वयं कोल उच्यते।
क्षुद्रको वटकश्चैव द्रङ्क्षणः स निगद्यते॥
शरावाभ्यां भवेत्प्रस्थश्चतुः प्रस्थस्तथाऽऽढकः।
भाजनं कांस्यपात्रं च चतुः षष्टिपलश्च सः॥
कोलद्वयन्तु कर्षः स्यात्स प्रोक्तः पाणिमानिका।
अक्षः पिचुः पाणितलं किञ्चित्पाणिश्च तिन्दुकम्॥
विडालपदकं चैव तथा षोडशिका मता।
करमध्यो हंसपदं सुवर्णं कवलग्रहः॥
उदुम्बरञ्च पर्यायैः कर्षमेव निगद्यते।
स्यात्कर्षाभ्यामर्द्ध पलं शुक्तिरष्टमिका तथा॥
शुक्तिभ्याञ्च पलं ज्ञेयं मुष्टिराम्रं चतुर्थिका।
प्रकुञ्चः षोडशी बिल्वं पलमेवात्र कीर्त्यते॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावप्रकाश में आगे बताया गया है कि चार आढक का एक द्रोण होता है। उसको कलश, नल्वण, अर्मण, उन्मान, घट तथा राशि भी कहा जाता है। दो द्रोण का एक शूर्प होता है, उसको कुंभ भी कहा जाता है तथा ६४ (चौसठ) शराव का होने से चतुःषष्टि शरावक भी कहा जाता है*।

अवयवनिष्पन्न और गौणनिष्पन्न नाम में अन्तर - अवयवनिष्पन्ननाम में श्रृंग आदि शरीरावयव या अंग-प्रत्यंग विशेष नाम के आधार हैं, जबकि गौणनिष्पन्ननाम में गुणों की प्रधानता होती है। इसलिये अवयवनाम और गौणनाम पृथक्-पृथक् माने गये हैं।

६. संयोगनिष्पन्न नाम

से किं तं संजोएणं?

संजोगे चउव्विहे पण्णत्ते। तंजहा - दव्वसंजोगे १ खेत्तसंजोगे २ कालसंजोगे ३ भावसंजोगे ४।

भावार्थ - संयोग के कितने प्रकार हैं?

संयोग चार प्रकार का बतलाया गया है, जो इस प्रकार हैं -

१. द्रव्य संयोग २. क्षेत्र संयोग ३. काल संयोग ४. भाव संयोग।

१. द्रव्य संयोग निष्पन्न नाम

से किं तं दव्वसंजोगे?

पलाभ्यां प्रसृतिर्ज्ञेया प्रसृतञ्च निगद्यते।
प्रसृतिभ्यामञ्जलिः स्यात्कुडवोऽर्द्ध शरावकः॥
अष्टमानञ्च स ज्ञेयः कुडवाभ्याञ्च मानिका।
शरावोऽष्टपलं तद्वज्ज्ञेयमत्र विचक्षणैः॥
(भावप्रकाश, पूर्व खण्ड, द्वितीय भाग, मानपरिभाषा प्रकरण - २-४।)

* चतुर्भिराढकैर्द्रोणः कलशो नल्वणोऽर्मणः।
उन्मानञ्च घटो राशिर्द्रोणपर्यायसंज्ञितः॥
शूर्पाभ्याञ्च भवेद् द्रोणी वाहो गोणी च सा स्मृता।
द्रोणाभ्यां शूर्पकुम्भौ च चतुःषष्टिश वारकः॥
(भावप्रकाश, पूर्व खण्ड, द्वितीय भाग, मानपरिभाषा प्रकरण - १५,१६)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दव्वसंजोगे तिविहे पण्णत्ते। जहा - सचित्ते १ अचित्ते २ मीसए ३।

भावार्थ - द्रव्य संयोग कितने प्रकार का है?

द्रव्यसंयोग तीन प्रकार का बतलाया गया है, जो इस प्रकार है -

१. सचित्त २. अचित्त तथा ३. मिश्र।

से किं तं सचित्ते?

सचित्ते-गोहिं गोमिए, महिसीहिं महिसए, ऊरणीहिं उरणीए, उट्टीहिं उट्टीवाले। सेत्तं सचित्ते।

शब्दार्थ - **गोहिं** - गायों के, **गोमिए** - गौमान्, **महिसीहिं** - महिषियों के-भैंसों के, **महिसिए** - महिषीवान्, **ऊरणीहिं** - भेड़ों के, **उरणिए** - भेड़ों वाला, **उट्टीहिं** - उष्ट्रियों के-ऊंटनियों के, **उट्टीवाले** - उष्ट्रीपाल।

भावार्थ - सचित्त संयोग का क्या स्वरूप है?

सचित्त संयोग इस प्रकार हैं - गायों के संयोग से गोमान्, महिषियों के संयोग से महिषीमान्, भेड़ों के संयोग से भेड़ों वाला तथा ऊँटनियों के संयोग से उष्ट्रीपाल - ये सचित्त संयोग के उदाहरण हैं।

विवेचन - इस सूत्र में जो संयोग निष्पन्न नाम के उदाहरण दिए गए हैं, उनका संबंध स्वामित्व-विषयक संयोग से हैं।

'गावो यस्य सन्ति, स गोमान् गोवान् वा' - जिसके गायें होती हैं, जो गायें रखता है, गायों का मालिक है, उसे गोमान् कहा जाता है। महिषीमान् आदि उदाहरण इसी प्रकार के हैं। जो ऊँटनियों का पालन करता है, ऊँटनियाँ रखता है, वह उष्ट्रीपाल कहा जाता है।

संयोगनिष्पन्न नाम में व्यक्ति का नाम संबंधित सचित्त, चेतनावान् पदार्थों या प्राणियों के नाम के आधार पर होता है।

से किं तं अचित्ते?

अचित्ते-छत्तेणं छत्ती, दंडेणं दंडी, पडेणं पडी, घडेणं घडी, कडेणं कडी। सेत्तं अचित्ते।

शब्दार्थ - **छत्तेणं** - छत्र - छाते द्वारा, **छत्ती** - छत्रवान्, **दंडेणं** - दण्ड द्वारा, **दंडी** - दण्डवान्, **पडेणं** - पट-वस्त्र द्वारा, **पडी** - पटी-पटवान्, **घडेणं** - घट या घड़े द्वारा, **घडी** - घटी या घटवान्, **कडेणं** - कट (चटाई) द्वारा, **कडी** - कटी या कटवान्।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - अचित्तसंयोगनिष्पन्न नाम का क्या स्वरूप है?

अचित्त संयोग निष्पन्न नाम इस प्रकार है -

जिसके पास छत्र होता है उसे छत्री, जिसके पास दण्ड होता है-वह दण्डी, पट होता है-वह पटी, घट होता है वह घटी तथा कट होता है वह कटी कहलाता है।

ये अचित्त संयोग निष्पन्न नाम हैं।

विवेचन - यहाँ उदाहरण के रूप में - छत्र, दण्ड, पट, घट और कट का प्रयोग हुआ है। ये अचित्त या निर्जीव पदार्थ हैं। जिनके पास ये होते हैं, उनके इन-इन के आधार पर नाम पड़ जाते हैं, इसीलिए इन्हें अचित्त संयोग निष्पन्न नाम कहा गया है।

से किं तं मीसए?

मीसए - हलेणं हालिए, सगडेणं सागडिए, रहेणं रहिए, णावाए णाविए। सेत्तं मीसए। सेत्तं दव्वसंजोगे।

शब्दार्थ - **हलेणं** - हल द्वारा, **हालिए** - हालिक-हल वाला, **सकडेणं** - शकट-गाड़ी द्वारा, **साकडिए** - शाकटिक-गाड़ीवान्, **रहेणं** - रथ द्वारा, **रहिए** - रथिक-रथ वाला, **णावाए**-नाव या नौका से, **णाविए** - नाविक-नाव वाला।

भावार्थ - मिश्रद्रव्य-संयोगनिष्पन्न नाम का क्या स्वरूप है?

मिश्रद्रव्य-संयोगनिष्पन्न नाम इस प्रकार है -

हल, शकट, रथ तथा नाव के संयोग से क्रमशः हालिक, शाकटिक, रथिक और नाविक नाम होते हैं।

विवेचन - इस नाम को मिश्र इसलिए कहा गया है कि इसमें सचित्त-सजीव तथा अचित्त-अजीव - दोनों का मिश्रित या सम्मिलित रूप प्राप्त होता है। उदाहरण में हल से हालिक तथा शकट से शाकटिक आदि जो उदाहरण दिये गये हैं, वे हल और हल चलाने वाले - हल जोतने वाले मनुष्य से तथा शकट या गाड़ी चलाने वाले मनुष्य से संबंधित हैं। उनमें क्रमशः हल और गाड़ी आदि अचित्त या अजीव हैं तथा उन्हें जोतने वाले या चलाने वाले मनुष्य सचित्त या सजीव हैं। इस प्रकार हालिक शब्द सजीव और अजीव के मिश्रण से बनता है, उसी प्रकार शाकटिक, रथिक, नाविक आदि हैं। उनमें शकट, रथ और नाव अचित्त या अजीव हैं तथा उनके प्रयोक्ता सचित्त या सजीव हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्षेत्रसंयोग निष्पन्न नाम

से किं तं खेत्तसंजोगे?

खेत्तसंजोगे-भारहे, एरवए, हेमवए, एरण्णवए, हरिवासए, रम्मगवासए, पुव्वविदेहए, अवरविदेहए देवकुरुए, उत्तरकुरुए। अहवा - मागहे, मालवए, सोरट्ठए, मरहट्ठए, कुंकणए। सेत्तं खेत्तसंजोगे।

भावार्थ - क्षेत्रसंयोगनिष्पन्ननाम का क्या स्वरूप है?

क्षेत्रसंयोगजनित नाम इस प्रकार हैं - भरत क्षेत्र में निवास करने वाला - भारतीय, उसी प्रकार ऐरावतीय, हैमवतीय, ऐरण्यवतीय, हरिवर्षीय, रम्यकवर्षीय, पूर्ववैदेहीय, अपरवैदेहीय, देवकौरवीय, उत्तरकौरवीय अथवा मागधीय, मालवीय, स्वराष्ट्रीय, महाराष्ट्रीय, कोंकणीय, कौशलीय आदि हैं।

यह क्षेत्र संयोग का विवेचन है।

विवेचन - प्राचीनकाल से ही भाषा की दृष्टि से व्यक्ति के पहचान की एक विशेष पद्धति रही है। जिस क्षेत्र में निवास करने वाला जो व्यक्ति हो, उसकी उस क्षेत्र के नाम से पहचान की जाती रही है। इसीलिए व्याकरण में '**भारते भवः**' - भारतीय, **मालवे भवः** - मालवीय, **स्वराष्ट्रीय भवः** - स्वराष्ट्रीय, **महाराष्ट्रे भवः** - महाराष्ट्रीय इत्यादि तद्धित प्रत्ययान्तर्वर्ती रूप बनते हैं।

कालसंयोग निष्पन्न नाम

से किं तं कालसंजोगे?

कालसंजोगे - सुसमसुसमाए १ सुसमाए २ सुसमदूसमाए ३ दूसमसुसमाए ४ दूसमाए ५ दूसमदूसमाए ६। अहवा - पावसए १ वासारत्तए २ सरदए ३ हेमंतए ४ वसंतए ५ गिम्हए ६। सेत्तं कालसंजोगे।

शब्दार्थ - **पावसए** - पावस काल में-वर्षा काल में, **वासारत्तए** - वर्षा ऋत्विक-वर्षा ऋतु में उत्पन्न, **सरदए** - शारदिक-शरद ऋतु में उत्पन्न, **हेमंतए** - हैमंतिक-हेमंत ऋतु में उत्पन्न, **गिम्हए** - ग्रैष्मिक-ग्रीष्म ऋतु में उत्पन्न।

भावार्थ - कालसंयोग निष्पन्न नाम का क्या स्वरूप है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कालसंयोग से निष्पन्न होने वाले नाम इस प्रकार हैं - सुषम-सुषमा काल में उत्पन्न होने से सुषम-सौषमिक नाम होता है। उसी प्रकार उत्तरोत्तर कालानुरूप-सौषमिक, सुषम-दौषमिक, दुषम-सौषमिक, दौषमिक, दुषम-दौषमिक नाम होते हैं। अथवा वर्षाकाल में जो उत्पन्न होता है, वह वर्षा ऋत्विक, उसी प्रकार क्रमशः शरद, हेमन्त, वसन्त और ग्रीष्म ऋतु में उत्पन्न होने से शारदिक, हैमन्तिक, वासंतिक और ग्रैष्मिक नाम होते हैं।

यह कालसंयोग का स्वरूप है।

विवेचन - इस सूत्र में उन नामों की चर्चा हैं, जिनका संबध कालसंयोग के साथ है।

जैनधर्म सम्मत मध्यलोक के अन्तर्गत भरत एवं ऐरावत क्षेत्रों में कालचक्र की परिगणना की गई है। इस कालचक्र के अवसर्पिणी एवं उत्सर्पिणी के रूप में दो विभाग हैं।

दो सर्पिणियाँ एक दूसरे से वृत्ताकार रूप में जुड़ी हुई हैं। एक सर्पिणी की पूंछ से दूसरी सर्पिणी का मुख संयोजित किया गया है। इसी कल्पित अवधारणा के आधार पर यहाँ सर्पिणी शब्द प्रयुक्त हुये हैं।

यह कालचक्र अनादि-अनन्त है। अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी दोनों का कालमान १०-१० कोटा-कोटि सागरोपम है। कालचक्र के ये दोनों अवसर्पिणी एवं उत्सर्पिणी भेद क्रमशः या एकांतर रूप से वर्तित होते हैं। जैन धर्म में सूर्य, चन्द्र आदि ज्योतिष्क विमान कालगणना के आधार हैं। काल का सूक्ष्मतम अंश, जिसका पुनः विभाजन न हो सके 'समय' कहलाता है। असंख्यात समयों की एक 'आवलिका' होती है। १, ६७, ७७, २१६ आवलिकाओं का एक मुहूर्त होता है। एक मुहूर्त में दो घटिकाएँ होती हैं। २४ मिनट की एक घड़ी तथा ४८ मिनट का एक मुहूर्त्त माना जाता है।

अतः ६० घड़ी का एक दिन-रात (२४ घण्टे), १५ दिन-रात का एक पक्ष, दो पक्ष का एक मास, १२ मास का एक वर्ष होता है। जो काल गणना में आ सके, वह संख्येय तथा जो काल गणना में न आकर केवल उपमान से जाना जाता है, वह अपरिमेय, असंख्येय कहलाता है, जैसे - पल्योपम, सागरोपम आदि।

दोनों के चक्र के समान वर्तनशील होने से इसकी कालचक्र संज्ञा है। दोनों में ही ६-६ आरक होते हैं तथा ह्रास और विकास के रूप में परस्पर भिन्नता है।

एक अवसर्पिणी तथा एक उत्सर्पिणी के योग से एक कालचक्र पूर्ण होता है। इन दोनों का

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कालमान बीस कोड़ा-कोड़ी सागरोपम है। कालचक्र के कुल बारह आरक होते हैं। इस प्रकार अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी में ६-६ आरक होते हैं। इनका वर्णन निम्नांकित है -

१. **सुषम-सुषम** - इस प्रथम आरे में मनुष्य के शरीर की अवगाहना तीन कोस एवं आयु तीन पल्योपम होती है। मनुष्य रूपवान् और सरल स्वभावी होते हैं। ये वज्रऋषभनाराच संहनन तथा समचतुरस्रसंस्थान के धारक होते हैं। इस काल में स्त्री-पुरुष यौगलिक रूप में उत्पन्न होते हैं। इनकी सभी इच्छाएं दस प्रकार के विशिष्ट वृक्षों से पूर्ण होती हैं। पृथ्वी का स्वाद मिश्री जैसा मीठा होता है। आहार में ३-३ दिन का अन्तर होता है। यहाँ आहार की मात्रा अल्पतम होती है, जो क्रमशः बढ़ती जाती है।

इस आरे के यौगलिक स्त्री-पुरुष की आयु जब छह मास शेष रहती है तो उनसे युगलिनी पुत्र-पुत्री का एक जोड़ा प्रसूत होता है। केवल उनपचास दिन के पालन-पोषण से ये स्वावलम्बी हो जाते हैं। यह आरा चार कोड़ा-कोड़ी सागरोपम का होता है।

२. **सुषम** - प्रथम आरे की समाप्ति के पश्चात् यह तीन कोड़ा-कोड़ी सागरोपम का दूसरा आरा प्रारम्भ होता है। यहाँ पहले आरे की अपेक्षा वर्ण, गंध, रस और स्पर्श की उत्तमता में अनन्त गुणी हीनता आ जाती है। आहार इच्छा दो दिन के अन्तराल से होती है। यहाँ शरीर अवगाहन दो कोस, आयु दो पल्योपम तथा पसलियाँ १२८ रह जाती है। पृथ्वी का स्वाद शक्कर जैसा रह जाता है।

यौगलिक मृत्यु से छह मास पूर्व पुत्र-पुत्री युगल को जन्म देते हैं। यहाँ इनका पालन-पोषण प्रथम आरे से अपेक्षाकृत अधिक दिन-६४ दिन तक करना पड़ता है। शेष स्थितियाँ पूर्व के समान ही होती हैं।

३. **सुषम-दुषम** - इसका कालमान दो कोड़ा-कोड़ी सागरोपम होता है। यहाँ भी दूसरे आरे की अपेक्षा से वर्ण, रस, गंध और स्पर्श में अनन्त गुणी हीनता परिलक्षित होती है, यहाँ अवगाहना - एक कोस, आयुष्य - एक पल्योपम और पसलियाँ चौसठ रह जाती हैं। एक दिन के अन्तर से आहार की इच्छा होती है। पृथ्वी का स्वाद गुड़ जैसा रह जाता है। मृत्यु के छह माह पूर्व पुत्र-पुत्री युगल का जन्म होता है, जिनका ७९ दिनों तक पालन-पोषण करना होता है।

इन तीनों आरों के तिर्यंच (सन्नी स्थलचर एवं सन्नी खेचर) भी यौगलिक होते हैं। तीसरे आरे को तीन भागों में विभक्त किया गया है। इसके दो भागों में तो ऊपर की सभी स्थितियाँ रहती हैं, परन्तु तृतीय भाग में अधिकांश काल बीत जाने पर अनन्तगुण हीनता के कारण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विशिष्ट वृक्षों से समस्त इच्छाएं पूर्ण नहीं होती। अतः युगलिकों में परस्पर संघर्ष होता है। इस अवस्था या अव्यवस्था को मिटाने के लिए क्रमशः पन्द्रह कुलकरों की उत्पत्ति होती है।

पांच-पांच कुलकरों द्वारा 'हकार' ('हा' - खेद प्रकटीकरण), 'मकार' ('मा'-ऐसा मत करो) तथा 'धकार' ('धिक्'-धिक्कार) की दण्ड नीति चलती है तथा लोग इतने मात्र से अनुशासित रहते हैं। यहाँ विशिष्ट वृक्षों की शक्ति क्रमशः क्षीण होती जाती है, फिर भी इनसे ही जीवन निर्वाह होता है।

प्रथम से तृतीय आरे के समय तक यह भूमि 'अकर्म भूमि' जैसे वातावरण वाली कहलाती है, क्योंकि यहाँ लोक निर्वाह हेतु असि (शस्त्रों की आजीविका), मसि (व्यापार), कृषि (खेती) द्वारा जीविकोपार्जन नहीं करना पड़ता।

प्रथम तीर्थंकर जन्म - जब तीसरा आरा समाप्त होने में चौरासी लाख पूर्व, तीन वर्ष और साढ़े आठ माह शेष रहते हैं, तब अयोध्या (विनीता) नगरी में चौदहवें कुलकर से प्रथम तीर्थंकर का जन्म होता है। इस समय काल प्रभाव से विशिष्टवृक्षों से कुछ भी प्राप्त नहीं होने से मनुष्य क्षुधा-पीड़ित और व्याकुल हो जाते हैं। भावी तीर्थंकर इनके प्रति दयाभाव लाकर, उनके प्राणों के रक्षणार्थ वहाँ स्वतः उगे हुए २४ प्रकार के धान्यों और मेवों आदि को खाने की प्रेरणा देते हैं। यह धान्य अपरिपक्व होता है, पेट में पीड़ा उत्पन्न करता है, अतः अरणि काष्ठ से अग्नि उत्पन्न कर उसमें धान्य पकाने को कहते हैं। सरल स्वभावी मनुष्य अग्नि प्रज्वलित कर उसमें धान्य डालते हैं, जिसे अग्नि भस्म कर देती है। वे निराश होकर पुनः भावी तीर्थंकर ऋषभ राजा की शरण में जाते हैं। तब वे कुंभकार की स्थापना कर उसे बर्तन बनाना सिखाते हैं। ४ कुल, १८ श्रेणियाँ और १८ प्रश्रेणियाँ स्थापित करते हैं। पुरुषों की ७२ कलाएं, स्त्रियों की ६४ कलाएं, १८ लिपियाँ और १४ विद्याएं आदि सिखलाते हैं। ये भविष्यकाल (पांचवें आरे) तक चलती रहती हैं।

जीताचार के अनुसार स्वर्ग से इन्द्र (शक्रेन्द्र) आकर भावी तीर्थंकर का राज्याभिषेक करते हैं तथा लग्नोत्सव द्वारा पाणिग्रहण करवाते हैं। तदनंतर ग्राम, शहर आदि में कुटुम्ब वृद्धि द्वारा भरत क्षेत्र में आबादी प्रसार पाती हैं। सम्पूर्ण राजनैतिक और सामाजिक व्यवस्था के अनन्तर सम्राट राज्य ऋद्धि का परित्याग कर संयम ग्रहण करते हैं। तपश्चर्या द्वारा घातिकर्मों का क्षय कर, केवल ज्ञानी होकर चतुर्विध धर्म-संघ की स्थापना करते हैं। आयुष्य पूर्ण कर मोक्ष को प्राप्त करते हैं। यहाँ राजकुल में प्रथम चक्रवर्ती का भी जन्म होता है। ये चौदह रत्न, नवनिधि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इत्यादि के धारक होते हैं। सम्पूर्ण भरत क्षेत्र पर एकछत्र राज्य कर अन्त में संयम धारण करते हैं तथा मोक्ष में जाते हैं। प्रथम चक्रवर्ती के नरक गति में जाने की संभावना नहीं है क्योंकि धर्म के प्रवर्तन के प्रारंभ में ऐसी अशुभ घटना नहीं होती है।

४. दुःषम-सुषम - तीसरे आरे की समाप्ति पर यह आरा प्रारम्भ होता है। इसका कालमान बयालीस हजार वर्ष कम एक कोड़ा-कोड़ी सागरोपम होता है। यहाँ दुःख की प्रचुरता तथा सुख की अल्पता होती है। शुभ पुद्‌गल इत्यादि की अनन्त गुणी हानि होती है। देहमान ५०० धनुष, आयुष्य एक करोड़ पूर्व तथा पसलियाँ ३२ रह जाती हैं। दिन में एक बार भोजन की इच्छा होती है। इस आरे में छह संहनन, छह संस्थान तथा पांचों गतियों में जाने वाले जीव होते हैं। २३ तीर्थंकर, ११ चक्रवर्ती, ६ बलदेव, ६ वासुदेव तथा ६ प्रतिवासुदेव भी इसी आरे में होते हैं। इस आरे के अंतिम समय में देहमान सात हाथ, पसलियाँ १६ तथा आयुष्य १०० वर्ष झाझेरी रह जाता है। इस आरे के समाप्त होने में जब तीन वर्ष और साढ़े आठ माह शेष रहते हैं तब चौबीसवें तीर्थंकर मोक्ष पधार जाते हैं। तदनंतर गौतम स्वामी १२ वर्ष, सुधर्म स्वामी ८ वर्ष तथा जम्बूस्वामी ४४ वर्ष पर्यंत केवली पर्याय में रहे। अर्थात् प्रभु महावीर के निर्वाण के पश्चात् ६४ वर्ष पर्यंत केवल ज्ञान रहा। इसके बाद भरत क्षेत्र में कोई भी केवली नहीं हुए।

चौथे आरे में जन्में हुए मनुष्य को पांचवें आरे में केवलज्ञान संभव है परन्तु पांचवें आरे में जन्मे हुए मनुष्य को केवलज्ञान नहीं होता है।

५. दुःषम - चतुर्थ आरे की समाप्ति पर इक्कीस हजार वर्ष का यह आरा प्रारम्भ होता है। यहाँ दुःख की विपुलता होती है। सुख नाम मात्र का होता है। यहाँ आयुष्य १०० वर्ष से कुछ अधिक, पसलियाँ १६ तथा अवगाहना सात हाथ की रह जाती है।

इसकी उत्तर अवस्था में शरीरावगाहना उत्कृष्ट दो हाथ, आयुष्य उत्कृष्ट बीस वर्ष तथा पसलियाँ आठ रह जाती हैं। पृथ्वी का स्वाद प्रारम्भ में कुछ ठीक होता है, परन्तु अन्त में कुंभकार की राख के सदृश हो जाता है। यहाँ के मनुष्यों को एक दिन में प्रायः करके दो बार खाने की इच्छा होती है। मोक्ष का अभाव रहता है तथा विविध प्रकार की हीनताएं ही दृष्टिगोचर होती है। सर्वत्र अव्यवस्था छाई रहती है।

इसके अंतिम दिन शक्रेन्द्र का आसन चलायमान होता है। प्रलयकाल प्रारम्भ हो जाता है। आकाशवाणी द्वारा इसकी घोषणा होती है। प्रथम प्रहर में जैन धर्म, द्वितीय में अन्य धर्म, तृतीय में राजनीति और चौथे प्रहर में बादर अग्नि का विच्छेद हो जाता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

६. दुःषम-दुःषम - यह पंचम आरे की समाप्ति के पश्चात् प्रारम्भ होता है। इसका समय भी इक्कीस हजार वर्ष माना जाता है। यहाँ वर्ण, गंध, रस और स्पर्श में अनन्त गुणी हानि होती है। आयु उत्कृष्ट बीस वर्ष, अवगाहना प्रारम्भ में दो हाथ उतरते आरे उत्कृष्ट एक हाथ तथा पसलियाँ आठ ही रह जाती है, जो उतरते आरे में चार ही शेष रहती हैं। मनुष्यों में अपरिमित आहार की इच्छा जागृत होती है। रात्रि में शीत और दिन में ताप की प्रबलता होती है। उस समय उपलब्ध जीव-जन्तु ही इनका आहार होते हैं। ये मनुष्य दीन-हीन, दुर्बल, दुर्गंधित, रुग्ण, अपवित्र, नग्न, आचार-विचार से हीन और माता, भगिनि, पुत्री आदि से संयम न करने वाले होते हैं। छह वर्ष की स्त्री प्रसव करती है तथा कुतिया, शूकरी के सदृश बहुसंतान उत्पन्न होती है। धर्म और पुण्य से हीन होने से अपनी सम्पूर्ण आयु पूरी कर प्रायः नरक या तिर्यंच में जाते हैं।

वर्षा, शरद, बसंत आदि षड् ऋतुओं का विवेचन सर्वविदित हैं।

४. भाव संयोग निष्पन्न नाम

से किं तं भावसंजोगे?

भावसंजोगे दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - पसत्थे य १ अपसत्थे य २।

भावार्थ - भाव संयोग कितने प्रकार का है?

भाव संयोग के दो प्रकार निरूपित हुए हैं - १. प्रशस्त एवं २. अप्रशस्त।

से किं तं पसत्थे? पसत्थे णाणेणं णाणी, दंसणेणं दंसणी, चरित्तेणं चरित्ती। सेत्तं पसत्थे।

भावार्थ - प्रशस्त का क्या स्वरूप है?

ज्ञान, दर्शन और चारित्र के संयोग से क्रमशः ज्ञानी, दर्शनी और चारित्री होता है।

यह प्रशस्त का स्वरूप है।

विवेचन - ज्ञान, दर्शन और चारित्र आत्मा के प्रशस्त, उत्तम या श्रेष्ठ भाव हैं। जिसके जीवन में इनका संयोग होता है, वह तत्संबद्धनाम से अभिहित होता है। **'ज्ञानं यस्यास्ति स ज्ञानी'** - जिसमें ज्ञान गुण हो, वह ज्ञानी कहा जाता है। यह व्याकरण का तद्धित प्रत्ययान्त प्रयोग है।

से किं तं अपसत्थे?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अपसत्थे - कोहेणं कोही, माणेणं माणी, मायाए माई, लोहेणं लोही। सेत्तं अपसत्थे। सेत्तं भावसंजोगे। सेत्तं संजोएणं।

भावार्थ - अप्रशस्त का क्या स्वरूप है?

क्रोध, मान, माया एवं लोभ से क्रमशः क्रोधी, मानी, मायी एवं लोभी नाम बनते हैं, जो अप्रशस्त हैं।

यह अप्रशस्त के उदाहरण हैं।

यह भाव संयोग का विवेचन है।

इस प्रकार संयोग का प्रकरण व्याख्यात हुआ।

१०. प्रमाण निष्पन्न नाम

से किं तं पमाणेणं?

पमाणे चउव्विहे पण्णत्ते। तंजहा - णामप्पमाणे १ ठवणप्पमाणे २ दव्वप्पमाणे ३ भावप्पमाणे ४।

भावार्थ - प्रमाण निष्पन्न नाम के कितने प्रकार हैं?

प्रमाण निष्पन्न नाम चार प्रकार के कहे गए हैं - १. नाम प्रमाण २. स्थापना प्रमाण ३. द्रव्य प्रमाण तथा ४. भाव प्रमाण।

विवेचन - प्रमाण शब्द 'प्र' उपसर्ग और मान के योग से बना है। 'प्र' उपसर्ग प्रकर्ष या उत्कर्ष द्योतक है। **'प्रमीयते - प्रकर्षेण मीयतेति प्रमाणं'** - प्रकर्ष पूर्वक जो माप-निर्णय किया जाता है, उसे प्रमाण कहा जाता है।

भारतीय वाङ्मय में प्रमाण का विशेष रूप से विवेचन हुआ है। न्याय शास्त्र को प्रमाण शास्त्र भी कहा गया है। 'प्रमाण' न्याय शास्त्र विहित षोडश पदार्थों में एक है।

१. नाम प्रमाण निष्पन्न नाम

से किं तं णामप्पमाणे?

णामप्पमाणे - जस्स णं जीवस्स वा, अजीवस्स वा, जीवाण वा, अजीवाण वा, तदुभयस्स वा, तदुभयाण वा, 'पमाणे' त्ति णामं कज्जइ। सेत्तं णामप्पमाणे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ - **जीवाण** - जीवों का, **अजीवाण** - अजीवों का, **तदुभयाण** - दोनों का।

भावार्थ - नाम प्रमाण निष्पन्न नाम का क्या स्वरूप है?

नाम प्रमाण निष्पन्न नाम का स्वरूप इस प्रकार है - जीव का या अजीव का अथवा जीवों का या अजीवों का अथवा जीव-अजीव-दोनों का या जीवों और अजीवों का 'प्रमाण' ऐसा जो नाम रखा जाता है, वह नाम प्रमाण निष्पन्न नाम कहा जाता है।

यह नाम प्रमाण का निरूपण है।

विवेचन - संसार में जितने भी पदार्थ हैं, उनकी पृथक्-पृथक् पहचान के लिए उन्हें नाम, अभिधान या संज्ञाएं दी जाती हैं। जो नाम दिए जाते हैं, उन नामों का जैसा अर्थ होता है, वे गुण उन पदार्थों में हों, यह नहीं देखा जाता है। केवल अन्यों से परिच्छेद या पार्थक्य सूचन ही वहाँ अभिप्रेत है। निक्षेपों में जो नाम निक्षेप का आशय है, वही यहाँ ग्राह्य है।

२. स्थापना प्रमाण निष्पन्ननाम

से किं तं ठवणप्पमाणे ? ठवणप्पमाणे सत्तविहे पण्णत्ते। तंजहा –

गाहा - णक्खत्त देवय कुले पासंड गणे य जीवियाहेउं।

आभिप्पाइयणामे ठवणाणामं तु सत्तविहं॥१॥

शब्दार्थ - **णक्खत्त** - नक्षत्र, **पासंड** - पाषण्ड (पाखण्ड), **आभिप्पाइयणामे** - आभिप्रायिक नाम।

भावार्थ - स्थापनाप्रमाणनिष्पन्न नाम कितने प्रकार के हैं?

स्थापनाप्रमाणनिष्पन्न नाम सात प्रकार के निरूपित हुए हैं -

गाथा - १. नक्षत्र २. देव ३. कुल ४. पाषण्ड ५. गण ६. जीवित एवं ७. आभिप्रायिक नाम के रूप में इनके भेद हैं॥१॥

विवेचन - स्थापना निक्षेप की तरह स्थापना नाम में भी अभिप्राय या प्रयोजनवश तदर्थ शून्य पदार्थ में तदाकार या अतदाकार नाम है। यहाँ यह अपेक्षित नहीं है कि नामानुरूप स्थापना के आधारभूत पदार्थ में वैसी अर्थवत्ता है। यह पद्धति या उपक्रम भी परिच्छेद या पहचान हेतु है।

१. नक्षत्र नाम

से किं तं णक्खत्तणामे?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णक्खत्तणामे - कित्तियाहिं जाए कित्तिए, कित्तियादिण्णे, कित्तियाधम्मे, कित्तियासम्मे, कित्तियादेवे, कित्तियादासे, कित्तियासेणे, कित्तियारक्खिए। रोहिणीहिं जाए - रोहिणिए, रोहिणिदिण्णे, रोहिणिधम्मे, रोहिणिसम्मे, रोहिणिदेवे, रोहिणिदासे, रोहिणिसेणे, रोहिणिरक्खिए य। एवं सव्वणक्खत्तेसु णामा भाणियव्वा।

एत्(थं)थ संगहणिगाहाओ-

कित्तिय रोहिणि मिगसर, अद्दा य पुणव्वसू य पुस्से य।
तत्तो य अस्सिलेसा, महा उ दो फग्गुणीओ य॥१॥
हत्थो चित्ता साई, विसाहो तह य होइ अणुराहा।
जेट्ठा मूला पुव्वा, - साढा तह उत्तरा चेव॥२॥
अभिई सवण धणिट्ठा, सयमिसया दो य होंति भद्दवया।
रेवइ अस्सिणि भरणी, एसा णक्खत्तपरिवाडी॥३॥

सेत्तं णक्खत्तणामे।

शब्दार्थ - **कित्तियाहिं** - कृत्तिका नक्षत्र में, **जाए** - उत्पन्न, **णक्खत्तपरिवाडी** - नक्षत्र परिपाटी।

भावार्थ - नक्षत्रनाम का क्या तात्पर्य है?

नक्षत्रनाम का यह स्वरूप है-कृत्तिका नक्षत्र में उत्पन्न हुए (शिशु) का नाम - कार्तिक, कृतिकादत्त, कृत्तिकाधर्म, कृत्तिकाशर्म, कृत्तिकादेव, कृत्तिकादास, कृत्तिकासेन, कृत्तिकारक्षित आदि रखा जाता है।

(इसी प्रकार) रोहिणी नक्षत्र में उत्पन्न (शिशु) का नाम - रोहिणेय, रोहिणीदत्त, रोहिणीधर्म, रोहिणीशर्म, रोहिणीदेव, रोहिणीदास, रोहिणीसेन, रोहिणीरक्षित रखे जाने की परम्परा है।

इसी प्रकार समस्त नक्षत्रों में तदनुरूप नाम योजनीय हैं।

नक्षत्र नामों की संग्राहक गाथाएं इस प्रकार हैं -

१. कृत्तिका २. रोहिणी ३. मृगशिरा ४. आर्द्रा ५. पुनर्वसु ६. पुष्य ७. अश्लेषा ८. मघा ६. पूर्वाफाल्गुनी १०. उत्तरफाल्गुनी (दो फाल्गुनी) ११. हस्त १२. चित्रा १३. स्वाति १४. विशाखा १५. अनुराधा १६. ज्येष्ठा १७. मूला १८. पूर्वाषाढा १६. उत्तराषाढा २०. अभिजित २१. श्रवण २२. धनिष्ठा २३. शतभिषज २४. पूर्वाभाद्रपदा २५. उत्तराभाद्रपदा २६. रेवती २७. अश्विनी २८. भरिणी - यह नक्षत्रनामों की श्रृंखला है॥१-३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२. देवनाम

से किं तं देवयाणामे?

देवयाणामे - अग्गिदेवयाहिं जाए - अग्गिए, अग्गिदिण्णे, अग्गिधम्मे, अग्गिसम्मे, अग्गिदेवे, अग्गिदासे, अग्गिसेणे, अग्गिरक्खिए। एवं सव्वणक्खत्त-देवयाणामा भाणियव्वा। एत्थं पि संगहणिगाहाओ -

अग्गि पयावइ सोमे, रुद्दो अदिती विहस्सई सप्पे।
पिति भग अज्जम सविया, तट्ठा वाऊ य इंदग्गी॥१॥
मित्तो इंदो णिरई, आऊ विस्सो य बंभ विण्हू य।
वसु वरुण अय विवद्धी, पूसे आसे जमे चेव॥२॥

सेत्तं देवयाणामे।

शब्दार्थ - देवनाम का क्या स्वरूप है?

(प्रत्येक नक्षत्र के अधिष्ठातृ देव के नामानुसार रखे जाने वाले नाम देवनाम हैं)

अग्नि देवाधिष्ठित नक्षत्र में उत्पन्न (शिशु का नाम) अग्निक, अग्निदत्त, अग्निधर्म, अग्निशर्म, अग्निदेव, अग्निदास, अग्निसेन तथा अग्निरक्षित आदि ऐसे ही नाम हैं।

इसी प्रकार अन्य समस्त नक्षत्रों के अधिष्ठाता देवों के नामानुसार नाम रखने की परिपाटी ज्ञातव्य है।

नक्षत्रों के अधिष्ठातृ देवों के संदर्भ में संग्राहक गाथाएँ हैं –

१. अग्नि २. प्रजापति ३. सोम ४. रुद्र ५. अदिति ६. बृहस्पति ७. सर्प ८. पितृ ६. भग १०. अर्यमा ११. सविता १२. त्वष्टा १३. वायु १४. इन्द्राग्नि १५. मित्र १६. इन्द्र १७. निर्ऋति १८. अम्भ १६. विश्व २०. ब्रह्मा २१. विष्णु २२. वसु २३. वरुण २४. अज २५. विवर्द्धि २६. पूसा २७. अश्व २८. यम॥१,२॥

ये नक्षत्रों के अधिष्ठातृ देवों के नाम हैं।

३. कुलनाम

से किं तं कुलणामे ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कुलणामे-उग्गे, भोगे, रायण्णे, खत्तिए, इक्खागे, णाए, कोरव्वे। सेत्तं कुलणामे।

शब्दार्थ - उग्गे - उग्र, **भोगे** - भोग, **रायण्णे** - राजन्य, **खत्तिए** - क्षत्रिय, **इक्खागे**-इक्ष्वाकु, **णाए** - ज्ञात, **कोरव्वे** - कौरव।

भावार्थ - कुलनाम का क्या स्वरूप है?

पैतृक कुल (पैतृक वंश) से संबद्ध नाम इस प्रकार हैं -

उग्र, भोग, राजन्य, क्षत्रिय, इक्ष्वाकु, ज्ञात एवं कौरव्य - ये उन उन कुलों के आधार पर दिए गए नाम हैं।

४. पाषण्डनाम (पाखण्डनाम)

से किं तं पासंडणामे?

पासंडणामे - 'समणे य पंडुरंगे भिक्खु ☆ कावालिए य तावसए परिवायगे। सेत्तं पासंडणामे।

शब्दार्थ - कावालिए - कापालिक, **परिवायगे** - परिव्राजक।

भावार्थ - पाषण्डनाम का क्या स्वरूप है?

पाषण्डनाम में श्रमण, पांडुरंग, भिक्षु, कापालिक, तापस एवं परिव्राजक - इनका समावेश है।

विवेचन - 'पासण्ड' शब्द का जैनागमों में अनेक स्थानों पर वर्णन आता है। इसका संस्कृत रूप 'पाषण्ड' बनता है। आगे चलकर संस्कृत में इसी का रूप पाखण्ड हो गया। क्योंकि वैदिक संस्कृत में किन्हीं विशेष प्रसंगों पर 'ष' का 'ख' उच्चारण होता है। मुख - सौविध्य एवं सरलीकरण की दृष्टि से पाषण्ड का प्रयोग प्रायः लुप्त हो गया और उसके स्थान पर पाखण्ड ही रह गया।

इसका प्रचलित अर्थ ढोंगी, पाखंडी, धूर्त होता है। प्राचीनकाल में इसका यह अर्थ नहीं था। जैनागमों में जो 'पाषण्ड' शब्द का प्रयोग आया है, वह जैनेतर संप्रदायों के अर्थ में है। वह निंदा सूचक नहीं है, निर्ग्रन्थ प्रवचन या आर्हत् दर्शन में आस्था न रखने वाले धार्मिक संप्रदायों के अर्थ में है। इसीलिए 'परपाषण्ड-प्रशंसा' तथा 'पर-पाषण्ड-संस्तव' को अतिचारों के रूप में माना गया है।

☆ बुद्ध दंसणस्सिओ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यहाँ पाषण्ड नामों में जो नाम आए हैं, वे निर्ग्रन्थ प्रवचन (जैन साधुओं) तथा जैनेतर संप्रदायों के अर्थ में हैं। जिसका आशय यह है कि इन-इन नामों से अभिहित होने वाले संप्रदाय रहे हैं। यों संप्रदाय के आधार पर स्थापित परिपाटी का द्योतक है।

प्रस्तुत पाठ में एक शंका उपस्थित होती है - यहाँ श्रमण और भिक्षु दो ऐसे नाम आए हैं, जिनका प्रयोग आगमों में पंचमहाव्रतधारी मुनियों एवं साधुओं के लिए स्थान-स्थान पर हुआ है। यहाँ यह ज्ञातव्य है कि जैनागमों में श्रमण और भिक्षु का प्रयोग साधु के पर्यायवाची शब्दों के रूप में हुआ है। यहाँ 'समण' शब्द ऐसे संप्रदाय का द्योतक है, जो 'समण' संप्रदाय के नाम से प्रसिद्ध था। अर्थात् यहाँ 'समण' शब्द व्यक्तिवाचक संज्ञा के रूप में है तथा आगमों में यह जातिवाचक संज्ञा के रूप में प्रयुक्त है। अर्थात् साधु, मुनि, अनगार इन विभिन्न नामों से पंचमहाव्रतधारी को संबोधित किया जाता रहा है।

भिक्षु शब्द बौद्ध परम्परा को इंगित करता है क्योंकि वहाँ अधिकांशतः गृहस्थ त्याग कर संन्यस्त होने वाले पुरुष और नारी के लिए भिक्षु और भिक्षुणी शब्द आए हैं।

५. गणनाम

से किं तं गणणामे?

गणणामे - मल्ले, मल्लदिण्णे, मल्लधम्मे, मल्लधम्मे, मल्लसम्मे, मलदेवे, मल्लदासे, मलसेणे, मल्लरक्खिए। सेत्तं गणणामे।

भावार्थ - गणनाम का क्या स्वरूप है?

गण के आधार पर निर्धारित नाम गणनाम हैं, जैसे - मल्ल, मल्लदत्त, मल्लधर्म, मल्लशर्म, मल्लदेव, मल्लदास, मल्लसेन एवं मल्लरक्षित।

यह गणनाम का निरूपण है।

विवेचन - बुद्ध एवं महावीर के समय में मगध, विदेह, अंग आदि जनपदों में विभिन्न गणराज्य थे। जिनमें लिच्छवि, वज्जि, मल्ल आदि मुख्य थे। वहाँ विशिष्ट मतदान प्रणाली से जननायकों का चयन होता था।

उदाहरणार्थ - चेटक लिच्छवि गणराज्य के प्रधान थे, जिनकी राजधानी वैशाली थी। भगवान् महावीर का जन्म इसी गणराज्य में हुआ।

इन गणों में निवास करने वाले व्यक्तिओं की पहचान के आधार पर नाम देने की परिपाटी थी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

६. जीवितहेतु नाम

से किं तं जीवियणामे?

जीविय(हेउ)णामे-अवकरए, उक्कुरुडए, उज्झियए, कज्जवए, सुप्पए। सेत्तं जीवियणामे।

शब्दार्थ - **अवकरए** - कचरा, **उक्कुरुडए** - उत्कुरुटक - कचरे का ढेर, **उज्झियए** - उज्झितक - परित्यक्त, **कज्जवए** - कचवरक - कूड़ा - करकट, **सुप्पए** - सूप - छाज।

भावार्थ - जीवितहेतु नाम का क्या तात्पर्य है?

जीवितहेतु नाम - अवकरक, उत्कुरुटक, उज्झितक, कचवरक एवं सूर्पक हैं।

विवेचन - प्राचीनकाल से ही ऐसी लोक मान्यता रही है कि जिन स्त्रियों के बच्चे जीवित नहीं रहते, वे उसे टालने हेतु बच्चों के भद्दे, गंदे या जुगुप्सित नाम रखते हैं। उनका ऐसा मानना है कि उन भद्दे नामों के रखे जाने से उनके बच्चे मरेंगे नहीं। आज भी यह प्रवृत्ति यत्र-तत्र प्रचलित है।

इस वर्णन से अशिक्षित एवं अतत्त्वज्ञ लोगों में प्राचीन काल से ही कितना अज्ञान रहा है, वे जादू-टोने में कितना विश्वास रखते थे, यह प्रकट होता है।

७. आभिप्रायिक नाम

से किं तं आभिप्पाइयणामे?

आभिप्पाइयणामे - अंबए, णिंबए, बकुलए, पलासए, सिणए, पिलुए, करीरए। सेत्तं आभिप्पाइयणामे। सेत्तं ठवणप्पमाणे।

भावार्थ - आभिप्रायिक नाम का क्या स्वरूप है?

आभिप्रायिक नाम अंबक, निंबक, बकुलक, पलाशक, स्नेहक, पिलुक एवं करीरक - ये आभिप्रायिक नाम हैं।

यह आभिप्रायिक नाम का निरूपण है। यहाँ स्थापना प्रमाण का विवेचन परिसंपन्न होता है।

विवेचन - अभिप्राय से तद्धित प्रत्ययान्तर आभिप्रायिक बना है। इसका तात्पर्य अपने अभिप्राय या मनचाहे भाव के अनुरूप किसी का नाम स्थापित करना है। इसमें नाम दिए जाने वाले व्यक्ति के गुण की कोई अपेक्षा नहीं रखी जाती। यह भी पहचान का एक रूप है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३. द्रव्य प्रमाण निष्पन्न नाम

से किं तं दव्वप्पमाणे?

दव्वपप्पमाणे छव्विहे पण्णत्ते। तंजहा - धम्मत्थिकाए १ जाव अद्धासमए ६। सेत्तं दव्वप्पमाणे।

भावार्थ - द्रव्यप्रमाणनिष्पन्न नाम कितने प्रकार के होते हैं?

द्रव्य प्रमाणनिष्पन्न नाम छह प्रकार के प्रज्ञापित हुए हैं - जैसे - १. धर्मास्तिकाय यावत् ६ कालपर्यन्त - द्रव्यनाम हैं।

यह द्रव्यनाम का स्वरूप है।

४. भाव प्रमाण निष्पन्न नाम

से किं तं भावप्पमाणे?

भावप्पमाणे चउव्विहे पण्णत्ते। तंजहा - सामासिए १ तद्धियए २ धाउए ३ णिरुत्तिए ४।

भावार्थ - भाव प्रमाण निष्पन्न नाम कितने प्रकार के हैं?

भाव प्रमाण निष्पन्न नाम चार प्रकार के हैं - १. सामासिक २. ताद्धितिक (तद्धित प्रसूत) ३. धात्विक-धातुजनित ४. निरूक्तिज।

१. सामासिक भाव प्रमाण निष्पन्न नाम

से किं तं सामासिए?

सामासिए - सत्त समासा भवंति, तंजहा -

गाहा - दंदे य बहुव्वीही, कम्मधारयदिगु य।
तप्पुरिस अव्वइभावे, एक्कसेसे य सत्तमे॥१॥

भावार्थ - सामासिक भाव प्रमाण निष्पन्न नाम कितने प्रकार का है?

गाथा - सामासिक भाव प्रमाण निष्पन्न नाम १. द्वन्द्व २. बहुव्रीहि ३. कर्मधारय ४. द्विगु ५. तत्पुरुष ६. अव्ययीभाव ७. एकशेष के रूप में सात प्रकार के हैं॥१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - भाषागत वाक्यों के पदों के संक्षेपजनित सौष्ठव हेतु समास की परिकल्पना की है। **'समस्यते संक्षिप्ती क्रियतेति समासः, अनेकपदानां एकपदीभवनं समासः'** - इत्यादि परिभाषाएं समास के स्वरूप का आख्यान करती हैं। 'विभक्त्यन्तं पद्म' के अनुसार कारकद्योतक, विभक्ति सहित शब्द पद कहा जाता है। समास में मध्यवर्ती विभक्तियों का लोप हो जाता है तथा अन्त में एक ही विभक्ति रहती है। समास में आए भिन्न-भिन्न पदों को पृथक् करना विग्रह कहा जाता है। समास में प्रयुक्त एकाधिक पदों में कहीं पूर्वपदों का या कहीं उत्तरपदों का प्राधान्य होता है और भी अनेक विधाएँ समासात्मक शब्द संयोजन में प्रयुक्त होती हैं, जो उनके भेद में निरूपित होंगी।

१. द्वन्द्व समास

से किं तं दंदे?

दंदे - दंताश्चओष्ठौ * च=दन्तोष्ठम, स्तनौ * च उदरं च=स्तनोदरम्, वस्त्रं * च पात्रं च=वस्त्रपात्रम्, अश्वाश्च* महिषाश्च=अश्वमहिषम्, अहिश्च* णकुलश्च=अहिणकुलम्। सेत्तं दंदे समासे।

शब्दार्थ - महिष - भैंसा, अहि - सांप।

भावार्थ - द्वन्द्व समास का क्या स्वरूप है?

द्वन्द्व समास इस प्रकार होता है - दांत तथा ओष्ठ - दन्तोष्ठ, स्तन और उदर - स्तनोदर, वस्त्र तथा पात्र - वस्त्र-पात्र, अश्व एवं महिष - अश्व-महिष, अहि और नकुल - अहि-नकुल।

यह द्वन्द्व समास का निरूपण है।

विवेचन - द्वन्द्व समास में एकाधिक शब्द समस्त पद के रूप में प्रयुक्त होते हैं। दोनों ही पद प्रधान होते हैं। वहाँ उनको जोड़ने वाले संयोजक पद 'च' आदि का लोप हो जाता है। अन्त में विभक्ति रहती है। मध्यवर्ती विभक्ति का भी लोप हो जाता है। सूत्र में दिए गए उदाहरणों से यह स्पष्ट है।

अन्तिम विभक्ति का दो प्रकार से प्रयोग होता है - संस्कृत में यदि दो पदों का समास हो

---

* १ दंता य ओड्ढा य=दंतोड्ढं, २ थणा य उयरं च=थणोयरं, ३ वत्थं च पायं च=वत्थपत्तं, ४ आसा य महिसा य=आसमहिसं, ५ अही य णउलो य=अहिणउलं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और दोनों पद एक वचनांत हों तो अन्त में द्विवचनांत विभक्ति आती हैं। जैसे - रामश्च लक्ष्मणश्च इति रामलक्ष्मणौ, महावीरश्च गौतमश्च इति महावीर-गौतमौ आदि।

यदि बहुवचनांत पद हों, मिश्रित हों तो अन्त में एक वचनांत नपुंसकलिंग का प्रयोग होता है, जैसे - उपर्युक्त उदाहरण में।

आचार्य हेमचन्द्र के 'सिद्ध-हेम-शब्दानुशासन' के अनुसार जिन प्राणियों में स्वाभाविक वैर होता है, वहाँ 'नित्य वैरिणाम्' सूत्र के अनुसार अन्त में एक वचनांत नपुंसकलिंग का प्रयोग होता है, जैसे - अहिश्च नकुलश्च - अहिनकुलम्।

२. बहुव्रीहि समास

से किं तं बहुव्वीही समासे?

बहुव्वीही समासे - फुल्ला इमम्मि गिरिम्मि कुडयकयंबा सो इमो गिरी फुल्लियकुडयकयंबो। सेत्तं बहुव्वीही समासे।

शब्दार्थ - **फुल्ला** - खिले हुए, **इमम्मि** - इसमें, **गिरिम्मि** - पर्वत पर, **कुडय** - कुटज, **कयंबो** - कदंब।

भावार्थ - बहुव्रीहि समास का कैसा स्वरूप है?

बहुव्रीहि समास इस प्रकार का होता है -

इस पर्वत पर खिले हुए कुटज और कदम्ब के वृक्ष हैं, इसलिए यह पर्वत - 'फुल्ल-कुटज-कदंब' के नाम से अभिहित है।

विवेचन - **"अन्यपद प्रधानो बहुव्रीहिः"** - जिस समस्त पद में जिन पदों का समास के रूप में सम्मिश्रण हुआ हो, उन पदों के अतिरिक्त जिसमें अन्य पद प्रधान हो, समास से निष्पन्न अर्थ किसी अन्य पद पर लागू हो, उसे बहुव्रीहि कहा जाता है। बहु का अर्थ बहुत तथा व्रीहि का अर्थ धान्य है। जिसके पास अधिक परिमाण में धान्य का संग्रह हो, उस पुरुष को (जमींदार को) बहुव्रीहि कहा जाता है। यहाँ वह पुरुष या जमींदार मुख्य है, बहुत और धान्य केवल उसके सूचक हैं, गौण हैं।

सूत्र में **"फुल्ला इमम्मि गिरिम्मि कुडयकयंबा सो फुल्लियकुडयकयंबो"** - ऐसा जो उदाहरण दिया गया है, उसका यह तात्पर्य है कि जिस पर्वत पर विकसित कुटज और कदंब के वृक्ष हों, वह पर्वत 'फुल्ल कुटज कदंब' कहा जाता है। यहाँ कुटज और कदंब गौण हैं परन्तु पर्वत प्रधान है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसीलिए सारस्वत व्याकरण में बहुव्रीहि समास का लक्षण देते हुए लिखा है -

बहु समासातिरिक्तं व्रीहि- प्रधानं यस्मिन्नसौ बहुव्रीहिः ✱।

यह सूत्र समास में विद्यमान पदों के अतिरिक्त किसी अन्य पद की प्रधानता का संसूचक है।

३. कर्मधारय समास

से किं तं कम्मधारए?

कम्मधारे - धवलो वसहो=धवलवसहो, किण्हो मिओ=किण्हमिओ, सेओ पडो=सेयपडो, रत्तो पडो=रत्तपडो। सेत्तं कम्मधारए।

शब्दार्थ - **धवलो** - सफेद, **वसहो** - वृषभ, **मिओ** - मृग, **सेओ** - श्वेत, **रत्तो** - लाल।

भावार्थ - कर्मधारय समास का कैसा स्वरूप है?

धवलो वसहो मिलकर धवलवसहो (धवलवृषभः) किण्हो मिओ मिलकर किण्हमिओ (कृष्णमृगः), सेओ पडो मिलकर सेत पटो (श्वेतपटः) रत्तो पडो मिलकर रत्तपडो (रक्तपटः) - ये समस्त पद बनते हैं।

विवेचन - कर्मधारय समास में विशेषण और विशेष्य अथवा उपमान और उपमेय पदों का मिश्रण होता है। इसमें दोनों का ही महत्त्व रहता है, इसलिए इसको समानाधिकरण युक्त कहा जाता है। संस्कृत व्याकरण में इसे तत्पुरुष के भेदों में माना गया है। यहाँ स्वतन्त्र भेद के रूप में इसका उल्लेख हुआ है, जिससे अर्थ की विशदता स्पष्ट होती है।

यहाँ दिए गए उदाहरणों में - 'धवल' विशेषण हैं, 'वृषभ' विशेष्य है। यों विशेषण और संज्ञा - दो पदों का एकपदी भाव है। उपमान, उपमेय के मिश्रण से बनने वाले समस्त पद भी इसमें गृहीत हैं। जैसे चन्द्रवत् मुख - चन्द्रमुख। यहाँ मुख उपमेय को चन्द्र उपमान की 'उपमा' दी गई है। किन्तु यहाँ ध्यातव्य है - यदि किसी चन्द्रसदृश मुखवाली स्त्री के संदर्भ में विग्रह किया जाय तो **"चन्द्र इव मुखं यस्या सा चन्द्रमुखी"** ऐसा विग्रह होगा तथा बहुव्रीहि समास होगा।

विशेषण और विशेष्य, उपमेय-उपमान यहाँ भिन्न-भिन्न रूप में दृष्टिगोचर होते हैं, इसलिए सारस्वत व्याकरण में इसकी परिभाषा करते हुए लिखा है -

कर्मभेदकं धारयतीति कर्मधारयः ❖।

✱ सारस्वत व्याकरण - १६/४ ❖ सारस्वत व्याकरण - १६/५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

४. द्विगु समास

से किं तं दिगुसमासे?

दिगुसमासे - तिण्णि कडुगाणि=तिकडुगं, तिण्णि महुराणि=तिमहुरं, तिण्णि गुणाणि=तिगुणं, तिण्णि पुराणि=तिपुरं, तिण्णि सराणि-तिसरं, तिण्णि पुक्खराणि=तिपुक्खरं, तिण्णि बिंदुयाणि=तिबिंदुयं, तिण्णि पहाणि=तिपहं, पंच णईओ=पंचणयं, सत्त गया=सत्तगयं, णव तुरंगा=णवतुरंगं, दस गामा=दसगामं, दस पुराणि=दसपुरं। सेत्तं दिगुसमासे।

शब्दार्थ - **कडुगाणि** - कटुक-कड़वी वस्तुएँ, **सराणि** - स्वर, **पुक्खराणि** - कमल, **बिंदुयाणि** - बूँदें, **तिण्णि** - तीन, **पहाणि** - पथ, **तुरंग** - घोड़े।

भावार्थ - द्विगु समास का क्या स्वरूप है?

तीन कटुक पदार्थों का समाहार - त्रिकटुक, तीन मधुर पदार्थों का समूह - त्रिमधुर, तीन गुणों का समन्वय - त्रिगुण, तीन नगरों का समवाय - त्रिपुर, तीन स्वरों का समुच्चय - त्रिस्वर, तीन पुष्करों (कमलों) का समुदाय - त्रिपुष्कर, तीन बिंदुओं का समवाय - त्रिबिंदुक, तीन पथों का समूह - त्रिपथ, पंचनदियों का समवाय - पंचनद, सप्त हाथियों का समूह - सप्तगज, नौ तुरंगों का समूह - नवतुरंग, दस गाँवों का समवाय - दसग्राम, दस पुरों का समाहार - दसपुर - यह द्विगु समास का स्वरूप है।

विवेचन - द्विगु समास में पहला पद संख्यावाचक और दूसरा पद संज्ञावाचक होता है तथा वह संख्यापद समाहारात्मक आशय लिए रहता है। अर्थात् वे संख्या द्वारा सूचित पदार्थ समाहृत, समूहात्मक या सामुदायिक रूप में निरूपित होते हैं। यहाँ जो उदाहरण दिए गए हैं, उसका विग्रह - "त्रयाणां कटुकानां समाहार :- त्रिकटुकम्" - होता है।

इसी प्रकार अन्य विग्रह भी द्रष्टव्य हैं।

द्विगु समास में भी कर्मधारय की तरह विशेषण और विशेष्य का मेल होता है। इतना अन्तर है, इसमें विशेषण पर संख्यावाचक होता है तथा समस्त पद समाहार द्योतक होता है।

५. तत्पुरुष समास

से किं तं तप्पुरिसे?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तप्पुरिसे - तित्थे कागो-तित्थकागो, वणे हत्थी-वणहत्थी, वणे वराहो-वणवराहो, वणे महिसो-वणमहिसो, वणे मऊरो-वणमऊरो। सेत्तं तप्पुरिसे।

शब्दार्थ - **तप्पुरिसे** - तत्पुरुष, **तित्थे** - तीर्थ में, **कागो** - कौवा, **वणे** - वन में, **हत्थी** - हाथी।

भावार्थ - तत्पुरुष समास का क्या स्वरूप है?

तत्पुरुष समास का स्वरूप इस प्रकार है - तीर्थ में या तीर्थ का कौवा तीर्थकाक कहा जाता है। जंगल का हाथी वनहस्ती कहा जाता है। जंगल का सूअर वनवराह, जंगल का भैंसा वनमहिष तथा जंगल का मोर वनमयूर कहा जाता है।

यह तत्पुरुष समास का निरूपण है।

विवेचन - तत्पुरुष समास में उत्तर पद प्रधान होता है। सारस्वत व्याकरण में इस संबंध में कहा गया है - **"स एवाग्रिमः पुरुषः प्रधानं यस्यासौ तत्पुरुषः"** - इसमें पूर्वपद के साथ लगी हुई द्वितीया विभक्ति से लेकर सप्तमी विभक्ति तक का लोप होता है। उसी के आधार पर इसके प्रथमा तत्पुरुष, द्वितीया तत्पुरुष, (इसी प्रकार) क्रमशः सप्तमी तत्पुरुष तक छः भेद होते हैं।

प्रस्तुत सूत्र में जो उदाहरण दिये गये हैं, वे सप्तमी तत्पुरुष के हैं। नञ् तत्पुरुष, अलुक तत्पुरुष मुख्य हैं। नञ् तत्पुरुष अभाव या निषेध का बोधक है। इसमें किसी संज्ञा या सर्वनाम से पूर्व 'न' अव्यय विग्रह के पश्चात् वह 'न' स्वरादि पद के साथ 'अन्' के रूप में परिवर्तित हो जाता है तथा व्यंजन आदि पद के साथ 'अ' हो जाता है। जैसे - न अश्वः - अनश्वः, न ईश्वरः - अनीश्वरः, न ब्राह्मणः - अब्राह्मणः, न सत्यम् - असत्यम्।

अलुक् समास में समास होने पर भी पूर्व पद के साथ लगी हुई विभक्ति का लोप नहीं होता। अर्थात् विभक्ति के लोप का नियम यहाँ नहीं लगता। विभक्ति बनी रहती है तथा समस्त - समासयुक्त पद निष्पन्न हो जाता है। आत्मने पदम् - आत्मनेपदम्, परस्मै पदम् - परस्मैपदम्, अन्ते वासी - अन्तेवासी, सरसि जम् - सरसिजम्, खे चर - खेचर।

६. *अव्ययीभाव समास*

से किं तं अव्वईभावे?

अव्वईभावे - अणुगामं, अणुणइयं, अणुफरिहं, अणुचरियं। सेत्तं अव्वईभावे समासे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ - **अणुगामं** - गांव के समीप, **अणुणइयं** - नदी के निकट, **अणुफरिहं** - स्पर्श के अनुरूप, **अणुचरियं** - चरित्र के अनुकूल।

भावार्थ - अव्ययीभाव का क्या स्वरूप है?

अनुग्राम, अनुनदिय, अनुस्पर्श तथा अनुचरित - यह अव्ययीभाव के उदाहरण हैं। अव्ययीभाव का ऐसा स्वरूप है।

विवेचन - अव्ययीभाव समास में पूर्वपद की प्रधानता होती है। उसमें पहला शब्द अव्यय और दूसरा शब्द संज्ञा होता है। किन्तु दोनों के मिलकर समास हो जाने पर वह समस्त-समासयुक्त पद अव्यय हो जाता है। उसके लिंग, वचन एवं विभक्ति भेद से रूप नहीं चलते। कहा गया है -

सदृशं त्रिषुलिङ्गेषु, सर्वासु च विभक्तिसु।
वचनेसु च सर्वेसु, यन्नव्येति तदव्ययम्॥

जो पुल्लिंग, स्त्रीलिंग, नपुंसकलिंग - तीनों में एक समान रहता है तथा सभी विभक्तियों में एक जैसा रहता है एवं एकवचन, द्विवचन, बहुवचन - तीनों वचनों में सादृश्य लिए रहता है, उसे अव्यय कहते हैं।

अव्यय वाक्यों में प्रयोग सर्वत्र नपुंसकलिंग एकवचन में ही होता है, वह कभी परिवर्तित नहीं होता।

प्रस्तुत सूत्र में जो उदाहरण दिये गए हैं, वे इसी आशय के द्योतक हैं।

७. *एकशेष समास*

से किं तं एगसेसे?

एगसेसे - जहा एगो पुरिसो तहा बहवे पुरिसा, जहा बहवे पुरिसा तहा एगो पुरिसो, जहा एगो करिसावणो तहा बहवे करिसावणा, जहा बहवे करिसावणा तहा एगो करिसावणो, जहा एगो साली तहा बहवे साली, जहा बहवे साली तहा एगो साली। सेत्तं एगसेसे समासे। सेत्तं सामासिए।

शब्दार्थ - **एगसेसे** - एकशेष, **जहा** - जैसा, **तहा** - तथा, **पुरिसो** - पुरुष, **करिसावणो**-कार्षापण-स्वर्ण मुद्रा, **साली** - एक प्रकार का चावल।

भावार्थ - एकशेष समास का क्या स्वरूप है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जिसमें एक शेष रहता है, वह एकशेष समास कहलाता है। अर्थात् - जैसे एक पुरुष वैसे ही अनेक पुरुष तथा जैसे बहुत से पुरुष वैसा (ही) एक पुरुष, जैसे एक कार्षापण वैसे ही अनेक कार्षापण और जैसे बहुत से कार्षापण उसी प्रकार एक कार्षापण, जैसे एक शालि धान्य उसी प्रकार अनेक शालि धान्य एवं जैसे बहुत से शालि धान्य उसी प्रकार एक शालि धान्य।

यह एकशेष समास है। इस प्रकार समास का निरूपण परिसमाप्त होता है।

विवेचन - ऊपर जो उदाहरण दिये गये हैं, वे समानार्थक पुरुष या वस्तु से संबंधित हैं। समानार्थक एक पुरुष जब दो बार आए और दोनों को समस्त पद के रूप में कहा जाये तो एक ही शेष रहता है, एक का लोप हो जाता है। इस सूत्र में पहला उदाहरण **'एगो पुरिसो'** है। प्राकृत भाषा में **'जहा एगो पुरिसो तहा बहवे पुरिसा'** ऐसा आने पर उनका समास करने पर, 'पुरिसो' ही शेष रहेगा। यद्यपि एक पुरुष के दो बार आने पर समासान्त पद में द्विवचन का रूप आना चाहिए, परन्तु प्राकृत भाषा में द्विवचन का प्रयोग नहीं होता। एकवचन और बहुवचन का ही प्रयोग होता है। संस्कृत में एकवचन द्विवचन एवं बहुवचन के रूप में तीन वचन होते हैं।

प्राकृत में बहुवचन में जब समानार्थक दो पदों का समास होता है तो अन्त में एक ही बहुवचनान्त पद 'पुरिसा' रह जाता है।

इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी ज्ञातव्य हैं।

२. तद्धितनिष्पन्न भावप्रमाणनाम

से किं तं तद्धितए?

तद्धितए अट्ठविहे पण्णत्ते। तंजहा -

गाहा - कम्मे सिप्पे सिलोए, संजोग समीवओ य संजूहो।
इस्सरिय अवच्चेण य, तद्धितणामं तु अट्ठविहं॥१॥

भावार्थ - तद्धितनाम कितने प्रकार के हैं?

तद्धितनाम आठ प्रकार के हैं (निम्नांकित आठ विधाओं पर आधारित है) - १. कर्म २. शिल्प ३. श्लोक ४. संयोग ५. समीप ६. संयूथ ७. ऐश्वर्य एवं ८. अपत्य।

विवेचन - तद्धित शब्द व्याकरणशास्त्र में विशेष रूप से प्रयुक्त हैं। **'तेभ्यो हिताः तद्धिताः'** इस व्युत्पत्ति के अनुसार जो प्रत्यय उन-उन प्रयोगों - स्वसंबंध प्रयोगों के लिए हितकर हों, उन्हें तद्धित कहा जाता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१. कर्म नाम

से किं तं कम्मणामे?

कम्मणामे - * दोसिए, सोत्तिए, कप्पासिए, भंडवेयालिए, कोलालिए। सेत्तं कम्मणामे।

शब्दार्थ - कम्मणामे - कर्मनाम, **दोसिए** - दौष्यिक - कपड़े का व्यापारी, **सोत्तिए** - सौत्रिक - सूत का व्यापारी, **कप्पासिए** - कार्पासिक-कपास का व्यापारी, **भंडवेयालिए** - भांड व्यापारिक - बर्तन या माल असबाब का व्यापारी, **कोलालिए** - कौलालिक - कुम्भकार या मिट्टी के बर्तनों का व्यापारी।

भावार्थ - कर्मनाम का क्या स्वरूप है?

दौष्यिक, सौत्रिक, कार्पासिक, भांडव्यापारी तथा कौलालिक कर्मनिष्पन्न नाम हैं। यह कर्मनाम का स्वरूप है।

विवेचन - मनुष्य जो भिन्न-भिन्न व्यवसाय, व्यापार या कार्य करता है, उसके अनुसार जो नाम रखा जाता है, वह कर्मनिष्पन्न नाम है। यहाँ कर्म शब्द का प्रयोग मुख्यतः व्यवसाय के अर्थ में है।

यहाँ प्रयुक्त **दोसिए** (दौष्यिक), दूष्य से बना है। **'दूष्यते इति दूष्यम्'** - जो प्रयोग में लेने से दूषित या मैला होता है, उसे दूष्य कहा जाता है। यह दूष्य शब्द की व्युत्पत्ति है। दूष्य का अर्थ यहाँ वस्त्र है। दौष्यिक शब्द दूष्य का ही तद्धित प्रत्यांत रूप है। जहाँ मुख्यतः 'इक्' प्रत्यय का प्रयोग हुआ है।

'इक्' में 'क' का लोप हो जाता है तथा 'इ' बचा रहता है और आदि में वृद्धि हो जाती है। सारस्वत व्याकरण में वृद्धि के संबंध में लिखा है -

'ओरैओ वृद्धि'॥२४॥ आ, आर्, ऐ, औ एते वृद्धि संज्ञा भवन्ति। अर्थात् आ, आर्, ऐ और औ, इन्हें वृद्धि कहा जाता है। इसका अभिप्राय यह है कि यदि आदि में 'अ' या 'आ' हो तो उसका 'आ', 'ऋ' या 'ॠ' हो तो 'आर', 'इ' या 'ई' हो तो 'ऐ' तथा 'उ' हो तो 'औ' हो जाता है।

* किन्हीं किन्हीं प्रतियों में ये तीन शब्द प्रारंभ में अधिक मिलते हैं - **तणहारए, कट्ठहारए, पत्तहारए।**

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसी प्रकार यहाँ दिये गए अन्य उदाहरण कर्म या व्यवसाय के आधार पर निष्पन्न तद्धित प्रत्यय प्रसूत हैं।

यहाँ प्रयुक्त भंड-भांड शब्द बर्तन तथा अन्य उपकरण, सामग्री या मालअसबाब के अर्थ में है।

प्रस्तुत सूत्र में किन्हीं-किन्हीं प्रतियों में - '**तणहारए, कट्ठहारए, पत्तहारए**' ये तीन शब्द प्रारंभ में अधिक मिलते हैं। टीका में भी ये शब्द नहीं दिये हैं एवं इनका अर्थ भी नहीं दिया गया है। इन शब्दों का अर्थ क्रमशः इस प्रकार से समझना चाहिये -

१. **तणहारए** - घास को लाकर, उसे बेचकर आजीविका करने वाला।

२. **कट्ठहारए** - काष्ठ (लकड़ी) को लाकर उसे बेचकर आजीविका करने वाला।

३. **पत्तहारए** - पत्तों को लाकर एवं उनसे अनेक वस्तुएँ निर्मित कर बेचने वाला।

२. *शिल्प नाम*

से किं तं सिप्पणामे?

सिप्पणामे - (वत्थिए, तंतिए) तुण्णए, तंतुवाए, पट्टकारे, उएट्टे, वरुडे, मुंजकारे, कट्ठकारे, छत्तकारे, वज्झकारे, पोत्थकारे, चित्तकारे, दंतकारे, लेप्पकारे, सेलकारे, कोट्टिमकारे। सेत्तं सिप्पणामे।

शब्दार्थ - **सिप्पणामे** - शिल्पनाम, **तुण्णए** - तौनिक - रफू करने वाला, **तंतुवाए** - तंतुवाय - जुलाहा या कपड़े बुनने वाला, **पट्टकारे** - पट्ट बनाने वाला कारीगर, **उएट्टे** - औद्वृत्तिक - शरीर पर पीठी आदि लगाकर मैल उतारने वाला नाई आदि, **वरुडे** - विशेष शिल्पकार, **मुंजकारे** - मौञ्जकार - मूंज आदि के रस्से बनाने वाला, **कट्ठकारे** - काष्ठकार - काठ कारीगर या बढ़ई, **छत्तकारे** - छत्रकार - छाते बनाने वाला, **वज्झकारे** - वाह्यकार - रथ आदि, यान-वाहन बनाने वाला, **पोत्थकारे** - पौस्तकार - जिल्दसाज, पुस्तकों पर जिल्दें चढ़ाने वाला कारीगर, **चित्तकारे** - चित्रकार, **दंतकारे** - दंतकार - हाथी दांत आदि के उपकरण बनाने वाला, **लेप्पकारे** - लेप्यकार - भवन बनाने वाला कारीगर, **सेलकारे** - शैलकार - पत्थरों की घड़ाई करने वाला कारीगर, **कोट्टिमकारे** - कौट्टिमकार - परिखा आदि की खुदाई का कारीगर।

भावार्थ - शिल्पनाम का क्या तात्पर्य है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तौनिक, तंतुवाय, पट्टकार, औद्वत्तिक, बारूंटिक, मौञ्जकार, काष्ठकार, छत्रकार, वाह्यकार, पौस्तकार, चित्रकार, दंतकार, लेप्यकार, शैलकार तथा कोट्टिमकार - ये शिल्पनाम - शिल्प के आधार पर निर्धारित नाम हैं।

विवेचन - कर्मनाम की तरह शिल्पनाम में भी तद्धित प्रत्ययों का प्रयोग हुआ है, जिनसे इस सूत्र में आए शब्द निष्पन्न हुए हैं।

३. श्लोक नाम

से किं तं सिलोयणामे?

सिलोयणामे - समणे, माहणे, सव्वातिही। सेत्तं सिलोयणामे।

शब्दार्थ - **सिलोयणामे** - श्लोकनाम, **समणे** - श्रमण, **माहणे** - ब्राह्मण, **सव्वातिही**- सबके अतिथि।

भावार्थ - श्लोक नाम का क्या स्वरूप है?

सबके अतिथि, श्रमण और ब्राह्मण श्लोक नाम के अन्तर्गत आते हैं।

विवेचन - **'श्रमं नयतीति श्रमणः'** - जो संयम, तप एवं व्रतरूप श्रम करता है, वह श्रमण है। **'ब्रह्मं नयति - आराधते इति ब्राह्मणः'** - जो ब्रह्म की आराधना करता है, वह ब्राह्मण होता है। यह श्रमण तथा ब्राह्मण शब्द की निरुक्ति है जो उनकी उत्तम कार्य जनित प्रशस्तता या यशस्विता की सूचक है। श्लोक शब्द का ऐसा ही अर्थ है। वह यश या कीर्ति का वाचक है। इसी कारण श्रमण और ब्राह्मण को सबका अतिथि कहा गया है। **'नास्ति तिथिर्यस्य स अतिथि'** - जिसके भिक्षादि हेतु आगमन की कोई तिथि नहीं होती, उसे अतिथि कहा जाता है। त्यागी, श्रमण आदि इसी श्रेणी में आते हैं।

यहाँ प्रशस्त अर्थ में मत्वर्थीय 'अच्' प्रत्यय प्रयुक्त हुआ है, जिससे ये शब्द बने हैं।

४. संयोग नाम

से किं तं संजोगणामे?

संजोगणामे - रण्णो ससुरए, रण्णो जामाउए, रण्णो साले, रण्णो भाउए, रण्णो भगिणीवई। सेत्तं संजोगणामे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ - **रण्णो** - राजा का, **ससुरए** - श्वसुर, **जामाउए** - जामाता (जँवाई), **साले**- साला, **भाउए** - भ्रातृक - भाई, **भगिणीवई** - भगिनीपति - बहनोई।

भावार्थ - संयोग निष्पन्न नाम का क्या स्वरूप है?

राजा का श्वसुर, राजा का साला, राजा का जामाता, राजा का भ्राता तथा राजा का बहनोई - इनसे संयोगज नाम निष्पन्न होते हैं।

विवेचन - इस सूत्र में संयोग या संबंध के संदर्भ में जो तद्धित प्रत्यान्त शब्द बनते हैं, उनका विग्रह दिया गया है। बनने वाले शब्दों का उल्लेख नहीं हुआ है। इन विग्रहों से बनने वाले शब्द राजकीय श्वसुर, राजकीय साला, राजकीय जामाता, राजकीय भ्राता तथा राजकीय भगिनीपति होते हैं। यहाँ 'रण्णो - राज्ञः या राजा का' के स्थान पर राजकीय पद आया है जो तद्धित प्रत्यान्त है, जो तद्धित प्रत्यय प्रसूत - 'क' तथा 'ई' के बनने से निष्पन्न हुआ है।

५. समीप नाम

से किं तं समीवणामे?

समीवणामे - गिरिसमीवे णयरं - गिरिणयरं, विदिसासमीवे णयरं - वेदिसं णयरं, वेण्णाए समीवे णयरं - वेण्णायडं, तगराए समीवे णयरं - तगरायडं। सेत्तं समीवणामे।

शब्दार्थ - **समीवणामे** - समीपनाम, **गिरिसमीवे** - पर्वत के समीप, **विदिसासमीवे** - विदिशा के समीप, **वेण्णाए** - वेत्रा (वेना) के, **तगराए** - तगरा के, **णयरं** - नगर।

भावार्थ - समीप नाम किसे कहा जाता है?

पर्वत का समीपवर्ती नगर - गिरि नगर, विदिशा के समीप का नगर वैदिश, **वेत्रा**✡ का निकटवर्ती नगर - वैत्र, तगरा ❁ के पास का नगर - तागर - ये तद्धित जनित समीप नाम हैं, समीप नाम के उदाहरण हैं।

यह समीपनाम का स्वरूप है।

✡ वेण्णाए - वेन्ना (वेत्रा) नदी के समीपवर्ती।

❁ तगराए - तगरा - नगर विशेष।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

६. संयूथ नाम

से किं तं संजूहणामे?

संजूहणामे - तरंगवइक्कारे, मलयवइक्कारे, अत्ताणुसट्ठिकारे, बिंदुकारे। सेत्तं संजूहणामे।

शब्दार्थ - संजूहणामे - संयूथनाम।

भावार्थ - तरंगवतीकार, मलयवतीकार, आत्मानुषष्टिकार तथा बिन्दुकार, ये संयूथनाम के उदाहरण हैं। यह संयूथनाम का स्वरूप है।

विवेचन - संयूथ शब्द का अर्थ संग्रथन या ग्रन्थ रचना है। जिन्होंने जिन ग्रन्थों की रचना की, उन ग्रन्थों के नाम के आगे तद्धित प्रत्यय लगाकर रचना करने वालें के नाम स्थापित या निर्धारित किये जाते हैं, वे संयूथनाम कहलाते हैं। यहाँ तरंगवती आदि ग्रन्थों के नाम के आगे तद्धित प्रत्यय लगाकर तरंगवतीकार आदि जो नाम - ग्रन्थ रचयिताओं के नाम निष्पन्न हुए हैं, वे संयूथ नाम हैं।

तरंगवती कथा के रचयिता श्री पादलिप्त सूरि है। अन्य ग्रन्थों के रचयिता इतिहास से जानना चाहिये।

७. ऐश्वर्य नाम

से किं तं ईसरियणामे?

ईसरियणामे - राईसरे, तलवरे, माडंबिए, कोडुंबिए, इब्भे, सेट्ठी, सत्थवाहे, सेणावई। सेत्तं ईसरियणामे।

शब्दार्थ - ईसरियणामे - ऐश्वर्यनाम, **राइसरे** - राजेश्वर, **तलवरे** - तलवर, **माडंबिय**- माडंबिक, **कोडुंबिए** - कौटुम्बिक, **इब्भे** - धन सम्पन्न, **सेट्ठी** - श्रेष्ठी, **सत्थवाहे** - सार्थवाह, **सेणावई** - सेनापति।

भावार्थ - ऐश्वर्यनाम का क्या स्वरूप है?

राजेश्वर, तलवर, मांडबिक, कौटुंबिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सार्थवाह तथा सेनापति - ये ऐश्वर्य नाम का स्वरूप है।

विवेचन - ऐश्वर्य के आधार पर जिनका नामकरण होता है, उनका यहाँ वर्णन है।

Jain Education International　　For Personal & Private Use Only　　www.jainelibrary.org

'ईश्वरस्य भावः ऐश्वर्यम्' ईश्वर का अर्थ समर्थ या शक्तिशाली होता है। ऐश्वर्य या सामर्थ्य राज्यसत्ता, उच्चपद, सेनापतित्व, धन-वैभव, राज मान्यता, समाज मान्यता, विशाल कुटुम्ब इत्यादि पर आधारित है। केवल वह धन का बोधक नहीं है। यहाँ आए हुए पद विभिन्न प्रकार के ऐश्वर्य, सत्ता, प्रभाव, शक्तिमत्ता, मान्यता आदि से संबद्ध हैं।

राजेश्वर - विशाल राज्य के अधिनायक नरपति।

तलवर - राज्य सम्मानित विशिष्ट नागरिक।

माडंबिक - जागीरदार या भूस्वामी।

कौटुंबिक - विशाल परिवारों के प्रमुखजन।

इभ्य★ - अत्यधिक संपत्तिशाली।

श्रेष्ठी - नगर सम्मानित श्रेष्ठ पुरुष (सेठ)।

सार्थवाह - बड़े सामुद्रिक व्यापारी।

सेनापति - सेना के उच्च अधिकारी।

८. अपत्य नाम

से किं तं अवच्चणामे?

अवच्चणामे अरहंतमाया, चक्कवट्टिमाया, बलदेवमाया, वासुदेवमाया, रायमाया, मुणिमाया, वायगमाया। सेत्तं अवच्चणामे। सेत्तं तद्धियए।

शब्दार्थ - **अवच्चणामे** - अपत्यनाम।

भावार्थ - अपत्य नाम किसे कहा जाता है?

अर्हत् - तीर्थंकर - माता, चक्रवर्ती - माता, बलदेव - माता, वासुदेव - माता, राजमाता, मुनिमाता, वाचकमाता - यह अपत्यनाम का स्वरूप है।

इस प्रकार तद्धितनाम की वक्तव्यता परिसमाप्त होती है।

विवेचन - वस्तुतः अपत्य का अर्थ पुत्र है। पुत्र के नाम से यहाँ माता का संसूचन किया गया है।

★ 'इभ' का अर्थ हाथी होता है। 'इभ्य' इसका तद्धित प्रत्यान्त शब्द है। जिन धनियों की संपत्ति इतनी विशाल होती थी कि जिनके अधिकृत स्वर्ण, रत्न आदि के ढेर से खड़े हुए हाथी का शरीर ढक जाए, वे इभ्य कहे जाते थे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

किसी-किसी प्रति में 'मुणिमाया' के स्थान पर 'गणिमाया' पाठ मिलता है। जिसका अर्थ - 'गणि (आचार्य) की माता' होता है।

३. धातुज भाव प्रमाण निष्पन्न नाम

से किं तं धाउए?

धाउए - भू❁ सत्तायां परस्मैभाषा, एध✩ वृद्धौ, स्पर्द्ध संघर्षे, गाधृ✪ प्रतिष्ठालिप्सयोर्ग्रन्थे च, बाधृ✣ लोडने। सेत्तं धाउए।

शब्दार्थ - धाउए - धातु, **सत्तायां** - अस्तित्व के अर्थ में, **परस्मैभाषा** - परस्मैपदी, **वृद्धौ** - बढ़ने के अर्थ में, **संघर्षे** - स्पर्धा या संघर्ष के अर्थ में, **प्रतिष्ठालित्सयोर्ग्रन्थे** - प्रतिष्ठा, आकांक्षा (उत्कंठा) और संचयन के अर्थ में, **लोडने** - विलोडन (मथने) में।

भावार्थ - धातुज नाम का क्या स्वरूप है?

सत्तार्थक, परस्मैपदी भू धातु, वृद्धि के अर्थ में प्रयुक्त एध् धातु, स्पर्धा और संघर्ष के अर्थ में प्रयुक्त स्पर्द्ध धातु, प्रतिष्ठा, लिप्सा और ग्रंथन या संचयन का अर्थ देने वाली गाधृ धातु, विलोडन के अर्थ में प्रयुक्त बाधृ धातु - यह धातुज नाम का स्वरूप है।

४. निरुक्ति जनित भाव प्रमाण निष्पन्न नाम

से किं तं णिरुत्तिए?

णिरुत्तिए - मह्यां❋शेते-महिषः, भ्रमति✣च रौति च-भ्रमरः, मुहुर्मुहुर्लसतीति❋-मुसलं, कपेरिव✤ लम्बते त्थेति च करोति-कपित्थं, चिदिति करोति खल्लं च भवति-चिक्खलं, ऊर्ध्वकर्णः❋-उलूकः, मेखस्य❖ माला-मेखला। सेत्तं णिरुत्तिए। सेत्तं भावप्पमाणे। सेत्तं पमाणणामे। सेत्तं दसणामे। सेत्तं णामे।

॥ णामेत्ति पयं समत्तं॥

❁ भू सत्ताए 'परस्मै०' अद्धमागहीए णत्थि, ✩ एह वुड्ढीए, ✪ फद्ध संघरिसे ✣ एए 'सक्कए' अद्धमागहीए एएसिं ठाणे अण्णा पउज्जंति।

❋ महीए सुवइ-महिसो, ✣ भमइ य रवइ य - भमरो, ❋ मुहुं मुहुं लसइ त्ति मुसलं, ✤ 'सक्कए' अद्धमागहीए जहा हेट्ठा, ❋ उड्ढकण्णो - उलूओ, ❖ मेखस्स माला-मेखला।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ - **णिरुत्तिए** - निरुक्ति या व्युत्पत्ति, **मह्यां** - पृथ्वी पर, **शेते** - सोता है, **महिषः** - भैंसा, **रौति** - रोता है (शब्द करता है), **मुहुर्मुहु** - बार-बार, **लसति** - ऊर्ध्व-अधः (उपर-नीचे) जाने की प्रवृत्ति करता है, **लम्बते** - लटकता है, त्थेति - स्थित रहता है, **कपित्थ** - कवीठ (कैथ का फल), **चिदिति करोति** - चिद् ऐसी आवाज करता है, **चिक्खलं**-कर्दम-कीचड़, **ऊर्ध्वकर्णः** - ऊँचे कान वाला, **उलूक** - उल्लू, **मेखस्य** - मेखों की, **मेखला**-करधनी।

भावार्थ - निरुक्ति नाम का क्या स्वरूप है?

निरुक्ति नाम इस प्रकार के होते हैं - जो मही पर सोता है, वह महिष, जो घूमता है, शब्द करता है, वह भ्रमर, जो बार-बार उपर-नीचे आता-जाता है, वह मूसल जो बंदर की तरह लटकता है और स्थिर हो जाता है, वह कपित्थ, चिद् ऐसी ध्वनि करता है और चिपक जाता है, वह चिक्खल, जिसके कान ऊपर उठे हुए होते हैं, वह उलूक, मेखों की माला मेखला - यह निरुक्ति जनित नाम का स्वरूप है।

यह भाव प्रमाण का निरूपण है। प्रमाण नाम का यह विवेचन है। इस प्रकार दस नाम का वर्णन परिसमाप्त होता है। यह नाम विषयक विवेचन का पर्यवसान है।

विवेचन - क्रिया, कारक, भेद और पर्यायवाची शब्दों द्वारा शब्दार्थ के कथन करने को निरुक्ति कहते हैं। इस निरुक्ति से निष्पन्न नाम निरुक्तिजनाम कहलाता है। उदाहरण के रूप में प्रस्तुत महिष आदि नाम पृषोदरादिगण से सिद्ध हैं।

।। इस प्रकार नाम पद सम्पूर्ण हुआ।।

(१३२)

प्रमाण-भेद

से किं तं पमाणे?

पमाणे चउव्विहे पण्णत्ते। तंजहा - दव्वप्पमाणे १ खेत्तप्पमाणे २ कालप्पमाणे ३ भावप्पमाणे ४।

भावार्थ - प्रमाण कितने प्रकार का होता है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रमाण चार प्रकार का बतलाया गया है - १. द्रव्य प्रमाण २. क्षेत्र प्रमाण ३. काल प्रमाण तथा ४. भाव प्रमाण।

(१३३)

१. द्रव्य प्रमाण

से किं तं दव्वप्पमाणे?

दव्वप्पमाणे दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - पएसणिप्फण्णे य १ विभागणिप्फण्णे य २।

भावार्थ - द्रव्य प्रमाण कितने प्रकार का है?

द्रव्य प्रमाण दो प्रकार के परिज्ञापित हुए हैं - १. प्रदेशनिष्पन्न तथा २. विभागनिष्पन्न।

प्रदेशनिष्पन्न द्रव्यप्रमाण

से किं तं पएसणिप्फण्णे?

पएसणिप्फण्णे - परमाणुपोग्गले, दुपएसिए जाव दसपएसिए, संखिज्जपएसिए, असंखिज्जपएसिए, अणंतपएसिए। सेत्तं पएसणिप्फण्णे।

भावार्थ - प्रदेशनिष्पन्न द्रव्यप्रमाण का क्या स्वरूप है?

प्रदेशनिष्पन्न द्रव्य प्रमाण परमाणु पुद्गल द्विप्रदेशों यावत् दस प्रदेशों, संख्यात प्रदेशों, असंख्यात प्रदेशों और अनंत प्रदेशों से निष्पन्न होता है।

विभागनिष्पन्न द्रव्य प्रमाण

से किं तं विभागणिप्फण्णे?

विभागणिप्फण्णे पंचविहे पण्णत्ते। तंजहा - माणे १ उम्माणे २ अवमाणे ३ गणिमे ४ पडिमाणे ५?

भावार्थ - विभागनिष्पन्न द्रव्य प्रमाण कितने प्रकार का होता है?

विभागनिष्पन्न द्रव्य प्रमाण पांच प्रकार का है - १. मान २. उन्मान ३. अवमान ४. गणमान ५. प्रतिमान।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - यहाँ प्रयुक्त विभाग विषयक भेदों के संदर्भ में ज्ञातव्य है -

१. मान - तेल आदि तरल पदार्थों तथा धान्य आदि ठोस पदार्थों के मापने के पात्र विशेष मान कहे जाते हैं।

२. उन्मान - सामान आदि को तोलने की तराजू, कांटा आदि उन्मान कहा जाता है।

३. अवमान - भूमि को मापने के लिए प्रयोग में आने वाले - फीते आदि।

४. गणिम - एक, दो, तीन, चार इत्यादि के रूप में गणना करने की विधि।

५. प्रतिमान - स्वर्ण आदि बहुमूल्य धातुओं के तौल में प्रयुक्त गुञ्जा, माष आदि।

मान प्रमाण

से किं तं माणे?

माणे दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - धण्णमाणप्पमाणे य १ रसमाणप्पमाणे य २।

शब्दार्थ - **धण्णमाणप्पमाणे** - धान्यमान प्रमाण।

भावार्थ - मान प्रमाण कितने प्रकार का है?

मान प्रमाण दो प्रकार का है - १. धान्यमान प्रमाण तथा २. रसमान प्रमाण।

१. *धान्यमान प्रमाण*

से किं तं धण्णमाणप्पमाणे?

धण्णमाणप्पमाणे - दो असईओ-पसई, दो पसईओ-सेइया, चत्तारि सेइयाओ-कुलओ, चत्तारि कुलया-पत्थो, चत्तारि पत्थया-आढगं, चत्तारि आढगाइं-दोणो, सट्ठि आढगाइं-जहण्णए कुंभे, असीइ आढगाइं-मज्झिमए कुंभे, आढयसयं-उक्कोसए कुंभे अट्ठ य आढयसइए-वाहे।

भावार्थ - धान्यमान प्रमाण का क्या स्वरूप है?

धान्यमान प्रमाण के अन्तर्गत दो असति (असृति) की एक प्रसृति, दो प्रसृति की एक सेतिका, चार सेतिका का एक कुडव, चार कुडव का एक प्रस्थ, चार प्रस्थों का एक आढक, चार आढकों का एक द्रोण, साठ आढकों का एक जघन्य कुंभ, अस्सी आढकों का एक मध्यम कुंभ, सौ आढकों का एक उत्कृष्ट कुंभ तथा आठ सौ आढकों का एक बाह होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - यहाँ यह ज्ञातव्य है कि आयुर्वेद आदि में तोल के संदर्भ में जहाँ चर्चा हुई है, वहाँ प्रस्थ को ६४ तोलों के समान बताया गया है। प्राचीनकाल में व्यवहार में ६४ तोलों का ही सेर माना जाता था। बाद में ८० तोलों का सेर माने जाने लगा। फिर भी कच्चे सेर और पक्के सेर के रूप में दोनों परम्पराएँ चालू रहीं। अब किलोग्राम का प्रयोग होता है, जो लगभग ८६ तोलों के बराबर होता है।

यहाँ आया **'असति'** धान्य आदि ठोस पदार्थों को मापने की सबसे छोटी ईकाई थी। संस्कृत में इसके लिए अवाङ्मुख शब्द का प्रयोग होता है। अवाङ्मुख का तात्पर्य हथेली से है। हथेली में जितनी वस्तु आए, वह 'असति प्रमाण' कही जाती है।

एएणं धण्णमाणप्पमाणेणं किं पओयणं?

एएणं धण्णमाणप्पमाणेणं मुत्तोलीमुरवइदुरअलिंदओचारसंसियाणं★ धण्णाणं धण्णमाणप्पमाण णिव्वित्तिलक्खणं भवइ। सेत्तं धण्णमाणप्पमाणे।

भावार्थ - (इस) धान्यमान प्रमाण का क्या प्रयोजन है?

इस धान्यमान प्रमाण में मुक्तोली, मुरव, इदुर, अलिंद, अपचार ये धान्य रखने के पात्र या साधन हैं। जिससे धान्य के मान प्रमाण की निष्पन्नता का ज्ञान होता है। यह धान्यमान प्रमाण का प्रयोजन है।

विवेचन - धान्य को मापने के लिए प्रयुक्त साधनों के विभिन्न नामों का जो उल्लेख हुआ है, उसका आशय इस प्रकार है -

मुक्तोली - धान्य रखने की ऐसी कोठी जो खड़े मृदंग के आकार की हो अर्थात् मध्य से चौड़ी तथा ऊपर नीचे से संकरी हो।

मुरव - एक विशेष माप का सूत निर्मित बड़ा बोरा।

इदुर - बकरी के बालों से निर्मित मजबूत बोरा, जिसे राजस्थान के थली जनपद में छाटी भी कहा जाता है।

अलिंद - धान्य को मापने का पात्र विशेष।

अपचारी - धान्य को भविष्य में सुरक्षित रखने के लिए भीतर या ऊपर बनाया गया कोठा।

★ सा कोट्ठिया जा उवरिं हेट्ठा संकिण्णा मज्झे विसाला।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२. रसमान प्रमाण

से किं तं रसमाणप्पमाणे?

रसमाणप्पमाणे-धण्णमाणप्पमाणाओ चउभागविवड्डिए अब्भिंतरसिहाजुत्ते रसमाणप्पमाणे विहिज्जइ, तंजहा - चउसट्ठिया (चउपलपमाणा ४), बत्तीसिया (अट्ठपलपमाणा ८) सोलसिया (सोलसपलपमाणा १६), अट्ठमाइया (बत्तीसपलपमाणा ३२), चउभाइया (चउसट्ठिपलपमाणा ६४), अद्धमाणी (सयाहियअट्ठाइसपलपमाणा १२८), माणी (दुसयाहियछप्पण्णपलपमाणा २५६), दो चउसट्ठियाओ - बत्तीसिया, दो बत्तीसियाओ- सोलसिया, दो सोलसियाओ- अट्ठभाइया, दो अट्ठभाइग्राओ-चउभाइया, दो चउभाइयाओ अद्धमाणी, दो अद्धमाणीओ माणी।

शब्दार्थ - **धण्णमाणप्पमाणओ** - धान्यमान प्रमाण से, **चउभाग-विवड्डिए** - चतुर्भाग विवर्धित - चतुर्थ भाग जितना अधिक बड़ा, **अब्भिंतरसिहाजुत्ते** - आभ्यंतर शिखायुक्त, **विहिज्जइ** - किया जाता है।

भावार्थ - रसमान प्रमाण का क्या स्वरूप है?

रसमान प्रमाण धान्यमान प्रमाण से चतुर्थ भाग जितना अधिक एवं आभ्यंतर शिखायुक्त होता है। उसके ये प्रकार हैं - चार पल प्रमाण की चतुःषष्ठिका, आठ पल प्रमाण - द्वात्रिंशिका, सोलह पल प्रमाण षोडशिका, बत्तीस पल प्रमाण अष्टभागिका, चौषठपल प्रमाण चतुर्भागिका, एक सौ अट्ठाईस पल प्रमाण अर्द्धमानी तथा दो सौ छप्पन पल प्रमाण मानी होती है। (अर्थात्) दो चतुःषष्ठिका की द्वात्रिंशिका, दो द्वात्रिंशिकाओं की एक षौडशिका, दो षोडशिकाओं की एक अष्टभागिका, दो अष्टभागिकाओं की एक चतुर्भागिका, दो चतुर्भागिकाओं की एक अर्द्धमानी तथा दो अर्द्ध मानियों की एक मानी होती है।

'आभ्यंतर शिखायुक्त' इसका आशय इस प्रकार से समझना चाहिये - जिस किसी कोठी में धान्य भरा हुआ हो एवं कोठी के ऊपर शिखा तक धान्य हो, उसी कोठी में रस (तरल पदार्थ) भरा जाये तो धान्य की बाहर की शिखा जितना रस उस कोठी में ही समाविष्ट हो जाता है। ऊपर शिखा नहीं होती है। अर्थात् कोठी में धान्य भरने पर तो ऊपर शिखा भरती

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है, किन्तु तरल पदार्थों में वह शिखा कोठी के अंतर्गत ही हो जाती है। इसलिए यहाँ पर रसमान प्रमाण को धान्यमान प्रमाण से चतुर्भाग अधिक एवं आभ्यंतर शिखायुक्त बताया है।

एएणं रसमाणपमाणेणं किं पओयणं?

एएणं रसमाणप्पमाणेणं वारक-घडक-करक-कलसिय-गागरिदइयकरोडिय-कुंडियसंसियाणं रसाणं रसमाणप्पमाणणिव्वित्तिलक्खणं भवइ। सेत्तं रसमाणपमाणे। सेत्तं माणे।

भावार्थ - इस रसमान प्रमाण का क्या प्रयोजन है?

इस रसमान प्रमाण से वारक, घट, करक, कलशिक, गागर, दृति, करोडिका, कुंडिका आदि वैविध्यपूर्ण पात्रों में संचित रस के मान प्रमाण का बोध होता है। यह रसमान प्रमाण का प्रयोजन है।

यह मान का विवेचन है।

विवेचन - इस सूत्र में प्रयुक्त रस शब्द तरल पदार्थों के लिए प्रयुक्त है। इसके मान के संबंध में पात्रों का यहाँ उल्लेख आया है, जिनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है -

वारक - **वारयतीति वारः, वारको वा** - जो गिरने न दे, सुरक्षित रखे, उसे वारक कहा जाता है। 'क' प्रत्यय स्वार्थक है।

घट - यह सबसे छोटे मृत्तिका पात्र का नाम था।

करक - यह घट का विशाल रूप था। (राजस्थान में मूण)

कलशिक - विशाल ताम्र आदि का धातुपात्र।

गागर - यह क्रमशः बड़ा पात्र है। हिन्दी साहित्य में घड़े के लिए प्रयुक्त होता है।

दृति - चमड़े के बने कुत्य (कूंपे का नाम)

करोडिका - नाद - जिसका मुख जितना चौड़ा हो उतना ही उसका आयतन हो।

कुंडिका - धातु आदि की बनी कुंड।

उन्मान प्रमाण

से किं तं उम्माणे?

उम्माणे - जं णं उम्मिणिज्जइ, तंजहा - अद्धकरिसो, करिसो, अद्धपलं, पलं,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अद्धतुला, तुला, अद्धभारो, भारो। दो अद्धकरिसा - करिसो, दो करिसा-अद्धपलं, दो अद्धपलाइं - पलं, पंचुत्तरपलसइया (पंच पलसइया) - तुला, दस तुलाओ-अद्धभारो, वीसं तुलाओ-भारो।

शब्दार्थ - **उम्माणे** - उन्मान, **उम्मिणिज्जइ** - उन्मान किया जाता है, **अद्धकरिसो** - अर्द्धकर्ष, **करस** - कर्ष, **पंचुत्तरपलसइया** - एक सौ पांच पलों की **(पंचपलसइया)** - पांच सौ पलों की।

भावार्थ - उन्मानप्रमाण का क्या स्वरूप है?

जिसके द्वारा उन्मान किया जाता है, उसे उन्मान प्रमाण कहा जाता है। यथा - अर्द्ध कर्ष, कर्ष, अर्द्ध पल, पल, अर्द्ध तुला, तुला, अर्द्ध भार तथा भार।

दो अर्द्धकर्ष का एक कर्ष, दो कर्ष का एक अर्द्ध पल, दो अर्द्ध पल का एक पल, एक सौ पांच पल की एक तुला (पांच सौ पल की एक तुला) दस तुला का एक अर्द्धभार तथा बीस तुलाओं का एक भार होता है।

विवेचन - मूल पाठ में **'पंचपलसइया'** के स्थान पर किसी-किसी प्रति में **'पंचुत्तरपलसइया'** पाठ मिलता है, जिसका अर्थ एक सौ पांच पल होता है। **पंचपलसइया** का अर्थ पांच सौ पल होता है। पांच सौ पल के माप से मापने पर 'तुला' और 'भार' का माप बहुत बड़ा होता है। एक सौ पांच पल के माप से मापने पर तुला आदि का प्रमाण उचित रूप में आता है। अतः यहाँ पर 'एक सौ पांच पलों की एक तुला' ऐसा अर्थ करना संगत प्रतीत होता है। पांच सौ पल वाले मूल पाठ को पाठांतर रूप में समझना चाहिये।

एएणं उम्माणपमाणेणं किं पओयणं?

एएणं उम्माणपमाणेणं पत्ताऽगर-तगर-चोयय-कुंकुम-खंडगुल-मच्छंडियाईणं दव्वाणं उम्माणपमाणणिव्वित्तिलक्खणं भवइ। सेत्तं उम्माणपमाणे।

शब्दार्थ - **पत्त** - तेज पत्र, **अगर** - एक सुगंधित द्रव्य, **तगर** - विशेष सुगंधित द्रव्य, **चोयय** - चोयक - औषधि विशेष, **कुंकुम** - केशर (रोली), **खंड** - शर्करा, **गुल** - गुड़, **मच्छंडियाइणं** - मिश्री आदि, **णिव्वित्ति** - निष्पन्नता।

भावार्थ - इस उन्मान प्रमाण का क्या प्रयोजन है?

इस उन्मान प्रमाण द्वारा पत्र, अगर, तगर, चोयक, केशर (रोली), शर्करा, गुड़, मिश्री आदि द्रव्यों के परिमाण का बोध होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यह उन्मान प्रमाण का स्वरूप है।

विवेचन - ऊपर धान्यमान और रसमान प्रमाण की चर्चा हुई है, जो ठोस एवं तरल पदार्थों के संदर्भ में है। जड़ी बूटियाँ, औषधियाँ आदि का तौल इन दोनों की अपेक्षा सूक्ष्म है। क्योंकि वे बहुमूल्य हैं, इनके तौल के अपने छोटे बाट होते हैं। उनका मान या प्रमाण उच्चकोटि का है। इसलिए मान के पूर्व उत् उपसर्ग लगा है। उत् - उत्कर्ष या प्रकर्ष द्योतक है। जैसे - उत्+कृष्ट - उत्कृष्ट, उत्+तम - उत्तम।

उन्मान शब्द की व्युत्पत्ति दो प्रकार से की जा सकती है। उन्मान का अर्थ **'यत् उन्मीयते तत् उन्मानम्'** के अनुसार वे पदार्थ हैं, जिनका माप - तौल किया जाता है। **'येन उन्मीयते तत् उन्मानम्'** जिसके द्वारा उन्मान किया जाय या तौला जाय, वह उन्मान है। इस व्युत्पत्ति के अनुसार छोटा कांटा आदि साधन उन्मान कहे जाते हैं, जिनसे औषधियाँ आदि तौली जाती है।

अवमान प्रमाण

से किं तं ओमाणे?

ओमाणे-जं णं ओमिणिज्जइ, तंजहा - हत्थेण वा, दंडेण वा, धणुक्केण वा, जुगेण वा, णालियाए वा, अक्खेण वा, मुसलेण वा।

गाहा - दंड धणू जुग णालिया य, अक्ख मुसलं च चउहत्थं।
दसणालियं च रज्जुं, वियाण ओमाणसण्णाए॥१॥
वत्थुम्मि हत्थमेज्जं, खित्ते दंडं धणुं च पत्थम्मि।
खायं च णालियाए, वियाण ओमाणसण्णाए॥२॥

शब्दार्थ - **ओमाणे** - अवमान, **ओमिणिज्जइ** - अवमान किया जाता है, **धणुक्केण** - धनुष द्वारा, **जुगेण** - युग से, **अक्खेण** - अक्ष या गाड़ी की धुरी द्वारा, **पत्थम्मि** - मार्ग में, **खायं** - खाई को, **वियाण** - जानो, **वत्थुम्मि** - वास्तु में - गृहभूमि में।

भावार्थ - अवमान का क्या स्वरूप है?

जिसके द्वारा नाप किया जाता है, उसे अवमान कहते हैं। हाथ द्वारा, दंड द्वारा, धनुष द्वारा, युग द्वारा, नालिका द्वारा, अक्ष द्वारा या मूसल द्वारा अवमान किया जाता है।

गाथाएँ - दंड, धनुष, युग, नालिका, अक्ष तथा मूसल - ये चार-चार हाथ होते हैं। दस

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नालिकाओं की एक रज्जु जानो। गृह भूमि हाथ से नापी जाती है, खेत दण्ड से और मार्ग धनुष द्वारा एवं खाई नालिका से मापी जाती है। इसे अवमान प्रमाण का स्वरूप जानो।

एएणं अवमाणपमाणेणं किं पओयणं?

एएणं अवमाणपमाणेणं खाय-चिय-रइय-करकचिय-कड-पडभित्ति-परिक्खेव-संसियाणं दव्वाणं अवमाणपमाणणिव्वित्तिलक्खणं भवइ। सेत्तं अवमाणे।

शब्दार्थ - **चिय** - ईंट, पत्थर आदि से चुनकर, **खाय** - खोद कर, **रइय** - निर्मित प्रासाद - भवन, पीठ (चबूतरा) आदि, **करकचिय** - क्रकचित - करौती आदि से काटना, चीरना, **कड** - चटाई, **पड** - वस्त्र, **परिक्खेव** - दीवाल की परिधि।

भावार्थ - अवमान प्रमाण का क्या प्रयोजन है?

अवमान प्रमाण द्वारा खनन, ईंट, पत्थर आदि द्वारा निर्माण, करौत आदि द्वारा काष्ठ-वेधन इत्यादि तथा निर्मित चटाई, वस्त्र, भिति, नगर परकोटा आदि द्रव्यों के माप का बोध इस प्रमाण से होता है।

यह अवमान प्रमाण का स्वरूप है।

विवेचन - अवमान के वर्णन में दण्ड, धनुष, युग, नालिका, अक्ष तथा मूसल को चार-चार हाथ बतलाया गया है। जब ये सभी चार-चार हाथ के होते हैं तो सबको देने की क्या आवश्यकता थी, किसी एक से ही कार्य निष्पत्ति हो सकती थी। इसका समाधान यह है - भिन्न-भिन्न प्रकार के स्थानों के विस्तार को मापने के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के अवमान साधन प्रयुक्त किए जाते थे। जैसे - गृहभूमि के माप में हाथ परिमित डोरी आदि का प्रयोग होता था। खेत को मापने में चार हाथ लम्बे बांस को काम में लिया जाता था। रास्ते को मापने में धनुष को काम में लिया जाता था, क्योंकि रास्ता टेढ़ा-मेढ़ा होता था। खाई, कूप आदि की गहराई को मापने में चार हाथ लम्बी नालिका प्रयुक्त की जाती थी।

गणिम प्रमाण

से तं गणिमे?

गणिमे - जं णं गणिज्जइ, तंजहा - एगो, दस, सयं, सहस्सं, दससहस्साइं, सयसहस्सं, दससयसहस्साइं, कोडी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ - **गणिज्जइ** - गिना जाता है, **एगो** - एक, **सयसहस्सं** - लाख, **दससयसहस्साइं**- दस लाख, **कोडी** - करोड़।

भावार्थ - गणिम प्रमाण का क्या स्वरूप है?

जिसके द्वारा गिना जाता है, उसे गणिम प्रमाण कहते हैं। एक, दस, सौ, सहस्र, दस सहस्र, लाख, दस लाख, करोड़ इत्यादि एतत् परिमित रूप हैं।

एएणं गणिमप्पमाणेणं किं पओयणं?

एएणं गणिमप्पमाणेणं भितग-भिति-भत्त-वेयण-आय-व्वयसंसियाणं दव्वाणं गणिमप्पमाणणिव्वित्तिलक्खणं भवइ। सेत्तं गणिमे।

शब्दार्थ - **भित्तग** - भृत्य - नौकर, **भित्ति** - भृति-भरण, **भत्त** - भोजन, **वेयण** - वेतन, **आय** - आमदनी, **व्वय** - खर्च।

भावार्थ - गणिम प्रमाण द्वारा नौकरों की मजदूरी, भोजन, वेतन एवं आय-व्यय संबंधित लेखा-जोखा आदि की गणना की जाती है। यह गणिम प्रमाण का स्वरूप है।

विवेचन - माप, तौल और नापने से जिन वस्तुओं के परिमाण का निश्चय नहीं किया जा सकता, उनको जानने के लिए गणिम (गणना) प्रमाण का उपयोग होता है।

प्रतिमान प्रमाण

से किं तं पडिमाणे?

पडिमाणे - जं णं पडिमिणिज्जइ, तंजहा - गुंजा, कागणी, णिप्फावो, कम्ममासओ, मंडलओ, सुवण्णो। पंच गुंजाओ-कम्ममासओ☆, चत्तारि कागणीओ - कम्ममासओ, तिण्णि णिप्फावा-कम्ममासओ, एवं चउक्को कम्ममासओ☆। बारस कम्ममासया-मंडलओ, एवं अडयालीसं कागणीओ-मंडलओ, सोलस कम्ममासया-सुवण्णो, एवं चउसट्ठि कागणीओ - सुवण्णो।

शब्दार्थ - **पडिमिणिज्जइ** - प्रतिमान किया जाता है, **गुंजा** - चिरमी, **कागणी** - कौड़ी या कपर्दिका, **कम्ममासओ** - कर्म माषक - उड़द के दाने के आधार पर पांच गुंजा या पांच

☆ सा कोट्ठिया जा उवरिं हेट्ठा संकिण्णा मज्झे विसाला।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रत्ती, **णिप्फावा** - निष्पाव - वल्ल नामक धान्य विशेष, **मंडलओ** - मंडलक-बारह कर्ममाषक के तुल्य, **सुवण्ण** - अशरफी।

भावार्थ - जिससे प्रतिमान किया जाता है, विशेष रूप से माप-तौल किया जाता है, वह प्रतिमान है। जैसे गुञ्जा, कागणी, कर्ममाषक, निष्पाव, मंडलक एवं स्वर्ण (अशरफी)।

पांच गुंजाओं का एक कर्ममाषक, चार कागणियों का अथवा तीन निष्पावों का एक कर्ममाषक होता है। यह माप कागणी की अपेक्षा से है।

बारह कर्ममाषकों या अड़तालीस कागणियों का एक मण्डलक होता है। सोलह कर्ममाषकों या चौषठ कागणियों का एक सुवर्ण (अशरफी) होती है।

विवेचन - गुंजा, रत्ती, घोंगची और चणोटी ये चारों समानार्थक नाम हैं। गुंजा एक लता का फल है। इसका आधा भाग काला और आधा भाग लाल रंग का होता है। इसके भार के लिए पूर्व में कहा जा चुका है। सवा गुंजाफल (रत्ती) की एक काकणी होती है। त्रिभागन्यून दो गुंजा अर्थात् पौने दो गुंजा का एक निष्पाव होता है। इसके बाद के कर्ममाषक आदि का प्रमाण सूत्र में उल्लिखित है।

एएणं पडिमाणप्पमाणेणं किं पओयणं?

एएणं पडिमाणप्पमाणेणं सुवण्णरयय-मणि-मोत्तिय-संखसिलप्पवालाईणं दव्वाणं पडिमाणप्पमाणणिव्वित्तिलक्खणं भवइ। सेत्तं पडिमाणे। सेत्तं विभागणिप्फण्णे। सेत्तं दव्वप्पमाणे।

शब्दार्थ - **रयय** - रजत, **मोत्तिय** - मौक्तिक - मोती, **सिल** - शिला - स्फटिक, **पवाल** - प्रवाल - मूंगा।

भावार्थ - इस प्रतिमान प्रमाण का क्या प्रयोजन है?

इस प्रतिमान प्रमाण द्वारा सोना, चांदी, मणि, मोती, शंख, स्फटिक, मूंगे आदि द्रव्यों का माप प्रमाणित होता है, ज्ञात होता है।

यह प्रतिमान का स्वरूप है।

इस प्रकार विभाग निष्पन्न प्रमाण का विवेचन समाप्त होता है।

यह द्रव्य प्रमाण का स्वरूप है।

विवेचन - लोक व्यवहार में शक्कर आदि मन, सेर, छटांक आदि के द्वारा तौले जाते

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हैं। उनकी तोल के लिए तोला, माशा, रत्ती प्रयोग में नहीं आते हैं, जबकि सारभूत धन के रूप में माने गये स्वर्ण, चांदी, मणि-माणक आदि को तोलने के लिए तोला, माशा आदि का उपयोग किया जाता है। यदि सोना सेर से भी तोला जाये तो उस सोने को अस्सी तोला है, ऐसा कहेंगे। दूसरी बात यह है कि वस्तु के मूल्य के कारण भी उनके मान के लिये अलग-अलग मानक निर्धारित किये जाते हैं। इसलिए उन्मान और प्रतिमान के मूल अर्थ में अन्तर नहीं है, लेकिन उनके द्वारा मापे-तोले जाने वाले पदार्थों के मूल्य में अन्तर है। इसी कारण उन्मान और प्रतिमान का पृथक्-पृथक् निर्देश किया है।

(१३४)

२. क्षेत्र प्रमाण

से किं तं खेत्तपमाणे?

खेत्तपमाणे दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - पएसणिप्फण्णे य १ विभागणिप्फण्णे य २।

भावार्थ - क्षेत्र प्रमाण कितने प्रकार का है?

क्षेत्र प्रमाण दो प्रकार का बतलाया गया है - १. प्रदेश निष्पन्न तथा २. विभाग निष्पन्न।

प्रदेश निष्पन्न क्षेत्र प्रमाण

से किं तं पएसणिप्फण्णे?

पएसणिप्फण्णे-एगपएसोगाढे, दुपएसोगाढे, तिपएसोगाढे जाव संखिज्ज-पएसोगाढे, असंखिज्जपएसोगाढे। सेत्तं पएसणिप्फण्णे।

भावार्थ - प्रदेशनिष्पन्न क्षेत्र प्रमाण का क्या स्वरूप है?

एक प्रदेश परिमित अवगाहयुक्त, द्विप्रदेशावगाढ, त्रिप्रदेशावगाढ, (यावत्) संख्येय प्रदेशावगाढ, असंख्येय प्रदेशावगाढ प्रदेश निष्पन्न क्षेत्र प्रमाण है।

विभागनिष्पन्न क्षेत्र प्रमाण

से किं तं विभागणिप्फण्णे?

विभागणिप्फण्णे -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गाहा - अंगुल विहत्थि रयणी, कुच्छी धणु गाउयं च बोद्धव्वं।
जोयण सेढी पयरं, लोगमलोगे वि य तहेव॥१॥

शब्दार्थ - विहत्थि - वितस्ति-बालिस्त (अंगुष्ठ से कनिष्ठिका पर्यन्त फैले हुए हाथ का प्रमाण), **रयणी** - हस्त (अंगुली से कोहनी पर्यन्त), **कुक्षि** - काँख से लेकर हथेली पर्यन्त, **गाउयं** - गव्यूति-कोस, **जोयण** - योजन-चार कोस की लम्बाई, **धणु** - पुरुष के समानान्तर फैले हुए दोनों हाथों की लम्बाई का माप, **सेढी** - श्रेणी-असंख्य योजन कोटि-कोटि का माप जितनी, **पयर** - प्रतर-श्रेणी से गुणित श्रेणी के गुणनफल से प्राप्त माप।

भावार्थ - विभागनिष्पन्न क्षेत्र का क्या स्वरूप है?

गाथा - अंगुल, वितस्ति, रत्नी, कुक्षि, धनुष, गव्यूति, योजन, श्रेणी, प्रतर, लोक एवं अलोक - ये विभागनिष्पन्न क्षेत्र प्रमाण के रूप हैं॥१॥

विभाग निष्पन्न की आद्य इकाई अंगुल है। अतएव अब अंगुल का विस्तार से विवेचन करते हैं।

अंगुल स्वरूप

से किं तं अंगुले?

अंगुले तिविहे पण्णत्ते। तंजहा - आयंगुले १ उस्सेहंगुले २ पमाणंगुले ३।

भावार्थ - अंगुल के कितने प्रकार हैं?

अंगुल तीन प्रकार का बतलाया गया है -

१. आत्मांगुल २. उत्सेधांगुल तथा ३. प्रमाणांगुल।

१. आत्मांगुल

से किं तं आयंगुले?

आयंगुले - जे णं जया मणुस्सा भवंति तेसि णं तया अप्पणो अंगुलेणं दुवालस अंगुलाइं मुहं, णवमुहाइं पुरिसे पमाणजुत्ते भवइ, दोण्णिए पुरिसे माणजुत्ते भवइ, अद्धभारं तुल्लमाणे पुरिसे उम्माणजुत्ते भवइ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गाहाओ - माणुम्माणपमाणजुत्ता (णय), लक्खणवंजणगुणेहिं उववेया।
उत्तम-कुलप्पसूया, उत्तमपुरिसा मुणेयव्वा॥१॥
होंति पुण अहियपुरिसा, अट्ठसयं अंगुलाण उव्विद्धा।
छण्णउइ अहमपुरिसा, चउरुत्तर मज्झिमिल्ला उ॥२॥
हीणा वा अहिया वा, जे खलु सर-सत्त-सारपरिहीणा।
तं उत्तमपुरिसाणं, अवस्स पेसत्तणमुवेंति॥३॥

शब्दार्थ - **जया** - यदा - जब, **तया** - तदा - उस काल में, **अप्पणो** - अपना, **दुवालस**- बारह, **मुहं** - मुख, **लक्खणवंजण** - लक्षण-व्यंजन - शंख आदि शुभ शारीरिक चिह्न एवं मस्से, तिल आदि, **पमाणजुत्ते** - प्रमाणयुक्त, **उववेया** - उपपेत - युक्त, **उत्तम-कुलप्पसूया** - उत्तमकुलप्रसूत - उत्तमकुलोत्पन्न, **मुणेयव्वा** - जानने योग्य, **अहियपुरिसा** - विशिष्ट गुण संपन्न पुरुष, **अट्ठसयं** - एक सौ आठ, **उव्विद्धा** - ऊँचे, **छण्णउइ** - छियानवें, **अहमपुरिसा** - अधम पुरुष, **चउरुत्तर** - एक सौ चार, **मज्झिमिल्ला** - मध्यम कोटि के, **हीणा** - हीन, **अहिया** - अधिक, **सर-सत्त-सारपरिहीणा** - स्वर, सत्त्व एवं क्षमता रहित, **अवस्स** - नियत रूप से, **पेसत्तणमुवेंति** - दासत्व प्राप्त करते हैं।

भावार्थ - आत्मांगुल का क्या स्वरूप है?

जिस काल में जो मनुष्य होते हैं, उनके अपने आकार के अनुसार जो उनके अंगुल होते हैं, उन्हें आत्मांगुल कहा जाता है। उनके अपने अंगुल से बारह अंगुल का एक मुख होता है। नौ मुख (१०८ अंगुल) की ऊँचाई का पुरुष समुचित प्रमाणयुक्त माना जाता है। द्रोणिक पुरुष (देह विस्तार) समुचित मान युक्त होता है। उसे देह का वजन अर्द्धभार परिमित होता है। ऐसा पुरुष उन्मानयुक्त होता है।

गाथाओं का अर्थ - मान, उन्मान, प्रमाण युक्त लक्षण, व्यंजन एवं गुण से संपन्न उत्तम कुलोत्पन्न को उत्तम पुरुष जानना चाहिए॥१॥

उत्कृष्ट गुण युक्त पुरुष १०८ अंगुल ऊँचे होते हैं। छियानवें अंगुल की ऊँचाई के पुरुष अधम कोटि के तथा एक सौ चार अंगुल प्रमाण के पुरुष मध्यम कोटि के होते हैं। जो समुचित मान-प्रमाण से हीन या अधिक होते हैं, वे स्वर, सत्त्व एवं सामर्थ्य से रहित होते हैं। वे नियत रूप से उत्तम पुरुषों के दास बनते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - उपर्युक्त सूत्र में जो "१. मान २. उन्मान ३. प्रमाण युक्तता" बताई है उसका आशय इस प्रकार से समझना चाहिये - मानयुक्त होने से यह ज्ञात होता है कि - इसे माता का अंश (आहार) बराबर मिलने से माँस आदि अवयवों का उचित विकास हुआ है इससे शरीर का आयतन (चौड़ाई) पूर्ण रूप से विकसित हुआ है। उन्मान युक्त होने से यह ज्ञात होता है कि इसे पिता का अंश बराबर मिलने से अस्थियों का निचय समुचित हुआ है। प्रमाण युक्त होने से यह ज्ञात होता है कि इसके शरीर के वजन एवं घेराव आदि का उचित विकास हुआ है।

१. मानयुक्तता में - जल से भरे हुये किसी हौद (कुंड) में मनुष्य के प्रवेश करने पर उसमें से एक द्रोण प्रमाण पानी बाहर निकल जाता हो अथवा द्रोण जितना कुंड खाली हो और मनुष्य के प्रवेश करने पर पूरा भर जाता हो, तो वह मान युक्त पुरुष गिना जाता है। द्रोण का माप सारस्वत व्याकरण में इस प्रकार बताया है - 'आठ मुट्ठियों का एक किञ्चित्, आठ किञ्चितों का एक पुष्कल, चार पुष्कलों का एक आढ़क, चार आढ़कों का एक द्रोण होता है।'

२. उन्मान युक्तता में - तराजू से तोलने पर जो पुरुष अर्धभार जितना वजन वाला हो। चार तोले का एक पल, एक सौ पाँच पल की एक तुला, दस तुलाओं का अर्धभार होने से वर्तमान के हिसाब से लगभग ४८ किलो वजन होता है। भरत चक्रवर्ती आदि के समय तोले का वजन बड़ा हो सकता है।

३. प्रमाणयुक्तता में - शरीर की ऊँचाई १०८ अंगुल (हाथ ऊँचा करके मापने की अपेक्षा) की होती है।

एएणं अंगुलपमाणेणं-छ अंगुलाइं - पाओ, दो पाया - विहत्थी, दो विहत्थीओ - रयणी, दो रयणीओ - कुच्छी, दो कुच्छीओ - दंडं धणू जुगे णालिया अक्खे मुसले, दो धणुसहस्साइं - गाउयं, चत्तारि गाउयाइं - जोयणं।

भावार्थ - इस अंगुल प्रमाण के अनुसार छह अंगुल का एक पाद, दो पाद की एक वितस्ति, दो वितस्तियों की एक रत्नी, दो रत्नियों की एक कुक्षि, दो कुक्षियों का एक दण्ड, धनुष, युग (जुआड़ा), नालिका, अक्ष, मूसल, दो हजार धनुष की एक गव्यूति (कोस) तथा चार गव्यूति का एक योजन होता है।

आत्मांगुल का उद्देश्य

एएणं आयंगुलपमाणेणं किं पओयणं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एएणं आयंगुलेणं जे णं जया मणुस्सा हवंति तेसि णं तया णं आयंगुलेणं अगड, तलाग, दह, णई, वावि, पुक्खरिणी, दीहिय, गुंजालियाओ सरा सरपंतियाओ सरसरपंतियाओ बिलपंतियाओ आरामुज्जाण, काणण, वण, वणसंड, वणराईओ, देउल, सभा, पवा, थूभ, खाइय, परिहाओ पागार, अट्टालय, चरिय, दार, गोपुर, पासाय, घर, सरण, लयण, आवण, सिंघाडग, तिग, चउक्क, चच्चर, चउम्मुह, महापह, पह, सगड, रह, जाण, जुग्ग, गिल्लि, थिल्लि, सिविय, संदमाणियाओ, लोही, लोह, कडाह, कडिल्लय, भंडमत्तोवगरणमाईणि अज्जकालियाइं च जोयणाइं मविज्जंति।

शब्दार्थ - **अगड** - कूप, **तलाग** - तटाक-तालाब, **दह** - खड्डे, **णई** - नदी, **वावि** - वापी-बावड़ी, **पुक्खरिणी** - पुष्करिणी-कमलयुक्त सरोवर, **दीहिय** - दीर्घिका - लंबीचौड़ी वापी, **गुंजालियाओ** - गुंजालिका - गुंजा या चिरमी की तरह वक्राकृति युक्त वापी, **सरा** - सरोवर, **सरपंतियाओ** - सरोवरों की कतारें, **सरसरपंतियाओ** - नालियों द्वारा संबद्ध जलाशय की पंक्तियाँ, **बिलपंतियाओ** - छोटी-छोटी कुइयों की पंक्तियाँ, **आराम** - आमोद-प्रमोद के बगीचे, **उज्जाण** - उद्यान - विविध प्रकार के पुष्प-फलाच्छादित बाग, **काणण** - नगर का समीपवर्ती विविधवृक्षयुक्त वन प्रदेश, **वण** - अधिकांशतः एक जातीय पादपयुक्त जंगल, **वणसंड** - अनेक जातियुक्त वृक्षोपेत वन, **वणराइओ** - वनराजियाँ - हरे भरे विविध वृक्षों से युक्त वनों की पंक्तियाँ, **देउल** - देवस्थान, **सभा** - सभा भवन, **पवा** - प्रपा-जल प्रतिष्ठान, **थूभ** - स्तूप, **खाइय** - खाई, **परिहाओ** - परिखा - अधस्तन भाग में संकीर्ण एवं उपरितन भाग में विस्तीर्ण खाई, **पागार** - परकोटा या प्रकोष्ठ, **अट्टालय** - प्रकोष्ठ पर निर्मित छोटा प्रकोष्ठ, **चरिय** - चरिका - खाई और परकोटे के बीच निर्मित आठ हाथ का मार्ग, **दार** - द्वार, **गोपुर** - नगर, प्रासाद या विशाल मन्दिर में प्रवेश का मुख्य द्वार, **पासाय** - प्रासाद, **सरण** - शरण - आश्रयस्थल, **लयण** - पर्वत की तलहटी में निर्मित आवास स्थान, **आवण**- आपण - क्रय-विक्रय का स्थान-बाजार, **सिंघाडग** - श्रृंगाटक - सिंघाड़े की तरह तिकोने मार्ग, **तिग** - जहाँ तीन रास्ते मिलते हैं (त्रिक), **चउक्क** - चतुष्क - चौराहा, **चच्चर** - चत्वर - चौगान-चौक, **चउम्मुह** - चतुर्मुख - चार द्वारों से युक्त देवस्थान, **महापह** - महापथ-विशाल राजमार्ग, **सगड**- शकट-गाड़े, **रह** - रथ, **जाण** - यान - सवारी हेतु प्रयुक्त यान, **जुग्ग** - युग्य - डोली, **गिल्लि**- हाथी पर बैठने का हौदा, **थिल्ली** - बहली (जिसे बैल खींचते हों),

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सिविय - शिविका-पालखी - दो से अधिक व्यक्तियों द्वारा वाहित, **संदमाणियाओ** - द्रुतगामी यान विशेष, **लोही** - लोहपात्र, **लोहकडाह** - लोह की बड़ी कड़ाही, **कडिल्लय** - कुड़छा, **भंड** - भांड-बर्तन, **पत्त** - पात्र, **उवगरण** - उपकरण-सामग्री, **आईणि** - इत्यादि, **अज्जकालियाइं** - अद्यकालिक - वर्तमानकालिक, **मविज्जंति** - मापे जाते हैं।

भावार्थ - आत्मांगुल प्रमाण का क्या उद्देश्य है?

इस आत्मांगुल प्रमाण से कूप, तड़ाग, द्रह, नदी, वापी, पुष्करिणी, दीर्घिका, गुंजालिका, सरोवर, सरोवर पंक्तियाँ, परस्पर प्रणालिकाओं से संलग्न सरोवर पंक्तियाँ, छोटी-छोटी कुइयाँ, आराम, उद्यान, कानन, वन, वनखंड, वनराजियाँ, देवस्थान, सभास्थल, प्रपा, स्तूप, खाइ, परिखा, प्राकार अट्टालक, चरिका, द्वार, गोपुर, प्रासाद, गृह, शरण, लयन, बाजार, संघाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्मुख, महापथ, पथ, शकट, रथ, यान, युग्य, गिल्लि, थिल्लि, शिविका, स्यंदमानिका, लोही, लोहकटाह, कुड़छा, भांड, पात्र, उपकरण आदि वर्तमान में प्राप्त साधन सामग्री एवं योजन को मापा जाता है।

आत्मांगुल के प्रकार

से समासओ तिविहे पण्णत्ते। तंजहा - सूईअंगुले १ पयरंगुले २ घणंगुले ३। अंगुलायया एगपएसिया सेढी सूई अंगुले, सूई सूईगुणिया पयरंगुले, पयरं सूईए गुणियं घणंगुले।

शब्दार्थ - **समासओ** - सार रूप में, **अंगुलायया** - एक अंगुल लम्बी।

भावार्थ - संक्षेप में अंगुल तीन प्रकार के हैं -

१. सूचि अंगुल २. प्रतर अंगुल ३. घन अंगुल।

एक अंगुल लंबी, एक प्रदेश चौड़ी आकाश श्रेणी सूचि अंगुल है। सूचि से सूचि को गुणित करने पर प्राप्त गुणनफल प्रतर अंगुल है। प्रतर को सूचि से गुणा करने पर प्राप्त गुणनफल घणांगुल है।

अंगुलत्रयः अल्प-बहुत्व

एएसि णं भंते! सूइअंगुलपयरंगुलघणंगुलाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सव्वत्थोवे सूइअंगुले, पयरंगुले असंखेज्जगुणे, घणंगुले असंखेज्जगुणे। सेत्तं आयंगुले।

शब्दार्थ - **कयरे** - कौन से, **कयरेहिंतो** - किनसे, **अप्पा** - अल्प, **बहुया** - बहुत, **तुल्ला** - तुल्य, **विसेसाहिया** - विशेषाधिक, **सव्वत्थोवे** - सर्वस्तोक-सबसे कम।

भावार्थ - हे भगवन्! इन-सूचि अंगुल, प्रतर अंगुल एवं घन अंगुल में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक है?

(आयुष्मन् गौतम!) सबसे छोटी सूचि अंगुल है, प्रतर अंगुल उससे असंख्येय गुना अधिक है और घनांगुल (प्रतरांगुल से) असंख्येय गुना अधिक है।

२. उत्सेधांगुल

से किं तं उस्सेहंगुले?

उस्सेहंगुले अणेगविहे पण्णत्ते। तंजहा -

गाहा - परमाणू तसरेणू, रहरेणू अग्गयं च वालस्स।
लिक्खा जूया य जवो, अट्ठगुण-विवड्डिया कमसो॥१॥

भावार्थ - उत्सेधांगुल कितने प्रकार का है?

उत्सेधांगुल अनेक प्रकार का बतलाया गया है, जैसे -

गाथा - परमाणु, त्रसरेणु, रथरेणु, बालाग्र (बाल का अग्र भाग), लीख, जूँ, जौ (यव) - ये सभी क्रमशः आठ गुणे बढ़ते जाते हैं॥१॥

विवेचन - उत्सेध का अर्थ - उच्चता, शिखर, उन्नति, अभ्युदय या वृद्धि है। प्रस्तुत सूत्र में वह वृद्धि या बढ़ने से संबद्ध है। नरक आदि गति चतुष्टय के देह की ऊँचाई निर्धारित करने हेतु उत्सेधांगुल का प्रयोग किया जाता है। उस वृद्धि क्रम में सबसे सूक्ष्म ईकाई परमाणु है। आठ परमाणुओं का एक त्रसरेणु, आठ त्रसरेणुओं का एक रथरेणु होता है। यों उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाती है।

परमाणु स्वरूप

से किं तं परमाणू?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परमाणू दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - सुहुमे य १ ववहारिए य २। तत्थ णं जे से सुहुमे से ठप्पे।

शब्दार्थ - **सुहुमे** - सूक्ष्म, **ववहारिए** - व्यावहारिक।

भावार्थ - परमाणु कितने प्रकार का है?

परमाणु दो प्रकार का बतलाया गया है - १. सूक्ष्म और २. व्यावहारिक।

उनमें जो सूक्ष्म परमाणु है, वह स्थाप्य-स्थापनीय है।

विवेचन - **'परमश्चासौ अणु इति परमाणु'** - परम (सर्वाधिक सूक्ष्म) या सूक्ष्मता का अन्तिम रूप परमाणु है। तत्त्वार्थ-राजवार्तिक एवं भाष्य में परमाणु के संबंध में उल्लेख हुआ है-

कारणमेव तदन्त्यं, सूक्ष्मो नित्यश्च भवति परमाणुः।
एक रस गंधवर्णो, द्विस्पर्शः कार्यलिंगश्च॥

अन्ते भवः अन्त्यम् - परमाणु सबसे सूक्ष्मतम कारण है, नित्य है, एक रस, एक गंध, एक वर्ण तथा दो स्पर्शयुक्त हैं। स्वतंत्र रूप में उसका अनुमान नहीं किया जा सकता क्योंकि सर्वाधिक सूक्ष्मता के कारण वह किसी भी प्रकार से दृष्टिगम्य हो नहीं सकता। वह कार्यलक्षण है। परमाणुओं के स्कंध से जो कार्य निष्पन्न होता है, उस कार्य को देखकर ही उसका अनुमान किया जा सकता है। उसको अन्त्यकरण इसलिए कहा गया है क्योंकि स्कंध जब सर्वथा विकीर्ण हो जाते हैं तो परमाणु ही शेष रहता है, इसलिए वह कभी नष्ट नहीं होता। उसे स्थाप्य इसलिए कहा है कि वह बाह्य व्यवहार में अनुपयोगी है, इसलिए वह केवल वर्णन या स्थापन का ही विषय है।

वर्तमान वैज्ञानिक जगत् में अलबर्ट आइन्स्टीन ऐसे वैज्ञानिक हुए, जिन्होंने अपने जीवन में सबसे बड़ी दो खोजें कीं। प्रथम परमाणु का स्वरूप विश्लेषण एवं द्वितीय आपेक्षिकता के सिद्धांत (Theory Of Relativity) का प्रतिपादन।

वैज्ञानिक भाषा में जिसे परमाणु (Atom) कहा जाता है, जैन दर्शन की भाषा में वह व्यावहारिक परमाणु है, तत्त्वतः परमाणु नहीं है। विज्ञान के अनुसार तथाकथित परमाणु के दो भाग होते हैं - नाभिक एवं बाह्य कक्षाएँ।

नाभिक में न्यूट्रोन एवं प्रोटोन होते हैं जो समतुल्य होते हैं। बाह्य कक्षाओं में इलैक्ट्रोन होते हैं, जो तीव्र वेग से नाभिक के चारों ओर चक्कर लगाते रहते हैं।

यह विभाजन परमाणु के समवायगत स्कंध का सूचन करते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इस अपेक्षा से कहा जाता है, विज्ञान परमाणु के सूक्ष्म स्वरूप तक, जिसका सर्वज्ञों ने अपने अपरिसीम ज्ञान द्वारा साक्षात्कार किया, अब तक नहीं पहुँच पाया है। विज्ञान का यह सिद्धांत है कि जहाँ तक उसने जाना है, वह अन्तिम सत्य नहीं है उसमें तद्विषयक अनेक संभावनाएँ छिपी रहती हैं।

तत्थ णं जे से ववहारिए से णं अणंताणंताणं सुहुमपोग्गलाणं समुदयसमिइ-समागमेणं ववहारिए परमाणुपोग्गले णिप्फज्जइ।

शब्दार्थ - **अणंताणंताणं** - अनंतानंतों का, **समुदयसमिइसमागमेणं** - समुदय - समिति-समागम द्वारा।

भावार्थ - व्यावहारिक परमाणु का क्या स्वरूप है?

व्यावहारिक परमाणु पुद्गल अनंतानंत सूक्ष्म परमाणु पुद्गलों के एकीभाव सम्मिलन या समन्वय से निष्पन्न होता है।

व्यावहारिक परमाणु का विश्लेषण

से णं भंते! असिधारं वा खुरधारं वा ओगाहेज्जा?

हंता! ओगाहेज्जा।

से णं तत्थ छिज्जेज्ज वा भिज्जेज्ज वा?

णो इणट्ठे समट्ठे, णो खलु तत्थ सत्थं कमइ।

शब्दार्थ - **असिधारं** - तलवार की धार, **खुरधारं** - छुरे की धारा, **ओगाहेज्जा** - अवगाहित करे, **छिज्जेज्ज** - छिन्न किया जाय, **भिज्जेज्ज** - भिन्न किया जाय, **सत्थं** - शस्त्र, **कमइ** - करता (चलता)।

भावार्थ - हे भगवन्! क्या तलवार या छुरे की धार को (व्यावहारिक परमाणु) अवगाहित कर सकता है?

हाँ, अवगाहित कर सकता है।

क्या उसका छेदन-भेदन किया जा सकता है?

नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। शस्त्र वहाँ नहीं चल सकता।

विवेचन - सिद्धांत चक्रवर्ती नेमिचन्द्राचार्य द्वारा गोम्मट्सार के जीवकांड में परमाणु के संदर्भ में चर्चा आई है -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बादर बादर-बादर, बादर सुहुमं च सुहुमथूलं च।

सुहुमं च सुहुमसुहुमं, धरादियं होदि छब्भेयं॥

उन्होंने परमाणुओं के छह भेदों का उल्लेख किया है -

१. बादर-बादर (स्थूल-स्थूल) - मृत्तिका, पाषाण, काष्ठ आदि ठोस पदार्थ।

२. बादर (स्थूल) - जल, तैल आदि तरल पदार्थ।

३. बादर-सुहुम (स्थूल-सूक्ष्म) - उद्योत, उष्मा आदि।

४. सुहुमथूल (सूक्ष्म-स्थूल) - भाप, हवा आदि।

५. सुहुम (सूक्ष्म) - कार्मिक वर्गणा आदि।

६. सुहुम सुहुम (सूक्ष्म-सूक्ष्म) - अंतिम, निरंश, अभेद्य परमाणु।

यहाँ यह ज्ञातव्य है कि पुद्गल परमाणु के इन छह भेदों में व्यवहार परमाणु का समावेश पांचवें भेद में होता है।

से णं भंते! अगणिकायस्स मज्झंमज्झेणं वीइवएज्जा?

हंता! वीइवएज्जा।

से णं भंते! तत्थ डहेज्जा?

णो इणट्ठे समट्ठे, णो खलु तत्थ सत्थं कमइ।

शब्दार्थ - अगणिकायस्स - अग्निकाय के, **मज्झंमज्झेणं** - बीचों बीच से, **वीइवएज्जा** - गुजर सकता है, निकल सकता है (व्यतिव्रजन कर सकता है), **डहेज्जा** - जल जाता है।

भावार्थ - हे भगवन्! क्या व्यावहारिक परमाणु अग्निकाय के बीचों बीच से व्यतिव्रजन कर सकता है - निकल सकता है?

हाँ, वह निकल सकता है।

हे भगवन्! तब क्या वह उससे जल जाता है?

नहीं, ऐसा नहीं हो सकता क्योंकि अग्निकाय रूप शस्त्र की उस पर गति (असर) नहीं होती।

विवेचन - इस सूत्र में व्यतिव्रजति क्रिया का जो प्रयोग आया है, वह शब्द शास्त्र की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। वि एवं अति उपसर्ग पूर्वक गमनार्थक व्रज धातु का यह विधिलिङ् का रूप है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विशेषण अतिशयेन व्रजति, गच्छतीति व्रजति - विशिष्टता पूर्वक, अतिशय के साथ गमन का अर्थ निर्बाध रूप में भीतर से गुजर जाना है।

से णं भंते! पुक्खरसंवट्टगस्स महामेहस्स मज्झंमज्झेणं वीइवएज्जा?

हंता! वीइवएज्जा।

से णं तत्थ उदउल्ले सिया?

णो इणट्ठे समट्ठे, णो खलु तत्थ सत्थं कमइ।

शब्दार्थ - **पुक्खरसंवट्टगस्स महामेहस्स** - पुष्कर संवर्तक नामक महामेघ के, **उदउल्ले**-जलार्द्र - जल से भीग जाना, **सिया** - हो सकता है।

भावार्थ - हे भगवन्! क्या वह (व्यावहारिक परमाणु) पुष्कर संवर्तक महामेघ के बीचोंबीच से गुजर सकता है?

हाँ, वह गुजर सकता है।

क्या वह वहाँ जल से भीग जाता है?

नहीं, ऐसा नहीं होता, क्योंकि (अप्काय रूप) शस्त्र उसे भिगोने में असमर्थ है, इस पर गति नहीं है।

विवेचन - यहाँ पुष्कर संवर्तक महामेघ का नामोल्लेख हुआ है। जैन विश्व विज्ञान (Cosmology) के अनुसार कालचक्र के अन्तर्गत उत्सर्पिणी काल के इक्कीस सहस्र वर्ष परिमित दुषम-दुषम नामक प्रथम आरक की समाप्ति एवं द्वितीय आरक के प्रारम्भ में सर्व प्रथम यह मेघ घनघोर वर्षा करता है।

से णं भंते! गंगाए महाणईए पडिसोयं हव्वमागच्छेज्जा?

हंता! हव्वमागच्छेज्जा।

से णं तत्थ विणिघायमावज्जेज्जा?

णो इणट्ठे समट्ठे, णो खलु तत्थ सत्थं कमइ।

शब्दार्थ - **पडिसोयं** - प्रतिस्रोत, **हव्वमागच्छेज्जा** - शीघ्र आ सकता है, **विणिघायमावज्जेज्जा** - अवरोध कर सकता है।

भावार्थ - हे भगवन्! क्या वह (व्यावहारिक परमाणु) गंगा महानदी के प्रतिस्रोत में शीघ्र गमनागमनशील हो सकता है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हाँ, वह शीघ्र गमनशील हो सकता है।

क्या वह (प्रतिस्रोत) उसका अवरोध नहीं करता?

नहीं, वह ऐसा नहीं कर सकता क्योंकि अप्काय रूप शस्त्र उस पर अप्रभावी रहता है।

विवेचन - यहाँ प्रयुक्त प्रतिस्रोत शब्द के संदर्भ में ज्ञातव्य है -

स्रोत शब्द के पूर्व अनु एवं प्रति उपसर्ग लगाने से अनुस्रोत एवं प्रतिस्रोत बनते हैं। **'स्रोतसम अनुगच्छति इति अनुस्रोतः' 'स्रोतसम प्रति, विपरीतं गच्छतीति प्रतिस्रोतः।'**

प्रवाह के अनुकूल चलना अनुस्रोत है तथा उसके विपरीत (सामने) चलना प्रतिस्रोत है। अनुस्रोत में सहजता है, प्रतिस्रोत में विपथगामिता रूप वैशिष्ट्य है।

यहाँ व्यावहारिक परमाणु के इसी वैशिष्ट्य का संसूचन है।

से णं भंते! उदगावत्तं वा उदगबिंदु वा ओगाहेज्जा?

हंता! ओगाहेज्जा।

से णं तत्थ कुच्छेज्ज वा परियावज्जेज्ज वा?

णो इणट्ठे समट्ठे, णो खलु तत्थ सत्थं कमइ।

गाहा - सत्थेण सुतिक्खेण वि, छित्तुं भेत्तुं च जं ण किर सक्का।
तं परमाणुं सिद्धा, वयंति आइं पमाणाणं॥१॥

शब्दार्थ - **उदगावत्तं** - जल भंवर, **उदगबिंदु** - जल की बूंदे, **कुच्छेज्ज** - कुत्सित, **परियावज्जेज्ज** - परियावर्जित - रूप परिवर्तित, **सुतिक्खेण** - अत्यंत तीक्ष्ण, **किर** - किल-निश्चय ही, **वयंति** - कहते हैं, **आइं** - आदि।

भावार्थ - हे भगवन्! क्या वह (व्यावहारिक परमाणु) जलभंवर या जलबिन्दु में अवगाहन कर सकता है?

हाँ, वह अवगाहन कर सकता है।

क्या वह उनमें कुत्सित - मैला या रूपपरिवर्तित हो जाता है?

नहीं, ऐसा संभव नहीं है। अप्काय रूपी शस्त्र उस पर कारगर नहीं होता।

गाथा - अत्यंत तीक्ष्ण शस्त्र द्वारा उसका छेदन-भेदन नहीं किया जा सकता। सिद्धों ने (सयोगी केवलियों) ने उसे प्रमाणों में आदि कहा है॥१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्यावहारिक परमाणु

अणंताणं ववहारियपरमाणुपोग्गलाणं समुदयसमिइसमागमेणं - सा एगा उसण्हसण्हियाइ वा, सण्हसण्हियाइ वा, उड्ढरेणूइ वा, तसरेणूइ वा, रहरेणूइ वा। अट्ठ उसण्हसण्हियाओ - सा एगा सण्हसण्हिया, अट्ठ सण्हसण्हियाओ - सा एगा उड्ढरेणू, अट्ठ उड्ढरेणूओ - सा एगा तसरेणु, अट्ठ तसरेणूओ - सा एगा रहरेणू, अट्ठ रहरेणूओ - देवकुरुउत्तरकुरूणं मणुयाणं से एगे वालग्गे, अट्ठ देवकुरुउत्तरकुरूणं मणुयाणं वालग्गा - हरिवासरम्मगवासाणं मणुयाणं से एगे वालग्गे, अट्ठ हरिवासरम्मगवासाणं मणुस्साणं वालग्गा - हेमवयहेरण्णवयाणं मणुस्साणं से एगे वालग्गे, अट्ठ हेमवयहेरण्णवयाणं मणुस्साणं वालग्गा - पुव्वविदेहअवरविदेहाणं मणुस्साणं से एगे वालग्गे, अट्ठ पुव्वविदेहअवरविदेहाणं मणुस्साणं वालग्गा - भरहएरवयाणं मणुस्साणं से एगे वालग्गे, अट्ठ भरहेरवयाणं मणुस्साणं वालग्गा - सा एगा लिक्खा, अट्ठ लिक्खाओ - सा एगा जूया, अट्ठ जूयाओ - से एगे जवमज्झे, अट्ठ जवमज्झे - से एगे अंगुले।

शब्दार्थ - **उसण्हसण्हियाइ** - उत्श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका, **सण्हसण्हियाइ** - श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका, **उड्ढरेणूइ** - ऊर्ध्वरेणु, **तसरेणूइ** - त्रसरेणु, **रहरेणूइ** - रथरेणु, **वालग्गे** - बालाग्र, **लिक्खा** - लीख।

भावार्थ - अनंतानंत व्यावहारिक परमाणु पुद्गलों के समुदय-समिति-समागम - एकीभाव से एक उत्श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका, ऊर्ध्वरेणु, त्रसरेणु तथा रथरेणु निष्पन्न होता है। आठ उत्श्लक्ष्णश्लक्ष्णिकाओं से एक श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका, आठ श्लक्ष्ण-श्लक्ष्णिकाओं से एक ऊर्ध्वरेणु, आठ ऊर्ध्वरेणुओं से एक त्रसरेणु, आठ त्रसरेणुओं से एक रथरेणु, आठ रथरेणुओं से देवकुरु-उत्तरकुरु के मनुष्यों का एक बालाग्र, देवकुरु-उत्तरकुरु के मनुष्यों के आठ बालाग्रों से हरिवर्ष-रम्यक्वर्ष के मनुष्यों का एक बालाग्र, हरिवर्ष-रम्यक् वर्ष के मनुष्यों के आठ बालाग्रों से हैमवत-हैरण्यवत क्षेत्र के मनुष्यों का एक बालाग्र, हैमवत-हैरण्यवत क्षेत्र के मनुष्यों के आठ बालाग्रों से पूर्व महाविदेह तथा अपर महाविदेह के मनुष्यों का एक बालाग्र, पूर्व विदेह एवं अपरविदेह के मनुष्यों के आठ बालाग्रों से भरतऐरावत क्षेत्र के मनुष्यों का एक बालाग्र, भरत

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तथा ऐरावत क्षेत्र के मनुष्यों के आठ बालाग्रों से एक लीख, आठ लीखों से एक जूं, आठ जूंओं से एक-एक यवमध्य तथा आठ यवमध्यों से एक उत्सेधांगुल होता है।

विवेचन - अनंतानंत व्यावहारिक परमाणुओं के समुदय से निष्पन्न होने वाले कार्यों का वर्णन करते हुए इस सूत्र में सूक्ष्म रूप को लेकर उत्सेध अंगुल तक के क्रमशः वृद्धिक्रम को बतलाया है। यहाँ जिस शैली में वर्णन किया गया है, उसका तात्पर्य यह है कि - पूर्ववर्ती आठ स्वल्प या सूक्ष्म के बराबर उत्तरवर्ती एक होता है। जैसे - देवकुरु-उत्तरकुरु के मनुष्यों के आठ बालाग्रों के समान हरिवर्ष - रम्यक् वर्ष के मनुष्यों का एक बालाग्र होता है।

शंका - यहाँ प्रस्तुत सूत्र में - 'महाविदेह के आठ बालाग्रों के बराबर भरत ऐरावत का एक बालाग्र बताया है - जबकि भगवती सूत्र (शतक ६ उद्देशक ७) में तथा जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति के वक्षस्कार दूसरे में 'भरत ऐरावत के ८ बालाग्र' नहीं बताए है? इसका क्या कारण समझना चाहिये?

समाधान - यद्यपि अनुयोगद्वार में अङ्गुल प्रकरण में ही 'बालाग्रों' को आठ गुणा करते हुए महाविदेह के बालाग्रों के बाद - भरत-ऐरावत के बालाग्र बताकर-लिक्षा का वर्णन किया है। इसी का अनुगमन - 'संग्रहणी वृहद्वृत्ति, प्रवचन सारोद्धार वृत्ति, जीव समास वृत्ति में किया है, तथापि भगवती(६-७), जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति (२) में महाविदेह के बाद भरत ऐरावत के बालाग्रों का उल्लेख नहीं है। अंग सूत्रों को प्रमुखता देने की दृष्टि से भगवती सूत्र के पाठ को प्राथमिकता दी जा सकती है। जीवकाण्ड (गोम्मटसार-दिगम्बर साहित्य) में भी भगवती सूत्र के अनुरूप ही कथन मिलता है। 'कहां पर स्खलना हुई?' प्रामाणिक साधनों के अभाव में जानना कठिन है।

उपर्युक्त मूल पाठ में आये हुए उर्ध्वरेणु, त्रसरेणु और रथरेणु का अर्थ इस प्रकार है -

उर्ध्वरेणु - स्वभाव से उड़ने वाली धूल के कण जो सूर्य के प्रकाश में दिखते हैं।

त्रसरेणु - कुंथुए आदि अत्यन्त सूक्ष्म (बारीक) त्रस जीवों के चलने से जो रेखा बनती है, उसकी मोटाई।

रथरेणु - रथ के चलने से उड़ने वाली रज के कण।

एएणं अंगुलाण पमाणेणं छ अंगुलाइं - पाओ, बारस अंगुलाइं - विहत्थी, चउवीसं अंगुलाइं - रयणी, अडयालीसं अंगुलाइं-कुच्छी, छण्णवइ अंगुलाइं - से एगे दंडेइ वा, धणूइ वा, जुगेइ वा, णालियाइ वा, अक्खेइ वा, मुसलेइ वा। एएणं धणुप्पमाणेणं दो धणुसहस्साइं - गाउयं, चत्तारि गाउयाइं-जोयणं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - इस अंगुलप्रमाण के अनुसार छह अंगुलों का एक पाद, बारह अंगुलों की एक वितस्ति (बेंत), चौबीस अंगुलों की एक रत्नी (हाथ), अड़तालीस अंगुलों की एक कुक्षि, छियानवें अंगुलों का एक दण्ड, धनुष, युग, नालिका, अक्ष या मूसल होता है। इस धनुष प्रमाण से दो हजार धनुष प्रमाणों की एक गव्यूति (कोस), चार गव्यूति का एक योजन होता है।

उत्सेधांगुल का प्रयोजन

एएणं उस्सेहंगुलेणं किं पओयणं?

एएणं उस्सेहंगुलेणं णेरइयतिरिक्खजोणियमणुस्सदेवाणं सरीरोगाहणा मविज्जइ।

शब्दार्थ - **णेरइयतिरिक्खजोणियमणुस्सदेवाणं** - नैरयिक, तिर्यंचयोनिक (जीवों), मनुष्यों और देवों की, **सरीरोगाहणाओ** - शारीरिक अवगाहना, **मविज्जइ** - मापी जाती है।

भावार्थ - इस उत्सेधांगुल का क्या प्रयोजन है?

इस उत्सेधांगुल से नैरयिक, तिर्यंचयोनिक जीवों, मनुष्यों और देवताओं की शरीरावगाहना का माप होता है।

नारकों की अवगाहना

णेरइयाणं भंते! केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - भवधारणिज्जा य १ उत्तरवेउव्विया य २। तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा सा णं - जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं पंचधणुसयाइं। तत्थ णं जा सा उत्तरवेउव्विया सा - जहण्णेणं अंगुलस्स संखेज्जइभागं, उक्कोसेणं धणुसहस्सं।

शब्दार्थ - **केमहालिया** - कितनी बड़ी, **भवधारणिज्जा** - भवधारणीय, **उत्तरवेउव्विया**- उत्तर वैक्रिय।

भावार्थ - हे भगवन्! नारकों के शरीर की अवगाहना कितनी बड़ी बतलाई गई है?

हे आयुष्मन् गौतम! नारक जीवों के शरीर की अवगाहना दो प्रकार की कही गई है -

१. भवधारणीय तथा २. उत्तर वैक्रिय।

इनमें से भवधारणीय शरीर की अवगाहना कम से कम अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी तथा अधिक से अधिक पांच सौ धनुषों जितनी होती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर वैक्रिय शरीर की अवगाहना कम से कम अंगुल के संख्यातवें भाग जितनी तथा अधिक से अधिक एक सहस्र धनुष परिमित होती है।

विवेचन - शरीर द्वारा आकाश का जितना अंश अवगाहित होता है, आयत्त होता है, उसे शरीरावगाहना कहा जाता है। अथवा शरीर के विस्तार को भी अवगाहना कहा जाता है। अतएव उसे आकाश के साथ जोड़ा जाता है। तदनुसार उसका परिसीमन या माप माना जाता है।

रयणप्पहाए पुढवीए णेरइयाणं भंते! केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - भवधारणिज्जा य १ उत्तरवेउव्विया य २। तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा सा - जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं सत्तधणूइं तिण्णिरयणीओ छच्च अंगुलाइं।

तत्थ ण जा सा उत्तरवेउव्विया सा - जहण्णेणं अंगुलस्स संखेज्जइभागं, उक्कोसेणं पण्णरसधणूइं दोण्णि रयणीओ बारस अंगुलाइं।

भावार्थ - हे भगवन्! रत्न प्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की शरीरावगाहना कितनी विस्तीर्ण है?

हे आयुष्मन् गौतम! रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की शरीरावगाहना भवधारणीय एवं उत्तर वैक्रिय के रूप में दो प्रकार की बतलाई गई है। उनमें भवधारणीय शरीरावगाहना जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग के सदृश तथा उत्कृष्ट रूप में सात धनुष, तीन रत्नि और छह अंगुल जितनी बतलाई गई है।

इनमें उत्तर वैक्रिय शरीरावगाहना जघन्यतः अंगुल के संख्येय भाग जितनी तथा उत्कृष्टतः पन्द्रह धनुष, दो रत्नि तथा बारह अंगुल जितनी है।

सक्करप्पहापुढवीए* णेरइयाणं भंते! केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विया य। तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा सा-जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं पण्णरसधणूइं दुण्णि रयणीओ बारसअंगुलाइं।

तत्थ णं जा सा उत्तरवेउव्विया सा जहण्णेणं अंगुलस्स संखेज्जइभागं, उक्कोसेणं एकतीसं धणूइं इक्करयणी य।

---

* एवं सव्वाणं दुविहा भवधारणिज्जा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - हे भगवन्! शर्कराप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की शरीरावगाहना कितनी बतलाई गई है?

हे आयुष्मन् गौतम! उनकी शरीरावगाहना भवधारणीय एवं उत्तरवैक्रिय के रूप में दो प्रकार की कही गई है। उनमें भवधारणीया - अंगुल के असंख्यातवें भाग के समान तथा उत्कृष्टतः पन्द्रह धनुष दो रत्नि और बारह अंगुल होती है।

उनमें जो उत्तर वैक्रिय शरीर की अवगाहना जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग के तुल्य तथा उत्कृष्टतः इकतीस धनुष एवं एक रत्नि प्रमाण होती है।

वालुयप्पहापुढवीए णेरइयाणं भंते! केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - भवधारणिज्जा य १ उत्तरवेउव्विया य २। तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा सा - जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं एकतीसं धणूइं इक्करयणी य।

तत्थ णं जा सा उत्तरवेउव्विया सा-जहण्णेणं अंगुलस्स संखेज्जइभागं, उक्कोसेणं बासट्ठिधणूइं दो रयणीओ य।

भावार्थ - हे भगवन्! बालुकाप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की शरीरावगाहना कितनी निरूपित हुई है?

हे आयुष्मन् गौतम! उनकी शरीरावगाहना भवधारणीय एवं उत्तर वैक्रिय के रूप में दो प्रकार की कही गई है। उनमें जो भवधारणीया शरीरावगाहना है, वह जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग के समान तथा उत्कृष्टतः इकतीस धनुष तथा एक रत्नि प्रमाण है।

उनमें जो उत्तरवैक्रिय शरीरावगाहना है, वह कम से कम अंगुल के संख्यातवें भाग के तुल्य एवं उत्कृष्टतः बासठ धनुष और दो रत्नि परिमित है।

एवं सव्वासिं पुढवीणं पुच्छा भाणियव्वा। पंकप्पहाए पुढवीए भवधारणिज्जा-जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभाणं, उक्कोसेणं बासट्ठिधणूइं दो रयणीओ य। उत्तरवेउव्विया - जहण्णेणं अंगुलस्स संखेज्जइभागं उक्कोसेणं पणवीसं धणुसयं।

धूमप्पहाए भवधारणिज्जा - जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं पणवीसं धणुसयं। उत्तरवेउव्विया - जहण्णेणं अंगुलस्स संखेज्जइभागं, उक्कोसेणं अड्डाइज्जाइं धणुसयाइं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तमाए भवधारणिज्जा - जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं अड्ढाइज्जाइं धणुसयाइं। उत्तरवेउव्विया - जहण्णेणं अंगुलस्स संखेज्जइभागं, उक्कोसेणं पंचधणुसयाइं।

भावार्थ - इसी प्रकार सभी नारकभूमियों के संदर्भ में प्रश्न कथनीय है -

पंकप्रभा पृथ्वी में भवधारणीय शरीर की अवगाहना जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग के तुल्य तथा उत्कृष्टतः बासठ धनुष एवं दो रत्नि प्रमाण होती है। उत्तर वैक्रिय शरीर की अवगाहना जघन्यतः अंगुल के संख्यातवें भाग जितनी तथा उत्कृष्टतः एक सौ पच्चीस धनुष परिमित है।

धूमप्रभा पृथ्वी के नारकों के भवधारणीय शरीर की कम से कम अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी तथा उत्कृष्टतः एक सौ पच्चीस धनुष परिमित है, उत्तर वैक्रिय शरीर की जघन्यतः अवगाहना अंगुल के संख्यातवें भाग जितनी तथा उत्कृष्टतः अढाई सौ धनुष प्रमाण होती है।

तमःप्रभा पृथ्वी के नारकों के भवधारणीय शरीर की अवगाहना कम से कम अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी तथा उत्कृष्टतः अढाई सौ धनुष परिमित होती है। उत्तर वैक्रिय शरीर की जघन्यतः शरीरावगाहना अंगुल के संख्यातवें भाग जितनी तथा उत्कृष्टः पांच सौ धनुष के तुल्य है।

तमतमाए पुढवीए णेरइयाणं भंते! केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - भवधारणिज्जा य १ उत्तरवेउव्विया य २। तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा सा - जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं पंचधणुसयाइं।

तत्थ णं जा सा उत्तरवेउव्विया सा - जहण्णेणं अंगुलस्स संखेज्जइभागं, उक्कोसेणं धणुसहस्साइं।

भावार्थ - हे भगवन्! तमस्तमा पृथ्वी के नारकों की शरीरावगाहना कियत् विस्तार युक्त बतलाई गई है?

हे आयुष्मन् गौतम! वह दो प्रकार की प्रज्ञप्त हुई है - १. भवधारणीय एवं २. उत्तर वैक्रिय। उनमें जो भवधारणीय शरीरावगाहना है, वह जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी तथा उत्कृष्टतः पांच सौ धनुष प्रमाण है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उनमें उत्तर वैक्रिय देहावगाहना जघन्यतः अंगुल के संख्यातवें भाग तुल्य तथा उत्कृष्टतः एक हजार धनुष परिमित है।

भवनपति देवों की शरीरावगाहना

असुरकुमाराणं भंते! केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - भवधारणिज्जा य १ उत्तर वेउव्विया य २। तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा सा - जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं सत्तरयणीओ।

तत्थ णं जा सा उत्तरवेउव्विया सा - जहण्णेणं अंगुलस्स संखेज्जइभागं, उक्कोसेणं जोयणसयसहस्सं एवं असुरकुमारगमेणं जाव थणिय-कुमाराणं भाणियव्वं।

भावार्थ - हे भगवन्! असुरकुमार देवों की शरीरावगाहना कियत् विस्तीर्ण बतलाई गई है?

हे आयुष्मन् गौतम! वह भवधारणीय एवं उत्तर वैक्रिय के रूप में दो प्रकार की बतलाई गई है। इनमें से भवधारणीय जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी तथा उत्कृष्टतः सात रत्नि जितनी होती है।

उनमें जो उत्तर वैक्रिय देहावगाहना है, वह कम से कम अंगुल के संख्यातवें भाग परिमित तथा अधिक से अधिक एक लाख योजन परिमित है।

इसी प्रकार से - असुरकुमार देवों के समान ही (नागकुमारों) यावत् स्तनितकुमारों तक समस्त भवनवासी देवों की अवगाहना कथनीय है।

पांच स्थावरों की शरीरावगाहना

पुढविकाइयाणं भंते! केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं वि अंगुलस्स असंखेज्जइभागं। एवं सुहुमाणं ओहियाणं अपज्जत्तगाणं पज्जत्तगाणं बादराणं ओहियाणं अपज्जत्तगाणं पज्जत्तगाणं च भाणियव्वं। एवं जाव बायरवाउकाइयाणं पज्जत्तगाणं भाणियव्वं।

शब्दार्थ - **ओहियाणं** - सामान्य रूप से, **अपज्जत्तगाणं** - अपर्याप्त, **पज्जत्तगाणं** - पर्याप्त।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - हे भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीवों की शरीरावगाहना कियत् विस्तृत कही गई है?

आयुष्मन् गौतम! यह जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी तथा उत्कृष्टतः (भी) अंगुल के असंख्यात भाग परिमित होती है। इसी प्रकार औघिक (सामान्यतः) पर्याप्त और अपर्याप्त तीनों ही अपेक्षाओं से सूक्ष्म (पृथ्वीकायिक जीवों की) अवगाहना कथनीय है। इसी तरह यावत् पर्याप्ति युक्त बादर वायुकायिक जीवों की अवगाहना कथनीय है।

विवेचन - इस सूत्र में जघन्यतः और उत्कृष्टतः अंगुल के असंख्यातवें भाग के समान शरीरावगाहना की चर्चा हुई है, वहाँ यह शंका उपस्थित होती है - जब दोनों ही असंख्य हैं तब जघन्य और उत्कृष्ट का भेद कैसे सिद्ध होगा?

यहाँ यह ज्ञातव्य है कि असंख्य वह होता है, जो संख्येय को पार कर जाता है। किन्तु संख्येय को पार करने पर भी पारस्परिक न्यूनाधिक तारतम्य की दृष्टि से असंख्य की अनेक कोटियाँ बनती हैं।

इसलिए जो जघन्य के साथ असंख्य का उल्लेख हुआ है, वह असंख्य न्यूनकोटि का है तथा उत्कृष्ट के साथ प्रयुक्त असंख्य तदपेक्षया आधिक्य लिए हुए है।

वणस्सइकाइयाणं भंते! केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं साइरेगं जोयणसहस्सं।

सुहुमवणस्सइकाइयाणं ओहियाणं अपज्जत्तगाणं पज्जत्तगाणं तिण्हं पि- जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखेज्जइभागं।

बायरवणस्सइकाइयाणं ओहियाणं - जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं साइरेगं जोयणसहस्सं। अपज्जत्तगाणं - जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखेज्जइभागं। पज्जत्तगाणं - जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं साइरेगं जोयणसहस्सं।

शब्दार्थ - साइरेगं - सातिरेक - कुछ अधिक।

भावार्थ - हे भगवन्! वनस्पतिकायिक जीवों की शरीरावगाहना कितनी कही गई है?

आयुष्मन् गौतम! यह जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग परिमित तथा उत्कृष्टतः कुछ अधिक एक हजार योजन होती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूक्ष्म वनस्पतिकायिक जीवों की शरीरावगाहना औधिक (सामान्य) पर्याप्त एवं अपर्याप्त- तीनों ही अपेक्षाओं से जघन्यतः अंगुल के असंख्येय भाग जितनी तथा उत्कृष्टतः भी अंगुल के असंख्यात भाग जितनी होती है।

बादर वनस्पतिकायिक जीवों की देहावगाहना औधिक रूप में जघन्यतः अंगुल के असंख्येय भाग जितनी तथा उत्कृष्टतः एक योजन से कुछ अधिक होती है।

(बादर वनस्पतिकायिक जीवों की शरीरावगाहना) अपर्याप्त रूप में जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी तथा उत्कृष्टतः (भी) अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी होती है।

(बादर वनस्पतिकायिक जीवों की शरीरावगाहना) पर्याप्त रूप में जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी तथा उत्कृष्टतः एक हजार योजन से कुछ अधिक होती है।

द्वीन्द्रिय जीवों की देहावगाहना

बेइंदियाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं बारसजोयणाइं। अपज्जत्तगाणं - जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं वि अंगुलस्स असंखेज्जइभागं। पज्जत्तगाणं - जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं बारसजोयणाइं।

भावार्थ - हे भगवन्! द्वीन्द्रिय जीवों के संदर्भ में जिज्ञासा कथनीय है।

हे आयुष्मन् गौतम! द्वीन्द्रिय जीवों की देहावगाहना जघन्यतः अंगुल के असंख्यात भाग परिमित तथा उत्कृष्टतः बारह योजन होती है। अपर्याप्तों की जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी तथा उत्कृष्टतः भी अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी होती है।

पर्याप्तों की जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी तथा उत्कृष्टतः बारह योजन प्रमाण होती है।

त्रीन्द्रिय जीवों की अवगाहना

तेइंदियाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं तिण्णि गाउयाइं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अपज्जत्तगाणं - जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखेज्जइभागं। पज्जत्तगाणं - जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं तिण्णि गाउयाइं।

भावार्थ - भगवन्! त्रीन्द्रिय जीवों के संबंध में भी (पूर्ववत्) प्रश्न या जिज्ञासा है।

आयुष्मन् गौतम! उनकी देहावगाहना जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग तुल्य तथा उत्कृष्टतः तीन गव्यूति होती है। अपर्याप्तों की जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी तथा उत्कृष्टतः भी अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी होती है। पर्याप्तों की जघन्यतः अंगुल के असंख्येय भाग जितनी तथा उत्कृष्टः तीन गव्यूति प्रमाण होती है।

चतुरिन्द्रिय जीवों की अवगाहना

चउरिंदियाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं चत्तारि गाउयाइं। अपज्जत्तगाणं - जहण्णेणं० उक्कोसेणं वि अंगुलस्स असंखेज्जइभागं। पज्जत्तगाणं- जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं चत्तारि गाउयाइं।

भावार्थ - हे भगवन्! चतुरिन्द्रिय जीवों के संदर्भ में भी इसी प्रकार प्रश्न किया गया है।

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी शरीरावगाहना जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग के तुल्य तथा उत्कृष्टतः चार गव्यूति परिमित होती है। अपर्याप्तों की जघन्यतः तथा उत्कृष्टतः - दोनों रूपों में अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी होती है, पर्याप्तों की जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी तथा उत्कृष्टतः चार गव्यूति परिमित होती है।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की अवगाहना

पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं भंते! केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं जोयणसहस्सं।

जलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा।

गोयमा! एवं चेव। सम्मुच्छिमजलयरपंचिंदिय तिरिक्खजोणियाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं जोयणसहस्सं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अपज्जत्तगसम्मुच्छिमजलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखेज्जइभागं।

पज्जत्तगसम्मुच्छिमजलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं जोयणसहस्सं।

गब्भवक्कंतियजलयरपंचिंदियपुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं जोयणसहस्सं।

अपज्जत्तगगब्भवक्कंतियजलयरपंचिंदियपुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं वि अंगुलस्स असंखेज्जइभागं।

पज्जत्तगगब्भवक्कंतियजलयरपुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं जोयणसहस्सं।

भावार्थ - हे भगवन्! पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की अवगाहना कितनी विस्तीर्ण बतलाई गई है?

हे आयुष्मन् गौतम! पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की देहावगाहना जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी तथा उत्कृष्टतः एक हजार योजन है।

जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक की अवगाहना के संदर्भ में पूर्ववत् प्रश्न है।

हे आयुष्यन् गौतम! इसका समाधान पूर्ववत् है।

सम्मूर्च्छिम जलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यंच योनिक जीवों की अवगाहना के संदर्भ में पूर्ववत् प्रश्न है।

हे आयुष्मन् गौतम! सम्मूर्च्छिम जलचर-पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की अवगाहना जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी तथा उत्कृष्टतः एक हजार योजन परिमित है।

अपर्याप्तक सम्मूर्च्छिम जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की अवगाहना के संबंध में पूर्वानुसार प्रश्न है।

हे आयुष्मन् गौतम! अपर्याप्तक सम्मूर्च्छिम जलचर पंचेन्द्रिय-तिर्यंच योनिक जीवों की

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शरीरावगाहना जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी तथा उत्कृष्टतः भी अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी है।

पर्याप्तक सम्मूर्च्छिम-जलचर-पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की अवगाहना के संदर्भ में पूर्ववत् प्रश्न है।

हे आयुष्मन् गौतम! पर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-जलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यंच योनिक जीवों की शरीरावगाहना जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी तथा उत्कृष्टतः एक हजार योजन है।

गर्भव्युत्क्रांतिक जलचर पंचेन्द्रिय-जीवों की देहावगाहना के संदर्भ में जिज्ञासा की गई है।

हे आयुष्मन् गौतम! गर्भव्युत्क्रांतिक-जलचर-पंचेन्द्रिय-जीवों की अवगाहना जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी तथा उत्कृष्टतः एक हजार योजन होती है।

अपर्याप्तक-गर्भव्युत्क्रांतिक-जलचर-पंचेन्द्रिय जीवों की अवगाहना के संदर्भ में प्रश्न है।

हे आयुष्मन् गौतम! अपर्याप्तक-गर्भव्युत्क्रांतिक-जलचर-पंचेन्द्रिय जीवों की अवगाहना जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी तथा उत्कृष्टतः भी अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी होती है।

पर्याप्तक गर्भव्युत्क्रांतिक-जलचर जीवों की अवगाहना के संदर्भ में प्रश्न है।

हे आयुष्मन् गौतम! पर्याप्तक-गर्भव्युत्क्रांतिक-जलचर जीवों की अवगाहना जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी तथा उत्कृष्टतः एक हजार योजन होती है।

चउप्पयथलयरपंचिंदियपुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं छ गाउयाइं।

सम्मुच्छिमचउप्पयथलयरपुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं गाउयपुहुत्तं।

अपज्जत्तगसम्मुच्छिम चउप्पयथलयरपुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं वि अंगुलस्स असंखेज्जइभागं।

पज्जत्तगसम्मुच्छिमचउप्पयथलयरपुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं गाउयपुहुत्तं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गब्भवक्कंतियचउप्पय थलयरपुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं छ गाउयाइं।

अपज्जत्तगगब्भवक्कंतियचउप्पयथलयरपुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखेज्जइभागं।

पज्जत्तगगब्भवक्कंतियचउप्पय थलयरपुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं उक्कोसेणं छ गाउयाइं।

उरपरिसप्पथलयरपंचिंदियपुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं जोयणसहस्सं।

सम्मुच्छिमउरपरिसप्पथलयरपुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं जोयणपुहुत्तं।

अपज्जत्तगसम्मुच्छिमउरपरिसप्पथलयरपुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखेज्जइभागं।

पज्जत्तगसम्मुच्छिमउरपरिसप्पथलयरपुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं जोयणपुहुत्तं।

गब्भवक्कंतियउरपरिसप्पथलयरपुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं जोयणसहस्सं।

अपज्जत्तगगब्भवक्कंतियउरपरिसप्पथलयरपुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखेज्जइभागं।

पज्जत्तगगब्भवक्कंतियउरपरिसप्पथलयरपुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं जोयणसहस्सं।

भुयपरिसप्पथलयरपंचिंदियाणं पुच्छा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं गाउयपुहुत्तं।

सम्मुच्छिमभुयपरिसप्पथलयरपंचिंदियाणं पुच्छा।

गोयमा! जहणेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं धणुपुहुत्तं।

अपज्जत्तगसम्मुच्छिमभुयपरिसप्पथलयराणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखेज्जइभागं।

पज्जत्तगसम्मुच्छिमभुयपरिसप्पाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं धणुपुहुत्तं।

गब्भवक्कंतियभुयपरिसप्पथलयराणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं गाउयपुहुत्तं।

अपज्जत्तगभुयपरिसप्पाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखेज्जइभागं।

पज्जत्तगभुयपरिसप्पाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं गाउयपुहुत्तं।

भावार्थ - चतुष्पद-थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यंच योनिक जीवों की अवगाहना के संदर्भ में प्रश्न है।

आयुष्मन् गौतम! चतुष्पद-थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यंचयोनिक जीवों की अवगाहना जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी तथा उत्कृष्टतः छह गव्यूति है।

सम्मूर्च्छिम-चतुष्पद-थलचर-जीवों की अवगाहना के संदर्भ में जिज्ञासा है।

आयुष्मन् गौतम! इनकी अवगाहना जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी तथा उत्कृष्टतः गव्यूति पृथक्त्व (दो से छह गव्यूति) परिमित है।

अपर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-चतुष्पद-थलचर जीवों की अवगाहना के संदर्भ में प्रश्न है।

आयुष्यमन् गौतम! इनकी अवगाहना जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी तथा उत्कृष्टतः भी अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी होती है।

पर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-चतुष्पद-थलचर जीवों की अवगाहना के विषय में जिज्ञासा है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आयुष्मन् गौतम! इनकी अवगाहना जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग परिमित तथा उत्कृष्टतः गव्यूतिपृथक्त्व होती है।

गर्भव्युत्क्रांतिक-चतुष्पद-थलचर-जीवों की अवगाहना के संबंध में प्रश्न है।

आयुष्मन् गौतम! इनकी अवगाहना जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी तथा उत्कृष्टतः छह गव्यूति होती है।

अपर्याप्तक-गर्भव्युत्क्रांतिक-चतुष्पद-थलचर जीवों की अवगाहना के संबंध में पृच्छा।

आयुष्मन् गौतम! इनकी अवगाहना जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी तथा उत्कृष्टतः भी अंगुल के असंख्यातवें भाग परिमित होती है।

पर्याप्तक-गर्भव्युत्क्रांतिक-चतुष्पद-थलचर जीवों की अवगाहना के विषय में पूछा।

आयुष्मन् गौतम! इनकी अवगाहना जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग परिमित तथा उत्कृष्टतः छह गव्यूति होती है।

उरः परिसर्प-थलचर-पंचेन्द्रिय जीवों की अवगाहना के संदर्भ में प्रश्न है?

आयुष्मन् गौतम! इनकी अवगाहना जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी तथा उत्कृष्टतः एक हजार योजन परिमित होती है।

सम्मूर्च्छिम-उरःपरिसर्प-थलचर-पंचेन्द्रिय जीवों की अवगाहना के संदर्भ में पूछा।

आयुष्मन् गौतम! इनकी अवगाहना जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी तथा उत्कृष्टतः योजन पृथक्त्व परिमित होती है।

अपर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-उरःपरिसर्प-थलचर जीवों की अवगाहना के संबंध में जिज्ञासा है। आयुष्यमन् गौतम! इनकी अवगाहना जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी तथा उत्कृष्टतः भी अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी होती है।

पर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-उरःपरिसर्प-थलचर जीवों की अवगाहना के विषय में पूछा।

आयुष्मन् गौतम! इनकी अवगाहना जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग परिमित तथा उत्कृष्टतः योजन पृथक्त्व होती है।

गर्भव्युत्क्रांतिक - उरःपरिसर्प-थलचर जीवों की अवगाहना के विषय में प्रश्न है।

आयुष्मन् गौतम! इनकी अवगाहना जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी तथा उत्कृष्टतः एक हजार योजन होती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अपर्याप्तक-गर्भव्युत्क्रांतिक-उरःपरिसर्प-थलचर जीवों की अवगाहना के संबंध में प्रश्न पूछा।

आयुष्मन् गौतम! इनकी अवगाहना जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग पर्यन्त तथा उत्कृष्टतः भी अंगुल के असंख्यातवें भाग परिमित होती है।

पर्याप्तक-गर्भव्युत्क्रांतिक-उरः परिसर्प-थलचर जीवों की अवगाहना के विषय में प्रश्न पूछा।

आयुष्मन् गौतम! इनकी अवगाहना जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी तथा उत्कृष्टतः एक हजार योजन परिमित होती है।

भुजपरिसर्प-थलचर-पंचेन्द्रिय जीवों की अवगाहना के संदर्भ में प्रश्न किया गया।

आयुष्मन् गौतम! इनकी अवगाहना जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग परिमित तथा उत्कृष्टतः गव्यूतिपृथक्त्व होती है।

सम्मूर्च्छिम - भुजपरिसर्प-थलचर-पंचेन्द्रिय जीवों की अवगाहना के संदर्भ में प्रश्न है।

आयुष्मन् गौतम! इनकी अवगाहना जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग परिमित तथा उत्कृष्टतः धनुष पृथक्त्व होती है।

अपर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-भुजपरिसर्प-थलचर जीवों की अवगाहना के संदर्भ में जिज्ञासा है।

आयुष्मन् गौतम! इनकी अवगाहना जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग परिमित तथा उत्कृष्टतः भी अंगुल के असंख्यातवें भाग परिमित है।

पर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-भुजपरिसर्पों की शरीरावगाहना के संदर्भ में प्रश्न किया गया।

आयुष्मन् गौतम! इनकी अवगाहना जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग परिमित तथा उत्कृष्टतः धनुष पृथक्त्व होती है।

गर्भव्युत्क्रांतिक-भुजपरिसर्प-थलचर जीवों के संदर्भ में प्रश्न है।

आयुष्मन् गौतम! इनकी अवगाहना जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग परिमित तथा उत्कृष्टतः गव्यूतिपृथक्त्व होती है।

अपर्याप्तक-भुजपरिसर्पों की शरीरावगाहना के विषय में पूछा गया।

आयुष्मन् गौतम! इनकी अवगाहना जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग परिमित तथा उत्कृष्टतः भी अंगुल के असंख्यातवें भाग परिमित होती है।

पर्याप्तक-भुजपरिसर्पों की शरीरावगाहना के विषय में पूछा गया।

आयुष्मन् गौतम! इनकी अवगाहना जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी तथा उत्कृष्टतः गव्यूतिपृथक्त्व होती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - उपर्युक्त सूत्र में समुच्चय (औघिक) चतुष्पद स्थलचर तिर्यंच पंचेन्द्रिय की शरीरावगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट छह गव्यूति (कोस) की बताई गई है। सम्मूर्च्छिम चतुष्पद स्थलचर तिर्यंच पंचेन्द्रिय की शरीरावगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट गव्यूति पृथक्त्व की बताई है। यहाँ पर 'गव्यूति पृथक्त्व' शब्द से 'जघन्य दो गव्यूति उत्कृष्ट छह गव्यूति से अधिक' नहीं समझना चाहिये। क्योंकि औघिक बोल से अधिक अवगाहना उनके भेदों में किसी की भी नहीं होती है। इसी प्रकार पर्याप्त सम्मूर्च्छिम चतुष्पद स्थलचर तिर्यंच पंचेन्द्रिय की शरीरावगाहना के विषय में भी जानना चाहिये।

सम्मूर्च्छिम उरपरिसर्प स्थलचर तिर्यंच पंचेन्द्रिय की शरीरावगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग उत्कृष्ट योजन पृथक्त्व बताई है। यहाँ पर 'योजन पृथक्त्व' से 'दो योजन से लेकर बारह योजन एवं इससे भी अधिक' यथायोग्य अवगाहना समझना चाहिये। क्योंकि प्रज्ञापना सूत्र के द्वितीय पद में सम्मूर्च्छिम उरपरिसर्प तिर्यंच पंचेन्द्रिय के भेद रूप में 'आसालिक' की अवगाहना उत्कृष्ट बारह योजन की बताई गई है। अतः यहाँ पर योजन पृथक्त्व शब्द से बारह योजन का ग्रहण भी समझ लेना चाहिये।

खहयरपंचिंदियपुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं उक्कोसेणं धणुपुहुत्तं।

सम्मुच्छिमखहयराणं जहा भुयगपरिसप्पसम्मुच्छिमाणं तिसु वि गमेसु तहा भाणियव्वं।

गब्भवक्कंतियखहयरपुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं धणुपुहुत्तं।

अपज्जत्तगगब्भवक्कंतियखहयरपुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखेज्जइभागं।

पज्जत्तगगब्भवक्कंतियखहयरपुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं धणुपुहुत्तं।

शब्दार्थ - खहयर - खेचर - गगनचारी।

भावार्थ - खेचर-पंचेन्द्रिय जीवों की अवगाहना के विषय में पूछा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आयुष्मन् गौतम! इनकी अवगाहना जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी तथा उत्कृष्टतः धनुष पृथक्त्व होती है।

सम्मूर्च्छिम-खेचर-पंचेन्द्रिय जीवों की अवगाहना (पूर्वोक्त सूत्रानुसार) भुजगपरिसर्प-सम्मूर्च्छिम जीवों के तीनों पाठों के अनुसार ही कथनीय है।

गर्भव्युत्क्रांतिक-खेचर जीवों की अवगाहना के विषय में प्रश्न है।

आयुष्मन् गौतम! इनकी अवगाहना जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग परिमित तथा उत्कृष्टतः धनुष पृथक्त्व होती है।

अपर्याप्तक गर्भव्युत्क्रांतिक खेचर जीवों की अवगाहना के विषय में जिज्ञासा है।

आयुष्मन् गौतम! इनकी अवगाहना जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग परिमित तथा उत्कृष्टतः भी अंगुल के असंख्यातवें भाग परिमित होती है।

पर्याप्तक-गर्भव्युत्क्रांतिक खेचर जीवों की अवगाहना के संदर्भ में प्रश्न है।

आयुष्मन् गौतम! इनकी अवगाहना जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग परिमित तथा उत्कृष्टतः धनुष पृथक्त्व होती है।

एत्थ संगहणिगाहाओ हवंति, तंजहा -

जोयणसहस्स गाउयपुहुत्त, तत्तो य जोयणपुहुत्तं।
दोण्हं तु धणुपुहुत्तं, समुच्छिमे होइ उच्चत्तं॥१॥
जोयणसहस्स छग्गाउयाइं, तत्तो य जोयणसहस्सं।
गाउयपुहुत्त भुयगे, पक्खीसु भवे धणुपुहुत्तं॥२॥

शब्दार्थ - उच्चत्तं - उत्कृष्ट, **पक्खीसु** - पक्षियों में।

भावार्थ - (पूर्वोक्त समस्त वर्णन की) यहाँ संग्रहणी गाथाएं हैं, जो इस प्रकार हैं -

सम्मूर्च्छिम-जलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यंच योनिक जीवों की उत्कृष्ट अवगाहना एक हजार योजन, चतुष्पद थलचर जीवों की गव्यूति पृथक्त्व, उरःपरिसर्प जीवों की योजन पृथक्त्व, भुजपरिसर्प-थलचर जीवों की एवं खेचर तिर्यंच जीवों की शरीरावगाहना धनुःपृथक्त्व होती है॥१॥

गर्भजतिर्यंच-पंचेन्द्रिय जीवों में जलचर जीवों की एक सहस्र योजन, चतुष्पद-थलचर जीवों की छह गव्यूति परिमित, उरःपरिसर्प-थलचर जीवों की एक सहस्र योजन, भुजपरिसर्प-स्थलचर जीवों की गव्यूति पृथक्त्व एवं गगनचारी जीवों की धनुःपृथक्त्व प्रमाण उत्कृष्ट शरीरावगाहना होती है॥२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मनुष्यगति देहावगाहना

मणुस्साणं भंते! केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं तिण्णि गाउयाइं।

सम्मुच्छिममणुस्साणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखेज्जइभागं। गब्भवक्कंतियमणुस्साणं जाव गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं उक्कोसेणं तिण्णि गाउयाइं।

अपज्जत्तगगब्भवक्कंतियमणुस्साणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखेज्जइभागं।

पज्जत्तगगब्भवक्कंतियमणुस्साणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं तिण्णि गाउयाइं।

शब्दार्थ - मणुस्साणं - मनुष्यों की।

भावार्थ - हे भगवन्! मनुष्यों की शरीरावगाहना कियत् विस्तीर्ण बतलाई गई है?

हे आयुष्मन् गौतम! मनुष्यों की शरीरावगाहना जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी तथा उत्कृष्टतः तीन गव्यूति होती है।

सम्मूर्च्छिम मनुष्यों की अवगाहना के विषय में प्रश्न है।

हे आयुष्मन् गौतम! सम्मूर्च्छिम मनुष्यों की अवगाहना कम से कम अंगुल के असंख्यातवें भाग परिमित तथा अधिक से अधिक भी अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी होती है।

गर्भव्युत्क्रांतिक मनुष्यों की शरीरावगाहना के विषय में पृच्छा है।

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी शरीरावगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग है, उत्कृष्ट तीन गव्यूति होती है।

अपर्याप्तक गर्भव्युत्क्रांतिक मनुष्यों की शरीरावगाहना के विषय में जिज्ञासा है।

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी जघन्यतः देहावगाहना अंगुल के असख्यातवें भाग जितनी तथा उत्कृष्टतः भी अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी होती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पर्याप्तक-गर्भव्युत्क्रांतिक मनुष्यों के विषय में पूछा।

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी देहावगाहना जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी तथा उत्कृष्टतः तीन गव्यूति होती है।

विवेचन - यहाँ मनुष्यों की शरीरावगाहना का जो वर्णन आया है, उसमें सम्मूर्च्छिम मनुष्यों के पर्याप्त एवं अपर्याप्त संज्ञक भेदों का उल्लेख नहीं हुआ है। इस संबंध में यह ज्ञातव्य है कि सम्मूर्च्छिम मनुष्य गर्भज मनुष्यों के शुक्र, रक्त, मल-मूत्र आदि से उत्पन्न होते हैं और वे पर्याप्तियाँ पूर्ण करने से पूर्व ही मर जाते हैं। अर्थात् वे सभी जीव नियमा अपर्याप्त ही होते हैं।

वाणव्यंतर एवं ज्योतिष्क देवों की शरीरावगाहना

वाणमंतराणं भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विया य जहा असुरकुमाराणं तहा भाणियव्वा। जहा वाणमंतराणं तहा जोइसियाण वि।

भावार्थ - वाणव्यंतर देवों की भवधारणीय एवं उत्तर वैक्रिय शरीरावगाहना असुरकुमारों के सदृश कथनीय है।

जितनी अवगाहना वाणव्यंतर देवों की होती है, उतनी ही ज्योतिष्क देवों की भी होती है।

वैमानिक आदि देवों की देहावगाहना

सोहम्मे कप्पे देवाणं भंते! केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - भवधारणिज्जा य १ उत्तरवेउव्विया य २। तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा सा-जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं सत्त रयणीओ। तत्थ णं जा सा उत्तरवेउव्विया सा-जहण्णेणं अंगुलस्स संखेज्जइभागं, उक्कोसेणं जोयणसयसहस्सं।

एवं ईसाणकप्पे वि भाणियव्वं। जहा सोहम्मकप्पाण देवाणं पुच्छा तहा सेसकप्पदेवाणं पुच्छा भाणियव्वा जाव अच्चुयकप्पो।

सणंकुमारे भवधारणिज्जा-जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं छ रयणीओ। उत्तर वेउव्विया जहा सोहम्मे तहा भाणियव्वा। जहा सणंकुमारे तहा माहिंदे वि भाणियव्वा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बंभलंतगेसु भवधारणिज्जा-जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं पंचरयणीओ। उत्तरवेउव्विया जहा सोहम्मे।

महासुक्कसहस्सारेसु भवधारणिज्जा-जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं चत्तारि रयणीओ। उत्तरवेउव्विया जहा सोहम्मे।

आणयपाणयआरणअच्चुएसु चउसु वि भवधारणिज्जा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं तिण्णि रयणीओ। उत्तरवेउव्विया जहा सोहम्मे।

शब्दार्थ - सोहम्मे कप्पे - सौधर्म कल्प।

भावार्थ - हे भगवन्! सौधर्म कल्प के देवों की देहावगाहना कितनी बतलाई गई है?

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी देहावगाहना भवधारणीय एवं उत्तर वैक्रिय के रूप में दो प्रकार की बतलाई गई है।

इनमें जो भवधारणीय है, वह जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग परिमित तथा उत्कृष्टतः सात रत्नि प्रमाण होती है।

(तथा) उत्तरवैक्रिय अवगाहना जघन्यतः अंगुल के संख्यातवें भाग परिमित तथा उत्कृष्टतः एक हजार योजन परिमित होती है।

इसी भांति ईशान कल्प के देवों की शरीरावगाहना भी कथनीय है।

जिस प्रकार सौधर्म कल्प के देवों के संदर्भ में (पूर्वानुसार) प्रश्न है, उसी प्रकार शेष देवों यावत् अच्युत कल्प के देवों तक प्रश्न (एवं अवगाहना) पूर्ववत् कथनीय है।

सनत्कुमार कल्प में भवधारणीय शरीरावगाहना जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी तथा उत्कृष्टतः छह रत्नि होती है। उत्तरवैक्रिय शरीरावगाहना उसी प्रकार कथनीय है, जिस प्रकार सौधर्मकल्प की है।

माहेन्द्रकल्प में सनत्कुमार कल्प के समान ही अवगाहना को जानना चाहिये।

ब्रह्मलोक और लांतक - इन दोनों कल्पों में भवधारणीय शरीर की अवगाहना जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी तथा उत्कृष्टतः पांच रत्नि होती है।

उत्तर वैक्रिय शरीर की अवगाहना सौधर्म कल्प के समान ही है।

महाशुक्र और सहस्रारकल्पों में भवधारणीय शरीरावगाहना जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी तथा उत्कृष्टतः चार रत्नि परिमित होती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यहाँ उत्तरवैक्रिय देहावगाहना सौधर्मकल्प के सदृश ज्ञातव्य है।

आनत, प्राणत, आरण और अच्युत-इन चारों ही कल्पों में भवधारणीय अवगाहना जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी तथा उत्कृष्टतः तीन रत्नि होती है।

इनकी उत्तर वैक्रिय शरीरावगाहना (भी) सौधर्म कल्पानुसार ग्राह्य है।

ग्रैवेयक और अनुत्तरोपपातिक देवों की अवगाहना

गेवेज्जगदेवाणं भंते! केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

गोयमा! एगे भवधारणिज्जे सरीरगे पण्णत्ते। से जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं दुण्णि रयणीओ।

अणुत्तरोववाइयदेवाणं भंते! केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

गोयमा! एगे भवधारणिज्जे सरीरगे पण्णत्ते। से जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं एगा रयणी उ।

भावार्थ - हे भगवन्! ग्रैवेयक देवों की शरीरावगाहना कितनी बतलाई गई है?

हे आयुष्मन् गौतम! ग्रैवेयक देवों में केवल (एक) भवधारणीय शरीरावगाहना होती है। यह जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी तथा उत्कृष्टतः दो रत्नि होती है।

हे भगवन्! अनुत्तरोपपातिक देवों की शरीरावगाहना कितनी प्रज्ञप्त हुई है?

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी (भी शरीरावगाहना) केवल (एक) भवधारणीय प्रज्ञप्त हुई है। यह जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी तथा उत्कृष्टतः एक रत्नि परिमित होती है।

विवेचन - ग्रैवेयक एवं अनुत्तरोपपातिक देव उत्तरविक्रिया नहीं करते। अतः विकुर्वणा के अभाव में केवल उनके भवधारणीय शरीर की अवगाहना ही यहाँ बतलाई गई है। इन देवों में उत्सुकता एवं चंचलता नहीं होने से ये देव उत्तरवैक्रिय रूपों की विकुर्वणा नहीं करते हैं।

उत्सेधांगुल : भेद एवं अल्प-बहुत्व

से समासओ तिविहे पण्णत्ते। तंजहा - सूइअंगुले १ पयरंगुले २ घणंगुले ३। एगंगुलायया एगपएसिया सेढी सूइअंगुले, सूई सूईए गुणिया पयरंगुले, पयरं सूईए गुणियं घणंगुले।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ - **समासओ** - समस्त रूप में-संक्षेप में।

भावार्थ - वह (उत्सेधांगुल) संक्षेप में तीन प्रकार का बतलाया गया है, यथा -

१. सूचि अंगुल २. प्रतरांगुल एवं ३. घनांगुल।

एक अंगुल लम्बी तथा एक प्रदेश चौड़ी (आकाश प्रदेशों की) श्रेणी को सूचि अंगुल कहते हैं। सूचि को सूचि से गुणित करने पर प्रतर अंगुल निष्पन्न होता है तथा सूचि अंगुल को प्रतरांगुल से गुणित करने पर घनांगुल निष्पत्ति पाता है। सूचि अंगुल में केवल लंबाई का, प्रतर अंगुल में लम्बाई और चौड़ाई का तथा घनांगुल में लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई-तीनों का ग्रहण होता है।

एएसि णं सूइअंगुलपयरंगुलघणंगुलाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पे वा बहुए वा तुल्ले वा विसेसाहिए वा?

सव्वत्थोवे सूइअंगुले, पयरंगुले असंखेज्जगुणे, घणंगुले संखेज्जगुणे। सेत्तं उस्सेहंगुले।

भावार्थ - इन सूचि अंगुल, प्रतरांगुल एवं घनांगुल में कौन-किससे, कितना अल्प, बहुत, तुल्य (समान) या विशेषाधिक है?

इनमें सूचि अंगुल सर्वस्तोक - सबसे छोटा, प्रतरांगुल इससे असंख्यात गुना और घनांगुल इससे (प्रतरांगुल से) असंख्यात गुणा है।

यह उत्सेधांगुल का स्वरूप निरूपण है।

३. प्रमाणांगुल

से किं तं पमाणंगुले?

पमाणंगुले - एगमेगस्स रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिस्स अट्ठसोवण्णिए कागणीरयणे छत्तले दुवालसंसिए अट्ठकण्णिए अहिगरणसंठाणसंठिए पण्णत्ते, तस्स णं एगमेगा कोडी उस्सेहंगुलविक्खंभा, तं समणस्स भगवओ महावीरस्स अद्धंगुलं, तं सहस्सगुणं पमाणंगुलं भवइ।

शब्दार्थ - **एगमेगस्स** - एक मात्र, **रण्णो** - राजा का, **चाउरंत चक्कवट्टिस्स** - चातुरंत चक्रवर्ती के - चारों दिशाओं के एकमात्र शासक, **छत्तले** - छह तलों - छह परतों से युक्त,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अहिगरणसंठाणसंठिए - अधिकरण संस्थान संस्थित - स्वर्णकार के एहरन जैसे संस्थान से युक्त, **विक्खंभा** - चौड़ाई।

भावार्थ - प्रमाणांगुल का क्या स्वरूप है?

चारों दिशाओं के एक मात्र अधिनायक चक्रवर्ती सम्राट के अष्ट स्वर्णप्रमाण, छह तल युक्त, बारह कोटियों (किनारे) एवं आठ कर्णिकाओं से युक्त, स्वर्णकार के एहरण के समान आकार में संस्थित काकणीरत्न की एक-एक कोटि उत्सेधांगुल परिमित चौड़ाई युक्त होती है। वह भगवान् महावीर के अर्द्धांगुल के तुल्य होती है। प्रमाणांगुल उससे हजार गुना होता है।

विवेचन - काकणीरत्न की एक-एक कोटि समचतुरस्र एक उत्सेधांगुल प्रमाण अर्थात एक उत्सेधांगुल जितनी लम्बी चौड़ी जाड़ी होती है ऐसा मूल पाठ एवं टीका में भी बताया है। अर्थात् एक उत्सेधांगुल घन जितनी समझना चाहिये।

जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र में एवं संग्रहणी आदि ग्रन्थों में काकणीरत्न को चार अंगुल जितना बताया है यथा - **'चउरंगुलप्पमाणा सुवण्णवरकागणी नेया इति'**। इसे मतान्तर समझना चाहिये। क्योंकि चार अंगुल लम्बी, चार अंगुल चौड़ी और चार अंगुल जाड़ाई वाली वस्तु आठ सौनेया के भार से ज्यादा की हो सकती है। अतः एक हाथ के घन वाली वस्तु का वजन आठ सौनेया जितना हो सकने से इस तरह से मानना उचित लगता है।

उपर्युक्त सूत्र में - 'किस व्यक्ति के स्वयं के अंगुल के बराबर प्रमाण अंगुल होता है' इसका वर्णन नहीं दिया गया है। प्राचीन परम्परा एवं सिद्धांतवादी आचार्य श्री जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण द्वारा रचित विशेषावश्यक भाष्य एवं विशेषणवती ग्रन्थ के अनुसार-भगवान् ऋषभदेव एवं भरतचक्रवर्ती के स्वयं के एक अंगुल के बराबर प्रमाण अंगुल का होना बताया है। यहाँ मूलपाठ में तो -'श्रमण भगवान् महावीर के अर्द्धांगुल से एक हजार गुणा प्रमाणांगुल होता है।' मात्र इतना ही बताया है। उपर्युक्त ग्रन्थों में अंगुल संबंधी विस्तार से वर्णन किया गया है।

एएणं अंगुलपमाणेणं छ अंगुलाइं=पाओ, दुवालस अंगुलाइं=विहत्थी, दो विहत्थीओ=रयणी, दो रयणीओ=कुच्छी, दो कुच्छीओ=धणू, दो धणुसहस्साइं=गाउयं, चत्तारि गाउयाइं=जोयणं।

भावार्थ - इस प्रकार से इस अंगुल प्रमाणानुसार छह अंगुल का एक पाद, बारह अंगुल की एक वितस्ति, दो वितस्तियों की एक रत्नि, दो रत्नियों की एक कुक्षि, दो कुक्षियों का एक धनुष, दो हजार धनुष की एक गव्यूति तथा चार गव्यूति एक योजन के बराबर होती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रमाणांगुल का प्रयोजन

एएणं पमाणंगुलेणं किं पओयणं?

एएणं पमाणंगुलेणं पुढवीणं कंडाणं पायालाणं भवणाणं भवणपत्थडाणं णिरयाणं णिरयावलीणं णिरयपत्थडाणं कप्पाणं विमाणाणं विमाणावलीणं विमाणपत्थडाणं टंकाणं कूडाणं सेलाणं सिहरीणं पब्भाराणं विजयाणं वक्खाराणं वासाणं वासहराणं वेला(वलया)णं वेइयाणं दाराणं तोरणाणं दीवाण समुद्दाणं आयामविक्खंभोच्चत्तोव्वेहपरिक्खेवा मविज्जंति।

शब्दार्थ - कंडाणं - रत्न कांड आदि कांडों की, **पायालाणं** - पातालों की, **भवणपत्थडाणं** - भवन प्रस्तरों की, **णिरयाणं** - नारकों की, **णिरयावलीणं** - नरकावासों के पंक्तियों की, **टंकाणं** - टंकों-चोटियों की, **सेलाणं** - पर्वतों की, **सिहरीणं** - शिखर युक्त पर्वतों की, **पब्भाराणं** - ढालू पर्वतों (पठारों) की, **वक्खाराणं** - वक्षस्कारों की, **वासहराणं**- वर्षधर पर्वतों की, **वेलाणं** - समुद्र तटों की, **वेइयाणं** - वेदिकाओं की, **दीवाणं** - द्वीपों की, **आयाम-विक्खंभोच्चत्तोव्वेह परिक्खेवा** - लम्बाई-चौड़ाई-ऊँचाई-गहराई तथा परिधि।

भावार्थ - इस प्रमाणांगुल का क्या प्रयोजन है?

इस प्रमाणांगुल से रत्नप्रभादि नारकभूमियों, कांडों, पातालों, भवनों, भवन प्रस्तरों, नैरयिकों, नरक पंक्तियों, नरक प्रस्तरों, कल्पों, विमानों, विमान पंक्तियों, विमान प्रस्तरों, टंकों, कूटों, पर्वतों, शिखरियों, प्राग्भारों, विजयों, वक्षस्कारों, वर्षों, वर्षधर पर्वतों, तटों, वेदिकाओं, द्वारों तोरणों, द्वीपों, समुद्रों की लम्बाई-चौड़ाई, ऊँचाई, गहराई, परिधि का माप किया जाता है।

विवेचन - लोक में रहे हुए सभी शाश्वत पदार्थों की लम्बाई चौड़ाई आदि प्रमाण अंगुल के द्वारा मापी जाती है। प्रमाण अंगुल का परिमाण सदैव एक जैसा रहता है।

से समासओ तिविहे पण्णत्ते। तंजहा - सेढीअंगुले १ पयरंगुले २ घणंगुले ३। असंखेज्जाओ जोयणकोडाकोडीओ सेढी, सेढी सेढीए गुणिया पयरं, पयरं सेढीए गुणियं लोगो, संखेज्जएणं लोगो गुणिओ संखेज्जा लोगा, असंखेज्जएणं लोगो गुणिओ असंखेज्जा लोगा, अणंतेणं लोगो गुणिओ अणंता लोगा।

भावार्थ - यह (प्रमाणांगुल) संक्षिप्त रूप में तीन प्रकार का बतलाया गया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१. श्रेण्यंगुल २. प्रतरांगुल तथा ३. घनांगुल।

श्रेणी - श्रेण्यंगुल का प्रमाण असंख्यात कोटाकोटी योजन है। श्रेण्यंगुल को श्रेण्यंगुल से गुणित करने पर प्रतरांगुल होता है। प्रतरांगुल को श्रेण्यंगुल से गुणन करने पर एक लोक प्रमाण होता है। संख्यात राशि से गुणित लोक संख्याततलोक तथा असंख्यात राशि से गुणित लोक असंख्यात लोक तथा अनंत राशि से गुणित लोक अनंतलोक कहलाता है।

एएसि णं सेढीअंगुलपयरंगुलघणंगुलाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पे वा बहुए वा तुल्ले वा विसेसाहिए वा?

सव्वत्थोवे सेढीअंगुले, पयरंगुले असंखेज्जगुणे, घणंगुले असंखेज्जगुणे। सेत्तं पमाणंगुले। सेत्तं विभागणिप्फण्णे। सेत्तं खेत्तप्पमाणे।

भावार्थ - इन श्रेण्यंगुल, प्रतरांगुल एवं घनांगुल में कौन-किससे अल्प, अधिक, तुल्य अथवा विशेषाधिक है?

श्रेण्यंगुल सबसे अल्प, प्रतरांगुल इससे असंख्यात गुणा और घनांगुल प्रतरांगुल से असंख्यात गुणा अधिक हैं।

इस प्रकार प्रमाणांगुल, विभागनिष्पन्न तथा क्षेत्रप्रमाण का निरूपण समाप्त होता है।

विवेचन - यद्यपि सूत्र में घनांगुल के स्वरूप का संकेत नहीं किया है लेकिन यह पहले बताया जा चुका है कि घनांगुल से किसी भी वस्तु की लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई का परिमाण जाना जाता है। अतएव यहाँ घनीकृत लोक के उदाहरण द्वारा घनांगुल का स्वरूप स्पष्ट किया है।

सिद्धान्त में जहाँ कहीं भी बिना किसी विशेषता के सामान्य रूप से श्रेणी अथवा प्रतर का उल्लेख हो वहाँ सर्वत्र इस घनाकार लोक की सात राजू प्रमाण श्रेणी अथवा प्रतर समझना चाहिये।

इसी प्रकार जहाँ कहीं भी सामान्य रूप से लोक शब्द आए, वहाँ इस घनरूप लोक का ग्रहण करना चाहिये। संख्यात राशि से गुणित लोक की संख्यात लोक, असंख्यात राशि से गुणित लोक की असंख्यात लोक तथा अनन्त राशि से गुणित लोक की अनंतलोक संज्ञा है।

यद्यपि अनन्त लोक के बराबर अलोक है और उसके द्वारा जीवादि पदार्थ नहीं जाने जाते हैं, तथापि वह प्रमाण इसलिए है कि उसके द्वारा अपना अलोक का स्वरूप तो जाना ही जाता है। अन्यथा अलोक विषयक बुद्धि ही उत्पन्न नहीं हो सकती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(१३५)

३. कालप्रमाण

से किं तं कालप्पमाणे?

कालप्पमाणे दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - पएसणिप्फण्णे य १ विभागणिप्फण्णे य २।

भावार्थ - कालप्रमाण के कितने भेद प्रज्ञप्त हुए हैं?

काल प्रमाण दो प्रकार का बतलाया गया है - १. प्रदेश निष्पन्न एवं २. विभाग निष्पन्न।

(१३६)

से किं तं पएसणिप्फण्णे?

पएसणिप्फण्णे-एगसमयट्ठिईए, दुसमयट्ठिईए, तिसमयट्ठिईए जाव दससमयट्ठिईए, संखिज्जसमयट्ठिईए, असंखिज्जसमयट्ठिईए। से तं पएसणिप्फण्णे॥

भावार्थ - प्रदेशनिष्पन्न काल प्रमाण का क्या स्वरूप है?

प्रदेशनिष्पन्न काल प्रमाण एक समय स्थितिक, द्विसमयस्थितिक, त्रिसमयस्थितिक यावत् दससमय स्थितिक, संख्यात समयस्थितिक, असंख्यात समयस्थितिक है।

यह प्रदेशनिष्पन्न कालप्रमाण का निरूपण है।

(१३७)

से किं तं विभागणिप्फण्णे?

विभागणिप्फण्णे -

गाहा - समयावलिय मुहुत्ता, दिवस अहोरत्त पक्ख मासा य।
संवच्छर जुग पलिया, सागर ओसप्पि परियट्टा॥१॥

शब्दार्थ - **अहोरत्त** - अहोरात्र, **संवच्छर** - संवत्सर, **पलिया** - पल्योपम, **ओसप्पि** - अवसर्पिणी (या उत्सर्पिणी), **परियट्टा** - परावर्त्त।

भावार्थ - विभागनिष्पन्न कालप्रमाण का कैसा स्वरूप है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गाथा - विभागनिष्पन्न कालप्रमाण - समय, आवलिका, मुहूर्त्त, दिवस, अहोरात्र, पक्ष, मास, संवत्सर, युग, पल्योपम, सागर, अवसर्पिणी (या उत्सर्पिणी) और (पुद्गल) परावर्त्त के रूप में होता है॥१॥

(१३८)

समयनिरूपण

से किं तं समए?

समयस्स णं परूवणं करिस्सामि - से जहाणामए तुण्णागदारए सिया-तरुणे, बलवं, जुगवं, जुवाणे, अप्पायंके, थिरग्गहत्थे, दढपाणिपाय-पासपिट्ठंत-रोरुपरिणए, तल-जमल-जुयल-परिघणिभबाहू, चम्मेट्ठग-दुहण-मुट्ठियसमाहय-णिचियगत्तकाए, उरस्सबलसमण्णागए, लंघणपवणजइणवायामसमत्थे, छेए, दक्खे, पत्तट्ठे, कुसले, मेहावी, णिउणे, णिउणसिप्पोवगए, एगं महइं पडसाडियं वा पट्टसाडियं वा गहाय सयराहं हत्थमेत्तं ओसारेज्जा, तत्थ चोयए पण्णवयं एवं वयासी-जेणं कालेणं तेणं तुण्णागदारएणं तीसे पडसाडियाए वा पट्टसाडियाए वा सयराहं हत्थमेत्ते ओसारिए से समए भवइ?

णो इणट्ठे समट्ठे। कम्हा?

जम्हा संखेज्जाणं तंतू णं समुदयसमिईसमागमेणं एगा पडसाडिया णिप्फज्जइ, उवरिल्लम्मि तंतुम्मि अच्छिण्णे हिट्ठिल्ले तंतू ण छिज्जइ, अण्णम्मि काले उवरिल्ले तंतू छिज्जइ, अण्णम्मि काले हिट्ठिल्ले तंतू छिज्जइ, तम्हा से समए ण भवइ। एवं वयंतं पण्णवयं चोयए एवं वयासी - जेणं कालेणं तेणं तुण्णागदारएणं तीसे पडसाडियाए वा पट्टसाडियाए वा उवरिल्ले तंतू छिण्णे से समए भवइ? ण भवइ।

कम्हा?

जम्हा संखेज्जाणं पम्हाणं समुदयसमिइसमागमेणं एगे तंतू णिप्फज्जइ, उवरिल्ले पम्हे अच्छिण्णे हिट्ठिल्ले पम्हे ण छिज्जइ, अण्णम्मि काले उवरिल्ले पम्हे छिज्जइ,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अण्णम्मि काले हिट्ठिल्ले पम्हे छिज्जइ, तम्हा से समए ण भवइ। एवं वयंतं पण्णवयं चोयए एवं वयासी-जेणं कालेणं तेणं तुण्णागदारएणं तस्स तंतुस्स उवरिल्ले पम्हे छिण्णे से समए भवइ?

ण भवइ। कम्हा?

जम्हा अणंताणं संघायाणं समुदयसमिइसमागमेणं एगे पम्हे णिप्फज्जइ, उवरिल्ले संघाए अविसंघाइए हेट्ठिल्ले संघाए णं विसंघाइज्जइ, अण्णम्मि काले उवरिल्ले संघाए विसंघाइज्जइ, अण्णम्मि काले हेट्ठिल्ले संघाए विसंघाइज्जइ, तम्हा से समए ण भवइ। एत्तो वि य णं सुहुमतराए समए पण्णत्ते समणाउसो!

शब्दार्थ - **तुण्णागदारए** - दर्जी का पुत्र, **सिया** - हो, **जुगवं** - युगवान - सुषुम-दुषम आदि तृतीय-चतुर्थ आरक में उत्पन्न **अप्पायंके** - रोग रहित, **थिरग्गहत्थे** - मजबूत हाथ से युक्त, **दढपाणिपाय-पासपिट्ठंत-रोरुपरिणए** - सुदृढ़ हाथ - पैर-पृष्ठान्तर - उरूस्थल युक्त, **तल-जमल-जुयल-परिघणिभबाहू** - समान स्थित दो तालवृक्षों के समान अथवा किवाड़ों की अर्गला जैसी भुजाएं धारण करने वाला, **चम्मेट्ठग-दुहण-मुट्ठिय-समाहय-णिचियगत्तकाए** - चर्मावरण युक्त प्रहरण तथा मुष्ठिबंध से व्यायाम आदि के आघात से मजबूत सुपुष्ट अंगों वाला, **लंघण-पवण-जइण-वायाम-समत्थे** - लंघन - प्लवन इत्यादि व्यायाम में समर्थ, **उरस्सबलसमण्णागए**-मानसिक बल एवं आत्मिक साहस से परिपूर्ण, **छेए** - छेक - उपायज्ञ, **दक्खे** - दक्ष-समर्थ, **पत्तट्ठे**-प्रतार्थ - कार्य साधक, **मेहावी** - मेधावी, **णिउणे** - निपुण, **णिउणसिप्पोवगए** - अपने शिल्प में चतुर, **महइं** - बड़ी, **पडसाडियं** - सूती साड़ी, **पट्टसाडियं** - रेशमी साड़ी, **गहाय** - लेकर, **सयराहं** - एक साथ, **हत्थमेत्तं** - एक हाथ परिमित, **ओसारेज्जा** - अवसृत करें - फाड़े, **चोयए** - प्रेरक, **पण्णवयं** - प्रतिपादक, **तीसे** - उस, **सयराहं** - शीघ्रतर, **तंतूणं** - धागों के, **णिप्फज्जइ** - निष्पन्न होता है, **उवरिल्लम्मि** - ऊपर के, **अण्णम्मि** - अन्य, **उवरिल्ले** - ऊपर के, **छिज्जइ** - क्षीण होते हैं, **हिट्ठिल्ले** - नीचे के, **पम्हे** - पक्ष्म-रेशे, **अच्छिण्णे** - अछिन्न, **संघायाणं** - संघातों के, **अविसंघाइए** - अपृथक्, **सुहुमतराए** - सूक्ष्मतर।

भावार्थ - समय का क्या स्वरूप है?

समय के स्वरूप को प्ररूपित करूँगा - जैसे एक तरूण बलवान्, युगोत्पन्न, युवक, रोगरहित, स्थिर अग्रहस्त युक्त, सुदृढ़ हाथ-पैर-उरु आदि अवयव युक्त, समान रूप में स्थित

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दो ताड़ वृक्षों एवं अर्गला सदृश प्रलम्ब भुजाओं से युक्त, चर्मेष्टक, मुद्गर आदि के व्यायाम, आघात आदि से परिपुष्ट गात्र युक्त, कूदना, तैरना इत्यादि विषयक व्यायामों में अभ्यास के कारण समर्थ, मानसिक एवं आत्मिक साहस से परिपूर्ण, छेक, दक्ष, प्राप्तार्थ, कुशल, मेधावी, निपुण, स्वशिल्प में प्रवीण एक दर्जी का पुत्र (एक) बड़ी सूती साड़ी या रेशमी साड़ी को लेकर शीघ्र ही एक हाथ परिमित अवसृत करे - फाड़े तो - (प्रश्नकर्त्ता प्ररूपक से पूछता है-)

जितने काल में उस दर्जी के पुत्र के उस सूती या रेशमी साड़ी को शीघ्रता पूर्वक एक हाथ परिमित फाड़ा, क्या वह काल एक समय परिमित है?

नहीं, ऐसा नहीं होता।

क्यों?

संख्यात तन्तुओं के समुदय - समिति-समागम से सूती और रेशम की साड़ी निष्पन्न होती है। उस साड़ी के जब तक ऊपर के तन्तु अच्छिन्न होते हैं तब तक नीचे के तन्तु छिन्न नहीं होते। ऊपर के तंतु अन्य काल में छिन्न होते हैं तथा नीचे के तन्तु अन्य काल में छिन्न होते हैं। इसलिए वह काल समय नहीं है।

ऐसा समाधान देने वाले से प्रश्नकर्त्ता ने यों कहा -

जिस समय दर्जी के पुत्र ने सूती या रेशमी साड़ी के ऊपर के तन्तु को छिन्न किया, क्या वह काल समय परिमित है?

ऐसा नहीं है।

क्यों नहीं है?

क्योंकि संख्यात रेशों के समुदय-सम्मिलन-समागम के परिणाम स्वरूप एक तंतु निष्पन्न होता है। जब तक ऊपर के रेशे अच्छिन्न रहते हैं, नीचे के रेशे छिन्न नहीं होते। ऊपर के रेशे का छिन्न होने का अन्य काल है तथा नीचे के रेशे के छिन्न होने का दूसरा काल है।

अतः ऊपर के रेशे के छिन्न होने का काल समय नहीं कहा जा सकता।

ऐसा कहते हुए समाधायक से प्राश्निक (प्रश्नकर्त्ता) ने यों कहा -

जिस समय उस दर्जी के पुत्र द्वारा उस तंतु का नीचे का रेशा छिन्न होता है, क्या वह समय है?

ऐसा नहीं होता।

क्यों?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समुदय - सम्मिलन और समन्वय से बने अनंत संघातों से एक रेशा बनता है। ऊपर के संघात के अविसंघाटित रहने पर नीचे का संघात विसंघाटित - विघटित नहीं होता।

ऊपर के संघात के विसंघाटित - विच्छिन्न होने का अन्य समय है तथा नीचे का संघात अन्य समय में विसंघाटित होता है। इसलिए वह समय नहीं है।

अतः समय इससे भी सूक्ष्मतर कहा गया है।

विवेचन - यहाँ पर अनंत संघातों में प्रति समय में अनंत अनंत संघात विसंघटित होना समझना चाहिये, यदि एक-एक समय में एक-एक संघात विच्छिन्न होगा तो अनंत समय हो जायेंगे। अतः अनंत संघाती की पूर्ण राशि के एक असंख्यातवें भाग रूप अनंत संघात प्रतिसमय विच्छिन्न होना समझना चाहिये।

समयसमूह मूलक काल विभाजन

असंखिज्जाणं समयाणं समुदयसमिइसमागमेणं सा एगा 'आवलिय' त्ति वुच्चइ, संखिज्जाओ आवलियाओ-ऊसासो, संखिज्जाओ आवलियाओ-णीसाओ।

गाहाओ - हट्ठस्स अणवगल्लस्स, णिरुवक्किट्ठस्स जंतुणो।

एगे ऊसासणीसासे, एस पाणुत्ति वुच्चइ॥१॥

सत्तपाणूणि से थोवे, सत्त थोवाणि से लवे।

लवाणं सत्तहत्तरीए, एस मुहुत्ते वियाहिए॥२॥

तिण्णि सहस्सा सत्त य, सयाइं तेहुत्तरिं च ऊसासा।

एस मुहुत्तो भणिओ, सव्वेहिं अणंतणाणीहिं॥३॥

एएणं मुहुत्तपमाणेणं तीसं मुहुत्ता-अहोरत्तं, पण्णरस अहोरत्ता-पक्खो, दो पक्खा-मासो, दो मासा-उऊ, तिण्णि उऊ-अयणं, दो अयणाइं-संवच्छरे, पंच संवच्छराइं-जुगे, वीसं जुगाइं-वाससयं, दस वाससयाइं-वाससहस्सं, सयं वाससहस्साणं-वाससयसहस्सं, चोरासीइं वाससयसहस्साइं-से एगे पुव्वंगे, चउरासीइं पुव्वंगसयसहस्साइं-से एगे पुव्वे, चउरासीइं पुव्वसयसहस्साइं-से एगे तुडियंगे, चउरासीइं तुडियंगसयसहस्साइं-से एगे तुडिए, चउरासीइं तुडियसयसहस्साइं-से एगे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अडडंगे, चउरासीइं अडडंगसयसहस्साइं-से एगे अडडे, एवं अववंगे, अववे, हुहुयंगे, हुहुए, उप्पलंगे, उप्पले, पउमंगे, पउमे, णलिणंगे, णलिणे, अच्छणिउरंगे, अच्छणिउरे, अउयंगे, अउए, णउयंगे, णउए, पउयंगे, पउए, चूलियंगे, चूलिया, सीसपहेलियंगे, चउरासीइं सीसपहेलियंगसयसहस्साइं-सा एगा सीसपहेलिया। एयावया चेव गणिए, एयावया चेव गणियस्स विसए, एत्तो परं ओवमिए पवत्तइ॥

शब्दार्थ - **ऊसासो** - उच्छ्वास, **णीसासो** - निःश्वास, **हट्ठस्स** - हृष्ट-पुष्ट, **अणवगल्लस्स** - रोग रहित, **णिरुवक्किट्ठस्स** - दैहिक क्लेश रहित, **जंतुणो** - प्राणी का, **पाणु** - प्राण, **थोवे** - स्तोक, **वियाहिए** - कहा गया है, **उऊ** - ऋतु, **वाससयं** - शताब्दी, **ओवमिए** - उपमित।

भावार्थ - असंख्यात समयों के समुदय-समित के संयोग से एक आवलिका कही जाती है। संख्येय आवलिकाओं का एक उच्छ्वास होता है तथा संख्येय आवलिकाओं का एक निःश्वास होता है।

गाथाएँ - हृष्ट-पुष्ट, रोगांतकशून्य, दैहिक बाधा विमुक्त प्राणी का एक उच्छ्वास-निःश्वास प्राण कहा जाता है॥१॥

सात प्राणों का एक स्तोक होता है और सात स्तोकों का एक लव होता है। सतहत्तर (७७) लवों का एक मुहूर्त्त कहा गया है॥२॥

अनंत ज्ञान संपन्न सर्वज्ञों ने तीन सहस्र सात सो तिहत्तर उच्छ्वास-निःश्वास का एक मुहूर्त बतलाया है॥३॥

इस मुहूर्त्त प्रमाण से तीस मुहूर्त्तों का एक दिन-रात, पन्द्रह अहोरात्र का एक पक्ष, दो पक्षों का एक मास, दो मासों की एक ऋतु, तीन ऋतुओं का एक अयन, दो अयनों का एक संवत्सर, पाँच संवत्सरों का एक युग, बीस युगों की एक शताब्दी (वर्षशत), दस सौ वर्षों का एक सहस्र वर्ष, सौ सहस्र वर्षों का एक लक्ष वर्ष, चौरासी लक्षवर्षों का एक पूर्वांग, चौरासी लाख पूर्वांगों का एक पूर्व, चौरासी लाख पूर्वो का एक त्रुटितांग, चौरासी लाख त्रुटितांगों का एक त्रुटित, चौरासी लाख त्रुटितों का एक अडडांग, चौरासी लाख अडडांगों का एक अडड, चौरासी लाख अडिडों का एक अववांग, चौरासी लाख अववांगों का एक अवव, चौरासी लाख अववों का एक हूहूकांग, चौरासी लाख हूहूकांगों का एक हूहूक, आगे इसी क्रम से उत्पलांग,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्पल, पद्मांग, पद्म, नलिनांग, नलिन, अच्छनिकुरांग, अच्छनिकुर, अयुतांग, अयुत, नयुतांग, नयुत, प्रयुतांग, प्रयुत, चूलिकांग, चूलिका, चौरासी लाख चूलिकाओं का एक शीर्ष-प्रहेलिकांग तथा चौरासी लाख शीर्षप्रहेलिकांगों की एक शीर्षप्रहेलिका - इस प्रकार से होते हैं।

इतना ही गणित है, इतना ही गणित का विषय है। इसके आगे उपमाकाल की प्रवृत्ति है।

(१३९)

औपमिक काल

से किं तं ओवमिए?

ओवमिए दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - पलिओवमे य १ सागरोवमे य २।

शब्दार्थ - **ओवमिए** - औपमिक, **पलिओवमे** - पल्योपम।

भावार्थ - औपमिक काल कितने प्रकार का है? वह दो प्रकार का बतलाया गया है - १. पल्योपम और २. सागरोपम।

विवेचन - औपमिक शब्द उपमा प्रसूत है। यह उपमान सूचक है। किसी पदार्थ विशेष का परिज्ञापन सादृश्यमूलक अन्य पदार्थ के साथ किया जाय तो परिज्ञाप्य को उपमेय कहा जाता है और परिज्ञापक को उपमान या उपमा कहा जाता है। साहित्यशास्त्र में इसका उपमा अलंकार के रूप में विवेचन है। प्रस्तुत प्रकरण में काल उपमेय है, पल्य तथा सागर उपमान हैं। उनकी सदृशता के आधार पर उपमा के साथ जो वर्णन किया जाय, वह औपमिक काल प्रमाण है। पल्योपम शब्द में पल्य शब्द धान्य भरने के कुएँ का सूचक है। सागरोपम में सागर शब्द समुद्रवाचक है। पल्योपम और सागरोपम काल का विश्लेषण इन दोनों के सादृश्यमूलक आधार पर किया जाता है।

पल्योपम

से किं तं पलिओवमे? पलिओवमे तिविहे पण्णत्ते। तंजहा - उद्धारपलिओवमे १ अद्धापलिओवमे २ खेत्तपलिओवमे य ३।

भावार्थ - पल्योपम कितने प्रकार का है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पल्योपम तीन प्रकार का बतलाया गया है - १. उद्धारपल्योपम २. अद्धापल्योपम एवं ३. क्षेत्रपल्योपम।

से किं तं उद्धारपलिओवमे? उद्धारपलिओवमे दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - सुहुमे १ वावहारिए य २। तत्थ णं जे से सुहुमे से ठप्पे।

भावार्थ - उद्धार पल्योपम कितने प्रकार का है?

उद्धार पल्योपम दो प्रकार का निरूपित हुआ है - १. सूक्ष्म एवं २. व्यावहारिक।

इनमें जो सूक्ष्म पल्योपम है, वह स्थाप्य है।

व्यावहारिक उद्धारपल्योपम

तत्थ णं जे से वावहारिए-से जहाणामए पल्ले सिया-जोयणं आयामविक्खंभेणं, जोयणं उव्वेहेणं तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं, से णं पल्ले एगाहियबेयाहियतेयाहिय जाव उक्कोसेणं सत्तरत्तपरूढाणं संसट्ठे संणिचिए भरिए वालग्गकोडीणं ते णं वालग्गा णो अग्गी डहेज्जा, णो वाऊ हरेज्जा, णो कुहेज्जा, णो पलिविद्धंसिज्जा, णो पूइत्ताए हव्वमागच्छेज्जा, तओ णं समए समए एगमेगं वालग्गं अवहाय जावइएणं कालेणं से पल्ले खीणे णीरए णिल्लेवे णिट्ठिए भवइ से तं वावहारिए उद्धारपलिओवमे।

गाहा - एएसिं पल्लाणं, कोडाकोडी हवेज्ज दसगुणिया।
तं वावहारियस्स उद्धार सागरोवमस्स, एगस्स भवे परिणामं॥१॥

शब्दार्थ - **जहाणामए** - यथानाम - नामानुरूप, **सत्तरत्तपरूढाणं** - सात अहोरात्र के उगे हुए, **संसट्ठे** - दबा-दब कर (समृष्ट), **संणिचिए** - सन्निचित्त - भलीभांति निचित किए हुए, **भरिए** - भरे जायं, **वालग्गकोडीणं** - करोड़ों बालाग्र, **अग्गी** - अग्नि, **डहेज्जा** - जलाए, **वाऊ** - वायु, **हरेज्जा** - उड़ा सके, **कुहेज्जा** - सड़ा-गला सके, **पलिविद्धंसिज्जा** - विध्वंस कर सके, **पूइत्ताए** - सडान्ध आए, **हव्वमागच्छेज्जा** - शीघ्र आ सके, **अवहाय** - लेकर, **जावइएणं** - जितने काल में, **खीणे** - क्षीण - खाली, **णीरए** - नीरज - रज रहित, **णिल्लेवे** - निर्लेप, **णिट्ठिए** - निष्ठित।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - उनमें जो व्यावहारिक (बादर) उद्धार पल्योपम है, वह अपने नाम के अनुरूप आशय युक्त है। जैसे एक योजन चौड़ा, एक योजन लम्बा, एक योजन गहरा कुआं हो, तीन गुनी से कुछ अधिक परिधि हो। उसे एक दिन, दो दिन, तीन दिन यावत् उत्कृष्टतः सात रात दिन में उगे हुए करोड़ों, बालाग्रों से भली भांति दबाकर, निचित कर (ठसाठस) भरा जाए। वे परस्पर इतने सघन हों कि न उन्हें आग जला सके, न उन्हें हवा उड़ा सके, न उन्हें सड़ा-गला सके, न विध्वंस कर सके तथा न उनमें सडांध आए। तत्पश्चात् एक-एक समय में एक एक-बालाग्र को निकाला जाय तब जितने काल में वह कुआं क्षीण, नीरज, निर्लेप और निष्ठित-सर्वथा खाली हो जाए, उसे व्यावहारिक उद्धारपल्योपम कहा जाता है।

गाथा - ऐसे दस कोटि कोटि व्यावहारिक उद्धार पल्योपम के परिमाण जितना एक व्यावहारिक उद्धार सागरोपम होता है।

विवेचन - यहाँ पर जो करोड़ों बालाग्रों से पल्य को भरना बताया है उसमें देवकुरु, उत्तरकुरु क्षेत्र के युगलिक मनुष्यों के उसी दिन के उगे हुए बाल की मोटाई के अनुरूप लंबाई-चौड़ाई जितने बालाग्र खंडों को समझना चाहिये। उनके एक बालाग्र की मोटाई में भरत क्षेत्र के अभी के मनुष्यों के ४०९६ बालाग्र हो जाते हैं।

एएहिं वावहारियउद्धारपलिओवमसागरोवमेहिं किं पओयणं?

एएहिं वावहारियउद्धारपलिओवमसागरोवमेहिंणत्थि किंचिप्पओयणं, केवलं पण्णवणा पण्णविज्जइ। सेत्तं वावहारिए उद्धारपलिओवमे।

शब्दार्थ - **णत्थि** - नहीं, **किंचिप्पओयणं** - कोई प्रयोजन, **पण्णवणा** - प्रज्ञापना, **पण्णविज्जइ** - परिज्ञापित की जाती है।

भावार्थ - इन व्यावहारिक उद्धार पल्योपम एवं सागरोपम का क्या प्रयोजन है?

इन व्यावहारिक उद्धार पल्योपम एवं सागरोपम से कोई प्रयोजन नहीं है। केवल ये प्रज्ञापन के विषय हैं, प्ररूपणा मात्र हैं।

विवेचन - व्यावहारिक उद्धार पल्योपम का संक्षिप्त में स्वरूप इस प्रकार समझना चाहिये- उत्सेध अंगुल से एक योजन का लम्बा, चौड़ा और गहरा कुआं है। उस कुएं को मस्तक मुंडन के बाद जो एक रात्रि से सात रात्रि पर्यन्त बढ़े हुए बालों (मस्तक में सात रात्रि तक में लगभग सभी बाल उग जाते हैं, जो बाल उसी दिन के उगे हुए हों उन्हीं बालों को यहाँ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पर समझना चाहिए।) उनकी मोटाई के समान लम्बाई चौड़ाई करके फिर उन बालों से ठसाठस भरे। यहाँ पर पूर्व परम्परा से देवकुरु उत्तरकुरु क्षेत्र के युगलिक मनुष्यों के बाल समझे जाते हैं। उन बालों से भरे हुए कुएं में से एक-एक समय में एक-एक बाल को निकालने से जितने काल में वह कुआं पूरा खाली होवे, उतने काल को एक व्यावहारिक उद्धार पल्योपम कहते हैं। इस पल्योपम का परिमाण संख्याता समयों का होता है। इसे दस कोडाकोड़ी से गुणा करने पर एक व्यावहारिक उद्धार सागरोपम होता है। इन पल्योपम और सागरोपम की प्ररूपणा सूक्ष्म का स्वरूप सरलता से समझ में आ जावे इसलिए की गई है।

सूक्ष्म उद्धारपल्योपम

से किं तं सुहुमे उद्धारपलिओवमे?

सुहुमे उद्धार पलिओवमे - से जहाणामए पल्ले सिया - जोयणं आयामविक्खंभेणं, जोयणं उव्वेहेणं, तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं, से णं पल्ले एगाहियबेयाहियतेयाहिय जाव उक्कोसेणं सत्तरत्तपरूढाणं संसट्ठे संणिचिए भरिए वालग्गकोडीणं, तत्थ णं एगमेगे वालग्गे असंखिज्जाइं खंडाइं कज्जइ, ते णं वालग्गा दिट्ठिओगाहणाओ असंखेज्जइभागमेत्ता सुहुमस्स पणगजीवस्स सरीरोगाहणाउ असंखेज्जगुणा, ते णं वालग्गा णो अग्गी डहेज्जा, णो वाऊ हरेज्जा, णो कुहेज्जा, णो पलिविद्धंसिज्जा, णो पूइत्ताए हव्वमागच्छेज्जा, तओ णं समए समए एगमेगं वालग्गं अवहाय जावइएणं कालेणं से पल्ले खीणे णीरए णिल्लेवे णिट्ठिए भवइ सेत्तं सुहुमे उद्धारपलिओवमे।

गाहा - एएसिं पल्लाणं, कोडाकोडी हवेज्ज दसगुणिया।

तं सुहुमस्स उद्धारसागरोवमस्स, एगस्स भवे परिमाणं॥२॥

शब्दार्थ - **खंडाइं** - खंड - टुकड़े, **कज्जइ** - किये जायं, **दिट्ठि ओगाहणाओ** - दृष्टि द्वारा अवलोकित किए जाने योग्य, **असंखेज्जइभागमेत्ता** - असंख्यातवें भाग मात्र, **पणगजीवस्स**- पनक संज्ञक निगोद (अतिसूक्ष्म) जीव।

भावार्थ - सूक्ष्म उद्धार पल्योपम का क्या स्वरूप है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूक्ष्म उद्धार पल्योपम अपने नाम के अनुरूप आशय लिए हुए हैं। जैसे - एक योजन लम्बा, एक योजन चौड़ा तथा एक योजन गहरा कुआं हो, जिसकी परिधि तीन गुनी से कुछ अधिक हो। उसे एक दिन, दो दिन, तीन दिन यावत् अधिक से अधिक सात अहोरात्र में उगे हुए करोड़ों बालाग्रों से बलपूर्वक, खचाखच भरा जाय। तदनंतर ऐसी कल्पना करें - प्रत्येक बालाग्र के असंख्यात खंड किए जाएं। वे बालाग्र दृष्टि द्वारा देखने योग्य पदार्थों से भी असंख्यातवें भाग मात्र हों, सूक्ष्म पनक संज्ञक जीव की शरीरावगाहना से असंख्यातगुणे जितने हों। उन बालाग्रों को न अग्नि जला सके, न वायु उड़ा सके, न सड़ाए जा सके, न विध्वंस किए जा सकें, न गलाए जा सकें। तब एक-एक समय में एक-एक बालाग्र खण्ड को निकालते-निकालते जितने समय में वह कुआं क्षीण, निर्लेप, नीरज, निष्ठित होता है - सर्वथा खाली हो, वह सूक्ष्म उद्धार पल्योपम है।

गाथा - इस प्रकार के दस कोटि-कोटि पल्योपम के परिमाण जितना एक सूक्ष्म उद्धार सागरोपम होता है। इसमें असंख्यात वर्ष हो जाते हैं।

विवेचन - उपर्युक्त सभी प्रकार के पल्योपमों के वर्णन में जो पल्य (कुआं) का परिमाण बताया है, वह उत्सेधांगुल के योजन से एक योजन जितना लम्बा, चौड़ा तथा गहरा समझना चाहिए। उत्सेधांगुल का माप सदैव निश्चित होने से पल्य का परिमाण भी सभी में एक सरीखा ही समझना चाहिये।

एएहिं सुहुमउद्धारपलिओवम सागरोवमेहिं किं पओयणं?

एएहिं सुहुमउद्धारपलिओवमसागरोवमेहिं दीवसमुद्दाणं उद्धारो घेप्पइ।

शब्दार्थ - उद्धार - प्रमाण, घेप्पइ - मापा जाता है।

भावार्थ - इन सूक्ष्म उद्धार पल्योपम-सागरोपम का क्या प्रयोजन है?

इन सूक्ष्म उद्धार पल्योपम - सागरोपम से द्वीप समुद्रों का प्रमाण मापा जाता है।

विवेचन - सूक्ष्म उद्धार पल्योपम का संक्षिप्त में स्वरूप इस प्रकार समझना चाहिये - इसका वर्णन भी पूर्व वर्णित व्यावहारिक उद्धार पल्योपम के समान समझना चाहिए, फर्क इतना है कि उन बालाग्रों में से प्रत्येक बालाग्र के असंख्याता खंड करना। वे खण्ड दृष्टि अवगाहना (विशुद्ध चक्षुदर्शन वाला छद्मस्थ देखे उस) के असंख्यातवें भाग जितने तथा सूक्ष्म निगोद जीव के शरीर की अवगाहना से असंख्यात गुणा समझना चाहिये। इन बालाग्र खण्डों को प्रतिसमय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एक-एक बालाग्र खण्ड को निकालने से जितने काल में वह कुआं पूरा खाली हो जावे उतने काल को एक सूक्ष्म उद्धार पल्योपम कहते हैं। इसका परिमाण असंख्याता वर्ष कोटि का होता है। (टीका आदि में संख्याता वर्ष कोटि का कहा है, वह उचित नहीं लगता है) इनको दस कोडाकोडी से गुणा करने पर एक सूक्ष्म उद्धार सागरोपम होता है। इनके द्वारा द्वीप समुद्रों की संख्या का ज्ञान किया जाता है। अढ़ाई सूक्ष्म उद्धार सागरोपम के समयों जितने परिमाण के कुल मिलाकर द्वीप समुद्र होते हैं।

केवइया णं भंते! दीवसमुद्दा उद्धारेणं पण्णत्ता?

गोयमा! जावइया णं अड्ढाइज्जाणं उद्धारसागरोवमाणं उद्धारसमया एवइया णं दीवसमुद्दा उद्धारेणं पण्णत्ता। सेत्तं सुहुमे उद्धारपलिओवमे। सेत्तं उद्धारपलिओवमे।

शब्दार्थ - केवइया - कितने, **एवइया** - इतने।

भावार्थ - हे भगवन्! उद्धार प्रमाण द्वारा कितने द्वीप समुद्र माने गए हैं?

आयुष्मन् हे गौतम! अढाई उद्धार सागरोपम के जितने उद्धार समय हैं, उतने ही द्वीप समुद्र प्रज्ञप्त हुए हैं।

यह सूक्ष्म उद्धार पल्योपम का स्वरूप है।

यहाँ उद्धार पल्योपम का निरूपण परिसंपन्न होता है।

विवेचन - अढ़ाई उद्धार सागरोपम में २५ कोटि-कोटि उद्धार पल्योपम होते हैं। अर्थात् इतने कुएं बालाग्र खंडों से पूर्ण खाली हो जावे उतने गिनती में द्वीप एवं समुद्रों की मिलाकर संख्या होती है।

प्रश्न - 'सूक्ष्म उद्धार पल्योपम के बालाग्र खण्डों की राशि कितनी होती है?

उत्तर - अनुयोगद्वार सूत्र की टीका व बृहद्संग्रहणी, ठिइबंधो आदि ग्रन्थों में उद्धार पल्योपम के समयों को (या बालाग्र खण्डों को) 'संख्यात कोटिवर्ष के समयों जितना' माना है। जीवाभिगम सूत्र की टीका में व अनेक ग्रन्थों में - 'अनुत्तर देवों का परिमाण' - अद्धापल्योपम के असंख्यातवें भाग' जितना बताया है। ये दोनों कथन परस्पर विरोध युक्त दृष्टिगोचर होते हैं।

इस संबंध में विचारणा - 'बालाग्र खण्डों को-संख्यात कोटि वर्ष प्रमाण या संख्याता आवलिकाओं प्रमाण मानने पर वे (बालाग्र खण्ड) बादर तेजस्कायिक पर्याप्त जीवों के असंख्यातवें भाग जितने ही होंगे तथा बादर तेजस्कायिक पर्याप्त जीवों की संख्या असंख्यात पल्योपमों

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जितनी हो जाएंगी। जबकि प्रज्ञापना सूत्र के तीसरे पद में में - 'महादण्डक के बोलों की अल्प बहुत्व के पाठ की टीका में बादर तेजस्कायिक पर्याप्त जीव-'आवलिका के घन से कुछ न्यून' (आवलिका×आवलिका×कुछ समय कम आवलिका) जितने बताए हैं।

यदि बालाग्र खण्डों को संख्यात आवलिका प्रमाण (संख्यात कोटि वर्षों में संख्यात आवलिकाएं होती हैं) मानने पर उन बालाग्र खण्डों को १०० वर्षों (१५ या १६ अंकों जितनी आवलिकाएं) से गुणन करने पर - सूक्ष्म अद्धा पल्योपम का परिमाण आ जाएगा।

बालाग्र खंडों (संख्यात आवलिका प्रमाण) को १०० वर्ष की आवलिकाओं (१५-१६ अंकों जितनी) से गुणान करने पर आवलिका वर्ग से संख्यातगुणा अधिक व आवलिका घन से असंख्यात गुणा हीन होते हैं।

सूक्ष्म अद्धा पल्योपम आवलिका के वर्ग से संख्यात गुणा ही बड़ा होने से व बादर तेजस्कायिक पर्याप्त जीव - 'कुछ न्यून आवलिका के घन प्रमाण होने से व बादर तेजस्कायिक पर्याप्त जीव' बहुत बड़े दूसरे असंख्यात (मध्यम परित्त असंख्यात) प्रमाण असंख्यात पल्योपम जितने हो जाएंगे और अनुत्तर विमान के देव पांचवें असंख्यात (मध्यम युक्त असंख्यात) प्रमाण असंख्यात पल्योपम जितने हो जाएंगे, जो कि स्वयं टीकाकारों को भी मान्य नहीं है।

यदि सूक्ष्म उद्धार पल्योपम के समयों को संख्यात कोटि वर्ष के समयों तुल्य मानेंगे तो बादर तेजस्कायिक पर्याप्त जीवों की व अनुत्तर देवों की राशि असंख्य सूक्ष्म अद्धा पल्योपमों जितनी माननी पड़ेगी।

बालाग्र खंडों का परिमाण कितना होगा? आवलिका के वर्ग या आवलिका के घन प्रमाण मानने से तो बालाग्र खंडों की राशि बहुत कम होने से सूक्ष्म अद्धा पल्योपम बहुत छोटा हो जाएगा। आवलिका वर्ग जितने (बालाग्र खंड) मानने से वे बादर पर्याप्त तेजस्कायिक जीवों से असंख्यातवें भाग जितने होंगे। कुछ न्यून आवलिका के घन प्रमाण मानने से बादर पर्याप्त तेजस्कायिक जीवों के तुल्य होंगे। अनुत्तर देवों से बादर पर्याप्त तेजस्कायिक जीव असंख्यातवें भाग हैं। अनुत्तर देवों से असंख्यातवें भाग राशि का १००-१०० वर्षों में अपहार करने से सूक्ष्म अद्धा पल्योपम होगा। यह संभव नहीं है। क्योंकि अनुत्तर देवों से असंख्यात गुणी राशि का १००-१०० वर्षों में अपहार करें या अनुत्तर देवों को १०० वर्षों से असंख्यात गुण छोटे काल में अपहार करे अर्थात् एक आवलिका भी १०० वर्षों का संख्यातवाँ भाग ही है। अतः १०० वर्षों का असंख्यातवां भाग आवलिका का भी असंख्यातवां भाग ही होगा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अतः यदि आवलिका के असंख्यातवें भाग में १-१ अनुत्तर देव का अपहार करेंगे - न तो इतने गर्भज मनुष्य हैं, न ही इतने अनुत्तर देव हैं। अतः बालाग्र खंडों को बादर तेजस्कायिक पर्याप्त जीवों की राशि (कुछ न्यून आवलिका के घन प्रमाण) से असंख्यातगुणे अधिक मानने होंगे। आवलिका के वर्ग में बड़े दर्जे के दूसरे असंख्यात जितने कोटि वर्ष होते हैं व आवलिका के घन में पांचवें असंख्यात जितने कोटि वर्ष होते हैं।

अनुत्तर देवों का औसतन विरह दिन मास वर्ष या १०० वर्षों के भीतर मानने पर बालाग्र खंडों का परिमाण अनुत्तर देवों से संख्यात गुणे न्यून व सैकड़ों वर्षों का औसतन विरह माने तो अनुत्तर देवों से बालाग्र खंड संख्यात गुणे अधिक होते हैं।

सूक्ष्म अद्धा पल्योपम में १०० वर्षों के समयों का भाग देने पर सूक्ष्म उद्धार पल्योपम होता है। सूक्ष्म अद्धा पल्योपम में सैकड़ों वर्षों का भाग देने पर अनुत्तर देवों का प्रमाण होता है। अनुत्तर देवों का १०० वर्षों से न्यून विरह मानना कम जंचता है।

अद्धापल्योपम

से किं तं अद्धापलिओवमे?

अद्धापलिओवमे दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - सुहुमे य १ वावहारिए य २। तत्थ णं जे से सुहुमे से ठप्पे।

भावार्थ - अद्धा पल्योपम कितने प्रकार का है?

अद्धा पल्योपम दो प्रकार का बतलाया गया है - १. सूक्ष्म एवं २. व्यावहारिक।

इनमें जो सूक्ष्म है, वह स्थाप्य है।

तत्थं णं जे से वावहारिए - से जहाणामए पल्ले सिया जोयणं आयाम-विक्खंभेणं, जोयणं उव्वेहेणं, तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं, से णं पल्ले एगाहियबेयाहियतेयाहिय जाव भरिए वालग्गकोडीणं, ते णं वालग्गा णो अग्गी डहेज्जा जाव णो पलिविद्धंसिज्जा, णो पूइत्ताए हव्वमागच्छेज्जा, तओ णं वाससए वाससए एगमेगं वालग्गं अवहाय जावइएणं कालेणं से पल्ले खीणे णीरए णिल्लेवे णिट्ठिए भवइ से तं वावहारिए अद्धापलिओवमे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गाहा - एएसिं पल्लाणं, कोडाकोडी भविज्ज दसगुणिया।
तं वावहारियस्स अद्धासागरोवमस्स, एगस्स भवे परिमाणं॥३॥

भावार्थ - उनमें जो व्यावहारिक अद्धा पल्योपम है, वह अपने नाम के अनुरूप आशय लिए हुए है। जैसे एक योजन चौड़ा, एक योजन लम्बा और एक योजन गहरा कुआँ हो, जिसकी परिधि तीन गुनी से कुछ अधिक हो। उस कुएं को एक दिन, दो दिन, तीन दिन यावत् सात दिन-रात के करोड़ों बालाग्रों से अच्छी तरह, खचाखच भर दिया जाए। (वे परस्पर इतनी सघनता से सटे हों कि) उनको अग्नि जला नहीं सके यावत् (किसी भी तरह वे) विध्वंस न किए जा सकें, शीघ्रता से सड़ाए गलाए न जा सकें। उसे कुएँ में से सौ-सौ वर्षों के अन्तराल से एक-एक बालाग्र खण्डों को निकालने पर जितने समय में वह कुआँ बालाग्रों के खण्डों से रहित होता है, क्षीण, नीरज, निर्लेप एवं निष्ठित होता है, वह व्यावहारिक अद्धा पल्योपम है।

गाथा - इस प्रकार दस कोटि-कोटि व्यावहारिक अद्धा पल्योपम के परिमाण जितना एक व्यावहारिक सागरोपम होता है॥३॥

एएहिं वावहारियअद्धापलिओवमसागरोवमेहिं किं पओयणं?

एएहि वावहारिय अद्धापलिओवमसागरोवमेहिं णत्थि किंचिप्पओयणं, केवलं पण्णवणा पण्णविज्जइ। सेत्तं वावहारिए अद्धापलिओवमे।

भावार्थ - इन व्यावहारिक अद्धा पल्योपमों एवं सागरोपमों का क्या प्रयोजन है?

इन व्यावहारिक अद्धा पल्योपमों एवं सागरोपमों का कोई प्रयोजन नहीं है। इनसे केवल प्रज्ञापन-कथन रूप प्ररूपणा सिद्ध होती है। यह व्यावहारिक अद्धा पल्योपम का स्वरूप है।

विवेचन - व्यावहारिक अद्धा पल्योपम का संक्षिप्त में स्वरूप इस प्रकार समझना चाहिए- इसका वर्णन व्यावहारिक उद्धार पल्योपम के समान समझना चाहिए, फर्क इतना है कि उन बालाग्रों को सौ-सौ वर्षों से एक-एक बालाग्र को निकालने से जितने काल में वह कुआँ पूरा खाली होवे उतने काल को व्यावहारिक अद्धा पल्योपम कहते हैं। इसका परिमाण भी असंख्याता कोटि वर्ष का समझना चाहिए। इसको दस कोड़ाकोड़ी से गुणा करने पर एक व्यावहारिक अद्धा सागरोपम होता है। इन पल्योपम और सागरोपम की प्ररूपणा सूक्ष्म का स्वरूप सरलता से समझ में आ जावे इसलिए की गई है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूक्ष्म अद्धापल्योपम

से किं तं सुहुमे अद्धापलिओवमे?

सुहुमे अद्धापलिओवमे-से जहाणामए पल्ले सिया - जोयणं आयामविक्खंभेणं, जोयणं उव्वेहेणं, तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं, से णं पल्ले एगाहियबेयाहियतेयाहिय जाव भरिए वालग्गकोडीणं, तत्थ णं एगमेगे वालग्गे असंखिज्जाइं खंडाइं कज्जइ, ते णं वालग्गा दिट्ठिओगाहणाओ असंखेज्जइभागमेत्ता सुहुमस्स पणगजीवस्स सरीरोगाहणाओ असंखेज्जगुणा, ते णं वालग्गा णो अग्गी डहेज्जा जाव णो पलिविद्धंसिज्जा, णो पूइत्ताए हव्वमागच्छेज्जा, तओ णं वाससए वाससए एगमेगं वालग्गं अवहाय जावइएणं कालेणं से पल्ले खीणे णीरए णिल्लेवे णिट्ठिए भवइ सेत्तं सुहुमे अद्धापलिओवमे।

गाहा - एएसिं पल्लाणं कोडाकोडी भवेज्ज दसगुणिया।

तं सुहुमस्स अद्धासागरोवमस्स, एगस्स भवे परिमाणं॥४॥

भावार्थ - सूक्ष्म अद्धापल्योपम का क्या स्वरूप है?

इनमें जो सूक्ष्म अद्धापल्योपम है, वह अपने नामानुरूप है। जैसे एक योजन चौड़ा, एक योजन लम्बा और एक योजन गहरा कुआं हो, जिसकी परिधि तीन गुनी से कुछ अधिक हो। उसे एक, दो, तीन दिन यावत् उत्कृष्टतः सात रात-दिन में उगे हुए करोड़ों बालाग्रों से अच्छी तरह, खचाखच भरा जाए तथा एक-एक बालाग्र के ऐसे असंख्य खण्ड किए जाएं कि वे दृष्टिगम्य पदार्थों की अपेक्षा असंख्यातवें भाग हों - अत्यन्त सूक्ष्म हों और सूक्ष्मतम पनक जीव की शरीरावगाहना से असंख्यातगुने हों। (इस स्थिति में) इन बालाग्रों को अग्नि जला नहीं सकती यावत् वे विध्वंसित नहीं हो सकते, शीघ्रता से सड़ाए-गलाए नहीं जा सकते। तदनंतर सौ-सौ वर्षों के अन्तर पर इनसे एक-एक बालाग्र खण्डों को निकालने पर जितने समय में यह पल्य - कुआं बालाग्रों के खण्डों से क्षीण - शून्य, नीरज, निर्लेप, निष्ठित - सर्वथा खाली हो जाए, वह सूक्ष्म अद्धा पल्योपम है।

गाथा - दस कोटाकोटी सूक्ष्म अद्धा पल्योपमों का एक सूक्ष्म अद्धा सागरोपम होता है। अर्थात् दस कोटाकोटी अद्धा पल्योपम और एक सूक्ष्म अद्धासागरोपम तुल्य हैं॥४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एएहिं सुहुमेहिं अद्धापलिओवमसागरोवमेहिं, किं पओयणं?

एएहिं सुहुमेहिं अद्धापलिओवमसागरोवमेहिं णेरइयतिरिक्खजोणियमणुस्स-देवाणं आउयं मविज्जइ।

भावार्थ - इन सूक्ष्म अद्धा पल्योपमों एवं सूक्ष्म अद्धा सागरोपमों का क्या प्रयोजन है?

इन सूक्ष्म अद्धा पल्योपमों एवं सूक्ष्म अद्धा सागरोपमों से नैरयिक, तिर्यंच, मनुष्य और देवों के आयुष्य को मापा जाता है।

विवेचन - सूक्ष्म अद्धा पल्योपम का संक्षिप्त में स्वरूप इस प्रकार समझना चाहिए - इसका वर्णन पूर्व वर्णित सूक्ष्म उद्धार पल्योपम के समान समझना चाहिए, फर्क इतना है कि उन असंख्याता बालाग्र खंडों में से एक-एक बालाग्र खंड को सौ-सौ वर्षों से निकालने पर जितने काल में वह कुआँ पूरा खाली होवे उतने काल को एक सूक्ष्म अद्धा पल्योपम कहते हैं। इसका परिणाम असंख्याता कोटा कोटी वर्ष का होता है। इसको दस कोड़ाकोड़ी से गुणा करने पर एक सूक्ष्म अद्धा पल्योपम होता है। इन पल्योपमों सागरोपमों के द्वारा चार गति के जीवों का आयुष्य मापा जाता है। आयुष्य को मापने में सर्वत्र ऋतुसंवत्सर आदि ही काम में लिए जाते हैं। इसके लिए कालानुपूर्वी के वर्णन में काल प्रमाण में जो पक्ष, मास आदि बताएं हैं उन्हीं के हिसाब से माप जानना चाहिए।

(१४०)

नैरयिकों की स्थिति

णेरइयाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं दसवाससहस्साइं, उक्कोसेणं तेत्तीस सागरोवमाइं।

भावार्थ - हे भगवन्! नैरयिकों की स्थिति कियत्कालिक बतलाई गई है?

हे आयुष्मन् गौतम! नैरयिकों की स्थिति जघन्यतः दस हजार वर्ष की और उत्कृष्टतः तैंतीस सागरोपम की कही गई है।

रयणप्पहापुढविणेरइयाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं दसवाससहस्साइं, उक्कोसेणं एगं सागरोवमं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अप्पज्जत्तगरयणप्पहापुढविणेरइयाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

पज्जत्तगरयणप्पहा पुढविणेरइयाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं दसवाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं एगं सागरोवमं अंतोमुहुत्तूणं।

सक्करप्पहापुढविणेरइयाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं एगं सागरोवमं, उक्कोसेणं तिण्णि सागरोवमाइं।

भावार्थ - हे भगवन्! रत्नप्रभा पृथ्वी के नारकों की स्थिति कितनी प्रज्ञप्त हुई है?

हे आयुष्मन् गौतम! रत्नप्रभा पृथ्वी के नारकों की स्थिति जघन्यतः दस सहस्र वर्ष और उत्कृष्टतः एक सागरोपम बतलाई गई है।

हे भगवन्! रत्नप्रभा पृथ्वी के अपर्याप्तक नारकों की स्थिति कितनी कही गई है?

हे आयुष्मन् गौतम! रत्नप्रभा पृथ्वी के अपर्याप्तक नारकों की स्थिति जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्टतः भी अन्तर्मुहूर्त्त बतलाई गई है।

हे भगवन्! रत्नप्रभा पृथ्वी के पर्याप्तक नारकों की स्थिति कितनी बतलाई गई है?

हे आयुष्मन् गौतम! रत्नप्रभा पृथ्वी के पर्याप्तक नारकों की स्थिति कम से कम दस हजार वर्ष से अन्तर्मुहूर्त्त कम और उत्कृष्टतः अन्तर्मुहूर्त्त कम एक सागरोपम बतलाई गई है।

हे भगवन्! शर्कराप्रभा पृथ्वी के नारकों की स्थिति कियत् काल पर्यन्त बतलाई गई है?

हे आयुष्मन् गौतम! शर्करा प्रभा पृथ्वी के नारकों की स्थिति कम से कम एक सागरोपम और अधिक से अधिक तीन सागरोपम परिमित बतलाई गई है।

एवं सेसपुढवीसु पुच्छा भाणियव्वा।

वालुयप्पहापुढविणेरइयाणं-जहण्णेणं तिण्णि सागरोवमाइं, उक्कोसेणं सत्त-सागरोवमाइं।

पंकप्पहापुढविणेरइयाणं - जहण्णेणं सत्तसागरोवमाइं, उक्कोसेणं दस-सागरोवमाइं।

धूमप्पहापुढविणेरइयाणं-जहण्णेणं दससागरोवमाइं, उक्कोसेणं सत्तरस-सागरोवमाइं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तमप्पहापुढविणेरइयाणं- जहण्णेणं सत्तरससागरोवमाइं, उक्कोसेणं बावीस-सागरोवमाइं।

तमतमा-पुढविणेरइयाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं बावीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं।

भावार्थ - इसी प्रकार शेष पृथ्वियों के विषय में पूछे गए प्रश्नों के उत्तर भी (निम्नानुसार) कथनीय हैं -

(तीसरी) बालुकाप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की जघन्य स्थिति तीन सागरोपम तथा उत्कृष्टतः सात सागरोपम है।

पंकप्रभा पृथ्वी (चतुर्थ) के नैरयिकों की स्थिति जघन्यतः सात सागरोपम तथा उत्कृष्टतः दस सागरोपम है।

धूमप्रभा (संज्ञक पांचवीं) पृथ्वी के नैरयिकों की जघन्य स्थिति दस सागरोपम तथा उत्कृष्टतः सतरह सागरोपम परिमित है।

तमःप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की जघन्य स्थिति सतरह सागरोपम तथा उत्कृष्ट स्थिति बाईस सागरोपम प्रमाण है।

हे भगवन्! तमस्तमः प्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति कितनी प्रज्ञप्त हुई है?

हे आयुष्मन् गौतम! तमस्तमःप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की कम से कम स्थिति बाईस सागरोपम तथा अधिकतम तैंतीस सागरोपम बतलाई गई है।

भवनपति देवों की स्थिति

असुरकुमाराणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं दसवाससहस्साइं उक्कोसेणं साइरेग सागरोवमं।

असुरकुमारदेवीणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं दसवाससहस्साइं, उक्कोसेणं अद्धपंचमाइं पलिओवमाइं।

णागकुमाराणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं दसवाससहस्साइं उक्कोसेणं देसूणाइं दुण्णि पलिओवमाइं।

णागकुमारीणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! जहण्णेणं दसवाससहस्साइं, उक्कोसेणं देसूणं पलिओवमं। एवं जहा णागकुमारदेवाणं देवीण य तहा जाव थणियकुमाराणं देवाणं देवीण य भाणियव्वं।

भावार्थ - हे भगवन्! असुरकुमारों की स्थिति कियत्कालिक बतलाई गई है?

हे आयुष्मन् गौतम! असुरकुमारों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष और उत्कृष्टतः एक सागरोपम से कुछ अधिक है।

हे भगवन्! असुरकुमार देवियों की स्थिति कितनी प्रज्ञप्त हुई है?

हे आयुष्यमन् गौतम! असुरकुमार देवियों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष परिमित तथा उत्कृष्टतः साढे चार पल्योपम की बताई गई है।

हे भगवन्! नाग कुमारों की स्थिति कितनी प्रज्ञप्त हुई है?

हे आयुष्यमन् गौतम! नाग कुमारों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष तथा उत्कृष्टतः देश (कुछ) कम दो पल्योपम की है।

हे भगवन्! नागकुमार देवियों की स्थिति कियत्कालिक बतलाई गई है?

हे आयुष्मन् गौतम! नागकुमार देवियों की स्थिति जघन्यतः दस हजार वर्ष और उत्कृष्टतः देश (कुछ) कम पल्योपम होती है।

इस प्रकार जितनी (ऊपर) नागकुमार देवों और देवियों की स्थिति बतलाई गई है, उतनी स्थिति सुपर्ण कुमार यावत् स्तनितकुमार देवों और देवियों की कथनीय है।

पांच स्थावर निकायों की स्थिति

पुढवीकाइयाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं।

सुहुम-पुढवीकाइयाणं ओहियाणं अपजत्तयाणं पजत्तयाणं च। तिसु वि पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

बायरपुढविकाइयाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं।

अपजत्तग-बायरपुढविकाइयाणं पुच्छा।

गोयमा! जहणेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पज्जत्तगबायर-पुढविकाइयाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

भावार्थ - हे भगवन्! पृथ्वीकायिक जीवों की स्थिति कितनी बतलाई गई है?

हे आयुष्मन् गौतम! पृथ्वीकायिक जीवों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्टतः बाईस हजार वर्ष बतलाई गई है।

सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवों के औघिक (सामान्य), अपर्याप्तक एवं पर्याप्तक जीवों - तीनों के विषय में प्रश्न किया गया।

आयुष्मन् गौतम! इन तीनों की जघन्यतः और उत्कृष्टतः आयु अन्तर्मुहूर्त्त परिमित होती है।

बादर पृथ्वीकायिक जीवों की स्थिति के संदर्भ में पृच्छा की गई है।

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्टतः बाईस हजार वर्षों की होती है।

हे अपर्याप्तक बादर पृथ्वीकायिक जीवों की स्थिति के संदर्भ में प्रश्न है।

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी जघन्यतः और उत्कृष्टतः अन्तर्मुहूर्त्त परिमित होती है।

पर्याप्तक बादर पृथ्वीकायिक जीवों की स्थिति के विषय में पूछा।

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त एवं उत्कृष्ट स्थिति बाईस हजार वर्ष से अन्तर्मुहूर्त्त कम होती है।

एवं सेसकाइयाण वि पुच्छावयणं भाणियव्वं।

आउकाइयाणं-जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सत्तवाससहस्साइं।

सुहुमआउकाइयाणं ओहियाणं अपज्जत्तगाणं पज्जत्तगाणं तिण्ह वि-जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

बायरआउकाइयाणं जहा ओहियाणं।

अपज्जत्तगबायरआउकाइयाणं-जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

पज्जत्तगबायरआउकाइयाणं-जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सत्तवाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तेउकाइयाणं-जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि राइंदियाइं।

सुहुमतेउकाइयाणं ओहियाणं अपज्जत्तगाणं पज्जत्तगाणं तिण्ह वि-जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

बायरतेउकाइयाणं-जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि राइंदियाइं।

अपज्जत्तगबायरतेउकाइयाणं-जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

पज्जत्तगबायरतेउकाइयाणं-जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि राइंदियाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

वाउकाइयाणं-जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि वाससहस्साइं।

सुहुमवाउकाइयाणं ओहियाणं अपज्जत्तगाणं पज्जत्तगाण य तिण्ह वि-जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

बायरवाउकाइयाणं-जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि वाससहस्साइं।

अपज्जत्तगबायर-वाउकाइयाणं-जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

पज्जत्तगबायर-वाउकाइयाणं-जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

वणस्सइकाइयाणं-जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं दसवाससहस्साइं।

सुहुमवणस्सइकाइयाणं ओहियाणं अपज्जत्तगाणं पज्जत्तगाण य तिण्ह वि-जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

बायरवणस्सइकाइयाणं-जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं दसवाससहस्साइं।

अपज्जत्तगबायरवणस्सइकाइयाणं-जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

पज्जत्तगबायरवणस्सइकाइयाणं-जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं दसवाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - इसी प्रकार से शेष कायिकों (अप्काय से वनस्पतिकाय पर्यन्त) के विषय में भी पूछना चाहिए।

अप्कायिक जीवों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त एवं उत्कृष्ट स्थिति सात हजार वर्ष बतलाई गई है।

सूक्ष्म अप्कायिक जीवों के औघिक, अपर्याप्तक एवं पर्याप्तक - तीनों ही भेदों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त बतलाई गई है।

बादर अप्कायिक जीवों की स्थिति औघिक अप्कायिक जीवों के समान ही ज्ञातव्य है।

अपर्याप्तक बादर अप्कायिक जीवों की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण बतलाई गई है।

पर्याप्तक बादर अप्कायिक जीवों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त परिमित तथा उत्कृष्टतः अन्तर्मुहूर्त्त कम सात हजार वर्ष परिमित है।

अग्निकायिक जीवों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त एवं उत्कृष्ट स्थिति तीन रात-दिन की बतलाई गई है।

सूक्ष्म अग्निकायिक जीवों के तीनों भेदों - औघिक, अपर्याप्तक एवं पर्याप्तक की जघन्य स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त परिमित एवं उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त बतलाई गई है।

बादर अग्निकायिक जीवों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण एवं उत्कृष्ट स्थिति तीन रात-दिन बतलाई गई है।

अपर्याप्तक बादर अग्निकायिक जीवों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त परिमित एवं उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण है।

पर्याप्तक बादर अग्निकायिक जीवों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त एवं उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त न्यून तीन रात-दिन कही गई है।

वायुकायिक जीवों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त एवं उत्कृष्टतः तीन हजार वर्ष की बतलाई गई है।

सूक्ष्म वायुकायिक जीवों के तीनों ही भेदों औघिक, अपर्याप्तक एवं पर्याप्तक की जघन्यतः स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त एवं उत्कृष्टतः भी अन्तर्मुहूर्त्त ही बतलाई गई है।

बादर वायुकायिक जीवों की स्थिति जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त एवं उत्कृष्टतः तीन हजार वर्ष होती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अपर्याप्तक बादर वायुकायिक जीवों की जघन्यतः एवं उत्कृष्टतः स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त पर्यन्त होती है।

पर्याप्तक बादर वायुकायिक जीवों की स्थिति जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त एवं उत्कृष्टतः अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन हजार वर्ष परिज्ञापित हुई है।

वनस्पतिकायिक जीवों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त उत्कृष्टतः दस हजार वर्ष होती है।

सूक्ष्म वनस्पतिकायिक जीवों की औधिक, अपर्याप्तक एवं पर्याप्तक - तीनों ही भेदों की स्थिति जघन्यतः और उत्कृष्टतः अन्तर्मुहूर्त्त परिमित होती है।

बादर वनस्पतिकायिक जीवों की स्थिति जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्टतः दस हजार वर्ष है।

अपर्याप्तक बादर वनस्पतिकायिक जीवों की जघन्य एवं उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त परिमित होती है।

पर्याप्तक बादर वनस्पतिकायिक जीवों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त एवं उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष होती है।

विकलेन्द्रियों की स्थिति

बेइंदियाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बारससंवच्छराणि।

अपज्जत्तगबेइंदियाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

पज्जत्तगबेइंदियाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बारससंवच्छराइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

तेइंदियाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं एगूणपण्णासं राइंदियाणं।

अपज्जत्तगतेइंदियाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

पज्जत्तगतेइंदियाणं पुच्छा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं एगूणपण्णासं राइंदियाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

चउरिंदियाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं छम्मासा।

अपज्जत्तगचउरिंदियाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

पज्जत्तगचउरिंदियाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं छम्मासा अंतोमुहुत्तूणा।

भावार्थ - हे भगवन्! द्वीन्द्रियों की स्थिति कियत्काल परिमित होती है?

हे आयुष्मन् गौतम! द्वीन्द्रियों की स्थिति जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्टतः बारह वर्ष की होती है।

हे अपर्याप्तक द्वीन्द्रियों के विषय में पूछा।

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी जघन्यतः और उत्कृष्टतः स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त परिमित होती है।

पर्याप्तक द्वीन्द्रियों की स्थिति के विषय में प्रश्न किया।

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी स्थिति जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त एवं अधिक से अधिक अन्तर्मुहूर्त्त कम बारह संवत्सरों (वर्षों) की होती है।

त्रीन्द्रियों के विषय में पूछा।

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी स्थिति जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त एवं उत्कृष्टतः उनपचास रात-दिनों की होती है।

अपर्याप्तक त्रीन्द्रियों के विषय में प्रश्न किया।

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी जघन्यतः और उत्कृष्टतः - दोनों ही स्थितियाँ अन्तर्मुहूर्त्त परिमित होती है।

पर्याप्तक त्रीन्द्रियों के विषय में प्रश्न किया।

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी स्थिति जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त एवं उत्कृष्टतः अन्तर्मुहूर्त्त कम उनपचास रात-दिनों की होती है।

चतुरिन्द्रिय जीवों की स्थिति कियत्काल परिमित प्रज्ञप्त हुई है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त एवं उत्कृष्टतः छह मास की होती है।

अपर्याप्तक चतुरिन्द्रियों के विषय में पूछा।

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी जघन्यतः और उत्कृष्टतः दोनों ही स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त परिमित होती है।

पर्याप्तक चतुरिन्द्रियों के विषय में प्रश्न है।

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी जघन्यतः स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त एवं उत्कृष्टतः अन्तर्मुहूर्त्त कम छह मास की होती है।

पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीवों की स्थिति

पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं।

भावार्थ - हे भगवन्! पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीवों की स्थिति कितनी कही गई है?

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी स्थिति जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्टतः तीन पल्योपम की कही गई है।

जलचर पंचेन्द्रिय जीवों की स्थिति

जलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी।

सम्मुच्छिमजलयरपंचिंदियपुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी।

अपज्जत्तयसम्मुच्छिमजलयरपंचिंदियपुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

पज्जत्तयसम्मुच्छिमजलयरपंचिंदियपुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणा।

गब्भवक्कंतियजलयरपंचिंदियपुच्छा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी।

अपज्जत्तगगब्भवक्कंतियजलयरपंचिंदियपुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

पज्जत्तगगब्भवक्कंतियजलयरपंचिंदियपुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणा।

भावार्थ - हे भगवन्! जलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यंचयोनिक जीवों की स्थिति कियत्कालिक प्ररूपित हुई है?

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी स्थिति जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्टतः एक करोड़ पूर्व वर्षों की होती है।

सम्मूर्च्छिम-जलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यंचयोनिक जीवों के विषय में प्रश्न है।

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी स्थिति जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त एवं उत्कृष्टतः एक करोड़ पूर्व वर्षों की होती है।

अपर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-जलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यंचयोनिक जीवों की स्थिति के विषय में प्रश्न किया।

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी जघन्यतः एवं उत्कृष्टतः - दोनों ही स्थितियाँ अन्तर्मुहूर्त्त पर्यन्त होती है।

पर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-जलचर-पंचेन्द्रिय जीवों की स्थिति के विषय में पूछा।

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी स्थिति जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त एवं उत्कृष्टतः अन्तर्मुहूर्त्त कम एक करोड़ पूर्व वर्षों की होती है।

गर्भव्युत्क्रांतिक-जलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यंचयोनिक जीवों के विषय में प्रश्न किया।

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी स्थिति जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त परिमित एवं उत्कृष्टतः एक करोड़ पूर्व वर्षों की होती है।

अपर्याप्तक-गर्भव्युत्क्रांतिक-जलचर-पंचेन्द्रिय जीवों की स्थिति के विषय में प्रश्न है।

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी स्थिति जघन्यतः एवं उत्कृष्टतः अन्तर्मुहूर्त्त परिमित होती है।

पर्याप्तक-गर्भव्युत्क्रांतिक-जलचर-पंचेन्द्रिय जीवों की स्थिति के बारे में इसी प्रकार पूछा गया।

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी स्थिति जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्टतः अन्तर्मुहूर्त्त कम एक करोड़ पूर्व वर्षों की होती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्थलचर पंचेन्द्रिय जीवों की स्थिति

चउप्पयथलयरपंचिंदियपुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं।

सम्मुच्छिमचउप्पयथलयरपंचिंदियपुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं चउरासीइं वाससहस्साइं।

अपज्जत्तयसम्मुच्छिमचउप्पयथलयरपंचिंदियपुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

पज्जत्तयसम्मुच्छिमचउप्पयथलयरपंचिंदियपुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं चउरासीइं वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

गब्भवक्कंतियचउप्पयथलयरपंचिंदियपुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं।

अपज्जत्तगगब्भवक्कंतियचउप्पयथलयरपंचिंदियपुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

पज्जत्तगगब्भवक्कंतियचउप्पयथलयरपंचिंदियपुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

उरपरिसप्पथलयरपंचिंदियपुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी।

सम्मुच्छिमउरपरिसप्पथलयरपंचिंदियपुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तेवण्णं वाससहस्साइं।

अपज्जत्तयसम्मुच्छिमउरपरिसप्पथलयरपंचिंदियपुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

पज्जत्तयसम्मुच्छिमउरपरिसप्पथलयरपंचिंदियपुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तेवण्णं वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गब्भवक्कंतियउरपरिसप्पथलयरपंचिंदियपुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी।

अपज्जत्तगगब्भवक्कंतियउरपरिसप्पथलयरपंचिंदियपुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

पज्जत्तगगब्भवक्कंतियउरपरिसप्पथलयरपंचिंदियपुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणा।

भुयपरिसप्पथलयरपंचिंदियपुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी।

सम्मुच्छिमभुयपरिसप्पथलयरपंचिंदियपुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बायालीसं वाससहस्साइं।

अपज्जत्तयसम्मुच्छिमभुयपरिसप्पथलयरपंचिंदियपुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

पज्जत्तयसम्मुच्छिमभुयपरिसप्पथलयरपंचिंदियपुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बायालीसं वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

गब्भवक्कंतियभुयपरिसप्पथलयरपंचिंदियपुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी।

अपज्जत्तयगब्भवक्कंतियभुयपरिसप्पथलयरपंचिंदियपुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

पज्जत्तयगब्भवक्कंतियभुयपरिसप्पथलयरपंचिंदियपुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणा।

भावार्थ - चतुष्पद-थलचर-पंचेन्द्रिय जीवों की स्थिति के विषय में पूछा।

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी स्थिति जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त एवं उत्कृष्टतः तीन पल्योपम की बतलाई गई है।

सम्मूर्च्छिम-चतुष्पद-थलचर-पंचेन्द्रिय जीवों के विषय में प्रश्न किया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी स्थिति जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्टतः चौरासी हजार वर्ष प्रमाण होती है।

अपर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-चतुष्पद-थलचर-पंचेन्द्रिय जीवों की स्थिति के विषय में पूछा।

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी जघन्यतः और उत्कृष्टतः स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त परिमित होती है।

पर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-चतुष्पद-थलचर-पंचेन्द्रिय जीवों की स्थिति के विषय में प्रश्न किया।

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी जघन्यतः स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त एवं उत्कृष्टतः अन्तर्मुहूर्त्त न्यून चौरासी हजार वर्ष प्रमाण होती है।

गर्भव्युत्क्रांतिक-चतुष्पद-थलचर-पंचेन्द्रिय जीवों के विषय में प्रश्न करने पर -

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी स्थिति जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण एवं उत्कृष्टतः तीन पल्योपम परिमित होती है।

अपर्याप्तक-गर्भव्युत्क्रांतिक-चतुष्पद-थलचर-पंचेन्द्रिय जीवों की स्थिति के विषय में पूछा।

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी स्थिति जघन्यतः एवं उत्कृष्टतः - दोनों ही अन्तर्मुहूर्त्त परिमित होती हैं।

पर्याप्तक-गर्भव्युत्क्रांतिक-चतुष्पद-थलचर-पंचेन्द्रिय जीवों के विषय में प्रश्न है।

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी कालस्थिति जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त एवं उत्कृष्टतः अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन पल्योपम की बतलाई गई है।

उरःपरिसर्प-थलचर-पंचेन्द्रिय जीवों के विषय में प्रश्न किया।

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी स्थिति जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त एवं उत्कृष्टतः एक करोड़ पूर्व वर्षों की होती है।

सम्मूर्च्छिम-उरःपरिसर्प-थलचर-पंचेन्द्रिय जीवों के विषय में प्रश्न है।

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी कालस्थिति जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त एवं उत्कृष्टतः तिरेपन हजार वर्षों की होती है।

अपर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-उरःपरिसर्प-थलचर-पंचेन्द्रिय जीवों की स्थिति के विषय में प्रश्न किया।

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी कम से कम एवं अधिक से अधिक स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त परिमित होती है।

पर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-उरःपरिसर्प-थलचर-पंचेन्द्रिय जीवों की स्थिति के विषय में पूछा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी स्थिति जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त एवं उत्कृष्टतः अन्तर्मुहूर्त्त कम तिरेपन हजार वर्षों की होती है।

गर्भव्युत्क्रांतिक-उरःपरिसर्प-थलचर-पंचेन्द्रिय जीवों की स्थिति के संदर्भ में प्रश्न किया।

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी स्थिति जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त एवं उत्कृष्टतः एक करोड़ पूर्व वर्षों की होती है।

अपर्याप्तक-गर्भव्युत्क्रांतिक-उरःपरिसर्प-थलचर-पंचेन्द्रिय जीवों की स्थिति के विषय में पूछा।

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी जघन्यतः और उत्कृष्टतः - दोनों ही स्थितियाँ अन्तर्मुहूर्त्त परिमित होती है।

पर्याप्तक-गर्भव्युत्क्रांति-उरःपरिसर्प-थलचर-पंचेन्द्रिय जीवों की काल स्थिति के संदर्भ में प्रश्न है।

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी स्थिति जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त एवं उत्कृष्टतः अन्तर्मुहूर्त्त कम एक करोड़ पूर्व वर्षों की होती है।

भुजपरिसर्प-थलचर-पंचेन्द्रिय जीवों की काल स्थिति के विषय में पूछा।

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी स्थिति जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्टतः एक करोड़ पूर्व वर्षों की होती है।

सम्मूर्च्छिम-भुजपरिसर्प-थलचर-पंचेन्द्रिय जीवों की स्थिति के विषय में पृच्छा की।

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी स्थिति जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त परिमित और उत्कृष्टतः बयालीस हजार वर्ष प्रमाण होती है।

अपर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-भुजपरिसर्प-थलचर-पंचेन्द्रिय जीवों की स्थिति के विषय में प्रश्न किया।

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी स्थिति जघन्यतः और उत्कृष्टतः अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण है।

पर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-भुजपरिसर्प-थलचर-पंचेन्द्रिय जीवों की स्थिति के विषय में पूछा।

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी स्थिति जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त एवं उत्कृष्टतः अन्तर्मुहूर्त्त कम बयालीस हजार वर्षों की होती है।

गर्भव्युत्क्रांतिक-भुजपरिसर्प-थलचर-पंचेन्द्रिय जीवों के विषय में पृच्छा की।

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी कालस्थिति जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्टतः एक करोड़ पूर्व वर्षों की होती है।

अपर्याप्तक-गर्भव्युत्क्रांतिक-भुजपरिसर्प-थलचर-पंचेन्द्रिय जीवों की काल स्थिति के संबंध में प्रश्न है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी जघन्य और उत्कृष्ट - दोनों ही स्थितियाँ अन्तर्मुहूर्त्त परिमित हैं।

पर्याप्तक-गर्भव्युत्क्रांतिक-भुजपरीसर्प-थलचर-पंचेन्द्रिय जीवों की काल स्थिति के संबंध में पृच्छा की।

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी स्थिति जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्टतः अन्तर्मुहूर्त्त कम एक करोड़ पूर्व वर्षों की होती है।

विवेचन - गाय, भैंस आदि चार पैर वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय चतुष्पद स्थलचर कहे जाते हैं। पेट के सहारे रेंगने (चलने) वाले सर्प, अजगर आदि जीव उरपरिसर्प स्थलचर कहे जाते हैं। भुजाओं (पैरों) के सहारे रेंगने वाले चूहा, नेवला आदि जीव भुजपरिसर्प स्थलचर कहलाते हैं। ये तीनों भेद स्थलचर तिर्यंच पंचेन्द्रिय के होते हुए भी चलने के प्रकार में फर्क होने से इन्हें अलग-अलग भेदों के रूप में बताया गया है।

खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचों की काल स्थिति

खहयरपंचिंदियपुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागो।

सम्मुच्छिमखहयरपंचिंदियपुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बावत्तरिं वाससहस्साइं।

अपज्जत्तगसम्मुच्छिमखहयरपंचिंदियपुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

पज्जत्तगसम्मुच्छिमखहयरपंचिंदियपुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बावत्तरिं वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

गब्भवक्कंतियखहयरपंचिंदियपुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागो।

अपज्जत्तयगब्भवक्कंतियखहयरपंचिंदियपुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

पज्जत्तगगब्भवक्कंतियखहयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागो अंतोमुहुत्तूणो।

भावार्थ - खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यंचयोनिक-जीवों की काल स्थिति के विषय में प्रश्न किया।

इनकी स्थिति जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः पल्योपम के असंख्यातवें भाग जितनी होती है।

सम्मूर्च्छिम-खेचर-पंचेन्द्रिय जीवों की स्थिति के विषय में पूछा।

इनकी स्थिति जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त एवं उत्कृष्टतः बहत्तर हजार वर्षों की होती है।

अपर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-खेचर-पंचेन्द्रिय जीवों के विषय में पृच्छा की।

इनकी स्थिति जघन्यतः और उत्कृष्टतः अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होती है।

पर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-खेचर-पंचेन्द्रिय जीवों के विषय में प्रश्न है।

इनकी स्थिति जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त एवं उत्कृष्टतः अन्तर्मुहूर्त्त कम बहत्तर हजार वर्षों की होती है।

गर्भव्युत्क्रांतिक-खेचर-पंचेन्द्रिय जीवों के विषय में पूछा।

इनकी स्थिति जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण एवं उत्कृष्टतः पल्योपम के असंख्यातवें भाग जितनी होती है।

अपर्याप्तक-गर्भव्युत्क्रांतिक-खेचर-पंचेन्द्रिय जीवों की स्थिति के संदर्भ में प्रश्न है।

इनकी स्थिति जघन्यतः और उत्कृष्टतः अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण होती है।

पर्याप्तक-गर्भव्युत्क्रांतिक-खेचर-पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीवों की स्थिति कियत्कालिक प्रज्ञप्त हुई है?

इनकी कालस्थिति जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त एवं उत्कृष्टतः अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम के असंख्यातवें भाग जितनी होती है।

संग्रहणी गाथाएँ

एत्थ एएसि णं संगहणिगाहाओ भवंति, तं जहा -

सम्मुच्छिम पुव्वकोडी, चउरासीइं भवे सहस्साइं।

तेवण्णा बायाला, बावत्तरिमेव पक्खीणं॥१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गब्भंमि पुव्वकोडी, तिण्णि य पलिओवमाइं परमाऊ।

उरग भुय पुव्वकोडी, पलिओवमासंखभागो य॥२॥

शब्दार्थ - परमाऊ - परमायु - उत्कृष्ट आयु।

भावार्थ - यहाँ इनसे संबंधित संग्रहणी गाथाएँ दी जा रही हैं, जो इस प्रकार है -

सम्मूर्च्छिम-तिर्यंच-पंचेन्द्रिय जीवों में क्रमशः जलचरों की उत्कृष्ट स्थिति करोड़ पूर्व वर्ष, थलचर-चतुष्पद-सम्मूर्च्छिम जीवों की स्थिति चौरासी सहस्र वर्ष, उरःपरिसर्पों की तिरेपन सहस्र वर्ष, भुजपरिसर्प प्राणियों की बयालीस सहस्र वर्ष तथा पक्षियों की बहत्तर हजार वर्ष परिमित है॥१॥

गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवों में क्रमशः जलचरों की उत्कृष्ट स्थिति करोड़ पूर्व वर्षों, स्थलचरों की तीन पल्योपम, उरःपरिसर्पों एवं भुजपरिसर्पों की करोड़ पूर्व वर्षों एवं खेचरों की पल्योपम के असंख्यातवें भाग जितनी है॥२॥

मनुष्यों की स्थिति

मणुस्साणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं।

सम्मुच्छिममणुस्साणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

गब्भवक्कंतियमणुस्साणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं।

अपज्जत्तगगब्भवक्कंतियमणुस्साणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

पज्जत्तगगब्भवक्कंतियमणुस्साणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

भावार्थ - हे भगवन्! मनुष्यों की स्थिति कियत्कालिक बतलाई गई है?

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी स्थिति जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त परिमित एवं उत्कृष्टतः तीन पल्योपम परिमित परिज्ञापित हुई है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सम्मूर्च्छिम मनुष्यों के संदर्भ में प्रश्न किया गया है।

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी स्थिति जघन्यतः और उत्कृष्टतः - दोनों ही अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण है।

गर्भव्युत्क्रांतिक मनुष्यों की स्थिति के विषय में पृच्छा की गई है।

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी स्थिति जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्टतः तीन पल्योपम की होती है।

हे भगवन्! अपर्याप्तक गर्भव्युत्क्रांति मनुष्यों की स्थिति कितनी कही गई है?

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी स्थिति जघन्यतः और उत्कृष्टतः - दोनों ही अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण हैं।

हे भगवन्! पर्याप्तक-गर्भव्युत्क्रांतिक मनुष्यों की स्थिति के संदर्भ में पृच्छा की गई है।

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी स्थिति जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त एवं उत्कृष्टतः अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन पल्योपम की है।

वाणव्यंतर देवों की स्थिति

वाणमंतराणं देवाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं दसवाससहस्साइं उक्कोसेणं पलिओवमं।

वाणमंतरीणं देवीणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं दसवाससहस्साइं, उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं।

भावार्थ - हे भगवन्! वाणव्यंतर देवों की स्थिति कितनी बतलाई गई है?

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी स्थिति जघन्यतः दस हजार वर्ष और उत्कृष्टतः एक पल्योपम की होती है।

हे भगवन्! वाणव्यंतर देवियों की स्थिति कियत्कालिक प्रज्ञापित हुई है?

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी स्थिति जघन्यतः दस हजार वर्ष एवं उत्कृष्टतः अर्द्धपल्योपम परिमित होती है।

ज्योतिष्क देवों की स्थिति

जोइसियाणं भंते! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अट्ठभागपलिओवमं, उक्कोसेणं पलिओवमं वाससय-सहस्समब्भहियं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जोइसियदेवीणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अट्ठभागपलिओवमं, उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं पण्णासाए वाससहस्सेहिं अब्भहियं।

चंदविमाणाणं भंते! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं, उक्कोसेणं पलिओवमं वाससय-सहस्समब्भहियं।

चंदविमाणाणं भंते! देवीणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं, उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं पण्णासाए वाससहस्सेहिं अब्भहियं।

सूरविमाणाणं भंते! देवाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं, उक्कोसेणं पलिओवमं वाससहस्स-मब्भहियं।

सूरविमाणाणं देवीणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं, उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं पंचहिं वाससएहिं अब्भहियं।

गहविमाणाणं भंते! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं, उक्कोसेणं पलिओवमं।

गहविमाणाणं भंते! देवीणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं, उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं।

णक्खत्तविमाणाणं भंते! देवाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं, उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं।

णक्खत्तविमाणाणं देवीणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं, उक्कोसेणं साइरेगं चउभागपलिओवमं।

ताराविमाणाणं भंते! देवाणं पुच्छा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! जहण्णेणं अट्ठभागपलिओवमं, उक्कोसेणं चउभागपलिओवमं।

ताराविमाणाणं भंते! देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता।

गोयमा! जहण्णेणं अट्ठभागपलिओवमं, उक्कोसेणं साइरेगं अट्ठभागपलिओवमं।

शब्दार्थ - साइरेगं - सातिरेक-कुछ अधिक, **अब्भहियं** - अधिक।

भावार्थ - हे भगवन्! ज्योतिष्क देवों की स्थिति कितनी बतलाई गई है?

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी स्थिति जघन्यतः पल्योपम का आठवाँ भाग की और उत्कृष्टतः पल्योपम से एक लाख वर्ष अधिक की होती है।

हे भगवन्! ज्योतिष्क देवियों की स्थिति कियत्कालिक बतलाई गई है?

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी काल स्थिति जघन्यतः पल्योपम के आठवें भाग जितनी और उत्कृष्टतः अर्द्धपल्योपम से पचास हजार वर्ष अधिक की कही गई है।

हे भगवन्! चन्द्रविमानों के देवों की कालस्थिति कितनी बतलाई गई है?

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी स्थिति जघन्यतः पल्योपम के चतुर्थ भाग की एवं उत्कृष्टतः पल्योपम से एक लाख वर्ष अधिक की कही गई है।

हे भगवन्! चन्द्रविमानों की देवियों की कालस्थिति के विषय में पूछा।

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी कालस्थिति जघन्यतः पल्योपम के चतुर्थ भाग परिमित और उत्कृष्टतः अर्ध पल्योपम से पचास हजार वर्ष अधिक की होती है।

हे भगवन्! सूर्य विमानों के देवों की कालस्थिति के विषय में पूछा।

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी स्थिति जघन्यतः पल्योपम के चतुर्थ भाग जितनी और उत्कृष्टतः पल्योपम से एक हजार वर्षों अधिक की होती है।

हे भगवन्! सूर्यविमान की देवियों की स्थिति के विषय में पृच्छा की।

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी कालस्थिति जघन्यतः पल्योपम के चतुर्थ भाग परिमित्त और उत्कृष्टतः अर्द्धपल्योपम से पाँच सौ वर्ष अधिक की होती है।

हे भगवन्! ग्रहविमानों के देवों की स्थिति कियत्कालिक प्रज्ञापित हुई है?

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी स्थिति जघन्यतः पल्योपम का चतुर्थ भाग की और उत्कृष्टतः एक पल्योपम की होती है।

हे भगवन्! ग्रहविमानों की देवियों की स्थिति के विषय में प्रश्न है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी काल स्थिति जघन्यतः पल्योपम के चतुर्थ भाग परिमित और उत्कृष्टतः अर्द्धपल्योपम की होती है।

हे भगवन्! नक्षत्रविमानों के देवों के विषय में पृच्छा की।

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी स्थिति जघन्यतः पल्योपम के चतुर्थ भाग जितनी और उत्कृष्टतः अर्द्धपल्योपम की कही गई है।

(भगवन्) नक्षत्रविमानों की देवियों की स्थिति के विषय में पूछा।

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी स्थिति जघन्यतः पल्योपम का चतुर्थ भाग और उत्कृष्टतः पल्योपम के चतुर्थ भाग से कुछ अधिक की होती है।

हे भगवन्! ताराविमानों के देवों की कालस्थिति के विषय में पूछा।

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी जघन्यतः स्थिति पल्योपम के आठवें भाग जितनी तथा उत्कृष्टतः पल्योपम के चतुर्थ भाग परिमित होती है।

हे भगवन्! ताराविमानों की देवियों की स्थिति के विषय में प्रश्न है।

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी कालस्थिति जघन्यतः पल्योपम के आठवें भाग जितनी तथा उत्कृष्टतः पल्योपम के आठवें भाग से कुछ अधिक प्रमाण है।

वैमानिक देवों की स्थिति

वेमाणियाणं भंते! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं पलिओवमं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं।

वेमाणियाणं भंते! देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं पलिओवमं, उक्कोसेणं पणपण्णं पलिओवमाइं।

भावार्थ - हे भगवन्! वैमानिक देवों की स्थिति कितने काल की परिज्ञापित हुई है?

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी स्थिति जघन्यतः एक पल्योपम की तथा उत्कृष्टतः तैतीस सागरोपम प्रतिपादित की गई है।

हे भगवन्! वैमानिक देवियों की स्थिति कितनी बतलाई गई है?

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी स्थिति जघन्यतः एक पल्योपम की तथा उत्कृष्टतः पचपन पल्योपम की बतलाई गई है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सौधर्म से अच्युतकल्प पर्यन्त देवों की स्थिति

सोहम्मे णं भंते! कप्पे देवाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं पलिओवमं, उक्कोसेणं दो सागरोवमाइं।

सोहम्मे णं भंते! कप्पे परिग्गहियादेवीणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं पलिओवमं, उक्कोसेणं सत्तपलिओवमाइं।

सोहम्मे णं भंते! कप्पे अपरिग्गहियादेवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं पलिओवमं, उक्कोसेणं पण्णासं पलिओवमाइं।

ईसाणे णं भंते! कप्पे देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं साइरेगं पलिओवमं, उक्कोसेणं साइरेगाइं दो सागरोवमाइं।

ईसाणे णं भंते! कप्पे परिग्गहियादेवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं साइरेगं पलिओवमं, उक्कोसेणं णवपलिओवमाइं।

ईसाणे णं भंते! कप्पे अपरिग्गहियादेवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं साइरेगं पलिओवमं, उक्कोसेणं पणपण्णं पलिओवमाइं।

सणंकुमारे णं भंते! कप्पे देवाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं दो सागरोवमाइं, उक्कोसेणं सत्तसागरोवमाइं।

माहिंदे णं भंते! कप्पे देवाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं साइरेगाइं दो सागरोवमाइं, उक्कोसेणं साइरेगाइं सत्त-सागरोवमाइं।

बंभलोए णं भंते! कप्पे देवाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं सत्तसागरोवमाइं, उक्कोसेणं दससागरोवमाइं।

एवं कप्पे कप्पे केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! एवं भाणियव्वं-लंतए-जहण्णेणं दससागरोवमाइं, उक्कोसेणं चउद्दस सागरोवमाइं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

महासुक्के-जहण्णेणं चउद्दस सागरोवमाइं, उक्कोसेणं सत्तरस सागरोवमाइं। सहस्सारे-जहण्णेणं सत्तरस सागरोवमाइं, उक्कोसेणं अट्ठारस सागरोवमाइं। आणए-जहण्णेणं अट्ठारस सागरोवमाइं, उक्कोसेणं एगूणवीसं सागरोवमाइं। पाणए-जहण्णेणं एगूणवीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं बीसं सागरोवमाइं। आरणे-जहण्णेणं वीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं एक्कवीसं सागरोवमाइं। अच्चुए-जहण्णेणं एक्कवीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं बावीसं सागरोवमाइं।

शब्दार्थ - परिग्गहिया - परिगृहीता-परिगृहीत की गई।

भावार्थ - हे भगवन्! सौधर्मकल्प के देवों के विषय में पूछा।

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी स्थिति जघन्यतः सागरोपम की और उत्कृष्टतः दो सागरोपम होती है।

हे भगवन्! सौधर्मकल्प में परिगृहीता देवियों की कालस्थिति के विषय में पृच्छा की।

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी कालस्थिति जघन्यतः एक पल्योपम और उत्कृष्टतः सात पल्योपम की बतलाई गई है।

हे भगवन्! सौधर्मकल्प में अपरिगृहीता देवियों की स्थिति कियत्कालिक होती है?

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी स्थिति जघन्यतः पल्योपम और उत्कृष्टतः पचास पल्योपम होती है।

हे भगवन्! ईशानकल्प के देवों की स्थिति कियत्कालिक प्रज्ञापित हुई है?

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी जघन्य स्थिति पल्योपम से कुछ अधिक की और उत्कृष्टतः दो सागरोपम से कुछ अधिक की कही गई है।

हे भगवन्! ईशानकल्प में परिगृहीता देवियों की कालस्थिति कितनी परिज्ञापित हुई है?

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी स्थिति जघन्यतः पल्योपम से कुछ अधिक की तथा उत्कृष्टतः नौ पल्योपम की बतलाई गई है।

हे भगवन्! ईशानकल्प में अपरिगृहीता देवियों की कितनी कालस्थिति कही गई है?

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी स्थिति जघन्यतः पल्योपम से कुछ अधिक की और उत्कृष्टतः पचपन पल्योपम प्रज्ञप्त हुई है।

हे भगवन्! सनत्कुमार कल्प के देवों की स्थिति के संदर्भ में पृच्छा की।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी स्थिति जघन्यतः दो सागरोपम की और उत्कृष्टतः सात सागरोपम की बतलाई गई है।

हे भगवन्! माहेन्द्रकल्प में देवों की स्थिति के विषय में प्रश्न है।

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी स्थिति जघन्यतः दो सागरोपम से कुछ अधिक और उत्कृष्टतः सात सागरोपम से कुछ अधिक प्रमाण परिज्ञापित हुई है।

हे भगवन्! ब्रह्मलोककल्प के देवों की कालस्थिति के विषय में पृच्छा की।

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी स्थिति जघन्यतः सात सागरोपम की और उत्कृष्टतः दस सागरोपम की बतलाई गई है।

इस प्रकार प्रत्येक कल्प की स्थिति कियत्कालिक बतलाई गई है?

(इस तरह सभी कल्पों के विषय में प्रश्न कथनीय हैं, जिनके समाधान निम्नांकित है।)

हे आयुष्मन् गौतम! लांतक कल्प में देवों की जघन्य स्थिति दस सागरोपम की और उत्कृष्ट चौदह सागरोपम की होती है।

महाशुक्र कल्प के देवों की स्थिति जघन्यतः चौदह सागरोपम की और उत्कृष्टतः सतरह सागरोपम की कही गई है।

सहस्रारकल्प के देवों की स्थिति जघन्यतः सतरह सागरोपम की और उत्कृष्टतः अठारह सागरोपम प्रमाण बतलाई गई है।

आनतकल्प में देवों की स्थिति जघन्यतः अठारह सागरोपम की और उत्कृष्टतः उन्नीस सागरोपम प्रमाण कही गई है।

प्राणतकल्प में देवों की स्थिति जघन्यतः उन्नीस सागरोपम की और उत्कृष्टतः बीस सागरोपम प्रमाण है।

आरणकल्प में देवों की कालस्थिति जघन्यतः बीस सागरोपम की और उत्कृष्टतः इक्कीस सागरोपम की कही गई है।

अच्युतकल्प में देवों की स्थिति जघन्यतः इक्कीस सागरोपम की और उत्कृष्टतः बाईस सागरोपम की होती है।

ग्रैवेयक और अनुत्तर देवों की स्थिति

हेट्ठिमहेट्ठिमगेविज्जविमाणेसु णं भंते! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! जहण्णेणं बावीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं तेवीसं सागरोवमाइं।

हेट्ठिममज्झिमगेविज्जविमाणेसु णं भंते! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं तेवीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं चउवीसं सागरोवमाइं।

हेट्ठिमउवरिमगेविज्जविमाणेसु णं भंते! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं चउवीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं पणवीसं सागरोवमाइं।

मज्झिमहेट्ठिमगेवेज्जविमाणेसु णं भंते! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं पणवीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं छव्वीसं सागरोवमाइं।

मज्झिममज्झिमगेवेज्जविमाणेसु णं भंते! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं छव्वीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं सत्तावीसं सागरोवमाइं।

मज्झिमउवरिमगेवेज्जविमाणेसु णं भंते! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं सत्तावीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं अट्ठावीसं सागरोवमाइं।

उवरिमहेट्ठिमगेविज्जविमाणेसु णं भंते! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अट्ठावीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं एगूणतीसं सागरोवमाइं।

उवरिममज्झिमगेविज्जविमाणेसु णं भंते! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं एगूणतीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं तीसं सागरोवमाइं।

उवरिमउवरिमगेविज्जविमाणेसु णं भंते! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं तीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं इक्कतीसं सागरोवमाइं।

विजयवेजयंतजयंतअपराजियविमाणेसु णं भंते! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं इक्कतीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं।

सव्वट्ठसिद्धे णं भंते! महाविमाणे देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! अजहण्णमणुक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं, सेत्तं सुहुमे अद्धापलिओवमे।

सेत्तं अद्धापलिओवमे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ - हेट्ठिमहेट्ठिम - अधस्तन-अधस्तन, **अजहण्णमणुक्कोसेणं** - अजघन्य-अनुत्कृष्ट।

भावार्थ - हे भगवन्! अधस्तन-अधस्तन ग्रैवेयक विमानों में देवों की स्थिति कियत्कालिक बतलाई गई है?

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी स्थिति जघन्यतः बाईस सागरोपम की और उत्कृष्टतः तेईस सागरोपम परिमित होती है।

हे भगवन्! अधस्तनमध्यम ग्रैवेयक विमानों के देवों की स्थिति कितनी कही गई है?

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी कालस्थिति जघन्यतः तेईस सागरोपम की और उत्कृष्टतः चौबीस सागरोपम की कही गई है।

हे भगवन्! अधस्तन-उपरिम ग्रैवेयक विमानों की स्थिति कियत्कालिक प्रज्ञप्त हुई है?

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी जघन्यतः स्थिति चौबीस सागरोपम की और उत्कृष्टतः पच्चीस सागरोपम प्रमाण है।

हे भगवन्! मध्यम-अधस्तन ग्रैवेयक विमानों की स्थिति कितनी बतलाई गई है?

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी स्थिति जघन्यतः पच्चीस सागरोपम की और उत्कृष्टतः छब्बीस सागरोपम परिमित है।

हे भगवन्! मध्यम-मध्यम ग्रैवेयक विमानों में देवों की स्थिति कितनी कही गई है?

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी जघन्यतः स्थिति छब्बीस सागरोपम की और उत्कृष्टतः स्थिति सत्ताईस सागरोपम की है।

हे भगवन्! मध्यम-उपरिम ग्रैवेयक विमानों में देवों की स्थिति कितनी बतलाई गई है?

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी स्थिति जघन्यतः सत्ताईस सागरोपम की और उत्कृष्टतः अट्ठाईस सागरोपम परिमित होती है।

हे भगवन्! उपरिम-अधस्तन ग्रैवेयक विमानों में देवों की स्थिति कियत्कालिक कही गई है?

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी कालस्थिति जघन्यतः अट्ठाईस सागरोपम की और उत्कृष्टतः उनतीस सागरोपम प्रमाण है।

हे भगवन्! उपरिम-मध्यम ग्रैवेयक विमानों में देवों की स्थिति कितनी प्रज्ञप्त हुई है?

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी जघन्यतः स्थिति उनतीस सागरोपम की और उत्कृष्टतः तीस सागरोपम परिमित होती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हे भगवन्! उपरिम-उपरिम ग्रैवेयक विमानों में देवों की स्थिति कितनी कही गई है?

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी कालस्थिति जघन्यतः तीस सागरोपम की और उत्कृष्टतः इकतीस सागरोपम की कही गई है।

हे भगवन्! विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित विमानों के देवों की स्थिति कियत्कालिक प्रज्ञप्त हुई है?

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी स्थिति जघन्यतः इकतीस सागरोपम की और उत्कृष्टतः तेतीस सागरोपम की परिज्ञापित हुई है।

हे भगवन्! सर्वार्थसिद्ध महाविमान के देवों की स्थिति कितनी प्रज्ञप्त हुई है?

हे आयुष्मन् गौतम! इनकी कालस्थिति अजघन्य-अनुत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की कही गई है।

यह सूक्ष्म अद्धापल्योपम का निरूपण है।

इस प्रकार अद्धापल्योपम का विवेचन समाप्त होता है।

(१४१)

क्षेत्रपल्योपम का निरूपण

से किं तं खेत्तपलिओवमे?

खेत्तपलिओवमे दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - सुहुमे य १ वावहारिए य २।

तत्थ णं जे से सुहुमे से ठप्पे।

भावार्थ - क्षेत्र पल्योपम कितने प्रकार का होता है?

क्षेत्र पल्योपम दो प्रकार का परिज्ञापित हुआ है -

१. सूक्ष्म और २. व्यावहारिक।

इनमें जो सूक्ष्म क्षेत्र पल्योपम है, वह (केवल) स्थापनीय है।

व्यावहारिक क्षेत्रपल्योपम

तत्थ णं जे से वावहारिए-से जहाणामए पल्ले सिया-जोयणं आयामविक्खंभेणं, जोयणं उव्वेहेणं, तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं, से णं पल्ले एगाहियबेयाहियतेयाहिय जाव भरिए वालग्गकोडीणं, ते णं वालग्गा णो अग्गी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

डहेज्जा जाव णो पूइत्ताए हव्वमागच्छेज्जा, जे णं तस्स पल्लस्स आगासपएसा तेहिं वालग्गेहिं अप्फुण्णा तओ णं समए समए एगमेगं आगासपएसं अवहाय जावइएणं कालेणं से पल्ले खीणे जाव णिट्ठिए भवइ से तं वावहारिए खेत्तपलिओवमे।

गाहा - एएसिं पल्लाणं, कोडाकोडी भवेज्ज दसगुणिया।

तं वावहारियस्स खेत्तसागरोवमस्स, एगस्स भवे परिमाणं॥१॥

शब्दार्थ - अप्फुण्णा - आपूर्ण-व्याप्त।

भावार्थ - इनमें जो व्यावहारिक है, वह अपने नामानुरूप आशय लिए हुए है। जैसे एक कुआँ हो, जो एक योजन लम्बाई, चौड़ाई और गहराई वाला हो तथा इसकी परिधि तीन गुनी से कुछ अधिक हो। उस पल्य - कुएँ को एक दिन, दो दिन, तीन दिन यावत् सात दिन के करोड़ों बालाग्रों से इस प्रकार भरा जाए कि उनको अग्नि जला नहीं सके यावत् उनमें किसी प्रकार दुर्गन्ध पैदा न हो सके। तदनंतर उस पल्य के जो आकाशप्रदेश इन बालाग्रों से आपूर्ण हैं- व्याप्त हैं, उनमें समय-समय पर एक-एक आकाशप्रदेश को निकाला जाए तो जितने समय में वह पल्य रिक्त हो यावत् निष्ठित-विशुद्ध हो जाए, वह व्यावहारिक क्षेत्रपल्योपम का कालमान है।

गाथा - इस प्रकार दस कोटि कोटि व्यावहारिक क्षेत्र पल्योपम जितने परिमाण का एक व्यावहारिक क्षेत्र सागरोपम होता है॥१॥

एएहिं वावहारिएहिं खेत्तपलिओवमसागरोवमेहिं किं पओयणं?

एएहिं वावहारिएहिं खेत्तपलिओवमसागरोवमेहिं णत्थि किंचिप्पओयणं, केवलं पण्णवणा पण्णविज्जइ। सेत्तं वावहारिए खेत्तपलिओवमे।

भावार्थ - इन व्यावहारिक क्षेत्र पल्योपम एवं सागरोपम का क्या प्रयोजन है?

इन व्यावहारिक क्षेत्र पल्योपम एवं सागरोपम का किंचित्मात्र भी प्रयोजन नहीं है। इनसे केवल प्रज्ञापन-कथन रूप प्ररूपणा सिद्ध होती है।

यह व्यावहारिक क्षेत्र पल्योपम का स्वरूप है।

विवेचन - व्यावहारिक क्षेत्र पल्योपम का संक्षिप्त में स्वरूप इस प्रकार समझना चाहिए- पूर्व वर्णित व्यावहारिक उद्धार पल्योपम के समान समझना चाहिए, फर्क इतना है कि - उन करोड़ों बालाग्रों से स्पर्शित जो उस पल्य के आकाश प्रदेश हैं, उन आकाश प्रदेशों में से एक-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एक समय में एक-एक आकाश प्रदेश को गिनने पर जितने काल में वे बालाग्रों से स्पर्शित आकाश प्रदेश गिने जाए उतने काल को एक व्यावहारिक क्षेत्र पल्योपम कहा जाता है। इसको दस कोडाकोडी से गुणा करने पर एक व्यावहारिक क्षेत्र सागरोपम होता है। इन पल्योपमों सागरोपमों की प्ररूपणा-सूक्ष्म क्षेत्र पल्योपम, सागरोपम का स्वरूप सरलता से समझाने के लिए की गई है।

पूर्व में जो व्यावहारिक उद्धार पल्योपम और व्यावहारिक अद्धा पल्योपम का स्वरूप बताया है, उन्हीं के समान बालाग्र कोटियों से पल्य को भरने की प्रक्रिया यहां भी ग्रहण की गई है। किन्तु उनसे इसमें अन्तर यह है कि पूर्व के दोनों पल्यों में समय की मुख्यता है, जबकि यहाँ क्षेत्र (आकाश प्रदेश) की मुख्यता से कथन किया गया है।

सूक्ष्म क्षेत्रपल्योपम

से किं तं सुहुमे खेत्तपलिओवमे?

सुहुमे खेत्तपलिओवमे - से जहाणामए पल्ले सिया-जोयणं आयामविक्खंभेणं जाव तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं, से णं पल्ले एगाहियबेयाहियतेयाहिय जाव भरिए वालग्गकोडीणं, तत्थ णं एगमेगे वालग्गे असंखिज्जाइं खंडाइं कज्जइ, ते णं वालग्गा दिट्ठिओगाहणाओ असंखेज्जइभागमेत्ता सुहुमस्स पणगजीवस्स सरीरोगाहणाओ असंखेज्जगुणा, ते णं वालग्गा णो अग्गी डहेज्जा जाव णो पूइत्ताए हव्वमागच्छेज्जा, जे णं तस्स पल्लस्स आगासपएसा तेहिं वालग्गेहिं अप्फुण्णा वा अणाफुण्णा वा तओ णं समए समए एगमेगं आगासपएसं अवहाय जावइएणं कालेणं से पल्ले खीणे जाव णिट्ठिए भवइ सेत्तं सुहुमे खेत्तपलिओवमे।

भावार्थ - सूक्ष्म क्षेत्रपल्योपम का क्या स्वरूप है?

सूक्ष्म क्षेत्रपल्योपम अपने नामानुरूप है। जैसे एक धान्य रखने का पल्य-कुआँ हो, जो एक योजन लम्बा-चौड़ा गहरा हो यावत् इसकी परिधि तीन गुनी से कुछ अधिक हो। इस पल्य को एक दिन, दो दिन, तीन दिन यावत् उत्कृष्टतः सात दिन-रात के उगे हुए करोड़ों बालाग्रों से भर दिया जाए। तदनन्तर इन बालाग्रों के ऐसे असंख्यात खंड किए जाएँ कि वे दृष्टिगम्य पदार्थों

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के असंख्यातवें भाग तुल्य हों एवं सूक्ष्म पनक जीवों की शरीरावगाहना से असंख्यातगुने हों। इन बालाग्रों को अग्नि जला नहीं सकती यावत् उनमें दुर्गन्ध उत्पन्न नहीं हो सकती। उस पल्य के बालाग्रों से जो आकाशप्रदेश व्याप्त-स्पृष्ट हों अथवा अव्याप्त-अस्पृष्ट हों, उनमें से प्रत्येक समय एक-एक आकाश प्रदेश का अपहरण किया जाय - निकाला जाय तो जितने काल में वह कुआँ क्षीण यावत् पूर्णतः रिक्त हो जाए, वह सूक्ष्म क्षेत्र पल्योपम का स्वरूप है।

तत्थ णं चोयए पण्णवगं एवं वयासी - अत्थि णं तस्स पल्लस्स आगासपएसा जे णं तेहिं वालग्गेहिं अणाफुण्णा?

हंता! अत्थि। जहा को दिट्ठंतो?

से जहाणामए कोट्ठए सिया कोहंडाणं भरिए, तत्थ णं माउलिंगा पक्खित्ता ते वि माया, तत्थ णं बिल्ला पक्खित्ता ते वि माया, तत्थ णं आमलगा पक्खित्ता ते वि माया, तत्थ णं बयरा पक्खित्ता ते वि माया, तत्थ णं चणगा पक्खित्ता ते वि माया, तत्थ णं मुग्गा पक्खित्ता ते वि माया, तत्थ णं सरिसवा पक्खित्ता ते वि माया, तत्थ णं गंगावालुया पक्खित्ता सा वि माया, एवमेव एएणं दिट्ठंतेणं अत्थि णं तस्स पल्लस्स आगासपएसा जे णं तेहिं वालग्गेहिं अणाफुण्णा।

गाहा - एएसिं पल्लाणं, कोडाकोडी भवेज्ज दसगुणिया।
तं सुहुमस्स खेत्तसागरोवमस्स, एगस्स भवे परिमाणं॥२॥

शब्दार्थ - **चोयए** - प्रेरक (जिज्ञासु), **अणाफुण्णा** - अस्पृष्ट-अव्याप्त, **कोहंडाणं** - कूष्माण्डों के, **माउलिंगा** - बिजौरा फल, **पक्खित्ता** - डाले गए हों, **बिल्ला** - बिल्वफल, **आमलगा** - आँवले, **बयरा** - बेर (बदरी फल), **चणगा** - चने, **माया** - समा जाते हैं, **मुग्गा** - मूँग, **सरिसव** - सरिसर्प-सरसों, **गंगावालुया** - गंगा महानदी की बालू।

भावार्थ - इस प्रकार से प्ररूपणा - कथन करने पर जिज्ञासु ने प्रश्न किया -

क्या उस पल्य के ऐसे भी आकाशप्रदेश हैं, जो उन बालाग्रखण्डों से अस्पृष्ट हों?

हाँ, (ऐसे आकाश प्रदेश) हैं।

इस संदर्भ में क्या दृष्टांत है? (इस विषय को समझाने के लिए क्या दृष्टांत - उदाहरण है?)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अपने नामानुरूप आशय लिए हुए एक कोठा हो, जो कूष्मांडों के फलों से भरा हो। फिर इसमें यदि बिल्व फल डाले जाएँ तो ये भी समा जायेंगे। तदनन्तर आँवले डाले जाएँ तो वे भी इसमें समा जाते हैं। इसके पश्चात् बदरीफल प्रक्षिप्त किए जाएँ तो वे भी समाविष्ट हो जाते हैं। इसके बाद चने डालने पर वे भी समा जाते हैं। तदनंतर मूँग डालने पर वे भी समा जाते हैं। फिर सरसों डालने पर वे भी समा जाती हैं। तत्पश्चात् गंगा महानदी की बालू डालने पर वह भी उस (कोठे) में समा जाती है।

इस प्रकार इस दृष्टांत से यह स्पष्ट है कि बालाग्र खण्डों से अच्छी तरह भरे जाने के बाद भी उस पल्य के ऐसे आकाशप्रदेश होते हैं, जो इन बालाग्रखण्डों से अस्पृष्ट रह जाते हैं।

गाथा - इन पल्यों को दस कोटा कोटि से गुणित करने पर प्राप्त प्रमाण एक सूक्ष्म क्षेत्रसागरोपम के बराबर होता है।

विवेचन - व्यावहारिक क्षेत्रपल्योपम और सूक्ष्म क्षेत्रपल्योपम में क्रमशः कुएं को बालाग्रों से एवं बालाग्रों के असंख्यात खण्डों से ठसाठस भरे जाने का जो उल्लेख हुआ है। उस स्थिति में सहज ही यह प्रश्न उपस्थित होता है - बालाग्रों या बालाग्रों के खण्डों द्वारा भलीभाँति पल्य भरा जा चुका हो तो फिर क्या उसमें ऐसे आकाशप्रदेश रहते हैं, जो बालाग्रों से अस्पृष्ट हों?

इस संबंध में समाधान यह है कि - बालाग्र चाहे असंख्यात रूप में खण्ड-खण्ड ही क्यों न किए जाएँ, सूक्ष्म आकाशप्रदेशों की तुलना में तो वे बादर ही हैं। इसलिए बाह्य दृष्टि से बालाग्रों से अस्पृष्ट आकाशप्रदेश अवलोकित न होते हों, फिर भी उनका अस्तित्व बना रहता है। क्योंकि 'सूक्ष्म' सूक्ष्म ही है, 'स्थूल' स्थूल ही है।

इसी को कूष्माण्ड से लेकर गंगामहानदी के बालुका कणों से कोठे को भरे जाने तक के दृष्टांत से समझाया गया है। इसमें क्रमशः बड़े पदार्थों में छोटे पदार्थों के समाविष्ट होने का वर्णन है। क्योंकि भरे जाने पर भी कुछ न कुछ रिक्त स्थान - अवकाश बचा रह जाता है।

जैसे अच्छी ईंट और सीमेंट से चुनी हुई, लिपी हुई, परिपक्व एवं शुष्क दीवाल में कील ठोकी जाय तो, वह उसमें प्रविष्ट हो जाती है। यद्यपि दीवाल अत्यंत सघन प्रतीत होती है किन्तु गारे-ईंट आदि के बादर - स्थूल कणों के परस्पर सघनता से मिले हुए दिखने पर भी उनके बीच आकाशप्रदेश-रिक्त स्थान रह ही जाते हैं।

एएहिं सुहुमेहिं खेत्तपलिओवमसागरोवमेहिं किं पओयणं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एएहिं सुहुमेहिं खेत्तपलिओवमसागरोवमेहिं दिट्ठिवाए दव्वा मविज्जंति॥

शब्दार्थ - **दिट्ठिवाए** - दृष्टिवाद में, **मविज्जंति** - माप करते हैं।

भावार्थ - इन सूक्ष्म क्षेत्रपल्योपम और सागरोपम का क्या प्रयोजन हैं?

इन सूक्ष्म क्षेत्रपल्योपम और सागरोपम से दृष्टिवाद में उल्लिखित द्रव्यों का मान किया जाता है।

विवेचन - सूक्ष्म क्षेत्रपल्योपम का स्वरूप संक्षिप्त में इस प्रकार समझना चाहिए - पूर्व वर्णित सूक्ष्म उद्धार पल्योपम के समान समझना चाहिए, किन्तु फर्क यह है कि उन असंख्याता बालाग्र खंडों से पल्य के जो स्पर्शित आकाश प्रदेश हैं तथा जो अस्पर्शित आकाश प्रदेश हैं, उनमें से प्रति समय एक-एक आकाश प्रदेश को निकालने पर जितने काल में उन आकाश प्रदेशों की गिनती होती है, उतने काल को एक सूक्ष्म क्षेत्र पल्योपम कहते हैं। उनको दस कोडाकोडी से गुणा करने पर एक सूक्ष्म क्षेत्र सागरोपम का परिमाण होता है। इन पल्योपम सागरोपम के द्वारा दृष्टिवाद के द्रव्य मापे जाते हैं। बालाग्र खंडों से अस्पृष्ट और स्पृष्ट दोनों प्रकार के आकाश प्रदेशों को ग्रहण करने का कारण यह है कि उन बालाग्रों के असंख्यात खंड कर दिए जाने पर भी वे बादर-स्थूल हैं। अतएव उन बालाग्रखंडों से अस्पृष्ट अनेक प्रदेश सम्भवित है और बादरों में अन्तराल होना स्वाभाविक है।

दृष्टिवाद के कितनेक द्रव्यों को बालाग्र खंडों के स्पर्शित आकाश प्रदेशों से मापा जाता है। तथा कितनेक द्रव्यों को अस्पर्शित आकाश प्रदेशों से मापा जाता है, इस कारण से यहाँ पर स्पर्शित और अस्पर्शित दोनों प्रकार के प्रदेशों में अपहार करना बताया है। ऐसा टीका में समाधान दिया है।

(१४२)

द्रव्य वर्णन

कइविहा णं भंते! दव्वा पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - जीवदव्वा य १ अजीवदव्वा य २।

शब्दार्थ - **कइविहा** - कतिविधा - कितने प्रकार के।

भावार्थ - हे भगवन्! द्रव्य कितने प्रकार के परिज्ञापित हुए हैं?

हे आयुष्मन् गौतम! द्रव्य दो प्रकार के कहे गए हैं -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१. जीव द्रव्य और २. अजीव द्रव्य।

अजीवद्रव्य निरूपण

अजीवदव्वा णं भंते! कइविहा पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - रूवीअजीवदव्वा य १ अरूवीअजीवदव्वा य २।

शब्दार्थ - **रूवी** - रूपी, **अरूवी** - अरूपी।

भावार्थ - हे भगवन्! अजीवद्रव्य कितने प्रकार के कहे गए हैं?

हे आयुष्मन् गौतम! ये दो प्रकार के प्रज्ञप्त हुए हैं -

१. रूपी अजीवद्रव्य २. अरूपी अजीवद्रव्य।

अरूपी अजीवद्रव्य

अरूवीअजीवदव्वा णं भंते! कइविहा पण्णत्ता?

गोयमा! दसविहा पण्णत्ता। तंजहा - धम्मत्थिकाए १ धम्मत्थिकायस्स देसा २ धम्मत्थिकायस्स पएसा ३ अधम्मत्थिकाए ४ अधम्मत्थिकायस्स देसा ५ अधम्मत्थिकायस्स पएसा ६ आगासत्थिकाए ७ आगासत्थिकायस्स देसा ८ आगासत्थिकायस्स पएसा ९ अद्धासमए १०।

भावार्थ - हे भगवन्! अरूपी अजीवद्रव्य कितने प्रकार के परिज्ञापित हुए हैं?

हे आयुष्मन् गौतम! ये - १. धर्मास्तिकाय २. धर्मास्तिकाय के देश ३. धर्मास्तिकाय के प्रदेश ४. अधर्मास्तिकाय ५. अधर्मास्तिकाय के देश ६. अधर्मास्तिकाय के प्रदेश ७. आकाशास्तिकाय ८. आकाशास्तिकाय के देश ९. आकाशास्तिकाय के प्रदेश एवं १०. अद्धासमए-काल के रूप में दस प्रकार के कहे गए हैं।

रूपी अजीवद्रव्य

रूवीअजीवदव्वा णं भंते! कइविहा पण्णत्ता?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! चउव्विहा पण्णत्ता। तंजहा - खंधा १ खंधदेसा २ खंधपएसा ३ परमाणुपोग्गला ४।

ते णं भंते! किं संखिज्जा असंखिज्जा अणंता?

गोयमा! णो संखिज्जा, णो असंखिज्जा, अणंता।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-णो संखिज्जा, णो असंखिज्जा, अणंता?

गोयमा! अणंता परमाणुपोग्गला, अणंता दुपएसिया खंधा जाव अणंता अणंतपएसिया खंधा।

से एएणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ-णो संखिज्जा, णो असंखिज्जा, अणंता।

भावार्थ - हे भगवन्! रूपी अजीवद्रव्य कितने प्रकार के कहे गए हैं?

हे आयुष्मन् गौतम! ये चार प्रकार के परिज्ञापित हुए हैं - १. स्कंध २. स्कंधदेश ३. स्कंधप्रदेश और ४. परमाणु पुद्‌गल।

हे भगवन्! ये (स्कंध आदि) क्या संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनंत हैं?

हे आयुष्मन् गौतम! ये न संख्यात हैं, न असंख्यात हैं (वरन्) अनंत हैं।

हे भगवन्! ये न संख्यात हैं, न असंख्यात हैं, (केवल) अनंत हैं, ऐसा किस कारण से कहा गया है?

हे आयुष्मन् गौतम! परमाणु पुद्‌गल अनंत हैं, द्विप्रदेशिक स्कंध अनंत हैं यावत् अनंतप्रदेशिक स्कंध अनंत हैं। आयुष्मन् गौतम! इसी कारण से, ये संख्यात नहीं हैं, असंख्यात नहीं हैं, अनंत हैं, ऐसा कहा गया है।

विवेचन - इस जगत् में मुख्य रूप से दो ही द्रव्यों का अस्तित्व है, जो जीव और अजीव के नाम से विख्यात है। **"जीवतीति जीवः"** के अनुसार जो जीवित रहता है, चैतन्ययुक्त होता है, वह जीव है। जीव को ही आत्मा कहा जाता है। आत्मन् शब्द अत् धातु से बना हैं, जो गमनार्थक है। जितनी भी गमनार्थक धातुएँ हैं, वे ज्ञानार्थक भी हैं। जानना जिसका स्वभाव है, वह आत्मा है। ज्ञान चेतना का लक्षण है। अचेतन पदार्थों में ज्ञान का अस्तित्व नहीं होता, इसीलिए वे जड़ कहे जाते हैं।

जीव के अतिरिक्त अजीव नामक तत्त्व के अन्तर्गत वे मूर्त्त-अमूर्त्त सभी पदार्थ समाविष्ट हो जाते हैं, जो इस जगत् में व्याप्त हैं, जीव द्वारा प्रयोज्य हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्रव्य एक नित्य एवं शाश्वत है किन्तु "**द्रवति विविध पर्यायानाप्नोति इति द्रव्यम्**" - के अनुसार उसमें पर्यायात्मक दृष्टि से परिवर्तन भी होता रहता है। एक पर्याय का व्यय-अन्य का उत्पाद, एक का उत्पाद - अन्य का व्यय - यह क्रम चलता रहता है। इसलिए "**उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य युक्तं सत्**" - यह परिभाषा इस पर घटित होती है। तदनुसार जैन दर्शन अद्वैत वेदान्त की तरह न तो एकान्त नित्यत्ववादी है और न बौद्धदर्शन की तरह एकान्त अनित्यत्ववादी ही है। अस्तित्व की दृष्टि से इसमें नित्यत्व है तथा पर्यायों की दृष्टि से इसमें परिणमनशीलता, अनित्यता भी है।

यहाँ जीव और अजीव दोनों तत्त्वों का उल्लेख हुआ है। क्रमिक दृष्टि से जीव प्रथम है और अजीव द्वितीय। किन्तु जीव से पूर्व अजीव का विवेचन किया गया है। इस क्रमव्यवच्छेद का कारण यह है कि जीव तत्त्व भेद-प्रभेदात्मक दृष्टि से अत्यंत विस्तार युक्त है। इसकी तुलना में अजीव तत्त्व अल्प-विषयता लिए हुए है। इसलिए आगमकार को यह उचित लगा कि स्वल्पविषयात्मक को पहले वर्णित कर विस्तीर्णविषयात्मक को बाद में लिया जाय।

उपर्युक्त सूत्र में रूपी अजीव द्रव्यों के चार भेदों में "स्कंध देश और स्कंध प्रदेश" शब्द आये हैं, उनका आशय यह है कि - स्कंध के साथ में जुड़े हुये बुद्धिकल्पित आधा, तिहाई आदि विभागों को स्कंध देश कहा जाता है, ये ही विभाग जब अलग हो जाते हैं तब वे स्वतंत्र स्कंध कहे जाते हैं। दूसरी प्रकार स्कंध के साथ रहे हुये अविभागी सूक्ष्म अंशों को स्कंध प्रदेश कहा जाता है। ये ही अंश जब स्कंध से अलग हो जाते हैं तब वे परमाणु पुद्गल के नाम से कहे जाते हैं। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय ये तीनों एक ही द्रव्य होने से एवं कभी भी खंडित नहीं होने से इनका बुद्धि से कल्पित आधा आदि भाग देश तथा अविभागी अंश प्रदेश कहा जाता है।

जीवद्रव्य निरूपण

जीवदव्वा णं भंते! किं संखिज्जा असंखिज्जा अणंता?

गोयमा! णो संखिज्जा, णो असंखिज्जा, अणंता।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-णो संखिज्जा, णो असंखिज्जा, अणंता?

गोयमा! असंखिज्जा णेरइया, असंखिज्जा असुरकुमारा जाव असंखिज्जा थणियकुमारा, असंखिज्जा पुढविकाइया जाव असंखिज्जा वाउकाइया, अणंता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वणस्सइकाइया, असंखिज्जा बेइंदिया जाव असंखिज्जा चउरिंदिया, असंखिज्जा पंचिंदियतिरिक्खजोणिया, असंखिज्जा मणुस्सा, असंखिज्जा वाणमंतरा, असंखिज्जा जोइसिया, असंखिज्जा वेमाणिया, अणंता सिद्धा।

से एएणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ-णो संखिज्जा, णो असंखिज्जा, अणंता॥

भावार्थ - हे भगवन्! क्या जीवद्रव्य संख्यात हैं, असंख्यात हैं (या) अनंत हैं?

हे आयुष्मन् गौतम! न संख्यात हैं, न असंख्यात हैं (वरन्) अनंत हैं।

हे भगवन्! जीवद्रव्य न संख्यात हैं, न असंख्यात हैं (किन्तु) अनंत हैं, ऐसा किस कारण से कहा जाता है?

हे आयुष्मन् गौतम! असंख्यात नारक हैं, असंख्यात असुरकुमार - यावत् असंख्यात स्तनितकुमार देव हैं, असंख्यात पृथ्वीकायिक जीव हैं यावत् असंख्यात वायुकायिक जीव हैं, अनंत वनस्पतिकायिक जीव हैं, असंख्यात द्वीन्द्रिय यावत् असंख्यात चतुरिन्द्रिय, असंख्यात पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक है, असंख्यात मनुष्य हैं, असंख्यात वाणव्यंतर देव हैं, असंख्यात ज्योतिष्क देव हैं, असंख्यात वैमानिक देव हैं और अनंत सिद्ध हैं। आयुष्मन् गौतम! इसी कारण से ऐसा कहा जाता है कि जीवद्रव्य न संख्यात हैं, न असंख्यात हैं वरन् अनंत हैं।

विवेचन - दर्शनशास्त्र में जीव या आत्मा का सर्वाधिक महत्त्व है। वह प्रयोग, भोग, योग और त्याग रूप है। प्रयोक्ता एवं भोक्तावस्था संसार है, योग और त्याग संसारातीत होने के उपक्रम हैं। इनके द्वारा आत्मा जब समस्त कर्मावरणों से विमुक्त हो जाती है तो वही परमात्म स्वरूप बन जाती है तथा बद्धावस्था से छूटकर मुक्तावस्था पा लेती है। दर्शन की भाषा में वही परिनिर्वाण या मोक्ष है।

"जीवितः, जीवति, जीविष्यति-इति जीवः" - जो जीया है, जीता है और जीयेगा, वह जीव है। इससे जीव का त्रैकालिक अस्तित्व व्यक्त होता है।

संसारी और मुक्त के रूप में जीव के जो दो भेद किए गए हैं, वे उससे बद्धावस्था और मुक्तावस्था के द्योतक हैं। **"संसरति-गच्छति-पुनरागच्छति जन्म-मरणात्मकं आवागमनं वा करोति-सः संसारी"** - कर्मवश जो लोक में संसरणशील रहता है, जन्म-मरण के रूप में जिसके आवागमन का चक्र चलता रहता है, उसे संसारी कहा जाता है। संसारी जीव जब संपूर्ण कर्मों को संवर, निर्जरा एवं त्याग, तपस्या से पूर्ण रूप से क्षय कर देते हैं, तब मुक्त कहलाते हैं। ये दोनों ही अनादि-अनंत हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(१४३)

पंचविध शरीर

कइविहा णं भंते! सरीरा पण्णत्ता?

गोयमा! पंच सरीरा पण्णत्ता। तंजहा - ओरालिए १ वेउव्विए २ आहारए ३ तेयए ४ कम्मए ५।

भावार्थ - हे भगवन्! शरीर कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

हे आयुष्मन् गौतम! शरीर पांच प्रकार के कहे गये हैं - १. औदारिक २. वैक्रिय ३. आहारक ४. तैजस और ५. कार्मण।

विवेचन - औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस एवं कार्मण के रूप में शरीर के पाँच प्रकार हैं। इन शरीरों में आगे से आगे, अधिकाधिक सूक्ष्मता होती है। प्रारंभ के तीन शरीरों के प्रदेश क्रमशः असंख्यात गुण अधिक होते हैं। आगे के दो शरीरों के प्रदेश क्रमशः अनंत गुणा अधिक होते हैं।

शरीर की उत्पत्ति से नवजीवन का आरंभ होता है। देहधारी जीव अनंत हैं। ये आपस में भिन्नता लिए रहते हैं। कार्य कारण आदि के सादृश्य की दृष्टि से इनके उपर्युक्त पाँच विभाग किये गये हैं। यह क्रम इनकी उत्तरोत्तर सूक्ष्मता को दिखलाता है अर्थात् औदारिक से वैक्रिय शरीर सूक्ष्म है परन्तु यह आहारक से स्थूल है। स्पष्ट है, यह क्रम पूर्वापर की अपेक्षा से है।

औदारिक शरीर से वैक्रिय के प्रदेश असंख्यात गुणा अधिक, वैक्रिय से आहारक के प्रदेश असंख्यात गुणा अधिक, आहारक से तैजस के प्रदेश अनंत गुणा अधिक एवं तैजस से कार्मण शरीर के प्रदेश अनंत गुणा अधिक होते हैं।

संख्याओं के जो क्रम जैन वाङ्मय में स्वीकृत हैं, उनमें 'अनंत' उस संख्या को कहा गया है, जिसका कोई अन्त या पार नहीं होता। इस अनंत की अनेक कोटियाँ होती हैं। इसलिये अनंत से अनंत गुणा होना संभावित है। इसी अपेक्षा से तैजस शरीर के अनंत आत्मप्रदेशों से कार्मण शरीर का अनंत गुणा अधिक होना युक्ति संगत है। ऊपर वर्णित स्थूल और सूक्ष्म शब्द पुद्गलों के संयोजन की सघनता और विरलता को प्रदर्शित करते हैं, न कि परिणाम या आकार को। दूसरे शब्दों में, औदारिक से वैक्रिय सूक्ष्म है परन्तु प्रदेश असंख्यात गुणा अधिक हैं। इसी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रकार उत्तरोत्तर यह क्रम गतिशील है। अर्थात् वैक्रिय में प्रदेशों की संख्या औदारिक से असंख्यात अधिक है। फिर भी वह औदारिक से स्थूल नहीं है, क्योंकि उसमें सभी प्रदेश सघन - सटे हुए, सूक्ष्म रूप में इस प्रकार व्यवस्थित हैं कि आकार नहीं बढ़ पाता। इसे लकड़ी और लोहे के स्थूल उदाहरण से समझा जा सकता है। एक किलोग्राम लकड़ी और एक किलोग्राम लोहे में सामान्यतः यह देखा जा सकता है कि आकार, परिणाम में तो लकड़ी अवश्य ही लोहे से बड़ी दृष्टिगत होती है परन्तु प्रदेशों की विरलता - अल्प संयुज्यता के कारण उसमें लोहे के समान भार परिलक्षित नहीं होता। शीशम, नीम, बबूल, आम आदि में भी सघनता से विरलता दिखलाई देती है।

तैजस एवं कार्मण शरीर प्रतिघात एवं अवरोध से रहित होते हैं। 'प्रतिघात' का तात्पर्य प्रहार से हैं तथा अवरोध 'बाधा' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। यह वैज्ञानिक तथ्य है, जो पदार्थ जितना अधिक सूक्ष्म होता है, उसकी गति उतनी ही अधिक होगी। अर्थात् सर्वत्र प्रवेश करने में समर्थ होगा। तैजस और कार्मण शरीर ऊपर वर्णित पंच शरीरों में सर्वाधिक सूक्ष्म हैं। अतः इसकी गति सम्पूर्ण लोक में अव्याहत रूप में होती है। इसके अलावा यहाँ यह भी ज्ञातव्य है, प्रतिघात, विरोध आदि तो मूर्त्त पदार्थों में संभव है, जबकि ये तो अमूर्त्त हैं। वैक्रिय और आहारक भी सूक्ष्म तो हैं परन्तु तैजस और कार्मण से स्थूल होने से लोक के त्रस नाड़ी क्षेत्र में ही अव्याबाध रूप में गति करने में सक्षम हैं।

तैजस एवं कार्मण शरीर का आत्मा के साथ अनादि संबंध है। इसका तात्पर्य है - इनका अस्तित्व आत्मा के साथ प्रारंभ से ही बना हुआ है। यहाँ यह ज्ञातव्य है - तैजस और कार्मण का आत्मा के साथ अनादि संबंध प्रवाह रूप है। दूसरे शब्दों में इनका भी ह्रस-विकास, अपचय-उपचय होता है। ये भी सिद्धावस्था प्राप्त होने पर तो नष्ट होते ही हैं, आत्मविलग होते ही हैं।

संसारी प्राणियों के कम से कम दो तथा अधिक से अधिक चार शरीर होते हैं।

वैक्रिय शरीर तिर्यंचों एवं मनुष्यों में किन्हीं के तथा नारकों एवं देवों में सभी को होता है।

सभी संसारी जीवों में तैजस और कार्मण - ये दो शरीर अवश्य ही होते हैं। भले ही अन्य का योग हो या न हो। तैजस और कार्मण - केवल इन दो शरीरों का अस्तित्व 'अन्तरालगति' में पाया जाता है। कार्मण शरीर सभी शरीरों का मूल रूप है, क्योंकि यह कर्म स्वरूप है। इसी प्रकार भुक्त आहार के पाचन आदि में तैजस शरीर की भी प्रासंगिकता है। अतएव संसार में जीवन पर्यन्त ये दोनों शरीर को निश्चित ही रहते हैं परन्तु अन्य तीनों - औदारिक, वैक्रिय और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आहारक में से अधिकतम दो ही हो सकते हैं। दूसरे शब्दों में, किसी संसारी जीव के अधिकतम चार शरीर हो सकते हैं।

इस अधिकतम व्यवस्था में आहारक एवं वैक्रिय का विकल्प होता है अर्थात् प्रथम- 'तैजस, कार्मण, औदारिक और वैक्रिय' तथा द्वितीय - 'तैजस, कार्मण, औदारिक और आहारक'। यहाँ स्पष्ट है, वैक्रिय तथा आहारक - दोनों युगपत् रूप में प्रयुक्त नहीं हो सकते। क्योंकि वैक्रिय और आहारक लब्धि का प्रयोग एक साथ संभव नहीं है। यहाँ यह भी ध्यातव्य है - शक्तिरूप में ये पाँचों शरीर भी हो सकते हैं, क्योंकि आहारक लब्धि वाले मुनि के वैक्रिय लब्धि निश्चित रूप में होती ही है।

'प्रथम' शरीर-स्थिति कुछ मनुष्यों तथा तिर्यंचों में पायी जाती है तथा 'द्वितीय विकल्प' चतुर्दश पूर्वधारी मुनियों में ही संभव है। इसी प्रकार तैजस, कार्मण और औदारिक या तैजस, कार्मण और वैक्रिय रूप त्रिसंयोजन विकल्प की स्थिति भी संभव है। ये क्रमशः मनुष्य एवं तिर्यंचों में तथा देव व नारकों में जन्म से मृत्यु पर्यन्त होती है।

जैसा पूर्व में विवेचित हुआ है, तैजस्, कार्मण, वैक्रिय और आहारक स्थूल नहीं होते हैं। अतः जीव में समुचित रूप से रहने पर भी इनका अन्तर्विरोध घटित नहीं होता। दूसरे शब्दों में इन्हें एक ही प्रकोष्ठ में जलते हुए एकाधिक दीपकों के निर्बाध प्रकाश से उपमित किया जा सकता है।

जो काल-क्रम से जीर्ण होता जाता है, वह औदारिक है। औदारिक शब्द 'उदार' से निष्पन्न हुआ है। उदार का एक अर्थ विशाल या 'स्थूल' भी है। पूर्व वर्णित पंचविध शरीरों में यह सर्वाधिक स्थूल होता है। तिर्यंच और मनुष्य योनि में यही तैजस् और कार्मण के साथ प्रकट रूप में दृष्टव्य होता है। यह पुद्‌गल निर्मित होने से नाशवान होता है। इसका छेदन-भेदन किया जा सकता है। यह सड़न-गलन स्वभाव युक्त होता है। औदारिक शरीर के प्रदेश अलग होने के बाद पुनः संयुक्त होने में समर्थ नहीं होते हैं।

जो भिन्न-भिन्न रूपों में परिवर्तित किया जा सकता है, वह वैक्रिय है। वैक्रिय शरीर के उपपातजन्य एवं लब्धिजन्य के रूप में दो प्रकार हैं। नारकों एवं देवों में ही उपपातजनित या भवप्रत्यय शरीर होता है। किन्हीं-किन्हीं तिर्यंचों एवं मनुष्यों में भी (वह) लब्धिजन्य होता है।

जिस शरीर के प्रदेशों को इच्छानुसार छोटा, बड़ा, पतला, मोटा अर्थात् विविध रूपों में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परिवर्तित किया जा सके, वह वैक्रिय शरीर कहलाता है। रक्त, मांस, मज्जा आदि का अभाव होने से इसमें ऊपर वर्णित पश्चाद्वर्ती क्रम घटित नहीं होते।

नारकीय जीवों की अपेक्षा से इसके प्रदेशों का छेदन, भेदन संभव है, परन्तु इनमें पुनः संयोजन की अभूतपूर्व क्षमता होती है। इसके दो प्रकार हैं।

१. भव प्रत्यय - जो जन्म से प्राप्त होता है। नारक एवं देवताओं में यह आयुष्य के पूर्णत्व तक अस्तित्व में रहता है।

२. लब्धिजन्य - यह विशिष्ट साधना द्वारा कुछ मनुष्यों (पन्द्रह कर्मभूमिजों के पर्याप्तों) एवं तिर्यंचों (बादर वायुकायिक पर्याप्तों एवं संज्ञी पंचेन्द्रिय के पर्याप्तों) को प्राप्त होता है। लब्धिजन्य वैक्रिय शरीर की अधिकतम स्थिति औदारिक शरीर के आयुष्य तक ही संभव है। प्रयोग रूप में वह अन्तर्मुहूर्त्त से अधिक नहीं होता है।

चतुर्दश पूर्वधर ज्ञानीजनों के प्रयोजनवश आहारक शरीर होता है। चौदह पूर्वों के धारक मुनिजनवृन्द शुभ, विशुद्ध एवं व्याघात - बाधा रहित पुद्गलों से, अपनी विशिष्ट लब्धि द्वारा किसी प्रयोजन विशेष (प्राणी दया, ऋद्धिदर्शन, नवीन ज्ञान ग्रहण, शंका समाधान आदि) से इस शरीर की रचना करते हैं। ये मुनिवर्य एक हाथ प्रमाण स्वच्छ पुद्गलों के शरीर की रचना करते हैं। यह महाविदेह क्षेत्र में विचरते हुए तीर्थंकर या सर्वज्ञ के पास जाता है। वहाँ प्रश्न का समाधान प्राप्त कर वह हस्त प्रमाण आहारक शरीर लब्धिधारी मुनि के शरीर में प्रवेश करता है। यह सम्पूर्ण कार्य केवल अन्तर्मुहूर्त्त में हो जाता है।

यहाँ यह ज्ञातव्य है, वैक्रिय लब्धि और आहारक लब्धि का प्रयोग तथा उससे शरीर का निर्माण नियम से प्रमत्त दशा में ही होता है।

जो विशिष्ट उष्मा रूप तथा तेजोमय होता है, परिभुक्त आहार आदि का परिणमन एवं दीपन करता है, वह तैजस शरीर है। यह भुक्त आहार के परिणमन, तदनंतर अनंत विशिष्ट अवयवों तक उत्पन्न रस को पहुँचाने का कार्य करता है। यह लब्धिजन्य तो नहीं है परन्तु कभी-कभी लब्धि के द्वारा तैजस शरीर से तेजो निःसर्ग (उष्ण तेजोलेश्या तथा शीतल तेजोलेश्या) भी संभव है।

शुभ-अशुभ प्रवृत्तियों से अर्जित कर्म पुद्गलों का समुच्चय - समूह कार्मण शरीर है।

आत्मसंश्लिष्ट कर्म-समुदाय ही कार्मण शरीर कहलाता है। केवल जैन दर्शन में ही कर्मों को पुद्गल-स्वरूप माना गया है। कर्म-पुद्गलों पर ही शरीर-रचना आधारित है। अतः इसे अन्य शरीरों का जड़ रूप माना जाता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चौबीस दंडकवर्ती जीव-शरीर-निरूपण

णेरइयाणं भंते! कइ सरीरा पण्णत्ता?

गोयमा! तओ सरीरा पण्णत्ता। तंजहा - वेउव्विए १ तेयए २ कम्मए ३।

भावार्थ - हे भगवन्! नैरयिकों के कितने शरीर बतलाए गए हैं?

हे आयुष्मन् गौतम! इनके तीन शरीर परिज्ञापित हुए हैं - १. वैक्रिय २. तैजस और ३. कार्मण।

असुरकुमाराणं भंते! कइ सरीरा पण्णत्ता?

गोयमा! तओ सरीरा पण्णत्ता। तंजहा - वेउव्विए १ तेयए २ कम्मए ३। एवं तिण्णि तिण्णि एए चेव सरीरा जाव थणियकुमाराणं भाणियव्वा।

भावार्थ - हे भगवन्! असुरकुमारों के कितने शरीर प्रज्ञप्त हुए हैं?

हे आयुष्यमन् गौतम! इनके तीन शरीर कहे गए हैं -

१. वैक्रिय २. तैजस और ३. कार्मण।

इसी प्रकार तीन-तीन शरीर स्तनितकुमार पर्यन्त सभी भवनपति देवों के कथनीय हैं।

पुढविकाइयाणं भंते! कइ सरीरा पण्णत्ता?

गोयमा! तओ सरीरा पण्णत्ता। तंजहा - ओरालिए १ तेयए २ कम्मए ३। एवं आउतेउवणस्सइकाइयाण वि एए चेव तिण्णि सरीरा भाणियव्वा।

वाउकाइयाणं भंते! कइ सरीरा पण्णत्ता?

गोयमा! चत्तारि सरीरा पण्णत्ता। तंजहा - ओरालिए १ वेउव्विए २ तेयए ३ कम्मए ४।

भावार्थ - हे भगवन्! पृथ्वीकायिक जीवों के कितने शरीर कहे गए हैं?

हे आयुष्मन गौतम! इनके १. औदारिक २. तैजस और ३. कार्मण के रूप में तीन शरीर परिज्ञापित हुए हैं।

इसी प्रकार अप्कायिक, तैजसकायिक और वनस्पतिकायिक जीवों के भी तीन-तीन शरीर कथनीय हैं।

हे भगवन्! वायुकायिक जीवों के कितने शरीर प्रज्ञप्त हुए हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हे आयुष्मन् गौतम! इनके चार शरीर कहे गए हैं - १. औदारिक २. वैक्रिय ३. तैजस और ४. कार्मण।

बेइंदियतेइंदियचउरिंदियाणं जहा पुढवीकाइयाणं। पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं जहा वाउकाइयाणं।

भावार्थ - द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों के भी पृथ्वीकायिक जीवों के समान (तीन शरीर) जानने चाहिये।

पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीवों के शरीर (चार) भी वायुकायिक जीवों के समान जानने चाहिये।

मणुस्साणं भंते! कइ सरीरा पण्णत्ता?

गोयमा! पंच सरीरा पण्णत्ता। तंजहा - ओरालिए १ वेउव्विए २ आहारए ३ तेयए ४ कम्मए ५। वाणमंतराणं जोइसियाणं वेमाणियाणं जहा णेरइयाणं।

भावार्थ - हे भगवन्! मनुष्यों के कितने शरीर कहे गए हैं?

हे गौतम! इनके १. औदारिक २. वैक्रिय ३. आहारक ४. तैजस और ५. कार्मण के रूप में पांच शरीर बतलाए गए हैं।

वाणव्यंतर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के शरीर, नारकों के समान (तीन-तीन) जानने चाहिए।

पांच शरीर : संख्याक्रम

केवइया णं* भंते! ओरालियसरीरा पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - बद्धेल्लया य १ मुक्केल्लया य २। तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं असंखिज्जा, असंखिज्जाहिं उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ, खेत्तओ असंखेज्जा लोगा। तत्थ णं जे ते मुक्केल्लया ते णं अणंता, अणंताहिं उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ, खेत्तओ अणंता लोगा, दव्वओ अभवसिद्धिएहिं अणंतगुणा, सिद्धाणं अणंतभागो।

शब्दार्थ - **बद्धेल्लया** - बद्धलग्न - बद्ध, **मुक्केल्लया** - मुक्तलग्न - मुक्त, **अवहीरंति**- अपहृत होते हैं, **खेत्तओ** - क्षेत्र की अपेक्षा से, **अभवसिद्धिएहिं** - अभवसिद्धिक - अभव्य।

पाठान्तर - * कइविहा णं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - हे भगवन्! औदारिक शरीर कितने प्रकार के प्रतिपादित हुए हैं?

हे आयुष्मन् गौतम! औदारिक शरीर दो प्रकार के कहे गए हैं - १. बद्ध औदारिक शरीर और २. मुक्त औदारिक शरीर।

उनमें जो बद्ध शरीर हैं, वे संख्यात हैं। कालापेक्षया वे असंख्यात उत्सर्पिणियों एवं अवसर्पिणियों द्वारा अपहृत होते हैं एवं क्षेत्रापेक्षया असंख्यात लोक प्रमाण हैं। जो मुक्त हैं, वे अनंत हैं। कालतः वे अनंत उत्सर्पिणियों एवं अवसर्पिणियों से अपहृत होते हैं तथा क्षेत्रतः अनंत लोक प्रमाण हैं। द्रव्यतः वे मुक्त औदारिक शरीर अभवसिद्धिक - अभव्य जीवों से अनंत गुणे और सिद्धों के अनंतवें भाग जितने हैं।

विवेचन - इस सूत्र में बद्ध तथा मुक्त औदारिक शरीरों की चर्चा आई है। उसमें बद्ध औदारिक शरीर का तात्पर्य बंधे हुए या संबंधित हैं। जो शरीर प्रश्न करने के समय (वर्तमान में) जीव के साथ संबद्ध हैं, उन्हें बद्ध औदारिक शरीर कहा जाता है। जिनको जीव ने पूर्वभवों में ग्रहीत कर छोड़ दिया है, वे मुक्त औदारिक शरीर हैं। उन दोनों ही के संख्याक्रम का इस सूत्र में प्रतिपादन किया गया है। यहाँ कालतः असंख्यात अवसर्पिणियों - उत्सर्पिणियों द्वारा अपहृत किए जाने का जो उल्लेख हुआ है, उसका तात्पर्य यह है कि कालापेक्षया बद्ध औदारिक शरीरों की संख्या के विषय में यह ज्ञातव्य है कि उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल के एक-एक समय में एक-एक औदारिक शरीर का अपहरण किया जाए तो समस्त औदारिक शरीरों को अपहृत किये जाने में असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी व्यतीत हो जाएँ। असंख्यात के भी असंख्यात भेद माने जाते हैं।

अतएव बद्ध औदारिक शरीर भी असंख्यात ही हैं।

मुक्त औदारिक शरीरों के संदर्भ में कालापेक्षया यह परिज्ञेय है कि यदि उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल के एक-एक समय में एक-एक मुक्त औदारिक शरीर को अपहृत किया जाय तो उनके अपहृत किए जाने में अनंत उत्सर्पिणी - अवसर्पिणी व्यतीत हो जाएं। किन्तु इस प्रकार से बद्ध एवं मुक्त शरीरों का अपहार किसी ने किया नहीं है, मात्र समझाने के लिए बताया गया है।

बद्ध-मुक्त वैक्रिय शरीर : संख्या

केवइया णं भंते! वेउव्वियसरीरा पण्णत्ता?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - बद्धेल्लया य १ मुक्केल्लया य २। तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं असंखिज्जा, असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ, खेत्तओ असंखिज्जाओ सेढीओ पयरस्स असंखेज्जइभागो। तत्थ णं जे ते मुक्केल्लया ते ण अणंता, अणंताहिं उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ, सेसं जहा ओरालियस्स मुक्केल्लया तहा एए वि भाणियव्वा।

भावार्थ - हे भगवन्! वैक्रिय शरीर कितने प्रकार के प्ररूपित हुए हैं?

हे आयुष्मन् गौतम! वैक्रिय शरीर दो प्रकार के बतलाए गए हैं - १. बद्ध एवं २. मुक्त।

इनमें जो बद्ध हैं, वे असंख्यात हैं। वे कालतः असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी द्वारा अपहृत होते हैं। क्षेत्रतः वे असंख्यात श्रेणी प्रमाण हैं। वे श्रेणियाँ प्रतर के असंख्यातवें भाग तुल्य हैं।

मुक्त वैक्रिय शरीर अनंत हैं। वे कालतः अनंत उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी द्वारा अपहृत होते हैं। अवशेष वर्णन मुक्त औदारिक शरीरों के सदृश कथनीय है।

बद्ध-मुक्त आहारक शरीर : परिमाण

केवइया णं भंते! आहारगसरीरा पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - बद्धेल्लया य १ मुक्केल्लया य २। तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं सिय अत्थि सिय णत्थि, जइ अत्थि जहण्णेणं एगो वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं सहस्सपुहुत्तं। मुक्केल्लया जहा ओरालिया तहा भाणियव्वा।

भावार्थ - हे भगवन्! आहारक शरीर कितने प्रकार के परिज्ञापित हुए हैं?

हे आयुष्मन् गौतम! आहारक शरीर दो प्रकार के कहे गए हैं - १. बद्ध एवं २. मुक्त।

उनमें से जो बद्ध हैं, वे कदाचित् होते हैं, कदाचित् नहीं होते हैं। यदि बद्ध होते हैं तो जघन्यः एक, दो या तीन तथा उत्कृष्टतः सहस्र पृथक्त्व - दो सहस्र या तीन सहस्र हो सकते हैं।

मुक्त आहारक शरीर (जो अनंत हैं) का विवेचन मुक्त औदारिक शरीर के समान भणनीय है।

विवेचन - यहां बद्ध और मुक्त आहारक शरीर की संख्या का वर्णन है। बद्ध आहारक शरीरों के कदाचित् होने अथवा कदाचित् न होने का अभिप्राय यह है कि आहारक शरीर का

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अंतर - जघन्यतः एक समय का और उत्कृष्टतः छह मास का होता है। इसके अनुसार जघन्य या उत्कृष्ट किसी भी प्रकार के विरहकाल में उनका बद्धत्व घटित नहीं होता है।

पुनश्च, इस संबंध में ज्ञातव्य है - आहारक शरीरों की संख्या जघन्यतः एक, दो या तीन होती हैं और उत्कृष्टतः दो हजार या तीन हजार परिमित हो सकती है। नव हजार यहां पर नहीं समझना चाहिए।

तैजस शरीर संख्या परिमाण

केवइया णं भंते! तेयगसरीरा पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - बद्धेल्लया य १ मुक्केल्लया य २। तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं अणंता, अणंताहिं उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ, खेत्तओ अणंता लोगा, दव्वओ सिद्धेहिं अणंतगुणा, सव्वजीवाणं अणंतभागूणा। तत्थ णं जे ते मुक्केल्लया ते णं अणंता, अणंताहिं उस्सप्पिणी-ओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ, खेत्तओ अणंता लोगा, दव्वओ सव्वजीवेहिं अणंतगुणा, सव्वजीववग्गस्स अणंतभागो।

शब्दार्थ - **तेयग** - तैजस।

भावार्थ - हे भगवन्! तैजस शरीर कितने प्रकार के बतलाए गये हैं?

हे आयुष्मन् गौतम! तैजस शरीर दो प्रकार के कहे गए हैं - १. बद्ध और २. मुक्त।

उनमें जो बद्ध हैं, वे अनंत हैं। ये कालापेक्षया अनंत उत्सर्पिणी - अवसर्पिणी द्वारा अपहृत होते हैं। क्षेत्रापेक्षया वे अनंत लोक प्रमाण हैं। द्रव्यापेक्षया सिद्धों से अनंत गुणे और समस्त जीवों से अनंत भाग कम हैं।

इनमें जो मुक्त तेजस शरीर हैं, वे अनंत हैं। कालापेक्षया अनंत उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी द्वारा अपहृत होते हैं। क्षेत्र की अपेक्षा से अनंत लोक प्रमाण हैं, द्रव्य की अपेक्षा से समस्त जीवापेक्षया अनंत गुणे और सभी जीवों के वर्ग की अपेक्षा अनंतवें भाग प्रमाण हैं।

विवेचन - मुक्त तैजस शरीरों का संख्या परिमाण समस्त जीवों से अनंत गुणा बतलाया गया है। इसका कारण यह है कि प्रत्येक जीव भूतकाल में अनंतानंत तैजस शरीरों का परित्याग कर चुका है। जीवों द्वारा जब उनका परित्याग कर दिया जाता है तब उन परित्यक्त शरीरों का

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

असंख्यात काल तक उन पर्याय में अवस्थित रहना संभावित है। अतएव उन सबकी संख्या का समस्त जीवों से अनंत गुणा होना संगत है।

मुक्त (परित्यक्त) तैजस शरीर सभी जीवों के वर्ग के अनंतवें भाग प्रमाण कहे गए हैं। इसका कारण यह है कि समस्त मुक्त या छोड़े हुए तैजस शरीर जब समस्त जीव राशि जितने होते तथा उनके साथ सिद्ध जीवों के अनंत भाग की भी पूर्ति होती तो वे सर्व जीव राशि के वर्ग प्रमाण हो सकते। क्योंकि जीव राशि में सिद्धों की और संसारी जीवों की राशि इन दोनों को परिगणित किया गया है। किन्तु सिद्ध जीवों के तैजस आदि शरीर होते ही नहीं। अतएव उनको सम्मिलित नहीं किया जा सकता।

अतः मुक्त तैजस शरीर समस्त जीव राशि के वर्ग के समान प्रमाण युक्त नहीं होते हैं।

कार्मण शरीरों की संख्या

केवइया णं भंते! कम्मगसरीरा पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - बद्धेल्लया य १ मुकेल्लया य २। जहा तेयगसरीरा तहा-कम्मगसरीरा वि भाणियव्वा।

शब्दार्थ - **कम्मगसरीरा** - कार्मण शरीर।

भावार्थ - हे भगवन्! कार्मण कितने परिज्ञापित हुए हैं?

हे आयुष्मन् गौतम! ये बद्ध और मुक्त के रूप में दो प्रकार के कहे गये हैं। जिस प्रकार तैजस शरीर के संदर्भ में पूर्व में कहा गया है, उसी प्रकार कार्मण शरीर के विषय में भी जानना चाहिए।

नारकों में बद्ध मुक्त शरीरों की प्ररूपणा

णेरइयाणं भंते! केवइया ओरालियसरीरा पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - बद्धेल्लया य १ मुक्केल्लया य २। तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं णत्थि। तत्थ णं जे ते मुक्केल्लया ते जहा ओहिया ओरालियसरीरा तहा भाणियव्वा।

भावार्थ - हे भगवन्! नैरयिक जीवों के कितने औदारिक शरीर कहे गए हैं?

हे आयुष्मन् गौतम! नैरयिक जीवों के बद्ध और मुक्त के रूप में दो शरीर परिज्ञापित हुए हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उनमें जो बद्ध औदारिक शरीर हैं, वे इनके नहीं होते हैं। इनमें जो मुक्त हैं, वे पूर्ववर्णित सामान्य मुक्त औदारिक शरीरों के समान ही ज्ञातव्य हैं।

विवेचन - इस सूत्र में नैरयिक जीवों के दो औदारिक शरीर होने का उल्लेख किया गया है फिर बद्ध औदारिक का निषेध किया गया है तथा मुक्त औदारिक को पूर्ववर्णित औदारिकों की तरह ज्ञातव्य कहा है।

यहाँ यह ज्ञाप्य है - नैरयिकों के औदारिक शरीर होते ही नहीं। उनके तो वैक्रिय शरीर ही होते हैं। किन्तु यहाँ उनके नारक योनि में पूर्वतन तिर्यंच या मनुष्य पर्याय में जो औदारिक शरीर थे, उनकी अपेक्षा से यह वर्णन है। इसे पूर्व प्रज्ञापना नय कहा जाता है।

बद्ध औदारिक न होने की जो बात कही है, वह पूर्वतन भवगत औदारिक शरीर के दूरवर्तित्व की दृष्टि से है। मुक्त शरीर के होने का जो वर्णन है, वह पूर्वगत भव शरीर के आसन्नवर्तित्व के कारण है। अर्थात् यहाँ अभाव तो दोनों ही शरीरों का है किन्तु जिस औदारिक शरीर को छोड़कर उन्होंने नरकगति में वैक्रिय शरीर प्राप्त किया, बद्ध औदारिक की अपेक्षा मुक्त औदारिक शरीर अत्यधिक निकटवर्ती रहा है।

णेरइयाणं भंते! केवइया वेउव्वियसरीरा पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - बद्धेल्लया य १ मुक्केल्लया य २।

तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं असंखिज्जा, असंखिज्जाहिं उस्सप्पिणी-ओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ, खेत्तओ असंखेज्जाओ सेढीओ पयरस्स असंखिज्जइभागो, तासि णं सेढीणं विक्खंभसूई अंगुलपढमवग्गमूलं बिइयवग्ग-मूलपडुप्पण्णं, अहवा णं अंगुलबिइयवग्गमूलघणपमाणमेत्ताओ सेढीओ। तत्थ णं जे ते मुक्केल्लया ते णं जहा ओहिया ओरालियसरीरा तहा भाणियव्वा।

शब्दार्थ - **बिइयवग्गमूलपडुप्पण्णं** - द्वितीय वर्गमूल प्रत्युत्पन्न।

भावार्थ - हे भगवन्! नैरयिकों के कितने वैक्रिय शरीर परिज्ञापित हुए हैं?

हे आयुष्मन् गौतम! ये बद्ध और मुक्त के रूप में दो प्रकार के कहे गए हैं।

इनमें जो बद्ध वैक्रिय शरीर हैं, वे असंख्यात हैं। वे कालतः असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी द्वारा अपहृत होते हैं। क्षेत्रतः वे असंख्यात श्रेणी प्रमाण हैं। वे श्रेणियाँ प्रतर के असंख्यातवें भाग तुल्य हैं। इन श्रेणियों की विष्कंभ सूची (चौड़ाई) अंगुल के प्रथम वर्गमूल को

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्वितीय वर्गमूल से गुणित करने से निष्पन्न राशि सदृश होती है। अथवा अंगुल के द्वितीय वर्गमूल के घनफल प्रमाण श्रेणियों जितनी है।

मुक्त वैक्रिय शरीर सामान्यतः मुक्त औदारिक शरीर के तुल्य ज्ञातव्य है।

विवेचन - इस सूत्र में श्रेणियों के विष्कंभ परिमाण की चर्चा गणित की दृष्टि से बतलाई गई है। किसी भी वर्गाकार स्थान की लम्बाई-चौड़ाई को परस्पर गुणा करने पर जो गुणनफल आता है, उसे क्षेत्रफल (Area) कहा जाता है। लम्बाई या चौड़ाई का परिमाण है, उसे वर्गमूल (Square Root) कहा जाता है। लम्बाई या चौड़ाई के परिमाप को तीन बार गुणित करने पर जो फल आता है, उसे घनफल तथा मूल संख्या को घनमूल कहा जाता है।

उदाहरणार्थ - १० को वर्गमूल मानकर क्षेत्रफल निकाला जाय तो १०×१० = १०० होता है। घनफल निकाला जाय तो १०×१०×१०=१००० होता है। १०० क्षेत्रफल का वर्गमूल १० है तथा १००० घनफल का घनमूल - १० है। अर्थात् इनके वर्गमूल एवं घनमूल समान हैं।

णेरइयाणं भंते! केवइया आहारगसरीरा पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - बद्धेल्लया य १ मुक्केल्लया य २।

तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं णत्थि। तत्थ णं जे ते मुक्केल्लया ते जहा ओहिया तहा भाणियव्वा। तेयगकम्मगसरीरा जहा एएसिं चेव वेउव्वियसरीरा तहा भाणियव्वा।

भावार्थ - हे भगवन्! नैरयिक जीवों के कितने आहारक शरीर प्रज्ञप्त हुए हैं?

हे आयुष्मन् गौतम! इनके बद्ध और मुक्त के रूप में दो शरीर बतलाए गए हैं।

उनमें जो बद्ध आहारक शरीर हैं, वे इनके नहीं होते तथा जो मुक्त हैं, उनको सामान्य औदारिक शरीरों के समान ही जानना चाहिए।

तैजस और कार्मण शरीरों के विषय में जैसा इनके वैक्रिय शरीरों के बारे में कहा गया है, उसी प्रकार कथनीय है।

भवनवासियों के बद्ध-मुक्त शरीर

असुरकुमाराण भंते! केवइया ओरालियसरीरा पण्णत्ता?

गोयमा! जहा णेरइयाणं ओरालियसरीरा तहा भाणियव्वा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

असुरकुमाराणं भंते! केवइया वेउव्वियसरीरा पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तंजहा-बद्धेल्लया य १ मुक्केल्लया य २। तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं असंखिज्जा, असंखिज्जाहिं उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ, खेत्तओ असंखेज्जाओ सेढीओ पयरस्स असंखिज्जइभागो, तासि णं सेढीणं विक्खंभसूई अंगुलपढमवग्गमूलस्स संखिज्जइभागो। मुक्केल्लया जहा ओहिया ओरालियसरीरा।

असुरकुमाराणं भंते! केवइया आहारगसरीरा पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - बद्धेल्लया य १ मुक्केल्लया य २। जहा एएसिं चेव ओरालियसरीरा तहा भाणियव्वा। तेयगकम्मगसरीरा जहा एएसिं चेव वेउव्वियसरीरा तहा भाणियव्वा। जहा असुरकुमाराणं तहा जाव थणियकुमाराणं ताव भाणियव्वा।

भावार्थ - हे भगवन्! असुरकुमारों के कितने औदारिक शरीर कहे गए हैं?

हे आयुष्मन् गौतम! जैसे नारकों के (बद्ध-मुक्त) औदारिक शरीरों के बारे में पूर्व में बतलाया गया है, उसी प्रकार यहाँ कथनीय है।

हे भगवन्! असुरकुमारों के कितने वैक्रिय शरीर परिज्ञापित हुए हैं?

हे आयुष्मन् गौतम! इनके दो शरीर बतलाए गए हैं - १. बद्ध और २. मुक्त।

उनमें जो बद्ध शरीर हैं, वे असंख्यात हैं। वे कालतः असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी द्वारा अपहृत होते हैं। क्षेत्रतः असंख्यात श्रेणियों के जितने हैं। ये श्रेणियाँ प्रतर के असंख्यातवें भाग तुल्य हैं। उन श्रेणियों की विष्कंभसूचि अंगुल के प्रथम वर्गमूल के संख्यातवें भाग तुल्य हैं।

इनके मुक्त वैक्रिय शरीरों का वर्णन सामान्य मुक्त औदारिक शरीरों की भांति ज्ञातव्य है।

हे भगवन्! असुरकुमारों के कितने आहारक शरीर प्रज्ञप्त हुए हैं?

हे आयुष्मन् गौतम! ये बद्ध और मुक्त के रूप में दो प्रकार के परिज्ञापित हुए हैं।

ये दोनों आहारक शरीर पूर्ववर्णित (असुरकुमारों के) औदारिक शरीरों की भांति ज्ञातव्य हैं।

इनके तैजस कार्मण शरीर भी (पूर्व वर्णित) वैक्रिय शरीरों की भांति भणनीय हैं।

असुरकुमारों में जिस प्रकार इन पांच शरीरों का वर्णन किया गया है, वैसा ही यावत् स्तनित कुमार देवों के संदर्भ में ज्ञातव्य है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पृथ्वी-अप्-तेजस्कायिक जीवों के बद्ध-मुक्त शरीर

पुढविकाइयाणं भंते! केवइया ओरालियसरीरा पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता! तंजहा - बद्धेल्लया य १ मुक्केल्लया य २। एवं जहा ओहिया ओरालियसरीरा तहा भाणियव्वा।

पुढविकाइयाणं भंते! केवइया वेउव्वियसरीरा पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - बद्धेल्लया य १ मुक्केल्लया य २। तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं णत्थि। मुक्केल्लया जहा ओहियाणं ओरालियसरीरा तहा भाणियव्वा।

आहारगसरीरा वि एवं चेव भाणियव्वा। तेयगकम्मगसरीरा जहा एएसिं चेव ओरालियसरीरा तहा भाणियव्वा। जहा पुढविकाइयाणं एवं आउकाइयाणं तेउकाइयाण य सव्वसरीरा भाणियव्वा।

भावार्थ - हे भगवन्! पृथ्वीकायिक जीवों के कितने औदारिक शरीर प्रज्ञप्त हुए हैं?

हे आयुष्मन् गौतम! ये दो प्रकार के कहे गए हैं - १. बद्ध और २ मुक्त।

इन दोनों औदारिक शरीरों के विषय में सामान्य औदारिक शरीरों की भांति विवेचन कथनीय है।

हे भगवन्! पृथ्वीकायिक जीवों के कितने वैक्रिय शरीर कहे गये हैं?

हे आयुष्मन् गौतम! ये बद्ध और मुक्त के रूप में दो प्रकार के कहे गए हैं।

इनमें जो बद्ध हैं, वे इनके नहीं होते हैं। मुक्त के विषय में सामान्य वैक्रिय शरीरों की तरह जानना चाहिए।

आहारक शरीरों की वक्तव्यता पूर्वानुसार ज्ञातव्य है।

तेजस्-कार्मण शरीरों के संदर्भ में भी जैसा औदारिक शरीरों के विषय में ऊपर वर्णन आया है, वैसा यहाँ ग्राह्य है।

वायुकायिक जीवों के बद्ध-मुक्त शरीर

वाउकाइयाणं भंते! केवइया ओरालियसरीरा पण्णत्ता?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - बद्धेल्लया य १ मुक्केल्लया य २। जहा पुढविकाइयाणं ओरालियसरीरा तहा भाणियव्वा।

वाउकाइयाणं भंते! केवइया वेउव्वियसरीरा पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - बद्धेल्लया य १ मुक्केल्लया य २। तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं असंखिज्जा समए समए अवहीरमाणा खेत्तपलिओवमस्स असंखिज्जइभागमेत्तेणं कालेणं अवहीरंति, णो चेव णं अवहिया सिया। मुक्केल्लया वेउव्वियसरीरा आहारगसरीरा य जहा पुढविकाइयाणं तहा भाणियव्वा। तेयगकम्मगसरीरा जहा पुढविकाइयाणं तहा भाणियव्वा।

भावार्थ - हे भगवन्! वायुकायिक जीवों के कितने औदारिक शरीर कहे गए हैं?

हे आयुष्मन् गौतम! इनके बद्ध और मुक्त के रूप में दो औदारिक शरीर परिज्ञापित हुए हैं। इनके औदारिक शरीरों के विषय में पृथ्वीकायिक जीवों के औदारिक शरीरों के सदृश ही जानना चाहिये।

वायुकायिक जीवों के कितने वैक्रिय शरीर प्रज्ञप्त हुए हैं?

हे आयुष्मन् गौतम! इनके बद्ध और मुक्त के रूप में दो वैक्रिय शरीर बतलाए गए हैं।

उनमें जो बद्ध हैं, वे असंख्यात हैं। एक-एक समय में एक-एक शरीर का अपहरण करें तो क्षेत्रपल्योपम के असंख्यातवें भाग में जितने प्रदेश हैं, उतने काल में पूर्णतः अपहृत होते हैं। परन्तु (किसी ने) उनको अपहृत किया नहीं है।

मुक्त वैक्रिय और आहारक शरीरों के विषय में पृथ्वीकायिक जीवों में आए शरीर वर्णन की भांति योजनीय है।

विवेचन - असंख्यात लोकाकाशों के जितने प्रदेश हैं, उतने वायुकायिक जीव हैं, ऐसा शास्त्रों में उल्लेख है, तो फिर उनमें से वैक्रियशरीरधारी वायुकायिक जीवों की इतनी अल्प संख्या बताने का क्या कारण है? इसका समाधान यह है कि वायुकायिक जीव चार प्रकार के हैं - १. सूक्ष्म अपर्याप्त वायुकायिक २. सूक्ष्म पर्याप्त वायुकायिक ३. बादर अपर्याप्त वायुकायिक और ४. बादर पर्याप्त वायुकायिक। इनमें से आदि के तीन प्रकार के वायुकायिक जीव तो असंख्यात लोकाकाशों के प्रदेशों जितने हैं और उनमें वैक्रियलब्धि नहीं होती है। बादर पर्याप्त वायुकायिक जीव प्रतर के असंख्यातवें भाग में जितने आकाश प्रदेश होते हैं, उतने हैं, किन्तु वे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सभी वैक्रिय लब्धि सम्पन्न नहीं होते हैं। इनमें भी असंख्यातवें भागवर्ती जीवों के ही वैक्रिय लब्धि होती है। वैक्रिय लब्धि सम्पन्नों में भी सब बद्ध वैक्रिय शरीर युक्त नहीं होते, किन्तु असंख्येय भागवर्ती जीव ही बद्धवैक्रिय शरीरधारी होते हैं। इसलिए वायुकायिक जीवों में जो बद्धवैक्रिय शरीरधारी जीवों की संख्या कही गई है, वही संभव है। इससे अधिक बद्धवैक्रिय शरीरधारी वायुकायिक जीव नहीं होते हैं।

वनस्पतिकायिक जीवों के बद्ध-मुक्त शरीर

वणस्सइकाइयाणं ओरालियवेउव्वियआहारगसरीरा जहा पुढविकाइयाणं तहा भाणियव्वा।

वणस्सइकाइयाणं भंते! केवइया तेयगकम्मगसरीरा पण्णत्ता?

गोयमा दुविहा पण्णत्ता। जहा ओहिया तेयगकम्मगसरीरा तहा वणस्सइ काइयाण वि तेयगकम्मगसरीरा भाणियव्वा।

भावार्थ - वनस्पतिकायिक जीवों के औदारिक, वैक्रिय और आहारक शरीरों को पृथ्वीकायिक जीवों के एतत्संबंधी शरीरों के सदृश जानना चाहिए।

हे भगवन्! वनस्पतिकायिक जीवों के कितने तेजस् कार्मण शरीर कहे गए हैं?

हे आयुष्मन् गौतम! इनके तेजस् कार्मण शरीर दो प्रकार के कहे गए हैं।

(यहाँ पूर्वानुरूप दो प्रकार ग्राह्य हैं)

जिस प्रकार से औधिक - सामान्य तैजस्-कार्मण शरीर होते हैं।

उसी प्रकार इन (वनस्पतिकायिक) जीवों के तैजस् कार्मण शरीर के संदर्भ में ज्ञातव्य है।

बेइंदियाणं भंते! केवइया ओरालियसरीरा पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता।

तंजहा - बद्धेल्लया य १ मुक्केल्लया य २। तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं असंखिज्जा, असंखिज्जाहिं उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ, खेत्तओ असंखेज्जाओ सेढीओ पयरस्स असंखिज्जइभागो, तासि णं सेढीणं विक्खंभसूई असंखेज्जाओ जोयणकोडाकोडीओ, असंखिज्जाइं सेढिवग्गमूलाइं, बेइंदियाणं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ओरालियबद्धेल्लएहिं पयरं अवहीरइ असंखिज्जाहिं उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं कालओ, खेत्तओ अंगुलपयरस्स आवलियाए असंखिज्जइभागपडिभागेणं। मुक्केल्लया जहा ओहिया ओरालियसरीरा तहा भाणियव्वा। वेउव्वियआहारगसरीरा बद्धेल्लया णत्थि। मुक्केल्लया जहा ओहिया ओरालियसरीरा तहा भाणियव्वा तेयगकम्मगसरीरा जहा एएसिं चेव ओरालियसरीरा तहा भाणियव्वा। जहा बेइंदियाणं तहा तेइंदियचउरिंदियाण वि भाणियव्वा।

भावार्थ - हे भगवन्! द्वीन्द्रियों के कितने औदारिक शरीर कहे गए हैं?

हे आयुष्मन् गौतम! दो प्रकार के बतलाए गए हैं - १. बद्ध और २. मुक्त।

उनमें जो बद्ध हैं, वे असंख्यात हैं। वे कालतः असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी द्वारा अपहृत होते हैं। क्षेत्रतः ये असंख्यात श्रेणी प्रमाण हैं, जो प्रतर के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। इन श्रेणियों की विष्कंभसूची असंख्यात योजन कोटाकोटि परिमित है। यह विष्कंभसूची असंख्यात श्रेणियों की वर्गमूल रूप हैं। द्वीन्द्रियों के बद्ध औदारिक शरीरों द्वारा यदि प्रतर अपहृत किया जाता है तो असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल में अपहृत होता है तथा क्षेत्रतः अंगुलमात्र प्रतर और आवलिका के असंख्यातवें भाग-प्रतिभाग से अपहृत होता है।

मुक्त औदारिक शरीरों के विषय में सामान्य औदारिक शरीरों के समान जानना चाहिये।

तैजस-कार्मण शरीरों के संदर्भ में भी औदारिक शरीरों की भांति ज्ञातव्य है।

(अतः) जिस प्रकार द्वीन्द्रियों के विषय में ऊपर वर्णन किया गया है, उसी प्रकार का विवेचन त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय के विषय में भी भणनीय है।

विवेचन - आकाश श्रेणी में रहे हुए समस्त प्रदेश असंख्यात होते हैं, जिनको असत्कल्पना से ६५५३६ समझ लें। ये ६५५३६ असंख्यात के बोधक हैं। इस संख्या का प्रथम वर्गमूल २५६, दूसरा वर्गमूल १६, तीसरा वर्गमूल ४ तथा चौथा वर्गमूल २ हुआ। कल्पित ये वर्गमूल असंख्यात वर्गमूल रूप हैं। इन वर्गमूलों का जोड़ करने पर (२५६+१६+४+२=२७८) दो सौ अठहत्तर हुए। यह २७८ प्रदेशों वाली वह विष्कम्भसूची है। अब इसी शरीर प्रमाण को दूसरे प्रकार से बताने के लिए सूत्र में पद दिया है '....**पयरं अवहीरइ असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणि - ओसप्पिणीहिं कालो**' - अर्थात् द्वीन्द्रिय जीवों के बद्ध औदारिक शरीरों से यदि सम्पूर्ण प्रतर खाली किया जाए तो असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी कालों के समयों से वह समस्त प्रतर द्वीन्द्रिय जीवों के बद्ध

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

औदारिक शरीरों से खाली किया जा सकता है और क्षेत्रतः **'अंगुलपयरस्स आवलियाए य असंखेज्जइभाग-पडिभागेणं'** अर्थात् अंगुल के असंख्यातवें भाग जितने लम्बे चौड़े (चौरस) प्रतर खंड पर आवलिका के असंख्यातवें भाग जितने समय में एक-एक बेइन्द्रिय का अपहार किया जाए तो प्रतर पूरा खाली हो जाता है, इसमें असंख्याता उत्सर्पिणी अवसर्पिणी जितना काल लगता है। अर्थात् उस एक प्रतर (सात रज्जु का लम्बा चौड़ा) में अंगुल के असंख्यातवें भाग जितने चौरस खण्ड होते हैं उतने बेइन्द्रिय जीवों के बद्ध औदारिक शरीर हैं। इस प्रकार से बताई गई संख्या में पूर्वोक्त कथन से कोई भेद नहीं है, मात्र कथन-शैली की भिन्नता है।

यहाँ पर आवलिका के असंख्यातवें भाग जितने काल में अपहार करने का बताया है वह प्रतर के असंख्यातवें भाग रूप साधर्म्यता से बता दिया गया है। उसका कोई खास प्रयोजन नहीं है। प्रतिसमय अपहार करने का भी समझा जा सकता है।

पंचेन्द्रिय जीवों के बद्ध-मुक्त शरीर

पंचिंदियतिरिक्खजोणियाण वि ओरालियसरीरा एवं चेव भाणियव्वा।

पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं भंते! केवइया वेउव्वियसरीरा पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - बद्धेल्लया य १ मुक्केलया य २।

तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं असंखिज्जा, असंखिज्जाहिं उस्सप्पिणी-ओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ, खेत्तओ असंखेज्जाओ सेढीओ पयरस्स असंखिज्जइभागो, तासि णं सेढीणं विक्खंभसूई अंगुलपढमवग्गमूलस्स असंखिज्जइभागो।

मुक्केल्लया जहा ओहिया ओरालिया तहा भाणियव्वा।

आहारयसरीरा जहा बेइंदियाणं तेयगकम्मगसरीरा जहा ओरालिया।

भावार्थ - पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों के औदारिक शरीर के संबंध में इसी प्रकार (उपर्युक्त द्वीन्द्रिय जीवों की भाँति) ज्ञातव्य है।

हे भगवन्! पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों के कितने वैक्रिय शरीर बतलाए गए हैं?

हे आयुष्मन् गौतम! ये दो प्रकार के कहे गए हैं - १. बद्ध और २. मुक्त।

इनमें जो बद्ध वैक्रिय शरीर हैं, वे असंख्यात हैं। वे कालतः असंख्यात उत्सर्पिणी-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अवसर्पिणी द्वारा अपहृत होते हैं। क्षेत्रतः असंख्यात श्रेणियों के जितने हैं। वे श्रेणियाँ प्रतर के असंख्यातवें भाग तुल्य है। इन श्रेणियों की विष्कंभसूची अंगुल के प्रथम वर्गमूल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है।

मुक्त वैक्रिय शरीरों के विषय में सामान्य औदारिक शरीरों के समान जानना चाहिए।

आहारक शरीरों का विवेचन द्वीन्द्रियों की तरह तथा तैजस-कार्मण शरीरों का वर्णन सामान्य औदारिक शरीरों की भाँति ज्ञातव्य है।

मणुस्साणं भंते! केवइया ओरालिय सरीरा पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - बद्धेल्लया य १ मुक्केल्लया य २।

तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं सिय संखिज्जा सिय असंखिज्जा, जहण्णपए संखेज्जा, संखिज्जाओ कोडाकोडीओ, एगूणतीसं ठाणाइं, तिजमलपयस्स उवरिं चउजमलपयस्स हेट्ठा, अहव णं छट्ठो वग्गो पंचमवग्गपडुप्पण्णो, अहव णं छण्णउइछेयणगदाइरासी, उक्कोसपए असंखेज्जा, असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणी-ओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ, खेत्तओ उक्कोसपए रूवपक्खित्तेहिं मणुस्सेहिं सेढी अवहीरइ, कालओ असंखिज्जाहिं उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं, खेत्तओ अंगुलपढमवग्गमूलं तइयवग्गमूलपडुप्पण्णं। मुक्केल्लया जहा ओहिया ओरालिया तहा भाणियव्वा।

भावार्थ - हे भगवन्! मनुष्यों के कितने औदारिक शरीर कहे गए हैं?

हे आयुष्मन् गौतम! मनुष्यों के दो प्रकार के औदारिक शरीर परिज्ञापित हुए हैं - बद्ध और मुक्त।

उनमें बद्ध शरीर स्यात् (कदाचित्) संख्यात होते हैं या स्यात् (कदाचित्) असंख्यात होते हैं। जघन्य पद में संख्यात्ता, संख्यात कोड़ाकोड़ी होते हैं। तीन यमल पद से ऊँचे (अधिक) तथा चार यमल पद से नीचे (कम) उनतीस अंकप्रमाण होते हैं। अथवा पंचम वर्ग से षष्ठ वर्ग का गुणन करने से प्राप्त गुणनफल जितने होते हैं अथवा छियानवें छेदनकदायी राशि जितने होते हैं। उत्कृष्ट पद में असंख्यात हैं, कालापेक्षया असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी कालों में अपहृत होते हैं। क्षेत्रतः इनका प्रमाण उत्कृष्ट पद में एक रूप प्रक्षिप्त मनुष्यगत श्रेणी के रिक्त किए जाने - अपहृत किए जाने जितना है। कालापेक्षया वे असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल में अपहृत

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

होते हैं। क्षेत्रापेक्षया अंगुल के प्रथम वर्गमूल को तृतीय वर्गमूल से गुणन करने पर जो संख्या प्रत्युत्पन्न होती है, वह तत्प्रमाण है।

इनके मुक्त शरीर सामान्य औदारिक शरीरों की भाँति कथनीय हैं।

विवेचन - इस सूत्र में औदारिक शरीरों का संख्यात और असंख्यात - दो प्रकार से उल्लेख हुआ है, जिसका अभिप्राय यह है कि एक अपेक्षा से संख्यात कहे जा सकते हैं और दूसरी अपेक्षा से असंख्यात भी कहे जा सकते हैं। यहाँ यह ज्ञातव्य है कि मनुष्य गर्भज और सम्मूर्च्छिम के रूप में दो प्रकार के होते हैं। इनमें गर्भज मनुष्य तो सदैव होते हैं किन्तु सम्मूर्च्छिम मनुष्य कादाचित्क हैं। उनकी आयु भी उत्कृष्टतः अन्तर्मुहूर्त्त की होती है। उत्पत्ति का विरहकाल उत्कृष्टतः चौबीस मुहूर्त्त प्रमाण होता है। अतएव जब सम्मूर्च्छिम मनुष्य नहीं होते, केवल गर्भज मनुष्य होते हैं, तब वे संख्यात होते हैं। जब सम्मूर्च्छिम मनुष्य होते हैं तो सम्मूर्च्छिम और गर्भज - दोनों मिलकर समुच्चय रूप में असंख्यात हो जाते हैं।

सूत्र में जघन्य पद में गर्भज मनुष्यों के औदारिक शरीरों का प्रमाण संख्यात बतलाया गया है, पुनश्च उसका संख्यात रूप में विशेष विश्लेषण किया गया है। इसका कारण यह है - संख्यात के भी संख्यात भेद होते हैं। इसलिए मात्र संख्यात कहने से नियत संख्या का ज्ञान नहीं होता। अतएव नियत संख्या का बोध कराने हेतु संख्यात कोड़ाकोड़ी कहा गया है। उसी को विशेष स्पष्ट करने के लिए कहा गया है कि वह संख्या चार यमलपद से नीचे तथा तीन यमलपद से ऊपर होती है। वे संख्यात कोटा कोटि उनतीस अंक परिमित होते हैं। आठ-आठ पदों की एक यमलपद रूप संख्या होती है। उनतीस अंकों पर विचार करने पर चौबीस अंकों के तीन यमल होते हैं तथा ३२ अंकों के चार यमल होते हैं। अतः २९ का अंक तीन यमल के ऊपर तथा चार यमल से नीचे है।

इसी तथ्य को विशेष रूप से स्पष्ट करते हुए एक अन्य विधि का उल्लेख किया गया है। पंचम वर्ग से छठे वर्ग को गुणित करने पर जो राशि प्राप्त होती है, वह जघन्यतः पद का संख्या प्रमाण है।

पंचम वर्ग और छठे वर्ग को गुणित करने का स्पष्टीकरण इस प्रकार है - १×१=१ गुणनफल होता है। अतएव एक (१) को वर्ग रूप में नहीं गिना जाता। वर्ग का प्रारंभ २ से होता है। २×२=४ (प्रथम वर्ग), ४×४=१६ (द्वितीय वर्ग), १६×१६=२५६ (तृतीय वर्ग), २५६×२५६=६५५३६ (चतुर्थ वर्ग), ६५५३६×६५५३६=४२९४९६७२९६ (पंचम वर्ग), इस पंचम

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वर्ग को परस्पर गुणित करने पर - १८४४६७४४०७३७०९५५१६१६ (छठा वर्ग) प्राप्त होता है। इस छठे वर्ग को पंचम वर्ग से गुणित करने पर - ७९२२८१६२५१४२६४३३७५९३५४-३९५०३३६ राशि प्राप्त होती है। यह उनतीस अंकों में है। यह गर्भज मनुष्यों का जघन्य पद में संख्या प्रमाण है।

इसी को छियानवे छेदनकदायी राशि प्रमाण द्वारा बतलाया गया है। अर्थात् जो क्रमशः आधी करते-करते छियावने बार छेदन को प्राप्त हो और अंत में एक बच जाए, उसे छियानवे छेदनकदायी राशि कहते हैं।

अर्थात् पूर्व में प्राप्त २९ अंकों की राशि को छियानवे छेदनकदायी राशि कहते हैं। क्योंकि इसको क्रमशः ९६वें बार आधी-आधी करें तो अंत में एक शेष रहता है। पूर्व वर्णित वर्ग क्रम संक्षिप्त है और क्रमशः बढ़ते क्रम में है, जिससे २९ (उनतीस) अंकों की राशि प्राप्त होती है और यह उससे विपरीत क्रम है।

छेदनक का तात्पर्य किसी वर्ग विशेष के उतनी बार विभाजन से है। जैसे - पूर्ववर्णित तृतीय वर्ग - १६×१६=२५६ के आठ छेदनक होंगे, यथा - १२८, ६४, ३२, १६, ८, ४, २, १।

इसी प्रकार प्रथम वर्ग के दो छेदनक होंगे -

२×२=४ (प्रथम वर्ग)

२, १।

तात्पर्य यह है कि अन्तिम पाँचवें एवं छठे वर्ग में होने वाले छेदनकों को जोड़ा जाए (क्रमशः - ३२ एवं ६४) तो कुल छियानवें छेदनक होते हैं।

अतः इस २९ अंकों की संख्या को छियानवे छेदनकदायी राशि कहा गया है।

यहाँ क्षेत्रापेक्षया रूप प्रक्षिप्त उत्कृष्ट पद स्थित मनुष्य श्रेणी के रिक्त किए जाने का जो उल्लेख हुआ है, उसका अभिप्राय यह है -

यहाँ उत्कृष्ट पद से सम्मूर्च्छिम और गर्भज दोनों प्रकार के मनुष्य गृहीत हैं। ऐसे मनुष्यों से एक नभःश्रेणि परिव्याप्त है। इस नभःश्रेणि से प्रतिसमय एक-एक प्रदेश से एक-एक मनुष्य अपहृत किया जाए - हटाया जाए तो उसके रिक्त होने में असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल व्यतीत होते हैं।

असत् कल्पना से अंगुल मात्र सूची श्रेणी में २५६ प्रदेश मानकर इसका प्रथम वर्गमूल १६ होता है। दूसरा वर्गमूल ४ होता है। तीसरा वर्गमूल २ होता है। इस प्रकार प्रथम वर्गमूल को

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तीसरे वर्गमूल से गुणा करने पर जितने प्रदेश होवे, घनीकृत लोक की एक सूची श्रेणी के इतने प्रदेशों पर एक-एक मनुष्य को रखने पर पूरी सूची श्रेणी भर जाती है। यदि एक मनुष्य और हो तो। अर्थात् एक मनुष्य जितनी जगह खाली रहती है। उत्कृष्ट पद में मनुष्यों की इतनी संख्या होती है, उसमें गर्भज और सम्मूर्च्छिम दोनों प्रकार के मनुष्य शामिल हैं। इस राशि में से गर्भज मनुष्यों की संख्या को निकालने पर सम्मूर्च्छिम मनुष्यों की संख्या का परिमाण आ जाता है।

कल्पना से एक सूची श्रेणी में ३२ लाख प्रदेश मानकर इसमें उपर्युक्त रीति से ३२-३२ प्रदेशों पर १-१ मनुष्य को रखने से पूरी श्रेणी भर जाती है, एक मनुष्य जितनी (३२ प्रदेश जितनी) जगह खाली रहती है। अर्थात् उस श्रेणी में ९९९९९ जितने मनुष्य समावेश होते हैं। उपर्युक्त सभी राशि कल्पना से कही गई है। तत्त्व से तो प्रत्येक राशि असंख्यात प्रदेशों की समझना चाहिए।

मणुस्साणं भंते! केवइया वेउव्वियसरीरा पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - बद्धेल्लया य १ मुक्केल्लया य २।

तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं संखिज्जा, समए समए अवहीरमाणा अवहीरमाणा संखेज्जेणं कालेणं अवहीरंति, णो चेव णं अवहिया सिया। मुक्केल्लया जहा ओहिया ओरालियाणं मुक्केल्लया तहा भाणियव्वा।

भावार्थ - हे भगवन्! मनुष्यों के कितने वैक्रिय शरीर कहे गए हैं?

हे आयुष्मन् गौतम! ये मुक्त और बद्ध के रूप में दो प्रकार के कहे गए हैं।

उनमें जो बद्ध हैं, वे संख्यात हैं तथा समय-समय में अपहृत किए जाने पर संख्यातकाल में अपहृत होते हैं। लेकिन (अभी तक) अपहृत नहीं किए गए हैं।

मुक्त वैक्रिय शरीरों के संदर्भ में मुक्त औघिक औदारिक शरीरों की भाँति कथनीय है।

मणुस्साणं भंते! केवइया आहारगसरीरा पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - बद्धेल्लया य १ मुक्केल्लया य २।

तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं सिय अत्थि सिय णत्थि, जइ अत्थि जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं सहस्सपुहत्तं। मुक्केल्लया जहा ओहिया ओरालिया तहा भाणियव्वा। तेयगकम्मगसरीरा जहा एएसिं चेव ओरालिया तहा भाणियव्वा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - हे भगवन्! मनुष्यों के आहारक शरीर कितने प्रकार के कहे गए हैं?

हे आयुष्मन् गौतम! ये बद्ध और मुक्त के रूप में दो प्रकार के कहे गए हैं।

उनमें जो बद्ध हैं, वे कदाचित् हो भी सकते हैं और न भी हों। जब होते हैं तो जघन्यतः एक, दो या तीन तथा उत्कृष्टतः सहस्र पृथक्त्व होते हैं।

मुक्त आहारक शरीर सामान्य औदारिक शरीरों के समान ज्ञातव्य हैं।

तैजस-कार्मण शरीर सामान्य औदारिक शरीरों के समान कथनीय हैं।

वाणव्यंतर देवों के बद्ध-मुक्त शरीर

वाणमंतरा ओरालियसरीरा जहा णेरइयाणं।

वाणमंतराणं भंते! केवइया वेउव्वियसरीरा पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - बद्धेल्लया य १ मुक्केल्लया य २।

तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं असंखेज्जा, असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणी-ओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ, खेत्तओ असंखिज्जाओ सेढीओ पयरस्स असंखेज्जइभागो, तासि णं सेढीणं विक्खंभसूई संखेज्जजोयणसयवग्गपलिभागो पयरस्स। मुक्केल्लया जहा ओहिया ओरालिया तहा भाणियव्वा। आहारयसरीरा दुविहा वि जहा असुरकुमाराणं तहा भाणियव्वा।

वाणमंतराणं भंते! केवइया तेयगकम्मगसरीरा पण्णत्ता?

गोयमा! जहा एएसिं चेव वेउव्वियसरीरा तहा तेयगकम्मगसरीरा भाणियव्वा।

भावार्थ - वाणव्यंतर देवों के औदारिक शरीरों के संबंध में नैरयिकों के औदारिक शरीरों की भाँति ज्ञातव्य है।

हे भगवन्! वाणव्यंतर देवों के कितने वैक्रिय शरीर कहे गए हैं?

हे आयुष्मन् गौतम! ये दो प्रकार के बतलाए गए हैं - १. बद्ध और २. मुक्त।

उनमें जो बद्ध हैं, वे असंख्यात हैं। वे कालापेक्षया असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी कालों में अपहृत होते हैं। क्षेत्रापेक्षया असंख्यात श्रेणी प्रमाण हैं। ये श्रेणियाँ प्रतर के असंख्यातवें भाग तुल्य हैं। इन श्रेणियों की विष्कंभसूची प्रतर के संख्येय योजन-शतवर्ग की अंश (प्रतिभाग) रूप हैं।

मुक्त वैक्रिय शरीरों के विषय में सामान्य औदारिक शरीरों की भाँति जानना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दोनों प्रकार के आहारक शरीर के संबंध में असुरकुमारों के वर्णनानुसार ग्राह्य है।

हे भगवन्! वाणव्यंतर देवों के कितने तैजस्-कार्मण शरीर परिज्ञापित हुए हैं?

हे आयुष्मन् गौतम! जिस प्रकार पूर्व में इनके वैक्रिय शरीरों के बारे में बतलाया गया है, उसी प्रकार इन तैजस्-कार्मण शरीरों के विषय में ज्ञातव्य है।

विवेचन - यहाँ पर जो श्रेणियों की विष्कंभसूची-प्रतर के संख्येय योजन शतवर्ग के प्रतिभाग रूप बताई है, इसका आशय इस प्रकार समझना चाहिए - 'संख्याता सौ योजन के लम्बे और इतने ही चौड़े चौरस प्रतर के खंड पर एक-एक वाणव्यंतर देव को रखने पर प्रतर (सात रज्जु का लम्बा सात रज्जु का चौड़ा) पूरा भर जाता है' अर्थात् प्रतर में जितने ये चौरस खंड समावेश होते हैं उतने वाणव्यतंर देव होते हैं।

ज्योतिष्क देवों के बद्ध-मुक्त शरीर

जोइसियाणं भंते! केवइया ओरालियसरीरा पण्णत्ता?

गोयमा! जहा णेरइयाणं तहा भाणियव्वा।

जोइसियाणं भंते! केवइया वेउव्वियसरीरा पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - बद्धेल्लया य १ मुक्केल्लया य २।

तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया जाव तासि णं सेढीणं विक्खंभसूई, बेछप्पण्णंगुलसयवग्गपलिभागो पयरस्स। मुक्केल्लया जहा ओहिया ओरालिया तहा भाणियव्वा। आहारयसरीरा जहा णेरइयाणं तहा भाणियव्वा। तेयगकम्मगसरीरा जहा एएसिं चेव वेउव्विया तहा भाणियव्वा।

भावार्थ - हे भगवन्! ज्योतिष्क देवों के कितने औदारिक शरीर प्रज्ञप्त हुए हैं?

हे आयुष्मन् गौतम! इनके औदारिक शरीर नैरयिकों की भाँति कथनीय हैं।

हे भगवन्! ज्योतिष्कों के कितने वैक्रिय शरीर प्रतिपादित हुए हैं?

हे आयुष्मन् गौतम! ये बद्ध और मुक्त के रूप में दो प्रकार के परिज्ञापित हुए हैं।

उनमें जो बद्ध (वैक्रिय शरीर) हैं, वे असंख्यात हैं यावत् उनकी श्रेणी की विष्कंभसूची दो सौ छप्पन प्रतरांगुल के वर्गमूल रूप अंश प्रमाण के समान है।

मुक्त वैक्रिय शरीरों के विषय में सामान्य मुक्त औदारिक शरीरों का वर्णन योजनीय है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(ज्योतिष्क देवों के) आहारक शरीरों का वर्णन नैरयिकों की भांति कथनीय है।

(ज्योतिष्क देवों के) तैजस्-कार्मण शरीरों का वर्णन इनके (ऊपर वर्णित) वैक्रिय शरीरों के सदृश जानना चाहिए।

विवेचन - यहाँ पर जो श्रेणियों की विष्कंभसूची - 'दो सौ छप्पन प्रतरांगुल के वर्गमूल रूप अंश प्रमाण' बताई है। इसका आशय इस प्रकार समझना चाहिए - 'दो सौ छप्पन अंगुल जितने लम्बे और चौड़े प्रतर खंड पर एक-एक ज्योतिषी देव को रखने पर पूरा प्रतर भर जाता है अर्थात् प्रतर में जितने ये खंड समावेश होते हैं, उतने ज्योतिषी देव हैं।' वाणव्यंतर देवों से इनकी विष्कंभसूची संख्यातगुणी अधिक है और प्रतरखंड संख्यात गुण हीन होने से ये देव वाणव्यंतर देवों से संख्यात गुणे अधिक होते हैं।

वैमानिक देवों के बद्ध-मुक्त शरीर

वेमाणियाणं भंते! केवइया ओरालियसरीरा पण्णत्ता?

गोयमा! जहा णेरइयाणं तहा भाणियव्वा।

वेमाणियाणं भंते! केवइया वेउव्वियसरीरा पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - बद्धेल्लया य १ मुक्केल्लया य २।

तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं असंखिज्जा, असंखिज्जाहिं उस्सप्पिणी-ओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ, खेत्तओ असंखिज्जाओ सेढीओ पयरस्स असंखेज्जइभागो, तासि णं सेढीणं विक्खंभसूई अंगुलबीयवग्गमूलं तइयवग्ग-मूलपडुप्पण्णं अहव णं अंगुलतइयवग्गमूलघणप्पमाणमेत्ताओ सेढीओ। मुक्केल्लया जहा ओहिया ओरालिया तहा भाणियव्वा। आहारगसरीरा जहा णेरइयाणं। तेयगकम्मगसरीरा जहा एएसिं चेव वेउव्वियसरीरा तहा भाणियव्वा। सेत्तं सुहुमे खेत्तपलिओवमे। सेत्तं खेत्तपलिओवमे। सेत्तं पलिओवमे। सेत्तं विभागणिप्फण्णे। सेत्तं कालप्पमाणे।

भावार्थ - हे भगवन्! वैमानिक देवों के कितने औदारिक शरीर कहे गए हैं?

हे आयुष्मन् गौतम! जिस प्रकार नैरयिकों के वर्णन में बतलाया गया है, उसी प्रकार यहाँ कथनीय है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हे भगवन्! वैमानिक देवों के कितने वैक्रिय शरीर कहे गए हैं?

हे आयुष्मन् गौतम! इनके बद्ध और मुक्त के रूप में दो प्रकार के वैक्रिय शरीर कहे गए हैं।

उनमें जो बद्ध हैं, वे असंख्यात हैं। वे कालापेक्षया असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी द्वारा अपहृत होते हैं। क्षेत्रापेक्षया वे असंख्यात श्रेणी प्रमाण हैं। वे श्रेणियाँ प्रतर के असंख्यातवें भाग तुल्य हैं। इन श्रेणियों की विष्कंभ सूची अंगुल के तृतीय वर्गमूल से गुणित द्वितीय वर्गमूल प्रमाण अथवा अंगुल के तृतीय वर्गमूल घनप्रमाण के समान है।

मुक्त वैक्रिय शरीर साधारण औदारिक शरीरों के समान ही ज्ञातव्य हैं।

इनके आहारक शरीरों के विषय में नैरयिकों के आहारक शरीरों के समान ही जानना चाहिए।

तैजस-कार्मण शरीरों के संदर्भ में इनके (ऊपर वर्णित) वैक्रिय शरीरों के समान वर्णन योजनीय है।

यह सूक्ष्म क्षेत्रपल्योपम का स्वरूप है।

इस प्रकार क्षेत्रपल्योपम का विवेचन परिसमाप्त होता है।

पुनश्च, पल्योपम का स्वरूप एवं उसकी विभागनिष्पन्नता का विवेचन पूर्ण होता है। इस प्रकार काल प्रमाण का स्वरूप पूर्ण होता है।

विवेचन - श्री प्रज्ञापना सूत्र के १२ वें 'शरीर पद' में पंचेन्द्रिय के १६ दण्डकों के वैक्रिय बद्ध शरीरों की असत्कल्पना से राशिएं बताई गई है। जिज्ञासुओं को वे स्थल द्रष्टव्य हैं।

इस प्रकार सूत्र पाठ में छह प्रकार के पल्योपम, सागरोपम का वर्णन किया गया है। इनमें से तीनों व्यावहारिक (उद्धार, अद्धा, क्षेत्र) पल्योपमों और सागरोपमों की प्ररूपणा मात्र तीनों सूक्ष्म पल्योपमों, सागरोपमों के स्वरूप को सरलता से समझाने के लिए की गई है। सूक्ष्म उद्धार पल्योपम सागरोपम से द्वीप समुद्रों का परिमाण जाना जाता है। सूक्ष्म अद्धा पल्योपम सागरोपम से चार गति के जीवों का आयुष्य मापा जाता है। सूक्ष्म क्षेत्र पल्योपम सागरोपम से - दृष्टिवाद के द्रव्य मापे जाते हैं। उदाहरण के रूप में सूत्र के मूल पाठ में वायुकाय के वैक्रिय बद्ध शरीरों को सूक्ष्म क्षेत्र पल्योपम के असंख्यातवें भाग जितने बताए गए हैं।

इन उपर्युक्त छहों प्रकार के पल्योपम के कालमान की अल्पबहुत्व इस प्रकार हो सकती है - १. सबसे थोड़ा काल व्यावहारिक उद्धार पल्योपम का (संख्याता समयों जितना होने से) २. उनसे व्यावहारिक अद्धा पल्योपम का कालमान असंख्यात गुणा (असंख्याता कोटि वर्ष

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जितना होने से) ३. उनसे सूक्ष्म उद्धार पल्योपम का काल असंख्यात गुणा (असंख्याता कोटि वर्ष जितना होने से) ४. उनसे सूक्ष्म अद्धा पल्योपम का कालमान असंख्यात गुणा (असंख्याता कोटाकोटि वर्ष तुल्य होने से) ५. उनसे व्यावहारिक क्षेत्र पल्योपम का कालमान असंख्यात गुणा (असंख्याता उत्सर्पिणी अवसर्पिणी के तुल्य होने से) ६. उनसे सूक्ष्म क्षेत्र पल्योपम का कालमान असंख्यात गुणा (असंख्याता उत्सर्पिणी अवसर्पिणी के तुल्य होने से) ५ वें बोल से इसमें असंख्यात गुणी अधिक उत्सर्पिणी अवसर्पिणी समझना।

(१४४)

४. भाव प्रमाण

से किं तं भावप्पमाणे?

भावप्पमाणे तिविहे पण्णत्ते। तंजहा - गुणप्पमाणे १ णयप्पमाणे २ संखप्पमाणे ३।

भावार्थ - भावप्रमाण कितने प्रकार का होता है?

यह १. गुणप्रमाण २. नयप्रमाण और ३. संख्याप्रमाण के रूप में तीन प्रकार का परिज्ञापित हुआ है।

(१४५)

१. गुणप्रमाण

से किं तं गुणप्पमाणे?

गुणप्पमाणे दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - जीवगुणप्पमाणे १ अजीवगुणप्पमाणे य २।

भावार्थ - गुणप्रमाण के कितने प्रकार हैं?

यह दो प्रकार का परिज्ञापित हुआ है - १. जीव गुणप्रमाण और २. अजीव गुणप्रमाण।

विवेचन - विद्यमान पदार्थों के वर्णादि और ज्ञानादि परिणामों को भाव और जिसके द्वारा उन वर्णादि परिणामों का भलीभांति बोध हो, उसे भावप्रमाण कहते हैं। वह भाव प्रमाण तीन प्रकार का है - गुणप्रमाण, नयप्रमाण और संख्याप्रमाण।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गुणों से द्रव्यादि का अथवा गुणों का गुण रूप से ज्ञान होता है अतएव वे गुणप्रमाण कहलाते हैं। अनन्त धर्मात्मक वस्तु का एक अंश द्वारा निर्णय करना नय है। इसी को नयप्रमाण कहते हैं। संख्या का अर्थ है गणना करना। यह गणना रूप प्रमाण संख्या प्रमाण है।

अजीव गुण प्रमाण

से किं तं अजीवगुणप्पमाणे?

अजीवगुणप्पमाणे पंचविहे पण्णत्ते। तंजहा - वण्णगुणप्पमाणे १ गंध-गुणप्पमाणे २ रसगुणप्पमाणे ३ फासगुणप्पमाणे ४ संठाणगुणप्पमाणे ५।

से किं तं वण्णगुणप्पमाणे?

वण्णगुणप्पमाणे पंचविहे पण्णत्ते। तंजहा - कालवण्णगुणप्पमाणे १ जाव सुक्किल्लवण्णगुणप्पमाणे ५। सेत्तं वण्णगुणप्पमाणे।

से किं तं गंधगुणप्पमाणे?

गंधगुणप्पमाणे दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - सुरभिगंधगुणप्पमाणे १ दुरभिगंध-गुणप्पमाणे २। सेत्तं गंधगुणप्पमाणे।

से किं तं रसगुणप्पमाणे?

रसगुणप्पमाणे पंचविहे पण्णत्ते। तंजहा - तित्तरसगुणप्पमाणे १ जाव महुररस गुणप्पमाणे ५। सेत्तं रसगुणप्पमाणे।

से किं तं फासगुणप्पमाणे?

फासगुणप्पमाणे अट्ठविहे पण्णत्ते। तंजहा - कक्खडफासगुणप्पमाणे १ जाव लुक्खफासगुणप्पमाणे ८। सेत्तं फासगुणप्पमाणे।

से किं तं संठाणगुणप्पमाणे?

संठाणगुणप्पमाणे पंचविहे पण्णत्ते। तंजहा-परिमंडलसंठाणगुणप्पमाणे १ वट्टसंठाणगुणप्पमाणे २ तंससंठाणगुणप्पमाणे ३ चउरंससंठाणगुणप्पमाणे ४ आययसंठाणगुणप्पमाणे ५। सेत्तं संठाणगुणप्पमाणे। सेत्तं अजीवगुणप्पमाणे।

भावार्थ - अजीव गुण प्रमाण कितने प्रकार का बतलाया गया है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यह पांच प्रकार का प्रज्ञप्त हुआ है - १. वर्ण गुण प्रमाण २. गंध गुण प्रमाण ३. रस गुण प्रमाण ४. स्पर्श गुण प्रमाण ५. संस्थान गुण प्रमाण।

१. वर्ण गुण प्रमाण - वर्ण गुण प्रमाण कितने प्रकार का बतलाया गया है?

यह पांच प्रकार का परिज्ञापित हुआ है - १. कृष्ण वर्ण गुण प्रमाण यावत् २. शुक्ल वर्ण गुण प्रमाण। यह वर्ण गुणप्रमाण का निरूपण है।

२. गंध गुण प्रमाण - गंध गुण प्रमाण कितने प्रकार का कहा गया है?

यह दो प्रकार का बतलाया गया है - १. सुरभिगंधगुण प्रमाण २. दुरभिगंधगुण प्रमाण।

यह गंध गुण प्रमाण का विवेचन है।

३. रस गुण प्रमाण - रस गुण प्रमाण कितने प्रकार का बतलाया गया है ?

यह पांच प्रकार का बतलाया गया है - १. तिक्तरसगुण प्रमाण यावत् ५. मधुर रस गुण प्रमाण।

यह रस गुण प्रमाण का स्वरूप है।

४. स्पर्शगुण प्रमाण - स्पर्श गुण प्रमाण कितने प्रकार का होता है?

यह आठ प्रकार का होता है - १. कर्कश स्पर्श गुण प्रमाण यावत् ८. रूक्ष स्पर्श गुण प्रमाण।

यह स्पर्शगुण प्रमाण का निरूपण है।

५. संस्थान गुण प्रमाण - संस्थान गुण प्रमाण कितने प्रकार का परिज्ञापित हुआ है?

यह पांच प्रकार का बतलाया गया है - १. परिमंडल संस्थान गुण प्रमाण २. वृत्त संस्थान गुण प्रमाण ३. त्र्यस्र संस्थान गुण प्रमाण ४. चतुरस्र संस्थान गुण प्रमाण ५. आयत संस्थान गुण प्रमाण।

यह संस्थान प्रमाण का स्वरूप है।

इस प्रकार अजीव गुणप्रमाण का निरूपण परिसंपन्न होता है।

जीवगुण प्रमाण

से किं तं जीवगुणप्पमाणे?

जीवगुणप्पमाणे तिविहे पण्णत्ते। तंजहा - णाणगुणप्पमाणे १ दंसण-गुणप्पमाणे २. चरित्तगुणप्पमाणे ३।

भावार्थ - जीव गुण प्रमाण कितने प्रकार का होता है?

जीवगुण प्रमाण तीन प्रकार का बतलाया गया है - १. ज्ञानगुण प्रमाण २. दर्शनगुण प्रमाण और ३. चरित्रगुण प्रमाण।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से किं तं णाणगुणप्पमाणे?

णाणगुणप्पमाणे चउव्विहे पण्णत्ते। तंजहा - पच्चक्खे १ अणुमाणे २ ओवम्मे ३ आगमे ४।

भावार्थ - ज्ञानगुण प्रमाण कितने प्रकार का बतलाया गया है?

यह चार प्रकार का कहा गया है - १. प्रत्यक्ष २. अनुमान ३. उपमान और ४. आगम।

से किं तं पच्चक्खे?

पच्चक्खे दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - इंदियपच्चक्खे य १ णोइंदियपच्चक्खे य २।

भावार्थ - प्रत्यक्ष प्रमाण कितने प्रकार का होता है?

यह इन्द्रिय प्रत्यक्ष एवं नोइन्द्रिय प्रत्यक्ष के रूप में दो प्रकार का बतलाया गया है।

से किं तं इंदियपच्चक्खे?

इंदियपच्चक्खे पंचविहे पण्णत्ते। तंजहा - सोइंदियपच्चक्खे १ चक्खुरिंदियपच्चक्खे २ घाणिंदियपच्चक्खे ३ जिब्भिंदियपच्चक्खे ४ फासिंदियपच्चक्खे ५। सेत्तं इंदियपच्चक्खे।

भावार्थ - इन्द्रिय प्रत्यक्ष कितने प्रकार का परिज्ञापित हुआ है?

यह पांच प्रकार का बतलाया गया है -

१. श्रोत्रेन्द्रिय प्रत्यक्ष २. चक्षुरिन्द्रिय प्रत्यक्ष ३. घ्राणेन्द्रिय प्रत्यक्ष ४. जिह्वेन्द्रिय प्रत्यक्ष ५. स्पर्शनेन्द्रिय प्रत्यक्ष।

यह इन्द्रिय प्रत्यक्ष का स्वरूप है।

से किं तं णोइंदियपच्चक्खे?

णोइंदियपच्चक्खे तिविहे पण्णत्ते। तंजहा - ओहिणाणपच्चक्खे १ मणपज्जवणाणपच्चक्खे २ केवलणाणपच्चक्खे ३। सेत्तं णोइंदियपच्चक्खे। सेत्तं पच्चक्खे।

भावार्थ - नोइन्द्रिय प्रत्यक्ष कितने प्रकार का परिज्ञापित हुआ है?

यह १. अवधिज्ञान प्रत्यक्ष २. मनःपर्यवज्ञान प्रत्यक्ष और ३. केवलज्ञान प्रत्यक्ष के रूप में तीन प्रकार का प्रज्ञप्त हुआ है।

इस प्रकार प्रत्यक्ष का निरूपण परिसमाप्त होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - प्रत्यक्ष में प्रति उपसर्ग और अक्ष का मेल है। अक्ष अनेकार्थक है। इसका मुख्य अर्थ आत्मा है। आत्मा के अर्थ में जहाँ इसका प्रयोग होता है, तब पुल्लिंग होता है। अक्ष शब्द का अर्थ इन्द्रिय, नेत्र आदि भी है। जहाँ ये अर्थ प्रयुक्त होते हैं, वहाँ नपुंसकलिंग में (अक्षं) आता है।

'**अक्ष्णोति जानाति वा इति अक्षः**'- जो जानता है, उसे अक्ष कहा जाता है। वह ज्ञान जो मन एवं इन्द्रियों की सहायता के बिना सीधा आत्मा से होता है अथवा जिसके लिए इन्द्रिय आदि का सहयोग अपेक्षित नहीं होता, वह प्रत्यक्ष है। जिन सांसारिक पदार्थों को हम आँखों से देखते हैं, इन्द्रियों से जानते हैं, लोक में उसे भी प्रत्यक्ष कहा जाता है किन्तु वह तत्त्वतः प्रत्यक्ष नहीं है। लोक प्रयोग को देखते हुए जैन दार्शनिकों ने उसे सांव्यावहारिक प्रत्यक्ष कहा है, जिसका तात्पर्य यह है, यद्यपि वह प्रत्यक्ष तो नहीं है किन्तु व्यवहार में प्रत्यक्ष के रूप में अभिहित होता है। इस दृष्टि से जो ज्ञान साक्षात् आत्मा द्वारा होता है, वह नो इन्द्रिय प्रत्यक्ष तथा जो इन्द्रियों के माध्यम से होता है, लौकिक दृष्टि से प्रत्यक्ष कहा जाता है। इसी दृष्टि से इसका विवेचन किया जा रहा है। यह ध्यान देने योग्य है कि नैश्चयिक दृष्टि से 'सांव्यावहारिक प्रत्यक्ष' परोक्ष ही है।

अनुमान प्रमाण

से किं तं अणुमाणे ?

अणुमाणे तिविहे पण्णत्ते। तंजहा - पुव्ववं १ सेसवं २ दिट्ठसाहम्मवं ३।

शब्दार्थ - पुव्ववं - पूर्ववत्, **सेसवं** - शेषवत्, **दिट्ठसाहम्मवं** - दृष्ट साधर्म्यवत्।

भावार्थ - अनुमान प्रमाण कितने प्रकार का है?

यह तीन प्रकार का परिज्ञापित हुआ है - १. पूर्ववत् २. शेषवत् ३. दृष्ट साधर्म्यवत्।

१. पूर्ववत् अनुमान

से किं तं पुव्ववं?

पुव्ववं -

गाहा - माया पुत्तं जहा णट्ठं, जुवाणं पुणरागयं।
काइ पच्चभिजाणेज्जा, पुव्वलिंगेण केणइ॥१॥

तंजहा - खएणं वा, वण्णेण वा, लंछणेण वा, मसेण वा, तिलएण वा। सेत्तं पुव्ववं।

शब्दार्थ - माया - माता, **पुत्तं** - पुत्र को, **जहा** - जैसे, **णट्ठं** - खोए हुए, **जुवाणं** - युवा, **पुणरागयं** - पुनरागत, **काइ** - कोई, **पच्चभिजाणेज्जा** - पहचान कर लेती है, **केणइ** - किसी, **खएण** - घाव का चिह्न, **वण्णेण** - व्रण - घाव ठीक होने पर शेष निशान, **लंछणेण**- लांछन - डाम।

भावार्थ - पूर्ववत् का क्या स्वरूप है?

गाथा - जैसे कोई माता (बचपन में) अपने खोये हुए पुत्र को युवावस्था में पुनः आया हुआ देखकर उसके पूर्वचिह्नों से उसे पहचान लेती है, वह पूर्ववत् अनुमान है।

जैसे घाव का निशान, व्रण, मस्सा, डाम, तिल आदि से पूर्व परिचित की पहचान हो जाती है।

यह पूर्ववत् अनुमान का निरूपण है।

२. शेषवत् अनुमान

से किं तं सेसवं?

सेसवं पंचविहं पण्णत्तं। तंजहा - कज्जेणं १ कारणेणं २ गुणेणं ३ अवयवेणं ४ आसएणं ५।

शब्दार्थ - कज्जेण - कार्य द्वारा, **कारणेण** - कारण द्वारा, **आसएणं** - आश्रय द्वारा।

भावार्थ - शेषवत् अनुमान कितने प्रकार का है?

यह पांच प्रकार का कहा गया है - १. कार्य से २. कारण से ३. गुण से ४. अवयव से तथा ५. आश्रय से।

से किं तं कज्जेणं?

कज्जेणं - संखं सद्देणं, भेरिं ताडिएणं, वसभं ढक्किएणं, मोरं किंकाइेणं, हयं हेसिएणं, गयं गुलगुलाइएणं, रहं घणघणाइएणं। सेत्तं कज्जेणं।

शब्दार्थ - सद्देणं - शब्द द्वारा, **ताडिएणं** - ताड़न द्वारा, **ढक्किएणं** - दडूकने द्वारा, **किकाइएणं** - केका द्वारा, **हेसियेणं** - हिंनहिनाहट द्वारा, **गुलगुलाइएणं** - गुलगुलाहट द्वारा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - कार्य द्वारा होने वाले अनुमान का क्या स्वरूप है?

शब्द से शंख का, ताड़न से नगारे का, दड़ूकने से बैल का, केका से मयूर का, हिनहिनाहट से घोड़े का, गुलगुलाहट से हाथी का तथा घनघनाहट से रथ का - इन विविध कार्यों से (कारण का) जो अनुमान होता है, वह कार्य रूप अनुमान है।

से किं तं कारणेणं?

कारणेणं - तंतवो पडस्स कारणं, ण पडो तंतुकारणं, वीरणा कडस्स कारणं, ण कडो वीरणाकारणं, मिप्पिंडो घडस्स कारणं, ण घडो मिप्पिड कारणं। सेत्तं कारणेणं।

शब्दार्थ - **पडस्स** - वस्त्र का, **वीरणा** - तिनके, **कड** - चटाई के, **मिप्पिंडो** - मृत्त पिण्ड - मिट्टी का पिण्ड।

भावार्थ - कारण से उत्पन्न (शेषवत्) अनुमान का क्या स्वरूप है?

तंतु वस्त्र के कारण हैं, वस्त्र तन्तुओं का कारण नहीं है। तृण चटाई के कारण हैं, चटाई तृणों का कारण नहीं है, मृत्तिका पिण्ड घड़े का कारण है, घड़ा मृत्तिका पिण्ड का कारण नहीं है।

इस प्रकार कारण से कार्य का अनुमान होना शेषवत् है।

से किं तं गुणेणं?

गुणेणं - सुवण्णं णिकसेणं, पुप्फं गंधेणं, लवणं रसेणं, मइरं आसायएणं, वत्थं फासेणं। सेत्तं गुणेणं।

शब्दार्थ - **सुवण्णं** - स्वर्ण, **णिकसेणं** - कसौटी द्वारा, **पुप्फं** - पुष्प, **लवणं** - नमक, **रसेणं** - रस द्वारा, **मइरं** - मदिरा, **आसायएणं** - आस्वादन से, **वत्थं** - वस्त्र, **फासएणं** - स्पर्श द्वारा।

भावार्थ - गुण रूप (शेषवत्) अनुमान का क्या स्वरूप है?

कसौटी द्वारा सोने का, सुगंध द्वारा फूल का, रस द्वारा नमक का, आस्वादन द्वारा मदिरा का, स्पर्श द्वारा वस्त्र का परिज्ञापन होता है।

यह गुणनिष्पन्न अनुमान है।

से किं तं अवयवेणं?

अवयवेणं - महिसं सिंगेणं, कुक्कुडं सिहाएणं, हत्थि विसाणेणं, वराहं दाढाए,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मोरं पिच्छेणं, आसं खुरेणं, वग्घं णहेणं, चमरिं वालग्गेणं, वाणरं लंगूलेणं, दुपयं मणुस्साइ, चउप्पयं गव(या)माइ, बहुपयं गोमियाइ, सीहं केसरेणं, वसहं ककुहेण, महिलं वलयबाहाए,

गाहा - परियरबंधेण भडं, जाणिज्जा महिलियं णिवसणेणं।

सित्थेण दोणपागं, कविं च एक्काए गाहाए॥२॥ सेत्तं अवयवेणं।

शब्दार्थ - सिहाएणं - शिखा द्वारा (कलंगी द्वारा), **विसाणेणं** - बाहर निकले हुए दांत, **वराहं** - सूअर, **दाढाए** - दंष्ट्रा द्वारा, **पिच्छेणं** - पंखों द्वारा, **आसं** - घोड़ा, **वग्घं** - व्याघ्र-बाघ, **णहेणं** - नख द्वारा, **चमरिं** - चँवरी गाय, **वालग्गेणं** - पूँछ के केश समूह द्वारा, **लंगूलेणं** - पूँछ द्वारा, **गवमाइ** - गाय आदि, **गोमियाइ** - गोमिका - शतपद, कनखजूरा आदि, **केसरेणं** - अयाल से, **ककुहेणं** - थूही द्वारा, **वलयबाहाए** - कंकणयुक्त भुजा द्वारा, **परियरबंधेणं** - कमरबंधे से, **जाणिज्जा** - जानना चाहिए, **णिवसणेणं** - वस्त्र द्वारा, **सित्थेण**-दाने से, **दोणपागं** - बड़े बर्तन में पकाए जाते पदार्थ का, **एक्काए** - एक।

भावार्थ - अवयवनिष्पन्न अनुमान का क्या स्वरूप है?

सींग से भैंसे का, शिखा से मुर्गे का, बाहर निकले दाँत से हाथी का, दाढ से सूअर का, पंखों से मयूर का, खुरों से अश्व का, नखों से बाघ का, पूँछ के बालों से चँवरी गाय का, पूँछ से लंगूर (वानर) का तथा द्विपदों से मनुष्यों को, चतुष्पदों से गाय आदि को, बहुपदों से गोमिका आदि को, सिंह को अयाल से, वृषभ का थूही से, स्त्री का कंकणयुक्त बाहु से जो अनुमान होता है, वह अवयवनिष्पन्न है।

गाथा - कमरबंध द्वारा योद्धा को, वस्त्र (विशेष) द्वारा महिला को, एक दाने से द्रोण पाक को तथा एक गाथा पद से कवि का ज्ञान होता है।

यह अवयवनिष्पन्न का दूसरा उदाहरण है।

यह अवयवनिष्पन्न का स्वरूप है।

से किं तं आसएणं?

आसएणं - अग्गिं धूमेणं, सलिलं बलागेणं, वुट्ठिं अब्भविगारेणं, कुलपुत्तं सीलसमायारेणं। सेत्तं आसएणं। सेत्तं सेसवं।

शब्दार्थ - अग्गिं - अग्नि को, **सलिलं** - जल, **बलागेणं** - बगुलों द्वारा, **वुट्ठिं** - वृष्टि-वर्षा, **अब्भविगारेणं** - बादलों के विशेष रूप का, **सीलसमायारेणं** - शील-समाचार से।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - आश्रयनिष्पन्न (शेषवत्) अनुमान का क्या स्वरूप है?

धुएँ से अग्नि का, बगुलों से जल का, बादलों के विशेष रूप से वर्षा का तथा शील और समाचार से - उत्तम आचार से कुलपुत्र का जो अनुमान होता है, वह आश्रयप्रसूत अनुमान है।

यह आश्रयनिष्पन्न का स्वरूप है?

यह शेषवत् अनुमान का निरूपण है।

३. दृष्टसाधर्म्यवत् अनुमान

से किं तं दिट्ठसाहम्मवं?

दिट्ठसाहम्मवं दुविहं पण्णत्तं। तंजहा - सामण्णदिट्ठं च १ विसेसदिट्ठं च २।

शब्दार्थ - **सामण्णदिट्ठं** - सामान्य दृष्ट, **विसेसदिट्ठं** - विशेष दृष्ट।

भावार्थ - दृष्टसाधर्म्यवत् अनुमान कितने प्रकार का है?

यह दो प्रकार का कहा गया है -

१. सामान्य दृष्ट तथा २. विशेष दृष्ट।

विवेचन - यहाँ प्रयुक्त साधर्म्य शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है - **धर्मेण सहितः सधर्मः, सधर्मस्य भावः साधर्म्यम्** - धर्म शब्द स्वभाव, गुण, वैशिष्ट्य आदि अनेक अर्थों का बोधक है। जिनका धर्म, गुण, स्वरूप या वैशिष्ट्य एक समान होता है, उसे सधर्म कहा जाता है। सधर्म से भाववाचक संज्ञा साधर्म्य बनती है।

इस अनुमान का आधार सदृशगुणयुक्ता, विशेषता या तज्जनित पहचान है।

से किं तं सामण्णदिट्ठं?

सामण्णदिट्ठं - जहा एगो पुरिसो तहा बहवे पुरिसा, जहा बहवे पुरिसा तहा एगो पुरिसो, जहा एगो करिसावणो तहा बहवे करिसावणा, जहा बहवे करिसावणा तहा एगो करिसावणो। सेत्तं सामण्णदिट्ठं।

भावार्थ - सामान्यदृष्ट का क्या स्वरूप है?

जैसे एक पुरुष होता है, वैसे बहुत से पुरुष होते हैं। जैसे बहुत से पुरुष होते हैं, वैसा एक पुरुष होता है। जैसे एक कार्षापण-स्वर्णमुद्रा होती है, वैसी अनेक स्वर्णमुद्राएँ होती हैं। जैसे बहुत-सी स्वर्णमुद्राएँ होती हैं, वैसी ही एक स्वर्णमुद्रा होती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से किं तं विसेसदिट्ठं?

विसेसदिट्ठं - से जहाणामए केइ पुरिसे कंचि पुरिसं बहूणं पुरिसाणं मज्झे पुव्वदिट्ठं पच्चभिजाणेज्जा-'अयं से पुरिसे' बहूणं करिसावणाणं मज्झे पुव्वदिट्ठं करिसावणं पच्चभिजाणेज्जा-'अयं से करिसावणे'। तस्स समासओ तिविहं गहणं भवइ, तंजहा- अतीयकालगहणं १ पडुप्पण्णकालगहणं २ अणागयकालगहणं ३।

शब्दार्थ - **कंचि** - किसी, **पच्चभिजाणेज्जा** - प्रत्यभिज्ञात कर लेता है - पहचान लेता है, **समासओ** - संक्षेप में, **गहणं** - ग्रहण करना, **अतीयकालगहणं** - भूतकाल ग्रहण, **पडुप्पण्ण**- प्रत्युत्पन्न-वर्तमान, **अणागय** - अनागत-भविष्य।

भावार्थ - विशेषदृष्ट का क्या स्वरूप है?

जैसे - कोई पुरुष बहुत से पुरुषों के बीच में पहले देखे हुए पुरुष को पहचान लेता है कि यह वही पुरुष है, बहुत सी स्वर्णमुद्राओं के बीच (पूर्वदृष्ट) किसी स्वर्णमुद्रा को प्रत्यभिज्ञात कर लेता है कि यह वही स्वर्णमुद्रा है, यह विशेषदृष्ट अनुमान है।

संक्षेप में वह तीन प्रकार से गृहीत होता है -

१. अतीतकाल २. वर्तमान और ३. भविष्यत्काल के आधार पर।

अतीतकाल

से किं तं अतीयकालगहणं?

अतीयकालगहणं - उत्तणाणि वणाणि णिप्फण्णसस्सं वा मेइणिं पुण्णाणि य कुंडसरणईदीहियातडागाइं पासित्ता तेणं साहिज्जइ जहा - सुवुट्ठी आसी। सेत्तं अतीयकालगहणं।

शब्दार्थ - **उत्तणाणि** - उगे हुए तृणों - घास से युक्त, **णिप्फण्णसस्सं** - निष्पन्नसस्य-धान्य से परिपूर्ण, **मेइणिं** - मेदिनी, **पुण्णाणि** - परिपूर्ण, **कुंडसरणईदीहियातडागाइं** - कुंड-सरोवर-नदी-दीर्घिका (वापि)-तालाबों को, **पासित्ता** - देखकर, **साहिज्जइ** - सिद्ध होता है, **सुवुट्ठी** - सुवृष्टि-अच्छी वर्षा, **आसी** - हुई थी।

भावार्थ - भूतकाल से गृहीत अनुमान का क्या स्वरूप है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उगे हुए तृणों से युक्त वन, धान्य परिपूर्ण पृथ्वी, जल से भरे हुए कुण्ड, सरोवर, नदी, वापि और तालाबों को देखकर अच्छी वृष्टि होने का अनुमान करना अतीतकाल ग्रहण (अनुमान) का स्वरूप है।

वर्तमानकाल

से किं तं पडुप्पण्णकालगहणं?

पडुप्पण्णकालगहणं - साहुं गोयरग्गगयं विच्छिड्डियपउरभत्तपाणं पासित्ता तेणं साहिज्जइ जहा - सुभिक्खे वट्टइ। सेत्तं पडुप्पण्णकालगहणं।

शब्दार्थ - साहुं - साधु को, **गोयरग्गगयं** - गोचरी (भिक्षा) के लिए गए हुए, **विच्छिड्डियपउरभत्तपाणं** - पर्याप्त मात्रा में (यथावश्यक) आहार-पानी ग्रहण करते हुए देखकर, **सुभिक्खे** - सुभिक्ष-सुकाल; **वट्टइ** - वर्तते-है।

भावार्थ - वर्तमानकाल गृहीत अनुमान का क्या स्वरूप है?

भिक्षा हेतु गए हुए साधु को पर्याप्त - आवश्यकतानुरूप आहार-पानी प्राप्त करते हुए देखकर यह अनुमान किया जाता है कि यहाँ सुकाल है।

यह वर्तमान काल गृहीत अनुमान का स्वरूप है।

विवेचन - सुभिक्ष और दुर्भिक्ष शब्दों का प्रयोग भाषाशास्त्रीय दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। **"सुलभा भिक्षा यत्र, तत्र सुभिक्षम्", "दुर्लभा भिक्षा यत्र, तत्र दुर्भिक्षम्"** - इस व्युत्पत्ति के अनुसार इन दोनों शब्दों का आशय यह है कि जहाँ त्यागी भिक्षोपजीवी चारित्रात्माओं को भिक्षा यथेष्ट रूप में सुलभ होती है, उससे उस देश की संपन्नता, अन्नादि विषयक समृद्धता तथा उत्तम फसलों का बोध होता है। यद्यपि साधु-संतों को भिक्षा तो सभी देना चाहते हैं, किन्तु जब स्थितियाँ प्रतिकूल होती हैं तो लोग स्वयं ही कष्ट में होते हैं, पर्याप्त भिक्षा कैसे दे पाएँ?

ये दोनों प्रयोग त्यागी साधुओं की निस्पृहता, निष्परिगृहीता एवं अकिंचनता का सूचन करते हैं, जो साधुत्व के अलंकरण है। भिक्षा देना गृहस्थों के लिए बहुत ही गौरव और आनंद की बात है, यह भी इससे सूचित होता है।

देशकाल की तात्कालिक समृद्ध - असमृद्ध स्थिति के अंकन में साधुओं की भिक्षाचर्या को गृहीत करना भारतीय संस्कृति की आतिथ्यशीलता और साधुसेवा का परिचायक है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भविष्यत्काल

से किं तं अणागयकालगहणं?

अणागयकालगहणं - अब्भस्स णिम्मलत्तं, कसिणा य गिरी सविज्जुया मेहा। थणियं वाउब्भामो, संझा रत्ता पणि(द्धा)द्धा य॥३॥ वारुणं वा महिंदं वा अण्णयरं वा पसत्थं उप्पायं पासित्ता तेणं साहिज्जइ जहा - सुवुट्ठी भविस्सइ। सेत्तं अणागयकालगहणं।

शब्दार्थ - अब्भस्स - आकाश की, **णिम्मलत्तं** - निर्मलता, **कसिणा** - कृष्णता, **गिरि** - पर्वत, **सविज्जुया** - बिजली सहित, **मेहा** - मेघ, **थणियं** - गर्जना, **वाउब्भामो** - अनुकूल वायु का बहना, **संझा** - संध्या, **रत्ता** - लालिमा, **पणिद्धा** - गाढ़ी, **अण्णयरं** - अन्यतर, **उप्पायं** - उत्पात - उल्कापात आदि।

भावार्थ - भविष्यकाल गृहीत अनुमान का क्या स्वरूप है?

आकाश की निर्मलता - स्वच्छता, पर्वतों की कृष्णता, विद्युत् युक्त मेघों की गर्जना, अनुकूल वायु का बहना, संध्या के समय गहरी लालिमा॥३॥

तथा आर्द्रा आदि एवं रोहिणी आदि नक्षत्रों में होने वाले अथवा और किसी प्रशस्त उत्पात, उल्कापात आदि शुभ शकुन को देखकर अनुमान करना कि अच्छी वर्षा होगी, यह अनागत काल ग्रहण अनुमान है।

विवेचन - नक्षत्रों के संदर्भ में वरुण और माहेन्द्र का प्रयोग हुआ है, उसका आशय यह है कि ज्योतिष शास्त्र में पूर्वाषाढा, उत्तरा भाद्रपदा, आश्लेषा, आर्द्रा, मूल, रेवती तथा शतभिष को वारूण तथा अनुराधा, अभिजित, ज्येष्ठा, उत्तराषाढा, धनिष्ठा, रोहिणी तथा श्रावण को माहेन्द्र नक्षत्र के अन्तर्गत माना जाता है।

मेघ वर्षण से इनका विशेष संबंध माना जाता है। इन नक्षत्रों में होने वाले अनुकूल शकुनों को देखकर अच्छी वृष्टि होने का अनुमान किया जाता है।

भड्डरि नामक विद्वान् हुए हैं, जिन्होंने इन नक्षत्रों में होने वाले विशेष शकुनों की विस्तार से चर्चा की है, जिससे भविष्य में होने वाली वृष्टि का अनुमान करने में बहुत ही सुविधा रहती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विपरीत विशेषदृष्ट साधर्म्यवत् अनुमान

एएसिं चेव विवज्जासे तिविहं गहणं भवइ, तंजहा - अतीयकालगहणं १ पडुप्पण्णकालगहणं २ अणागयकालगहणं ३।

शब्दार्थ - **विवज्जासे** - विपर्यास - विपरीत।

भावार्थ - इनका (पूर्व वर्णित विशेष दृष्टि अनुमानत्रय का) विपर्यास में भी तीन प्रकार से ग्रहण होता है, यथा - १. अतीत कालग्रहण २. प्रत्युत्पन्न काल ग्रहण और ३. अनागत काल ग्रहण।

से किं तं अतीयकालगहणं?

अतीयकालगहणं णित्तिणाइं वणाइं अणिप्फण्णसस्सं वा मेइणिं सुक्काणि य कुंडसरणई- दीहियातडागाइं पासित्ता तेणं साहिज्जइ जहा - कुवुट्ठी आसी। सेत्तं अतीयकाल-गहणं।

शब्दार्थ - **णित्तिणाइं** - निष्तृण - तृण रहित, **अणिप्फण्णसस्सं** - अनिष्पन्नसस्यं - फसल या धान्य रहित, **मेइणिं** - मेदिनी - पृथ्वी को, **सुक्काणि** - शुष्क - सूखे।

भावार्थ - अतीतकाल ग्रहण क्या स्वरूप है?

तृण रहित वन, धान्य रहित भूमि, सूखे कुण्ड, सरोवर, नदी, वापी तथा तालाब आदि देखकर यह अनुमान होता है, यहाँ वर्षा का अभाव रहा।

यह अतीत काल ग्रहण का स्वरूप है।

से किं तं पडुप्पण्णकालगहणं?

पडुप्पण्णकालगहणं - साहुं गोयरग्गगयं भिक्खं अलभमाणं पासित्ता तेणं साहिज्जइ जहा - दुब्भिक्खे वट्टइ। सेत्तं पडुप्पण्णकालगहणं।

शब्दार्थ - **अलभमाणं** - प्राप्त न करते हुए।

भावार्थ - वर्तमान काल ग्रहण का क्या स्वरूप है?

गोचरी हेतु गए हुए साधु को भिक्षा प्राप्त न करता हुआ देखकर यह अनुमान होता है कि यहाँ दुर्भिक्ष है।

यह वर्तमान काल ग्रहण अनुमान का स्वरूप है।

से किं तं अणागयकालगहणं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अणागयकालगहणं -

गाहा - धूमायंति दिसाओ, संविय-मेइणी अपडिबद्धा।

वाया णेरइया खलु, कुवुट्ठिमेवं णिवेयंति॥४॥

अग्गेयं वा वायव्वं वा अण्णयरं वा अप्पसत्थं उप्पायं पासित्ता तेणं साहिज्जइ जहा - कुवुट्ठी भविस्सइ। सेत्तं अणागयकालगहणं। सेत्तं विसेसदिट्ठं। सेत्तं दिट्ठसाहम्मवं। सेत्तं अणुमाणे।

शब्दार्थ - धूमायंति - धुंधलेपन से युक्त, **संविय-मेइणी** - संवरण - उमस युक्त पृथ्वी, **अपडिबद्धा** - प्रतिबद्ध रहित, **णेरइया** - रज रहित।

भावार्थ - अनागतकाल ग्रहण का क्या स्वरूप है?

दिशाएं धूमिल हों, पृथ्वी उमस के आवरण से युक्त न हो (अप्रतिबद्ध), वायु रज रहित हो तो वर्षा नहीं होती है॥ ४॥

आग्नेय मण्डल या वायव्य मंडल या अन्य कोई अप्रशस्त उत्पात देखकर, वर्षा नहीं होगी, ऐसा अनुमान किया जाता है।

यह अनागत कालग्रहण का स्वरूप है।

यह विशेष दृष्ट का निरूपण है।

इस प्रकार दृष्टि साधर्म्यवत् अनुमान का विवेचन समाप्त होता है।

विवचेन - इस सूत्र में विपरीत दृष्ट साधर्म्य का स्वरूप बतलाया गया है। जिस प्रकार पूर्व वर्णित दृष्टि साधर्म्य के अनुमान विवेचन में भूत, वर्तमान और भविष्यत् तीनों ही कालों में दृष्ट हेतुओं और चिह्नों को देखकर निष्पन्न होने वाली अनुकूल स्थितियाँ ज्ञात होती हैं, उसी प्रकार विपरीत दृष्ट साधर्म्य से प्रतिकूल स्थितियों का अनुमान होता है।

प्रस्तुत सूत्र में वर्षा न होने का सूचन करने वाले विपरीत हेतुओं का वर्णन है।

ज्योतिष शास्त्र के अनुसार आग्नेय मंडल तथा वायव्य मंडल में होने वाले उत्पातों को देखकर वर्षा न होने का अनुमान किये जाने का उल्लेख है।

आग्नेय मंडल में - विशाखा, भरणी, पुष्य, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाभाद्रपदा, मघा तथा कृत्तिका का समावेश है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वायव्य मंडल के अन्तर्गत चित्रा, हस्त, अश्विनी, स्वाति, मार्गशीर्ष, पुनर्वसु एवं उत्तराफाल्गुनी समाविष्ट हैं।

उपमान प्रमाण

से किं तं ओवम्मे?

ओवम्मे दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - साहम्मोवणीए १ वेहम्मोवणीए य २।

भावार्थ - उपमान प्रमाण कितने प्रकार का है?

यह दो प्रकार का कहा गया है - १. साधर्म्योपनीत २. वैधर्म्योपनीत।

साधर्म्योपनीत उपमान

से किं तं साहम्मोवणीए?

साहसम्मोवणीए तिविहे पण्णत्ते। तंजहा - किंचिसाहम्मोवणीए १ पायसाहम्मोवणी २ सव्वसाहम्मोवणीए ३।

भावार्थ - साधर्म्योपनीत उपमान कितने प्रकार का कहा गया है?

साधर्म्योपनीत उपमान तीन प्रकार का बतलाया गया है - १. किंचित् साधर्म्योपनीत २. प्रायः साधर्म्योपनीत तथा ३. सर्वसाधर्म्योपनीत।

विवेचन - इस सूत्र में किए गए साधर्म्य के भेद तरतमता के आधार पर हैं। किंचित् साधर्म्य का अभिप्राय अल्पांशतः सदृशता या समानता है। प्रायः साधर्म्य का आधार अधिकांशतः साम्य है तथा सर्वसाधर्म्य का आधार सर्वांशतः समानता है।

अधिक, अधिकतर, अधिकतम - यह त्रिविध तारतम्य है। जिसे अंग्रेजी व्याकरण में Possitive, Comparative & Superlative कहा जाता है। जैसे Good, Better & Best.

साधर्म्य का विवेचन उपमान, उपमेय, समान धर्म और वाचकपद के आधार पर किया जाता है। जिसको उपमित किया जाता है, उसे उपमेय कहा जाता है, जिस द्वारा उपमित किया जाता है, उसे उपमान कहा जाता है। दोनों में जो सादृश्य प्राप्त होता है, उसे साधारण धर्म कहा जाता है। जिस पद से यह सूचित होता है, उसे वाचक पद कहा जाता है। साहित्यशास्त्र में उपमा संज्ञक अर्थालंकार में उन्हें निरूपित किया गया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

किसी वस्तु के वैशिष्ट्य का यथार्थ बोध प्राप्त कराने के लिए तत्सदृश वस्तु द्वारा प्रतिपादित किए जाने की विशेष परम्परा रही है।

साहित्य शास्त्र की तरह प्रमाण शास्त्र में भी उपमान को प्रमाण के रूप में स्वीकार किया गया है। विशेषतः मीमांसा दर्शन में इसका उपपादन हुआ है।

से किं तं किंचिसाहम्मोवणीए?

किंचिसाहम्मोवणीए - जहा मंदरो तहा सरिसवो, जहा सरिसवो तहा मंदरो, जहा समुद्दो तहा गोप्पयं, जहा गोप्पयं तहा समुद्दो, जहा आइच्चो तहा खज्जोओ, जहा खज्जोओ तहा आइच्चो, जहा चंदो तहा कुमुदो, जहा कुमुदो तहा चंदो। सेत्तं किंचिसाहम्मोवणीए।

शब्दार्थ - **मंदरो** - मंदर पर्वत, **गोप्पयं** - गोष्पद (जल से भरा गाय के खुर का निशान), **आइच्चो** - आदित्य (सूर्य), **खज्जोओ** - खद्योत - जुगनू, **कुमुदो** - कुमुद पुष्प।

भावार्थ - किंचित् साधर्म्योपनीत उपमान का क्या स्वरूप है?

जैसा मंदर पर्वत है, वैसा ही सरसों (सर्षप) है एवं जैसा सर्षप है वैसा ही मंदर पर्वत है। जैसा समुद्र है, वैसा ही गोष्पद है और जैसा गोष्पद है, वैसा ही समुद्र है। जैसा आदित्य है, वैसा ही खद्योत है और जैसा खद्योत है, वैसा ही आदित्य है। जैसा चन्द्रमा है, वैसा ही कुमुद पुष्प है और जैसा कुमुद पुष्प है, वैसा ही चन्द्रमा है।

यह किंचित्साधर्म्योपनीत उपमान का स्वरूप है।

से किं तं पायसाहम्मोवणीए?

पायसाहम्मोवणीए - जहा गो तहा गवओ, जहा गवओ तहा गो। सेत्तं पायसाहम्मोवणीए।

भावार्थ - प्रायः साधर्म्योपनीत का क्या स्वरूप है?

जैसी गाय है, वैसा ही गवय है एवं जैसा गवय है, वैसी ही गाय है।

यह प्रायः साधर्म्योपनीत का निरूपण है।

से किं तं सव्वसाहम्मोवणीए?

सव्वसाहम्मे ओवम्मे णत्थि, तहावि तेणेव तस्स ओवम्मं कीरइ, जहा अरहंतेहिं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अरहंतसरिसं कयं, चक्कवट्टिणा चक्कवट्टिसरिसं कयं, बलदेवेण बलदेवसरिसं कयं, वासुदेवेण वासुदेवसरिसं कयं, साहुणा साहुसरिसं कयं। सेत्तं सव्वसाहम्मे। सेत्तं साहम्मोवणीए।

शब्दार्थ - कयं - कृतं - किया, **ओवम्मं** - उपमा।

भावार्थ - सर्वसाधर्म्योपनीत का क्या स्वरूप है?

सर्वसाधर्म्य में उपमा नहीं होती तथापि उसी से (उपमान से) उसको (उपमेय को) उपमित किया जाता है (उपमान और उपमेय एक हो जाते हैं)। जैसे - अर्हन्त (तीर्थंकर) द्वारा अर्हन्त जैसा, चक्रवर्ती द्वारा चक्रवर्ती के समान, बलदेव द्वारा बलदेव जैसा, वासुदेव द्वारा वासुदेव जैसा एवं साधु द्वारा साधु के सदृश किया गया।

यह सर्वसाधर्म्योपनीत का विवेचन है।

इस प्रकार साधर्म्योपनीत का निरूपण परिसमाप्त होता है।

विवेचन - साधर्म्योपनीत अनुमान में आए तीन भेदों का स्पष्टीकरण इस प्रकार है -

जैसा पहले कहा गया है, किंचित्साधर्म्य में प्रायः विसदृशता होती है। सदृशता अत्यंत अल्प होती है। यहाँ मेरु और सरसों का उदाहरण दिया गया है, उसका आशय यह है कि मेरु पर्वत और सरसों का दाना आकार, प्रकार आदि में मेरु पर्वत से सर्वथा भिन्न है। ऐसा होने के बावजूद मूर्त्तत्व की दृष्टि से एवं रूप, रस, गंध एवं स्पर्शवत्त्व की दृष्टि से उसमें किंचित् सादृश्य है। क्योंकि दोनों ही पौद्गलिक है।

इसी तरह सूर्य और खद्योत में केवल प्रकाशवत्ता का यत्किंचित् साम्य है।

प्रायः साधर्म्योपनीत में गाय और गवय का उदाहरण दिया गया है। **'गो सदृशः गवयः'** ऐसा प्रचलित है। गवय को नीलगाय या रोझ भी कहा जाता है। खुर, ककुद, शृंग आदि की दृष्टि से गाय और गवय में समानता है। केवल सासना - गल कम्बल, जो गाय में प्राप्त है, वह उसमें नहीं होता। इसके अलावा गवय दुधारु पशु नहीं है, पालतू नहीं है।

सर्वसाधर्म्योपनीत अनुमान में उपमान और उपमेय - जो सर्वथा भिन्न होते हैं, एक हो जाते हैं। अर्थात् जहाँ वर्ण्य विषय अपनी विशेषताओं के कारण इतना विलक्षण होता है कि उसके सदृश अन्य की प्राप्ति दुर्लभ हो जाती है। अतएव उपमेय के अनुरूप उपमान अनुपलब्ध होने से उपमेय को ही उपमान के रूप में वर्णित किया जाता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

साहित्य शास्त्र में इसे अर्थालंकारों के अन्तर्गत अनन्वय अलंकार की संज्ञा दी गई है।

सूत्र में अर्हन्त को अर्हन्त के सदृश, चक्रवर्ती को चक्रवर्ती के सदृश आदि जो कहा गया है, उसका यही तात्पर्य है। अर्हत् वह पद है, जहाँ ज्ञानावरणीय आदि कर्मों का सर्वथा क्षय होने से सर्वज्ञत्व तथा जिन नाम कर्म के उदय से त्रैलोक्य पूज्यता की प्राप्ति होती है, वैसी प्राप्ति तीर्थंकर के सिवाय अन्य किसी को नहीं होती है। अतः उपमा के लिए अर्हत् को ही लिया जाता है।

लौकिक वैभव, सामर्थ्य, पराक्रम, शक्ति आदि की दृष्टि से चक्रवर्ती का जगत् में सर्वाधिक महत्त्व है। इनके तुल्य अन्य पुरुष नहीं होता। चक्रवर्ती, चक्रवर्ती के तुल्य ही होता है। यही तथ्य अन्य उदाहरणों पर लागू होता है।

अनन्वय अलंकार का साहित्य शास्त्र में निम्न उदाहरण दिया गया है -

गगनं गगनाकारं सागरः सागरोपमः।

रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव॥

अनंत आकाश अनंत आकाश से ही तुलनीय है। राम और रावण का युद्ध जितना विकराल और दुर्घर्ष हुआ, वह उसी से तुलनीय है। अन्य किसी द्वन्द्व युद्ध से नहीं। क्योंकि दोनों की पराक्रमशीलता अपनी-अपनी कोटि की अद्वितीय थी।

वैधर्म्योपनीत उपमान प्रमाण

से किं तं वेहम्मोवणीए?

वेहम्मोवणीए तिविहे पण्णत्ते। तंजहा - किंचिवेहम्मे १ पायवेहम्मे २ सव्ववेहम्मे ३।

शब्दार्थ - **वेहम्मोवणीए** - वैधर्म्योपनीत।

भावार्थ - वैधर्म्योपनीत उपमान प्रमाण कितने प्रकार का बतलाया गया है?

वैधर्म्योपनीत उपमान प्रमाण तीन प्रकार का बतलाया गया है, यथा -

१. किंचित् वैधर्म्य २. प्रायः वैधर्म्य और ३. सर्व वैधर्म्य।

से किं तं किंचिवेहम्मे?

किंचिवेहम्मे - जहा सामलेरो ण तहा बाहुलेरो, जहा बाहुलेरो ण तहा सामलेरो। सेत्तं किंचिवेहम्मे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ - सामलेरो - शाबलेय - चितकबरी गाय का बछड़ा, **बाहुलेर** - बाहुलेय - काली गाय का बछड़ा।

भावार्थ - किंचित् वैधर्म्य का क्या स्वरूप है?

जैसा चितकबरी गाय का बछड़ा होता है, वैसा काली गाय का बछड़ा नहीं होता है तथा जैसा काली गाय का बछड़ा होता है, वैसा चितकबरी गाय का बछड़ा नहीं होता है।

से किं तं पायवेहम्मे?

पायवेहम्मे - जहा वायसो ण तहा पायसो, जहा पायसो ण तहा वायसो। सेत्तं पायवेहम्मे।

शब्दार्थ - वायसो - कौआ, **पायसो** - खीर।

भावार्थ - प्रायःवैधर्म्य का क्या स्वरूप है?

जैसा कौआ होता है, वैसी पायस (खीर) नहीं होती है तथा जैसी पायस होती है, वैसा वायस नहीं होता है।

यह प्रायःवैधर्म्य का स्वरूप है।

से किं तं सव्ववेहम्मे?

सव्ववेहम्मे ओवम्मे णत्थि, तहावि तेणेव तस्स ओवम्मं कीरइ, जहा णीएणं णीयसरिसं कयं, दासेणं दाससरिसं कयं, काकेणं काकसरिसं कयं, साणेणं साणसरिसं कयं, पाणेणं पाणसरिसं कयं। सेत्तं सव्ववेहम्मे। सेत्तं वेहम्मोवणीए। सेत्तं ओवम्मे।

शब्दार्थ - णीएणं - नीच ने, **दासेणं** - दास ने, **काकेणं** - कौवे ने, **साणेणं** - श्वान - कुत्ते ने, **पाणेणं** - चांडाल ने।

भावार्थ - सर्व वैधर्म्य का क्या स्वरूप है?

सर्व वैधर्म्य में उपमा नहीं दी जा सकती तथापि उससे उसको उपमित किया जाता है। जैसे - नीच ने नीच के समान, दास ने दास के सदृश, कौवे ने कौवे के समान, कुत्ते ने कुत्ते के सदृश और चांडाल ने चांडाल के समान कार्य किया।

यह सर्ववैधर्म्योपनीत का विवेचन है।

इस प्रकार वैधर्म्योपनीत उपमान प्रमाण का निरूपण परिसमाप्त होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - वैधर्म्य शब्द विधर्म से बना है। **'विगतो धर्मोयस्मात् सः विधर्मः, विधर्मस्य भावः वैधर्म्यम्'** - जिसमें धर्म या गुण सादृश्य प्राप्त नहीं होता, उसे विधर्म कहा जाता है। विधर्म का ही भाववाचक वैधर्म्य है। जैसे साधर्म्य के आधार पर अनुमान किया जाता है, उसी प्रकार वैधर्म्य के आधार पर भी अनुमान करने की अपनी विधा है। साधर्म्य द्वारा स्वीकरण होता है, वैधर्म्य द्वारा अपाकरण होता है। उस अपाकरण के माध्यम से तत्प्रतिकूल का स्वीकरण होता है।

यहाँ उसके तीन भेदों की चर्चा की गई है।

किंचित्वैधर्म्य वह है, जिसमें सामान्यतः समानता हो, कुछ अन्तर हो। इसमें चितकबरी और काली गाय के बछड़े लगभग सदृश होते हैं, किन्तु मातृभेद से उनमें भिन्नता है।

प्रायःवैधर्म्य वह है, जिसमें अधिकांशतः विधर्मता या असदृशता हो। यहाँ जो वायस और पायस के उदाहरण दिए गए हैं, वे शब्दगत वैधर्म्य के सूचक हैं, जो ध्वनि में किंचित् भिन्न लगते हैं किन्तु अर्थ की दृष्टि से वे बहुत भिन्न हैं क्योंकि प्रथम कौवे का तथा द्वितीय खीर का वाचक है। इनमें सर्वथा वैधर्म्य इसलिए नहीं कहा गया क्योंकि प्रथम अक्षरों के अलावा ('वा' और 'पा') इनमें साम्य है।

सर्वथा वैधर्म्य वह है, जिसमें किसी भी प्रकार की सदृशता या सजातीयता न हो, वह सर्ववैधर्म्योपनीत होता है।

इसमें जो उदाहरण दिए गए हैं, वे विशेष रूप से विचारणीय है। जैसे - किसी कुत्ते ने अत्यंत कलुषित, निर्दय कार्य किया, किसी छोटे से कोमलकाय शिशु को बुरी तरह क्षत-विक्षत कर डाला। उसे देखकर यह कहा जाना कि कुत्ते ने कुत्ते जैसा ही कार्य किया, अर्थात् यह कार्य इतना निन्द्य, निर्दयता पूर्ण है, जिसे किसी मानव द्वारा किए जाने का तो प्रसंग ही नहीं आता। (यह उस कार्य की सर्वथा अकरणीयता, निम्नता, परिहेयता को व्यक्त करता है) इस प्रकार सर्वथा वैपरीत्य के कारण, अन्यों से भिन्न होने के कारण यह सर्वथा वैधर्म्य के अन्तर्गत आता है।

आगम प्रमाण

से किं तं आगमे?

आगमे दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - लोइए य १ लोउत्तरिए य १।

भावार्थ - आगम प्रमाण के कितने प्रकार हैं?

आगम प्रमाण दो प्रकार के कहे गए हैं - १. लौकिक तथा २. लोकोत्तरिक।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से किं तं लोइए?

लोइए जं णं इमं अण्णाणिएहिं मिच्छादिट्ठिएहिं सच्छंदबुद्धिमइविगप्पियं, तंजहा - भारहं, रामायणं जाव चत्तारि वेया संगोवंगा। सेत्तं लोइए आगमे।

शब्दार्थ - **अण्णाणिएहिं** - अज्ञानियों द्वारा, **मिच्छादिट्ठिएहिं** - मिथ्यादृष्टियों द्वारा, **सच्छंदबुद्धिमइविगप्पियं** - स्वच्छंद बुद्धि एवं मान्यता द्वारा जो विकल्पित - विरचित हो, **भारहं** - भारत (महाभारत), **वेया** - वेद, **संगोवंगा** - सांगोपांग - अंगोपांग सहित।

भावार्थ - लौकिक का क्या स्वरूप है?

जो अज्ञानियों, मिथ्यादृष्टियों द्वारा तथा स्वच्छंद बुद्धि एवं मान्यता से विरचित हैं, वे शास्त्र लौकिक हैं, जैसे महाभारत, रामायण यावत् अंगोपांग सहित चारों वेद।

यह लौकिक आगम प्रमाण का स्वरूप है।

विवेचन - यहाँ लौकिक आगम के रूप में वेदों का जो उल्लेख हुआ है, उसे संबंध में ज्ञातव्य है, ऋग्वेद यजुर्वेद, सामवेद व अथर्ववेद - ये चार वेद हैं। वेदों के रहस्य एवं सार तत्त्व का बोध - जिन शास्त्रों के सहारे होता है, वे वेदांग - वेद के अंग कहे गए हैं, जो संख्या में छह हैं। उनके संबंध में पाणिनीय शिक्षा (४१-४२) में कहा गया है-

छन्दः पादौतु वेदस्य हस्तौकल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते॥
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य, मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात् सांगमधीत्यैव, ब्रह्मलोके महीयते॥

वेद पुरुष की परिकल्पना की गई है, तदनुसार इन श्लोकों में वेद के अंगों का वर्णन है। छन्द वेद के चरण हैं, कल्प उसके हाथ हैं। ज्योतिष उसके नेत्र हैं। निरुक्त उसके कर्ण - कान कहे गए हैं। शिक्षा उसकी नासिका है, व्याकरण को उसके मुख के रूप में निरूपित किया गया है।

छन्द, ज्योतिष और व्याकरण का अर्थ स्पष्ट है। वैदिक कर्मकाण्ड, अनुष्ठान पद्धति, याज्ञिक विधि-विधानादि को कल्प कहा गया है।

ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, उदात्त, अनुदात्त, स्वरित इत्यादि स्वर तथा व्यंजन विषयक उच्चारण विज्ञान शिक्षा के रूप में अभिहित हुआ है।

निरुक्त का तात्पर्य व्युत्पत्ति शास्त्र है, जिसमें शब्दों की वैविध्यपूर्ण व्युत्पत्तियों का ज्ञान होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इनके भलीभांति अध्ययन के बिना वेदों का यथार्थ बोध हो नहीं सकता।

चारों वेदों के चार उपवेद माने गए हैं जो क्रमशः आयुर्वेद, गान्धर्ववेद, धनुर्वेद व अर्थशास्त्र के रूप में विख्यात हैं। आयुर्वेद चिकित्सा शास्त्र है। गान्धर्ववेद संगीत शास्त्र का बोधक है। धनुर्वेद में शस्त्र विज्ञान का समावेश है। अर्थशास्त्र में राजनीति, अर्थशास्त्र, समाज विज्ञान, शासनाविधि इत्यादि समाविष्ट है।

वेदों के चार उपांग माने गए हैं। कहा गया है -

पुराणन्यायमीमांसाः, धर्मशास्त्रांग मिश्रिताः।
वेदाः स्थानानि विधानां धर्मस्य च चतुर्दश।। (याज्ञवल्क्य स्मृति १-३)

पुराण, न्याय दर्शन, मीमांसा दर्शन एवं धर्मशास्त्र ये चार उपांग है।

चार उपवेद, छह अंग तथा चार उपांग ये मिलकर चौदह विद्यास्थान कहे गए हैं।

वेदों में जिन जटिल और रहस्यपूर्ण विषयों का जो वर्णन है, उसे भलीभांति स्वायत्त करने के लिए इन सबका सम्यक् अध्ययन आवश्यक है। सायण, माधव आदि वेद के भाष्यकारों ने इन्हीं के आधार पर वेदों की व्याख्या की। सुप्रसिद्ध जर्मन विद्वान् मैक्समूलर ने उनका अंग्रेजी में अनुवाद किया है।

से किं तं लोउत्तरिए?

लोउत्तरिए - जं णं इमं अरहंतेहिं भगवंतेहिं उप्पण्णणाणदंसणधरेहिं तीयपच्चुप्पण्ण-मणागयजाणएहिं तिलुक्कवहियमहियपूइएहिं सव्वण्णूहिं सव्वदरिसीहिं पणीयं दुवालसंगं गणिपिडगं, तंजहा - आयारो जाव दिट्ठिवाओ।

शब्दार्थ - **उप्पण्णणाणदंसणरेहिं** - उत्पन्न ज्ञान दर्शन के धारक, **तीयपच्चुप्पण्ण-मणागयजाणएहिं** - भूत, वर्तमान और भविष्य के ज्ञाता, **तिलुक्कवहियमहियपूइएहिं** - तीनों लोकों के (जीवों द्वारा) अवलोकित, वंदित, पूजित, **सव्वण्णूहिं** - सर्वज्ञों द्वारा, **सव्वदरिसीहिं**- सर्वदर्शियों द्वारा, **पणीयं** - प्रणीत, **दुवालसंगं** - द्वादशांग रूप, **गणिपिडगं** - गणिपिटक।

भावार्थ - लोकोत्तरिक आगम का क्या स्वरूप है?

केवलज्ञान दर्शन के धारक, भूत, वर्तमान और भविष्य के ज्ञाता, तीनों लोकों के प्राणियों द्वारा अवलोकित, वंदित, पूजित, सर्वज्ञों, सर्वदर्शियों (तीर्थंकरों) द्वारा प्रणीत द्वादशांग रूप गणिपिटक लोकोत्तरिक आगम हैं। जैसे आचारांग यावत् दृष्टिवाद रूप बारह अंग, आगम हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - जैन दर्शन में तीर्थंकर महापुरुष 'आप्त' कहलाते हैं। जैसा पहले सूचित किया गया है - आप्त पुरुषों का ज्ञान अविसंवादी - सर्वथा विशुद्ध एवं अव्याबाध होता है। पुनश्च, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी तीर्थंकरों द्वारा भाषित होने के कारण आगमिक ज्ञान असंदिग्ध है, सर्वथा प्रमाणिक है। अन्य छद्मस्थों का ज्ञान पूर्ण, सार्वदेशिक या सार्वभौमिक नहीं होता। अपितु मन-इन्द्रिय सापेक्ष होता है। अतः इस ज्ञान में प्रामाण्य की व्याप्ति नहीं होती अर्थात् उसको पूर्णतः प्रामाणिक मानना संगत नहीं है। यहाँ यह तथ्य भी ज्ञातव्य है - तीर्थंकर की वाणी को आधार मानकर रचित ग्रन्थ, जो वीतराग प्ररूपित तत्त्व के संपोषक हों, आगम की श्रेणी में ही आते हैं।

आगम विशिष्ट ज्ञान के सूचक हैं, जो प्रत्यक्ष या तत्सदृश बोध से जुड़ा है। दूसरे शब्दों में यों कहा जा सकता है - आवरक हेतुओं या कर्मों के अपगम से जिनका ज्ञान सर्वथा निर्मल एवं शुद्ध हो गया, अविसंवादी हो गया, ऐसे आप्त पुरुषों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों का संकलन आगम है✱।

यहाँ आगमों को गणिपिटक कहा गया है। गण के नायक आचार्य 'गणी' कहे जाते हैं। आगम रूप निधि की पेटिका उनके अधिकार में रहती थी। क्योंकि उपाध्याय तो केवल शाब्दिक वाचना देते थे। आगमों की अर्थवाचना देने के अधिकारी आचार्य रहे हैं। आगम रूप निधि के लिए पिटक शब्द का प्रयोग हुआ है, उससे प्रकट होता है, लिपिबद्ध आगम काष्ठनिर्मित पेटिका में (सुरक्षा की दृष्टि से) रखे जाते थे। तथागत बुद्ध द्वारा भाषित आगमों के तो मूल नाम के साथ ही पिटक शब्द जोड़ दिया गया, जो विनयपिटक, सुत्तपिटक और अभिधम्मपिटक के रूप में सूचित होता है।

अहवा आगमे तिविहे पण्णत्ते। तंजहा - सुत्तागमे १ अत्थागमे २ तदुभयागमे ३।

अहवा आगमे तिविहे पण्णत्ते। तंजहा - अत्तागमे १ अणंतरागमे २ परंपरागमे ३। तित्थगराणं अत्थस्स अत्तागमे, गणहराणं सुत्तस्स अत्तागमे, अत्थस्स अणंतरागमे, गणहरसीसाणं सुत्तस्स अणंतरागमे, अत्थस्स परंपरागमे, तेण परं सुत्तस्स वि अत्थस्स वि णो अत्तागमे, णो अणंतरागमे, परंपरागमे। सेत्तं लोगुत्तरिए। सेत्तं आगमे। सेत्तं णाणगुणप्पमाणे।

✱ आप्तवचनादाविर्भूतमर्थसंवेदनमागमः।

उपचारादाप्तवचनं च॥ - प्रमाणनय तत्त्वालोक ४. १, २।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ - **तित्थगराणं** - तीर्थंकरों के, **अत्थस्स** - अर्थ के, **सुत्तस्स** - सूत्र का, **गणहरसीसाणं** - गणधरों के शिष्यों के लिए, **अत्तागमे** - स्वरचित आगम, **अणंतरागमे** - रचनाकार से सीधे प्राप्त आगम, **परंपरागमे** - रचनाकार के शिष्यों से प्राप्त आगम, **णाणगुणप्पमाणे** - ज्ञान गुण प्रमाण।

भावार्थ - अथवा आगम तीन प्रकार के निरूपित हुए हैं - १. सूत्रागम २. अर्थागम तथा ३. तदुभयागम।

पुनश्च इस भांति आगम (अन्य प्रकार से) तीन प्रकार के प्रज्ञप्त हुए हैं - १. आत्मागम २. अनंतरागम तथा ३. परंपरागम।

अर्थरूप आगम तीर्थंकरों के लिए आत्मागम हैं, सूत्र रूप आगम गणधरों के लिए आत्मागम हैं और अर्थ रूप आगम अनंतरागम है। गणधरों के शिष्यों के लिए सूत्रज्ञान अनंतरागम है। गणधरों के शिष्यों के लिए सूत्रज्ञान अनंतरागम और अर्थज्ञान परंपरागत है।

तद्व्यतिरिक्त (गणधरों के प्रशिष्यों आदि के लिए) सूत्र एवं अर्थ रूप आगम न आत्मागम हैं, न अंतरागम हैं वरन् परंपरागम हैं।

यह आगम प्रमाण रूप लोकोत्तरिक आगम का स्वरूप है।

यह ज्ञान गुण प्रमाण का विवेचन है।

विवेचन - जैन परम्परा में यह स्वीकृत है कि आगमगत ज्ञान का अर्थरूप में सर्वज्ञ सर्वदर्शी, तीर्थंकर उपदेश करते हैं। इसलिए अर्थरूप में आगम आत्मगत या आत्मागम हैं। तीर्थंकरों द्वारा संप्रतिष्ठापित धर्मसंघ के गणों का संचालन करने वाले गणधर (प्रमुख शिष्य) अर्थ रूप में उपदिष्यमान ज्ञान को सूत्र रूप में संकलित करते हैं, इसलिए वह अर्थज्ञान उनके लिए आत्मागम नहीं हैं, अनंतरागम है। किन्तु सूत्र रूप में संकलित ज्ञान उनके लिए आत्मागम है। क्योंकि वे सूत्रों के संग्रथयिता हैं। गणधरों के शिष्यों के लिए अर्थ रूप आगम परंपरागम तथा सूत्र रूप आगम अनंतरागम है क्योंकि उन्हें गणधरों के पश्चात् प्राप्त होता है। गणधरों के साक्षात् शिष्यों के अनंतर समस्त अध्येताओं शिष्यों के लिए समस्त अर्थ रूप एवं सूत्र रूप आगम परंपरागम हैं। क्योंकि उन्हें अर्हतों एवं गणधरों से सीधा प्राप्त नहीं है, गुरु परम्परा से प्राप्त है।

आवश्यक निर्युक्ति (गाथा-९२) में उल्लेख हुआ है -

अत्थं भासइ अरहा, सुत्तं गंथंति गणहरा णिउणं।
सासणस्स हियट्ठाए तओ सुत्तं पवत्तेइ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अर्हत् अर्थ भाषित करते हैं। गणधर धर्मशासन या धर्मसंघ के हितार्थ निपुणता पूर्वक सूत्र रूप में उसका ग्रथन करते हैं। यों सूत्र का प्रवर्त्तन होता है।

दर्शनगुण प्रमाण

से किं तं दंसणगुणप्पमाणे?

दंसणगुणप्पमाणे चउव्विहे पण्णत्ते। तंजहा - चक्खुदंसणगुणप्पमाणे १ अचक्खुदंसणगुणप्पमाणे २ ओहिदंसणगुणप्पमाणे ३ केवलदंसणगुणप्पमाणे ४। चक्खुदंसणं चक्खुदंसणिस्स घडपडकडरहाइएसु दव्वेसु, अचक्खुदंसणं अचक्खु-दंसणिस्स आयभावे, ओहिदंसणं ओहिदंसणिस्स सव्वरूविदव्वेसु ण पुण सव्वपज्जवेसु, केवलदंसणं केवलदंसणिस्स सव्वदव्वेसु य सव्वपज्जवेसु य। सेत्तं दंसणगुणप्पमाणे।

शब्दार्थ - **घडपडकडरहाइएसु** - घट-पट-कट-रथादिषु - घड़ा, वस्त्र, कड़ा, रथ आदि में, **आयभावे** - आत्मभाव में, **सव्वरूविदव्वेसु** - सभी रूपी द्रव्यों में, **सव्वपज्जवेसु** - सभी पर्यायों में।

भावार्थ - दर्शनगुणप्रमाण का क्या स्वरूप है?

दर्शनगुणप्रमाण चार प्रकार का परिज्ञापित हुआ है -

१. चक्षुदर्शनगुणप्रमाण २. अचक्षुदर्शनगुणप्रमाण ३. अवधिदर्शनगुणप्रमाण ४. केवलदर्शनगुणप्रमाण।

चक्षुदर्शनी का चक्षुदर्शन घट-पट-कट-रथ आदि द्रव्यों में होता है।

अचक्षुदर्शनी का अचक्षुदर्शन आत्मभाव में होता है।

अवधिदर्शनी का अवधिदर्शन सभी रूपी द्रव्यों में होता है किन्तु सभी पर्यायों में नहीं होता।

केवलदर्शनी का केवलदर्शन सभी द्रव्यों में, सभी पर्यायों में होता है।

यह दर्शनगुणप्रमाण का निरूपण है।

विवेचन - दर्शन शब्द जैन परंपरा में दो अर्थों का सूचक है। दर्शन का एक अर्थ दृष्टि, आस्था या विश्वास है। वह सम्यक् व मिथ्या दो प्रकार का होता है। यहाँ दर्शन शब्द उस अर्थ में गृहीत नहीं हुआ है। यहाँ वह उपयोग के अर्थ में गृहीत है। उपयोग दो प्रकार का है - दर्शनोपयोग एवं ज्ञानोपयोग। उपयोग का अभिप्राय आत्मा के बोध या ज्ञानमूलक उपक्रम से है। उपयोग अनाकार एवं साकार दो प्रकार का होता है। दर्शन को अनाकार उपयोग कहा जाता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'दृश्यते अनेन इति दर्शनम्' - किसी पदार्थ के संबंध में जब एकाएक दृष्टि पड़ती है, तब उसका अनाकार - वैशिष्ट्य रहित सामान्य बोध होता है।

किसी वस्तु का बोध प्राप्त करने के दो मार्ग हैं - एक मार्ग ऐक्य - एकतामूलक है तथा दूसरा मार्ग अनैक्य - अनेकतामूलक है। एकतामूलक का आशय किसी वस्तु को सामष्टिक रूप में या एक रूप में जानना है। यह सामान्यग्राही बोध है। इसमें ज्ञेय वस्तु का सामान्य या साधारण रूप स्वायत्त होता है। जब उसी वस्तु का भिन्न-भिन्न रूप में उसकी विशेषताओं के साथ बोध करते हैं तब **'दृश्यते'** का स्थान **'ज्ञायते'** ले लेता है, उसे ज्ञान कहा जाता है। भिन्न-भिन्न या विशिष्ट स्थितियों को परिज्ञात किए जाने के कारण इसे साकार - आकारयुक्त-भेदयुक्त - वैशिष्ट्ययुक्त कहा जाता है।

जिस प्रमाण का संबंध दर्शन से है, अथवा जो दर्शन द्वारा प्रमाणित या सिद्ध किया जाता है, वह दर्शन प्रमाण है।

चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन भेद आदि मूल पाठ में स्पष्ट हैं।

चारित्रगुण प्रमाण

से किं तं चरित्तगुणप्पमाणे?

चरित्तगुणप्पमाणे पंचविहे पण्णत्ते। तंजहा - सामाइयचरित्तगुणप्पमाणे १ छेओवट्ठावणचरित्तगुणप्पमाणे २ परिहारविसुद्धियचरित्तगुणप्पमाणे ३ सुहुमसंपराय-चरित्तगुणप्पमाणे४ अहक्खायचरित्तगुणप्पमाणे ५।

सामाइयचरित्तगुणप्पमाणे दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - इत्तरिए य १ आवकहिए य २।

छेओवट्ठावणचरित्तगुणप्पमाणे दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - साइयारे य १ णिरइयारे य २।

परिहारविसुद्धियचरित्तगुणप्पमाणे दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - णिव्विसमाणए य १ णिव्विट्ठकाइए य २।

सुहुमसंपराय-चरित्तगुणप्पमाणे दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - संकिलिस्समाणए य १

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विसुज्झमाणए य २। अहवा सुहुमसंपरायचरित्तगुणप्पमाणे दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - पडिवाई य १ अपडिवाई य २।

अहक्खायचरित्तगुणप्पमाणे दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - पडिवाई य १ अपडिवाई य २। अहवा अहक्खायचरित्तगुणप्पमाणे दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - छउमत्थिए य १ केवलिए य २। सेत्तं चरित्तगुणप्पमाणे। सेत्तं जीवगुणप्पमाणे। सेत्तं गुणप्पमाणे।

शब्दार्थ - सामाइयचरित्तगुणप्पमाणे - सामायिकचारित्रगुणप्रमाण, **छेओवट्ठावण** - छेदोपस्थापनीय, **सुहुमसंपराय** - सूक्ष्म संपराय, **इत्तरिए** - इत्वरिक, **आवकहिए** - यावत्कथिक, **साइयारे** - सातिचार, **णिरइयारे** - निरतिचार, **णिव्विसमाणए** - निर्विश्यमानक, **णिव्विट्ठकाइए**- निर्विष्टकायिक, **छउमत्थिए** - छाद्मस्थिक।

भावार्थ - चारित्रगुणप्रमाण का क्या स्वरूप है?

चारित्रगुणप्रमाण पाँच प्रकार का परिज्ञापित हुआ है - १. सामायिकचारित्रगुणप्रमाण २. छेदोपस्थापनीय चारित्रगुणप्रमाण ३. परिहारविशुद्धि चारित्रगुणप्रमाण ४. सूक्ष्मसम्पराय चारित्रगुणप्रमाण तथा ५. यथाख्यात चारित्रगुणप्रमाण।

सामायिकचारित्रगुणप्रमाण इत्वरिक एवं यावत्कथिक के रूप में दो प्रकार का परिज्ञापित हुआ है। छेदोपस्थापनीय चारित्रगुणप्रमाण के सातिचार और निरतिचार के रूप में दो भेद हैं। परिहारविशुद्धि चारित्रगुणप्रमाण दो प्रकार का प्रज्ञप्त हुआ है - १. निर्विश्यमानक और २. निर्विष्टकायिक। सूक्ष्मसंपराय चारित्रगुणप्रमाण संक्लिश्यमानक और विशुद्ध्यमानक के रूप में दो प्रकार का कहा गया है। अथवा सूक्ष्मसंपराय चारित्रगुणप्रमाण प्रतिपाती और अप्रतिपाती के रूप में दो प्रकार का कहा गया है। यथाख्यात चारित्रगुणप्रमाण प्रतिपाती और अप्रतिपाती के रूप में दो प्रकार का प्रतिपादित हुआ है अथवा यथाख्यात चारित्रगुणप्रमाण दो प्रकार का परिज्ञापित हुआ है - १. छाद्मस्थिक और २. केवलिक।

यह चारित्रगुणप्रमाण का स्वरूप है।

इस प्रकार जीव गुण प्रमाण और गुण प्रमाण विषयक विवेचन परिसमाप्त होता है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में चारित्र प्रमाण का वर्णन है। **'स्वभावे चरणं - रमणं, तन्मयत्वं - चारित्रं'** जीव का अपने स्वभाव में चरणशील, रमणशील या तन्मय रहना चारित्र है। जब जीव स्वभाव में स्थित होता है तो परभावों का सहज रूप में त्याग हो जाता है। चारित्र विधिमूलक (Positive) विधा है। उसी का निषेधमूलक रूप विभावों का या समस्त सावद्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

योगों का त्याग है। यही कारण है कि जब साधक चारित्राराधना में या संयम में दीक्षित होता है तो वह **'सव्वं सावज्जं जोगं, पच्चक्खामि - सर्व सावद्यं योगं प्रत्याख्यामि'** - अर्थात् मैं समस्त सावद्य योगों का परित्याग करता हूँ। यह भाषा परभाव से, स्वभाव में आने का आख्यान है।

चारित्रमोहनीय के उपशम, क्षय व क्षयोपशम से संपद्यमान आत्मविशुद्धि की दृष्टि से चारित्र एक ही प्रकार का है। किंतु जब विभिन्न अपेक्षाओं से चारित्र पर चिंतन-विवेचन किया जाता है तब उसके अनेक भेद हो जाते हैं। यह भेद विवक्षा चारित्र के स्वरूप के विशुद्धिकरण, स्पष्टीकरण की दृष्टि से वास्तव में उपयोगी है।

विविध दृष्टिकोणों से किए गए चारित्र के विभिन्न भेदों का संक्षेप में सामायिक चारित्र, छेदोपस्थापनीय चारित्र, परिहारविशुद्धि चारित्र, सूक्ष्मसंपराय चारित्र एवं यथाख्यात चारित्र - इन पाँच भेदों में समावेश हो जाता है। इनका संक्षेप में विश्लेषण इस प्रकार है -

१. सामायिक चारित्र - व्याकरण की दृष्टि से सम+आय=समाय, के आगे 'इक' प्रत्यय लगाने से 'सामायिक' शब्द बनता है। यह व्याकरण की तद्धित प्रक्रिया के अन्तर्गत समाविष्ट है। सम का अर्थ समत्व, समता, आत्मस्वरूप या आत्म-स्वभाव है। आय का अर्थ प्राप्ति है। जिस साधना द्वारा विभावगत आत्मा स्वभाव में आती है - कार्मिक आवरणों से आछन्न या कर्मबंधनों से प्रतिबद्ध आत्मा कर्मयुक्त होकर अपना शुद्ध स्वरूप प्राप्त करती है, वह सामायिक है।

जब निषेध रूप (Negative) विवेचन किया जाता है तब विविध रूप में त्याग-प्रत्याख्यान स्वीकार किए जाते हैं, जिनसे आत्म-संश्लिष्ट कर्ममालिन्य अपगत होता जाता है। वह त्याग-प्रत्याख्यानात्मक साधना संवर और निर्जरा के रूप में गतिशील होती है। त्याग-प्रत्याख्यान के साथ-साथ वहाँ स्वाध्याय, ध्यान आदि का भी विशेष रूप से विधान है।

सामायिक साधना का व्यावहारिक रूप पाँच महाव्रतों का मन, वचन, काय द्वारा कृत, कारित, अनुमोदित के रूप में पालन करना है।

सामायिक के इत्वरिक व यावत्कथिक के रूप में दो भेद कहे गए हैं। इत्वरिक - अल्पकालिक का सूचक है, यावत्कथिक - यावत्‌जीवन का परिचायक है। ऐसी मान्यता है कि भरत क्षेत्र एवं ऐरवत क्षेत्र में प्रथम व अंतिम तीर्थंकरों के काल में नवदीक्षित साधु में जब तक महाव्रतों का आरोपण नहीं किया जाता, अर्थात् केवल सर्व सावद्य योग के परित्याग की प्रतिज्ञा दिलाई जाती है, वह चारित्र इत्वरिक कहा जाता है। लोक भाषा में इसे 'छोटी दीक्षा' कहा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जाता है। तदनन्तर कुछ काल के पश्चात् जो अधिकतम छह मास का हो सकता है, नवदीक्षित साधु में प्रतिक्रमणपूर्वक अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह - इन पाँच महाव्रतों का आरोपण किया जाता है अर्थात् नवदीक्षित साधु स्पष्ट रूप में, विशद रूप में - इन्हें स्वीकार करता है, समग्र जीवन पर्यन्त इनके पालन हेतु प्रतिज्ञाबद्ध होता है, जिसे लोक भाषा में 'बड़ी दीक्षा' कहा जाता है।

भरत एवं ऐरवत क्षेत्र के मध्य के बाईस (२२) तीर्थंकरों के - दूसरे से तेईसवें (२३वें) तक के तीर्थंकरों के तीर्थकाल में इत्वरिक चारित्र नहीं होता, यावत्कथिक ही होता है, क्योंकि उनमें दूसरी बार महाव्रतारोपण नहीं किया जाता। वे चातुर्याम धर्म के रूप में संयम का पालन करते हैं। वहाँ ब्रह्मचर्य का अपरिग्रह के रूप में स्वीकार है।

२. छेदोपस्थापनीय चारित्र - छेदोपस्थापनीय में छेद व उपस्थापनीय दोनों का मेल है। "**उपस्थापयितुं योग्यं उपस्थापनीयम्**"। व्याकरण के अनुसार यह 'चाहिए' वाचक 'अनीय' प्रत्यय के योग से बना हुआ शब्द है। इसका तात्पर्य व्रतों की साधक में पुनः स्थापना है।

सातिचार व निरतिचार के रूप में इसके दो भेद हैं। साधुत्व या संयम के मूल गुणों में किसी प्रकार का विघात या छेद (भंग) होने पर जब उसे पुनः दीक्षा जी जाती है, वह सातिचार छेदोपस्थापनीय है। निरतिचार में दोष का कोई स्थान नहीं है। इत्वरिक सामायिक के अनंतर जब कुछ काल बाद उसमें महाव्रतारोपण किया जाता है, उसे दीक्षा दी जाती है, वह निरतिचार छेदोपस्थापनीय है।

३. परिहारविशुद्धि चारित्र - यह साधुओं के एक विशेष प्रकार के सामूहिक तप के आधार पर होता है। परिहार शब्द त्याग-तितिक्षामय विशिष्ट तप का सूचक है, जिस द्वारा चारित्र में विशेष विशुद्धि प्राप्त की जाती है। इसके दो भेद माने गए हैं - १. निर्विश्यमानक और २. निर्विष्टकायिक।

तपोनिरत साधुओं में जो तपोविधि के अनुसार तपश्चरण में संलग्न होते हैं, उनका वह तन्मूलक चारित्र निर्विश्यमानक परिहार विशुद्धि चारित्र है।

जो तपः साधक परिहार विशुद्धि तपःकर्म के अनुसार आराधना कर चुके हों तथा जो बाद में करने वाले हों वे निर्विष्टकायिक कहलाते हैं।

इस तप की आराधना विधि संक्षेप में इस प्रकार है -

इस सामूहिक तप में नौ (९) साधु मिलकर तपस्या करते हैं। वह अठारह माह तक चलती है। ६-६ महीनों के उनके तीन भाग होते हैं। प्रथम छह मास में चार साधु तप की

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आराधना करते हैं तथा चार उनकी सेवा में संलग्न रहते हैं। व्यवस्था को देखने की दृष्टि से एक साधु को कल्पाचार्य मनोनीत किया जाता है। अगले छह मास में वे साधु जो प्रथम छह मास में सेवा करते थे, तप स्वीकार करते हैं और तपस्यानुरत साधु सेवा कार्य करते हैं, कल्पाचार्य वे ही रहते हैं। तृतीय छह मास में वह साधु जो पिछले १२ (बारह) मास तक कल्पाचार्य रहा, वह तपश्चरण करता है और शेष आठ साधुओं में से किसी एक को कल्पाचार्य नियुक्त किया जाता है एवं सात साधु सेवा करते हैं।

इस तप के आराधक मुनि ग्रीष्मकाल में कम से कम एक उपवास, मध्यम दो उपवास तथा उत्कृष्ट रूप में तीन उपवास (तेला) करते हैं। तदनंतर पारणा करते हैं। इस प्रकार यह क्रम चलता रहता है।

शीतकाल में (जघन्यतः) द्विदिवसीय (बेला), (मध्यमतः) त्रिदिवसीय (तेला) एवं (उत्कृष्टतः) चतुर्दिवसीय (चौला) विहित है।

इसी प्रकार वर्षाकाल में (जघन्यतः) त्रिदिवसीय, (मध्यमतः) चतुर्दिवसीय एवं (उत्कृष्टतः) पंचदिवसीय उपवास करणीय है।

४. सूक्ष्मसंपराय चारित्र - संपराय जैन दर्शन का पारिभाषिक शब्द है। इसका अर्थ जगत् या लोक प्रवाह है, जन्म-मरण रूप आवागमन है। संसारपरिभ्रमर्ण के मुख्य हेतु क्रोध, मान, माया एवं लोभ रूप कषाय हैं। कारण का कार्य में उपचार करने से कषाय भी संपराय कहे जाते हैं। वह चारित्र जिसमें केवल संज्वलनात्मक लोभ रूप कषाय सूक्ष्म रूप में विद्यमान रहता है और क्रोध, मान, माया रूप, तीनों कषाय उपशांत या क्षीण हो जाते हैं, उसे सूक्ष्मसंपराय चारित्र कहते हैं।

''कषाय मुक्तिः किल मुक्तिरेव'' - के अनुसार कषायों से सर्वथा विमुक्त हो जाने पर ही मोक्ष या निर्वाण प्राप्त होता है।

सूक्ष्मसंपराय चारित्र के संक्लिश्यमान और विशुद्ध्यमान के रूप में दो भेद निरूपित हुए हैं। क्षपक श्रेणी अथवा उपशम श्रेणी पर आरूढ़ साधक का चारित्र विशुद्ध्यमान कहा जाता है। उपशम श्रेणी से उपशांत मोह गुणस्थान नामक ग्यारहवें गुणस्थान में पहुँच कर वहाँ से गिर जाने पर साधक जब पुनः दशम गुणस्थान में आता है, उस समय उसका सूक्ष्मसंपराय चारित्र संक्लिश्यमान के रूप में अभिहित होता है। क्योंकि उस प्रतिपाति या पतनोन्मुखी दशा में संक्लेश का आधिक्य रहता है, अर्थात् संक्लेश ही वहाँ पतन का कारण है। इसीलिए विशुद्ध्यमान को अप्रतिपाती एवं संक्लिश्यमान को प्रतिपाती - पतनशील भी कहा गया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

५. यथाख्यात चारित्र - यथाख्यात का तात्पर्य यथावत् रूप में या सर्वात्मना चारित्र पालन से है, जिसमें साधक कषाय रहित हो जाता है। इस चारित्र के दो भेद प्रतिपाती और अप्रतिपाती के रूप में माने गए हैं। जिस साधक का मोह उपशांत होता है उसका चारित्र प्रतिपाती तथा जिसका मोह सर्वथा क्षीण हो जाता है, उसका चारित्र अप्रतिपाती कहा जाता है। आश्रयभेद के आधार पर इसके छाद्मस्थिक और केवलिक के रूप में दो भेद अभिहित हुए हैं।

ग्यारहवें तथा बारहवें गुणस्थानवर्ती साधक का चारित्र छाद्मस्थिक तथा त्रयोदश एवं चतुर्दश गुणस्थानवर्ती साधक का चारित्र केवलिक कहा जाता है। यद्यपि एकादश-द्वादश गुणस्थानवर्ती जीव का मोह सर्वथा उपशांत या क्षीण हो जाता है किन्तु ज्ञानावरण आदि शेष तीन घातिकर्म अवशिष्ट रहते हैं। यहाँ प्रयुक्त छद्म शब्द उन्हीं का द्योतक है। वहाँ साधक असर्वज्ञावस्था में रहता है। केवलिक चारित्र में मोह के साथ-साथ अवशिष्ट तीन घाति कर्म भी सर्वांशतः नष्ट हो जाते हैं।

(१४६)

नय प्रमाण

से किं तं णयप्पमाणे?

णयप्पमाणे तिविहे पण्णत्ते। तंजहा - पत्थगदिट्ठंतेणं १ वसहिदिट्ठंतेणं २ पएसदिट्ठंतेणं ३।

भावार्थ - नय प्रमाण कितने प्रकार का है?

नयप्रमाण तीन प्रकार का प्ररूपित हुआ है - १. प्रस्थक के दृष्टांत द्वारा, २. वसति के दृष्टांत द्वारा ३. प्रदेश के दृष्टांत द्वारा।

प्रस्थक दृष्टांत

से किं तं पत्थगदिट्ठंतेणं?

पत्थगदिट्ठंतेणं - से जहाणामए केइ पुरिसे परसुं गहाय अडविसमहुत्तो गच्छेज्जा, तं पासित्ता केइ वएज्जा - 'कहिं भवं गच्छसिं?'

अविसुद्धो णेगमो भवइ - 'पत्थगस्स गच्छामि'।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तं च केइ छिंदमाणं पासित्ता वएज्जा - 'किं भवं छिंदसि?'

विसुद्धो णेगमो भणइ - 'पत्थयं छिंदामि।'

तं च केइ तच्छमाणं पासित्ता वएज्जा - 'किं भवं तच्छसि?'

विसुद्धतराओ णेगमो भणइ - 'पत्थयं तच्छामि'। तं च केइ उक्कीरमाणं पासित्ता वएज्जा - 'किं भवं उक्कीरसि?' विसुद्धतराओ णेगमो भवइ-'पत्थयं उक्कीरामि।' तं च केइ विलिहमाणं पासित्ता वएज्जा-'किं भवं विलिहसि?'

विसुद्धतराओ णेगमो भणइ-'पत्थयं विलिहामि।' एवं विसुद्धतरस्स णेगमस्स णामाउडिओ पत्थओ। एवमेव ववहारस्स वि। संगहस्स चियमियमेज्जसमारूढो पत्थओ। उज्जसुयस्स पत्थओ वि पत्थओ, मेज्जं पि पत्थओ। तिण्हं सद्दणयाणं पत्थयस्स अत्थाहिगारजाणओ जस्स वा वसेणं पत्थओ णिप्फज्जइ। सेत्तं पत्थयदिट्ठंतेणं।

शब्दार्थ - परसुं - कुल्हाड़ा, गहाय - लेकर, अडविसमहुत्तो - वन के सम्मुख, गच्छेज्जा - जाए, केइ - कोई, वएज्जा - कहे, भवं - आप, गच्छसि - जाते हैं, पत्थगस्स- प्रस्थक के लिए - एक सेर मापने का काष्ठ पात्र, छिंदमाणं - काटते हुए, तच्छमाणं - छीलते हुए, उक्कीरमाणं - उकेरते हुए, विलिहमाणं - लेखन, अंकन करते हुए, णामाउडिओ- नामांकित, चियमियमेज्जसमारूढो - संचित पदार्थ का माप बतलाने में प्रयुक्त, वसेणं - वश से - कारण से।

भावार्थ - प्रस्थक का दृष्टांत क्या है?

प्रस्थक का दृष्टांत इस प्रकार है - जैसे कोई अज्ञातनामा पुरुष कुल्हाड़ा लेकर वन की ओर जाए तब उसको देखकर कोई कहे - आप कैसे - किस हेतु जा रहे हैं?

अविशुद्ध नैगमनय के अनुसार वह कहता है - मैं प्रस्थक हेतु जा रहा हूँ।

उसे वृक्ष का छेदन करते हुए देखकर कोई बोले - आप क्या काट रहे हैं?

विशुद्ध नैगम नय के अनुसार कहता है - प्रस्थक को काट रहा हूँ। तब कोई (काष्ठ को) छीलते हुए देखकर कहे - आप क्या छील रहे हो?

वह विशुद्धतर नय के अनुसार कहता है - प्रस्थक को छील रहा हूँ।

काष्ठ को उत्कीर्णित करते हुए देखकर कोई कहे - क्या उत्कीर्णित कर रहे हो?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विशुद्धतर नैगम नय के अनुसार वह कहता है - प्रस्थक को उत्कीर्णित कर रहा हूँ। उस पर लेखांकन करते हुए देख कर कोई कहे - क्या लेखांकन कर रहे हो?

विशुद्धतर नैगमनयानुसार वह कहता है - मैं प्रस्थक का लेखांकन कर रहा हूँ। विशुद्धतर नैगम के अनुसार वह नामांकित हुआ तब उसने प्रस्थक का रूप लिया।

व्यवहारनय के संदर्भ में भी इसी प्रकार जानना चाहिए। संग्रहनय के अनुसार संचित, निर्मित धान्यपूरित प्रस्थक ही प्रस्थक कहलाता है।

ऋजुसूत्रनय के अनुसार मापने का प्रस्थक संज्ञक पात्र भी प्रस्थक है और मेय धान्य आदि भी प्रस्थक हैं।

(शब्द, समभिरूढ तथा एवंभूत) इन तीनों शब्दनयों के अनुसार प्रस्थक के अर्थाधिकार का ज्ञाता अथवा प्रस्थककर्त्ता का उपयोग जिससे प्रस्थक निष्पन्न होता है, जिसमें प्रस्थक का आरोप होता है, पुनश्च वह प्रस्थक कहलाता है।

यह प्रस्थक दृष्टांत का स्वरूप है।

विवेचन - नयप्रमाण के अन्तर्गत नैगमनय से संबद्ध प्रमाण की चर्चा की गई है।

'सामान्यविशेषग्राही नैगमः'* जो सामान्य एवं विशेष - दोनों को ग्रहण करता है, वह नैगमनय है। प्रस्थक के उदाहरण द्वारा इसे समझाया गया है।

मागध मापों में प्रस्थक विशेष माप रहा है, जो किलोग्राम मूलक वर्तमान मापों से पूर्व सारे भारत में प्रचलित था। सेर (प्रस्थक) के आधार पर ही छोटे बड़े माप किए जाते थे। धान्य के माप-तौल हेतु प्रस्थक का प्रयोग होता था। एक सेर धान्य जिस पात्र में समा सके उसे प्रस्थ या प्रस्थक कहा जाता था। प्रस्थक-काष्ठ आदि से निर्मित होते थे।

इस उदाहरण में, जिसे प्रस्थक तोला जा सके, ऐसे पात्र के निर्माण का वर्णन है। प्रस्थक की सामान्य और विशेष दो अवस्थाएं हैं। प्रस्थक के निर्माण में लगने वाली वस्तु और प्रस्थक बनने तक निर्माण की सारी प्रक्रिया उसका सामान्य रूप है। प्रस्थक बन कर तैयार हो जाता है, प्रयोग में लेने योग्य हो जाता है, वह उसका विशेष रूप है। नैगमनय सामान्य-विशेष दोनों अवस्थाओं को स्वीकार करता है। तदनुसार किसी व्यक्ति के मन में प्रस्थक निर्माण का विचार आता है और तदनुकूल उपक्रमों को संपादित कर उसे बना लेता है। वह सब नैगम में समाविष्ट

* स्वाध्याय सूत्र, नवम अधिकार, सूत्र ५७ पृ० २४०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हो जाता है। उसके निर्माण की अस्पष्ट दशा अविशुद्ध नैगम, उत्तरोत्तर विशुद्ध होती दशा विशुद्धतर नैगम कहलाती है। यही इस उदाहरण में व्यक्त किया गया है। इसीलिए प्रस्थक निर्माता सभी क्रियाओं को प्रस्थक के साथ जोड़ता है।

व्यवहारनय व्यवहारोपयोगी प्रक्रिया या पद्धति को लेकर चलता है। नैगमनय में लोग सामान्य विशेषात्मक वस्तु या कार्य के स्वरूप को स्वीकार कर तदनुरूप वचन प्रयोग करते हैं। तदनुसार लोगों के व्यवहार में भी वह प्रचलित हो जाता है। इसी कारण व्यवहार के संदर्भ में भी नैगम के अनुसार समझने का उल्लेख किया गया है।

वसति दृष्टान्त

से किं तं वसहिदिट्ठंतेणं?

वसहिदिट्ठंतेणं - से जहाणामए केइ पुरिसे कंचि पुरिसं वएज्जा - 'कहिं भवं वससि?'

तं अविसुद्धो णेगमो भवइ - 'लोगे वसामि'।

'लोगे तिविहे पण्णत्ते, तंजहा - उड्ढलोए १ अहोलोए २ तिरियलोए ३ तेसु सव्वेसु भवं वससि?' विसुद्धो णेगमो भणइ - 'तिरियलोए वसामि'।

'तिरियलोए जंबुद्दीवाइया सयंभूरमणपज्जवसाणा असंखिज्जा दीवसमुद्दा पण्णत्ता तेसु सव्वेसु भवं वससि?'

विसुद्धतराओ णेगमो भणइ - 'जंबुद्दीवे वसामि'। 'जंबुद्दीवे दस-खेत्ता पण्णत्ता, तंजहा - भरहे १ एरवए २ हेमवए ३ एरण्णवए ४ हरिवस्से ५ रम्मगवस्से ६ देवकुरू ७ उत्तरकुरू ८ पुव्वविदेहे ९ अवरविदेहे १० तेसु सव्वेसु भवं वससि?'

विसुद्धतराओ णेगमो भणइ - 'भरहे वासे वसामि' 'भरहेवासे दुविहे पण्णत्ते, तंजहा - दाहिणड्ढभरहे १ उत्तरड्ढभरहे य २. तेसु सव्वे(दो)सु भवं वससि?' विसुद्धतराओ णेगमो भणइ - 'दाहिणड्ढभरहे वसामि'।

'दाहिणड्ढभरहे अणेगाइं गामागर-णगर-खेड-कब्बड-मंडब-दोणमुह-पट्टणासमसंवाह-सण्णिवेसाइं, तेसु सव्वेसु भवं वससि?'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विसुद्धतराओ णेगमो भणइ - 'पाडलिपुत्ते वसामि'। 'पाडलिपुत्ते अणेगाइं गिहाइं, तेसु सव्वेसु भवं वससि?'

विसुद्धतराओ णेगमो भणइ - 'देवदत्तस्स घरे वसामि'। 'देवदत्तस्स घरे अणेगा कोट्ठगा, तेसु सव्वेसु भवं वससि?'

विसुद्धतराओ णेगमो भणइ - 'गब्भघरे वसामि'। एवं विसुद्धस्स णेगमस्स वसमाणो। एवमेव ववहारस्स वि। संगहस्स संथारसमारूढो वसइ। उज्जुसुयस्स जेसु आगासपएसेसु ओगाढो तेसु वसइ। तिण्हं सद्दणयाणं आयभावे वसइ। सेत्तं वसहिदिट्ठंतेणं।

शब्दार्थ-**कंचि** - किसी, **वसामि** - रहता हूँ (निवास करता हूँ), **सयंभूरमणपज्जवसाणा**-स्वयंभूरमणपर्यवसान - स्वयंभूरमण तक, **गिहाइं** - घर, **कोट्ठगा** - कोष्ठक - कमरे, **गब्भघरे**-गर्भगृह, **संथारसमारूढो** - बिस्तर पर अवस्थित, **आयभावे** - आत्मभाव - स्वभाव में।

भावार्थ - वसति - आवास रूप दृष्टांत का क्या स्वरूप है?

कोई अज्ञातनामा पुरुष किसी पुरुष से कहे - आप कहाँ निवास करते हैं?

(वहाँ वह) अविशुद्ध नयानुसार कहता है - लोक में निवास करता हूँ।

लोक तीन प्रकार का बतलाया गया है - १. ऊर्ध्वलोक २. अधोलोक एवं ३. तिर्यक्लोक। क्या आप उन सब में निवास करते हैं?

विशुद्धनय के अनुसार वह कहता है - तिर्यक्लोक में निवास करता हूँ।

तिर्यक्लोक में जंबूद्वीप से लेकर स्वयंभूरमण पर्यन्त असंख्येय द्वीप समुद्र बतलाए गए हैं, क्या आप उन सब में निवास करते हैं?

(वह) विशुद्धतर नय से कहता है - मैं जंबूद्वीप में रहता हूँ।

जंबूद्वीप में दस क्षेत्र बतलाए गए हैं - १. भरत २. ऐरवत ३. हैमवत ४. ऐरण्यवत ५. हरिवर्ष ६. रम्यक्वर्ष ७. देवकुरू ८. उत्तरकुरू ९. पूर्वविदेह तथा १०. अपरविदेह। क्या (आप) इन सब में निवास करते हैं?

विशुद्धतर नैगमनयानुसार वह कहता है - भरतक्षेत्र में निवास करता हूँ।

भरतक्षेत्र दो प्रकार का कहा गया है - दक्षिणार्द्ध भरत और उत्तरार्द्ध भरत। क्या आप उन सबमें (दो में) बसते हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विशुद्धतर नय के अनुसार वह कहता है - मैं दक्षिणार्द्ध भरत में निवास करता हूँ।

दक्षिणार्द्ध भरत में अनेक ग्राम, नगर, खेट, कर्बट, मंडब, द्रोणमुख, पट्टन, आश्रम, संवाह तथा सन्निवेश हैं। क्या उन सब में आप रहते हैं?

विशुद्धतर नैगम नय के अनुसार वह कहता है - मैं पाटलिपुत्र में रहता हूँ।

पाटलिपुत्र में अनेक गृह - घर हैं, क्या उन सबमें रहते हैं?

विशुद्धतर नयानुसार वह कहता है - मैं देवदत्त के घर में रहता हूँ।

देवदत्त के घर में अनेक कमरे (प्रकोष्ठ) हैं। क्या आप उन सब में रहते हैं?

विशुद्धतर नैगम नय के अनुसार वह कहता है - मैं गर्भगृह (अन्दर का कमरा) में रहता हूँ।

इस प्रकार नैगम नय के अनुसार निवास करते हुए पुरुष का विवेचन है।

इसी प्रकार व्यवहारनय के संदर्भ में भी जानना चाहिये।

संग्रहनय के अनुसार जब व्यक्ति शय्या संस्तारक पर अवस्थित हो तभी वह निवास करता हुआ कहा जाता है।

ऋजुसूत्रनय के अनुसार जितने आकाश प्रदेशों को वह अवगाहित करता है, तदनुसार उसका निवास है।

तीनों शब्दनयों के अनुसार आत्मभाव स्वभाव में ही निवास करता है।

यह वसति दृष्टांत का स्वरूप है।

प्रदेश दृष्टान्त

से किं तं पएसदिट्ठंतेणं?

पएसदिट्ठंतेणं - णेगमो भणइ - 'छण्हं पएसो, तंजहा - धम्मपएसो, अधम्मपएसो, आगासपएसो, जीवपएसो, खंधपएसो, देसपएसो।' एवं वयंतं णेगमं संगहो भणइ - 'जं भणसि - छण्हं पएसो तं ण भवइ।'

'कम्हा?'

'जम्हा जो देसपएसो सो तस्सेव दव्वस्स।'

'जहा को दिट्ठंतो?'

'दासेण मे खरो कीओ, दासो वि मे खरो वि मे। तं मा भणाहि-छण्हं पएसो,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भणाहि पंचण्हं पएसो, तंजहा - धम्मपएसो, अधम्मपएसो, आगासपएसो, जीवपएसो, खंधपएसो।'' एवं वयंतं संगहं ववहारो भणइ - 'जं भणसि - पंचण्हं पएसो तं ण भवइ।'

'कम्हा?'

'जइ जहा पंचण्हं गोट्ठियाणं पुरिसाणं केइ दव्वजाए सामण्णे भवइ, तंजहा - हिरण्णे वा सुवण्णे वा धणे वा धण्णे वा, तं ण ते जुत्तं वत्तुं जहा पंचण्हं पएसो, तं मा भणाहि - पंचण्हं पएसो, भणाहि - पंचविहो पएसो, तंजहा - धम्मपएसो, अधम्मपएसो, आगासपएसो, जीवपएसो, खंधपएसो।' एवं वयंतं ववहारं उज्जुसुओ भणइ - 'जं भणसि - पंचविहो पएसो तं ण भवइ।'

'कम्हा?'

'जइ ते पंचविहो पएसो, एवं ते एक्केक्को पएसो पंचविहो, एवं ते पणवीसइविहो पएसो भवइ, तं मा भणाहि - पंचविहो पएसो, भणाहिभइयव्वो पएसो - सिय धम्मपएसो, सिय अधम्मपएसो सिय आगासपएसो, सिय जीवपएसो, सिय खंधपएसो।' एवं वयंतं उज्जुसुयं संपइ सद्दणओ भणइ - 'जं भणसि भइयव्वो पएसो तं ण भवइ।'

'कम्हा?'

'जइ भइयव्वो पएसो एवं ते धम्मपएसो वि-सिय धम्मपएसो सिय अधम्मपएसो सिय आगासपएसो सिय जीवपएसो सिय खंधपएसो, अधम्मपएसो वि सिय धम्मपएसो जाव सिय खंधपएसो, जीवपएसो वि सिय धम्मपएसो जाव सिय खंधपएसो, खंधपएसो वि सिय धम्मपएसो जाव सिय खंधपएसो, एवं ते अणवत्था भविस्सइ, तं मा भणाहि - भइयव्वो पएसो, भणाहि - धम्मे पएसे से पएसे धम्मे, अहम्मे पएसे से पएसे अहम्मे, आगासे पएसे से पएसे आगासे, जीवे पएसे से पएसे णोजीवे, खंधे पएसे से पएसे णोखंधे।' एवं वयंतं सद्दणयं समभिरूढो भणइ - 'जं भणसि - धम्मपएसे से पएसे धम्मे जाव जीवे पएसे से पएसे णोजीवे खंधे पएसे से पएसे णोखंधे तं ण भवइ।'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'कम्हा?'

'इत्थं खलु दो समासा भवंति, तंजहा - तप्पुरिसे य १ कम्मधारए य २। तं ण णज्जइ कयरेणं समासेणं भणसि? किं तप्पुरिसेणं, किं कम्मधारएणं? जइ तप्पुरिसेणं भणसि तो मा एवं भणाहि, अह कम्मधारएणं भणंसि तो विसेसओ भणाहि - धम्मे य से पएसे य से पएसे धम्मे, अधम्मे य से पएसे य से पएसे अधम्मे, आगासे य से पएसे य से पएसे आगासे, जीवे य से पएसे य से पएसे णोजीवे, खंधे य से पएसे य से पएसे णोखंधे।' एवं वयंतं समभिरूढं संपइ एवंभूओ भणइ - 'जं जं भणसि तं तं सव्वं कसिणं पडिपुण्णं णिरवसेसं एगगहणगहियं देसे वि मे अवत्थू, पएसे वि मे अवत्थू।' सेत्तं पएसदिट्ठंतेणं। सेत्तं णयप्पमाणे।

शब्दार्थ - **छण्हं** - छह के, **खरो** - गधा, **कीओ** - क्रीत - खरीदा, **गोट्ठियाणं** - गोष्ठिक - सहभागी या हिस्सेदार, **वत्तुं** - कहने के लिए, **अणवत्था** - अनवस्था, **कसिणं** - कृत्स्न - समग्र, **णज्जइ** - न्याय संगत, **पडिपुण्णं** - प्रतिपूर्ण, **एगगहणगहियं** - एक ग्रहण ग्रहीत, **अवत्थु** - वस्तुत्वविहीन।

भावार्थ - प्रदेश दृष्टांत का क्या स्वरूप है?

प्रदेश दृष्टांत का स्वरूप इस प्रकार है -

जैसे नैगमनय के अनुसार (एक व्यक्ति) कहता है - छह द्रव्यों के प्रदेश होते हैं, जैसे - 'धर्मास्तिकाय प्रदेश, अधर्मास्तिकाय प्रदेश, आकाशास्तिकाय प्रदेश, जीवास्तिकाय प्रदेश, स्कन्धप्रदेश तथा प्रदेशप्रदेश।'

नैगमनय के अनुसार ऐसा कहने वाले को किसी ने संग्रहनय के अनुसार कहा - छहों के प्रदेश हैं, तुम जो यह कहते हो, वह उचित नहीं है।

कैसे?

क्योंकि जो देश का प्रदेश है, वह उसी द्रव्य का है, जिसका वह प्रदेश है।

इस संदर्भ में क्या कोई दृष्टांत है?

(हाँ दृष्टांत है) जैसे- (कोई कहे) मेरे दास ने गधा खरीदा। दास मेरा है, इसलिए गधा भी मेरा है।

ऐसा मत कहो - छह के प्रदेश होते हैं, पांच के ही प्रदेश होते हैं। यथा - धर्मास्तिकाय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के प्रदेश, अधर्मास्तिकाय के प्रदेश, आकाशास्तिकाय के प्रदेश, जीवास्तिकाय के प्रदेश और स्कन्ध के प्रदेश।

ऐसा कहने वाले संग्रहनयवादी को व्यवहार नयवादी ने कहा - तुम कहते हो - पांचों के प्रदेश होते हैं, यह सिद्ध नहीं होता।

कैसे?

व्यवहारनयवादी ने कहा - जैसे पांच सहभागी पुरुषों का कोई द्रव्य सामान्य होता है, जैसे - हिरण्य, स्वर्ण, धन-धान्य आदि।

तब तुम्हारा कहना उचित नहीं है कि पांचों के प्रदेश हैं। इसलिए ऐसा मत कहो कि पांचों के प्रदेश हैं।

यों कहो कि - पांच प्रकार के प्रदेश हैं, यथा - धर्मास्तिकाय के प्रदेश, अधर्मास्तिकाय के प्रदेश, आकाशास्तिकाय के प्रदेश, जीवास्तिकाय के प्रदेश, स्कन्ध के प्रदेश।

ऐसा कहने वाले व्यवहारनयवादी को ऋजुसूत्र नयवादी ने कहा - जो तुम कहते हो कि पांच प्रकार के प्रदेश हैं, वह भी घटित नहीं होता।

क्यों?

जो तुम पांच प्रकार के प्रदेश कहते हो, वहाँ एक-एक प्रदेश पांच-पांच प्रकार का है। इस प्रकार पच्चीस प्रकार के प्रदेश होते हैं। इसलिए ऐसा मत कहो कि पांच प्रकार के प्रदेश हैं। ऐसा कहो कि यह भजनीय है (नियमा सम्मत नहीं) यथा - स्यात् धर्मास्तिकाय के प्रदेश, स्यात् अधर्मास्तिकाय के प्रदेश, स्यात आकाशास्तिकाय के प्रदेश, स्यात् जीवास्तिकाय के प्रदेश, स्यात् स्कन्ध के प्रदेश।

इस प्रकार कहने वाले ऋजुसूत्रनयवादी से संप्रति शब्दनयवादी ने कहा - तुम कहते हो कि प्रदेश भजनीय है, यह कथन युक्ति युक्त नहीं है। क्योंकि प्रदेश भजनीय हैं, ऐसा कहना युक्ति युक्त नहीं है।

क्योंकि यदि प्रदेश भजनीय हों तो धर्मास्तिकाय का प्रदेश धर्मास्तिकाय का भी, अधर्मास्तिकाय का भी, आकाशास्तिकाय का भी, जीवास्तिकाय का भी और स्कंध का भी हो सकता है।

इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय का प्रदेश धर्मास्तिकाय यावत् स्कंध का प्रदेश भी हो सकता है। जीवास्तिकाय का प्रदेश भी धर्मास्तिकाय का यावत् स्कंध का भी प्रदेश हो सकता है। स्कंध का प्रदेश भी धर्मास्तिकाय का यावत् स्कंध का भी प्रदेश हो सकता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार आपके अभिमत से तो अनवस्था हो जायेगी। अतः ऐसा मत कहो - प्रदेश भजनीय हैं वरन् ऐसा कहो - जो धर्म रूप में प्रदेश हैं, वे प्रदेश हैं, वे प्रदेश (स्वयं) ही धर्मास्तिकाय हैं, जो अधर्म रूप प्रदेश हैं, वे प्रदेश ही अधर्मास्तिकाय हैं, जो आकाश रूप प्रदेश हैं, वे प्रदेश ही आकाशास्तिकाय हैं, जो एक प्रदेश के जीव हैं, वे प्रदेश नोजीव हैं, स्कंध के जो प्रदेश हैं, वे नोस्कंधात्मक हैं।

इस प्रकार कहते हुए शब्दनयवादी को समभिरूढवादी ने कहा - जो तुम कहते हो, धर्म रूप प्रदेश ही धर्मास्तिकाय के प्रदेश हैं यावत् जो एक जीव के प्रदेश हैं, वे ही नोजीव हैं तथा जो स्कंध के प्रदेश हैं वे नोस्कंधरूप हैं, यह कथन युक्ति युक्त नहीं है।

क्योंकि, यहाँ तत्पुरुष और कर्मधारय - दो समास होते हैं। यह युक्तिसंगत नहीं है क्योंकि दोनों में से यहाँ कौन सा समास होगा? क्या यहाँ तत्पुरुष को लें या कर्मधारय को लें?

यदि तत्पुरुष को लेकर बोलते हो तो ऐसा बोलना ही मत अथवा कर्मधारय को लेकर बोलते हो तो विशेष रूप से कहो - धर्म का जो प्रदेश है, वही प्रदेश धर्मास्तिकाय है। अधर्म का जो प्रदेश है, वही प्रदेश अधर्मास्तिकाय है। आकाश का जो प्रदेश है, वही प्रदेश आकाशास्तिकाय है। एक जीव का जो प्रदेश है, वही प्रदेश नोजीवास्तिकाय रूप है। स्कंध का जो प्रदेश है, वही प्रदेश नोस्कंध रूप है।

ऐसा कहने पर समभिरूढनयवादी से संप्रति एवं - भूतनयवादी ने कहा - जो-जो तुम कहते हो, वह सब कृत्स्न - समग्र (देश-प्रदेशात्मक कल्पना विवर्जित) है, प्रतिपूर्ण - सामष्टिक रूप से पूर्ण, अवयव रहित है तथा एक ही नाम से गृहीत किये जाते हैं। इसलिए देश भी अवास्तविक हैं और प्रदेश भी अवास्तविक हैं।

यही प्रदेश दृष्टांत है।

इस प्रकार नयप्रमाण विषयक विवेचन संपन्न होता है।

विवेचन - इस सूत्र में समस्त नयों का प्रदेश के साथ उन-उन की दृष्टि के अनुरूप विवेचन करते हुए नय प्रमाण का निरूपण किया गया है।

"अनन्तधर्मात्मकवस्तुन्येकधर्मावबोधको नयः" - अनन्त धर्मात्मक वस्तु के किसी एक धर्म का जो अवबोध करता है, वह नय है×।

× स्वाध्यायसूत्र, नवम अधिकार, सूत्र-५५, पृ.-२३६

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसीलिए नय को सदंश (सत्+अंश) ग्राही कहा जाता है। वह सत् के एक अंश को ग्रहण कर निरूपित करता है। इसलिए इसे विकलादेश भी कहा जाता है।

सामान्य और विशेष को समन्वित रूप में ग्रहण करने वाले नैगमनय, केवल सामान्य को ग्रहण करने वाले संग्रहनय, व्यवहारोपयोगी पक्ष के संग्राहक व्यवहारनय, भूत-भविष्य-विवर्जित वर्तमानग्राही ऋजुसूत्रनय, अनेकविध वाच्यार्थ में एकार्थग्राही शब्दनय, व्यौत्पत्तिक भेद जनित विविधार्थग्राही समभिरूढनय तथा व्युत्पत्ति के अर्थ को ग्रहण करने वाले एवंभूतनय - इनके आधार पर जो विवेचन किया गया है, वह भिन्नता के कारण, सूक्ष्मता से पर्यवलोकन न करने से असंगत सा प्रतीत होता है। उसी प्रतीयमान असंगति को विविध प्रश्नों के माध्यम से भिन्न-भिन्न नयों को प्रस्तुत करते हुए प्रकट किया गया है। यह असंगति वास्तव में असंगति नहीं है, क्योंकि जब किसी पदार्थ के एक अंश का निरूपण किया जाता है तो सभी अवशिष्ट अंश अग्रहीत रहते हैं। उन सबका अग्रहण वास्तव में कोई दोष नहीं है किन्तु यहाँ यह अवश्य ज्ञातव्य है - किसी एक नय को लेकर किसी एक पदार्थ का समग्र स्वरूप व्याख्यात नहीं होता। इसलिए सातों नयों का समन्वय किसी पदार्थ के वास्तविक स्वरूप का बोधक होता है।

इस सूत्र में प्रसंगवश जो अनवस्था शब्द का प्रयोग हुआ है, उसका आशय तर्क शास्त्र के अनुसार उस दोष से है, जिसमें कार्य-कारण शृंखला का कभी अन्त नहीं होता। न्याय ग्रंथों में कहा है - **'अप्रामाणिकानन्तपदार्थ-परिकल्पनयाविश्रान्त्याभावो अनवस्था'**।

इसलिए कहा गया है -

एवप्यनवस्था स्याद्या मूलक्षतिकारिणी - जो मूल विषय को ही मिटा दे, उसे अनवस्था कहते हैं।

इससंदर्भ में मुर्गी और अण्डे का दृष्टांत दिया जाता है। पहले मुर्गी उत्पन्न हुई या अण्डा, जबकि दोनों एक दूसरे से उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार मुर्गी से अण्डा और अण्डे से मुर्गी - इस कारण को पीछे ले जाते रहें तो उसका कोई अन्त नहीं आयेगा।

सूत्र में वर्णित भजना ऐसी ही अनवस्था उत्पन्न करती है।

सातों नयों की समन्वयात्मक संगति के विषय में आचार्य सिद्धसेन दिवाकर का निम्नांकित श्लोक अत्यंत प्रसिद्ध है -

उदधाविव सर्वसिन्धवः समुदीर्णास्त्वयि नाथ! दृष्टयः।
न च तासु भवान् प्रदृश्यते, प्रविभक्तासु सरित्स्विवोदधिः॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जिनेन्द्र देव को संबोधित करते हुए इस श्लोक में कहा गया है -

स्वामिन्! जिस प्रकार सभी नदियाँ समुद्र में आकर मिल जाती हैं, उसी प्रकार सभी दृष्टियाँ - सभी नय आप में - आप द्वारा निरूपित सिद्धान्त में मिल जाते हैं। किन्तु जैसे प्रविभक्त - पृथक्-पृथक् बहती हुई नदियों में समुद्र मिला हुआ दृष्टिगोचर नहीं होता, उसी तरह आपका सिद्धांत पृथक्-पृथक् रहती हुई दृष्टियों में नहीं मिलता।

इसका अभिप्राय यह है कि यदि एक-एक नय पर कोई आग्रह करे, उसी को सत्य माने तो वह जैन सिद्धान्त सम्मत नहीं रहता। वह दुर्नय या कुनय हो जाता है। सभी नय सापेक्ष रूप में जब एक ही अनेकांतमूलक दर्शन में समन्वित होते हैं तब वे सत्य के प्ररूपक बन जाते हैं। नयवाद जैन दर्शन के अनेकांतवाद को स्थापित और सिद्ध करने का एक सुंदर विधिक्रम है। जहाँ अनेकांतवाद स्याद्वाद की शब्दावली में किसी एक वस्तु का निरूपण करता है, वहाँ नयवाद उस वस्तु में रहे अनंत धर्मों में से किन्हीं का पृथक्-पृथक् विवेचन करता है। स्याद्वाद और नयवाद में सहज सामंजस्य है। जो जैन दर्शन की सार्वजनीनता और व्यापकता का द्योतक है। सत्य के विश्लेषणात्मक वैज्ञानिक प्रतिपादन या प्ररूपण का यह बड़ा ही सुन्दर, समीचीन मार्ग है।

(१४७)

संख्याप्रमाण विवेचन

से किं तं संखप्पमाणे?

संखप्पमाणे अट्ठविहे पण्णत्ते। तंजहा - णामसंखा १ ठवणासंखा २ दव्वसंखा ३ ओवम्मसंखा ४ परिमाणसंखा ५ जाणणासंखा ६ गणणासंखा ७ भावसंखा ८।

शब्दार्थ - संखप्पमाणे - संख्याप्रमाण।

भावार्थ - संख्याप्रमाण - १. नामसंख्या २. स्थापनासंख्या ३. द्रव्यसंख्या ४. औपम्यसंख्या ५. परिमाणसंख्या ६. ज्ञानसंख्या ७. गणनासंख्या और ८. भावसंख्या के रूप में आठ प्रकार का है।

विवेचन - इस सूत्र में प्रमाण के साथ **संख** शब्द का प्रयोग हुआ है। यहाँ यह संख्या के लिए आया है। प्राकृत के संख शब्द के संस्कृत रूप संख्या, संख्य तथा शंख - ये तीनों बनते हैं। अर्द्धमागधी, शौरसेनी तथा महाराष्ट्री प्राकृत में श, ष तथा स इन तीनों के लिए 'स' का ही प्रयोग होता है। केवल मागधी प्राकृत में ही तालव्य (श) आता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

"सम्यक् ख्यायते यथा सा संख्या" - जिसके द्वारा किसी वस्तु का भलीभाँति ख्यापन हो, परिमाण-ज्ञापन हो, वह संख्या है।

"संख्यातुं योग्यं संख्यं" - जो संख्यात करने योग्य - गिनने योग्य होता है, उसे संख्य कहा जाता है। जैन परंपरा में प्रचलित संख्येय और संख्यात का भाव यह व्यक्त करता है। शंख शब्द द्वीन्द्रिय जीव विशेष का बोधक है। शंख, सूक्ति आदि के स्पर्श और रसन ही इन्द्रिय होते हैं। शंख शब्द का एक अर्थ ईकाई, दहाई आदि क्रम से चलने वाली लौकिक संख्याओं की अंतिम संख्या से है।

अतएव संख्या प्रमाण के संदर्भ में जहाँ-जहाँ जिस अर्थ की संगति है, वहां-वहां वैसे-वैसे रूप में योजनीय है।

से किं तं णामसंखा?

णामसंखा - जस्स णं जीवस्स वा जाव सेत्तं णामसंखा।

भावार्थ - नामसंख्या का क्या स्वरूप है?

जिसका जीव से अथवा अजीव से यावत् (तदुभयों-जीवों-अजीवों का 'संख्या' ऐसा नामकरण किया जाता है) वह नामसंख्या प्रमाण का स्वरूप है।

से किं तं ठवणासंखा?

ठवणासंखा - जं णं कट्ठकम्मे वा पोत्थकम्मे वा जाव सेत्तं ठवणासंखा।

णामठवणाणं को पइविसेसो?

णामं आवकहियं, ठवणा इत्तरिया वा होज्जा आवकहिया वा होज्जा।

भावार्थ - स्थापनासंख्या का क्या स्वरूप होता है?

जिस काष्ठकर्म में, पुस्तककर्म में यावत् 'संख्या' रूप में स्थापना करना स्थापना संख्या है।

नाम और स्थापना में क्या अन्तर है?

नाम यावत्कथिक होता है परन्तु स्थापना इत्वरिक या यावत्कथिक हो सकती है।

से किं तं दव्वसंखा?

दव्वसंखा दुविहा पण्णत्ता।

तंजहा - आगमओ य १ णोआगमओ य २ जाव से किं तं जाणयसरीर-भवियसरीरवइरित्ता दव्वसंखा?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ता दव्वसंखा तिविहा पण्णत्ता। तंजहा - एगभविए १ बद्धाउए २ अभिमुहणामगोत्ते य ३।

भावार्थ - द्रव्यसंख्या का क्या स्वरूप है?

यह आगमतः और नोआगमतः के रूप में दो प्रकार की परिज्ञापित हुई है।

यावत् ज्ञशरीर-भव्यशरीर व्यतिरिक्त द्रव्यसंख्या का क्या स्वरूप है?

ज्ञशरीर-भव्यशरीर व्यतिरिक्त द्रव्यसंख्या तीन प्रकार की परिज्ञापित हुई है -

१. एकभविक २. बद्धायुष्क और ३. अभिमुखनामगोत्र।

विवेचन - इस सूत्र में एकभविक, बद्धायुष्क तथा अभिमुखनामगोत्र शब्दों का जो प्रयोग हुआ है, वह विशेष अभिप्राय लिए हुए है। एकभविक का यह तात्पर्य है कि जिस जीव ने अभी तक शंख पर्याय की आयु का बंध नहीं किया है किन्तु मरणोपरांत जो शंख पर्याय प्राप्त करेगा, उसे यहाँ एकभविक के रूप में अभिहित किया गया है।

जिस जीव ने शंखपर्याय में उत्पन्न होने योग्य आयुष्य का बंध कर लिया है, वह जीव बद्धायुष्क के रूप में वर्णित हुआ है।

आसन्न भविष्य में जो जीव शंख योनि में जन्म लेगा तथा जिसके द्वीन्द्रिय आदि नामकर्म एवं नीच गोत्रात्मक गोत्र कर्म - जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त के पश्चात् उदयाभिमुख हैं, उस जीव का अभिमुखनामगोत्र शंख के रूप में कथन किया गया है।

ये त्रिविध जीव भावशंखत्व के कारण होने से ज्ञशरीर एवं भव्यशरीर - इन दोनों से व्यतिरिक्त - भिन्न द्रव्य लिए हुए हैं।

एगभविए णं भंते! 'एगभविए' त्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी।

भावार्थ - हे भगवन्! एकभविक जीव 'एकभविक' इस नाम में कितने कालपर्यन्त रहता है?

हे आयुष्मन् गौतम! यह (इस स्थिति में) जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त एवं उत्कृष्टतः पूर्वकोटि वर्ष पर्यन्त रहता है।

बद्धाउए णं भंते! 'बद्धाउए' त्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडीतिभागं।

भावार्थ - हे भगवन्! बद्धायुष्क जीव 'बद्धायुष्क' इस नाम पर्याय में कियत्काल पर्यन्त रहता है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हे आयुष्मन् गौतम! इस स्थिति में यह जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त पर्यन्त एवं उत्कृष्टतः एक पूर्व के तीसरे भाग प्रमाण तक रहता है।

अभिमुहणामगोत्ते णं भंते! 'अभिमुहणामगोए' त्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - हे भगवन्! अभिमुखनामगोत्र (शंख का) अभिमुखगोत्र ऐसा नाम कियत्कालिक होता है?

हे आयुष्मन् गौतम! यह स्थिति जघन्यतः एक समय और उत्कृष्टतः अन्तर्मुहूर्त्त परिमित होती है।

इयाणिं को णओ कं संखं इच्छइ?

तत्थ णेगमसंगहववहारा तिविहं संखं इच्छंति, तंजहा - एगभवियं १ बद्धाउयं २ अभिमुहणामगोत्तं च ३। उज्जुसुओ दुविहं संखं इच्छइ, तंजहा - बद्धाउयं च १ अभिमुहणामगोत्तं च २। तिण्णि सद्दणया अभिमुहणामगोत्तं संखं इच्छंति। सेत्तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ता दव्वसंखा। सेत्तं णोआगमओ दव्वसंखा। सेत्तं दव्वसंखा।

शब्दार्थ - **इयाणिं** - इनमें से, **इच्छइ** - मानता है (चाहता है)।

भावार्थ - इन तीनों (शंखों) में से कौनसा नय किस शंख को मानता है?

नैगम, संग्रह और व्यवहारनय एकभविक, बद्धायुष्क और अभिमुखनाम गोत्र - इन तीनों शंखों को मानता है। ऋजुसूत्रनय दो शंखों - बद्धायुष्क और अभिमुखनामगोत्र को मानता है। तीनों शब्दनय अभिमुखनाम गोत्र को मानते हैं।

यह ज्ञशरीर-भव्य शरीर-व्यतिरिक्त द्रव्यावश्यक का स्वरूप है।

यह द्रव्य संख्या के अन्तर्गत नोआगमतः द्रव्य संख्या का निरूपण है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में उपर्युक्त त्रिविध शंखों में से कौन-कौन नय किस-किस शंख को स्वीकार करते हैं, यह स्पष्टीकरण किया गया है।

नैगम, संग्रह एवं व्यवहार ये तीनों नय सामान्य विशेषात्मक - व्यवहारात्मक स्थूल या बाह्य दृष्टि से वस्तु तत्त्व पर विचार करते हैं। अतः इनमें भविष्यवर्ती कार्य का वर्तमानवर्ती

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कारण में उपचार कर (वर्तमान में भी) उसे कार्य रूप में स्वीकार कर लिया जाता है। जैसे राजकुमार को जो वर्तमान में राजा नहीं है, राजा होने का कारण मानकर राजा कह दिया जाता है। इसी प्रकार एकभविक, बद्धायुष्क और अभिमुखनामगोत्र - ये तीनों प्रकार के द्रव्य शंख यद्यपि वर्तमान में भावशंख नहीं है किन्तु भविष्यवर्ती भावशंखत्व के कारण हैं। अतः इन तीनों को भावशंख के रूप में स्वीकार करने की विधि है।

'अतीतानागतवर्जित-वर्तमान-पर्यायमाग्राह्यर्जुसूत्रम्' - भूत एवं भविष्य रहित, केवल वर्तमानवर्ती पर्याय या अवस्था को ग्रहण करता है, वह ऋजुसूत्रनय है*। इस परिभाषा के अनुसार यह नय पूर्ववर्णित तीन नयों की अपेक्षा शुद्धतर है। अतः यह बद्धायुष्क एवं अभिमुख नामगोत्र - इन दो प्रकार के शंखों को ही मानता है। इसके अनुसार एक भवी जीव शंख नहीं माना जाता क्योंकि वह भावशंख से अति व्यवधानयुक्त - अन्तरयुक्त है। उसे शंख मानने से अति प्रसंग - प्रसंग से बाहर जाने का दोष आता है।

शब्द, समभिरूढ तथा एवंभूत नय और अधिक सूक्ष्मतर हैं। ये भावशंख के आसन्न - निकटवर्ती होने से अभिमुखनामगोत्र को तो शंख मानते हैं किन्तु एकभविक एवं बद्धायुष्क को शंख नहीं मानते। क्योंकि भावशंख के साथ उनका अत्यधिक व्यवधान है।

यह विविध नयगत विवेचन सापेक्ष दृष्टिकोण पर आधारित है।

बृहत्कल्प पीठिका में बताया गया है कि - उपर्युक्त तीन प्रकार के शंखों में से आर्यसुहस्ति एक प्रकार का द्रव्य शंख (अभिमुख नाम गोत्र) चाहते (मानते) हैं, आर्यसमुद्र दो प्रकार के द्रव्यशंखों (बद्धायुष्क और अभिमुख नाम गोत्र) को मानते हैं, आर्यमंगु तीनों प्रकार के द्रव्यशंखों (एकभविक, बद्धायुष्क और अभिमुखनाम गोत्र) को मानते हैं।

औपम्य संख्या

से किं तं ओवम्मसंखा?

ओवम्मसंखा चउव्विहा पण्णत्ता। तंजहा - अत्थि संतयं संतएणं उवमिज्जइ १ अत्थि संतयं असंतएणं उवमिज्जइ २ अत्थि असंतयं संतएणं उवमिज्जइ ३ अत्थि असंतयं असंतएणं उवमिज्जइ ४।

---

* स्वाध्याय सूत्र, नवम अधिकार, सूत्र - ६४ पृ० २४३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ - **ओवम्मसंखा** - औपम्यसंख्या, **संतयं** - सद्वस्तु को, **उवमिज्जइ** - उपमित किया जाता है, **असंतयं** - असद्वस्तु को।

भावार्थ - औपम्य संख्या का क्या स्वरूप है?

औपम्य संख्या चार प्रकार की परिज्ञापित की गई है, यथा -

१. सत् (वस्तु) को सत् से उपमित करना।

२. सत् (वस्तु) को असत् से उपमित करना।

३. असत् (वस्तु) को सत् से उपमित करना।

४. असत् (वस्तु) को असत् से उपमित करना।

१. सद्-सद्रूप औपम्य संख्या

तत्थ संतयं संतएणं उवमिज्जइ, जहा - संता अरहंता संतएहिं पुरवरेहिं संतएहिं कवाडेहिं संतएहिं वच्छेहिं उवमिज्जंति, तंजहा -

गाहा - पुरवरकवाडवच्छा फलिहभुया दुंदहित्थणियघोसा।
सिरिवच्छंकियवच्छा, सव्वे वि जिणा चउव्वीसं॥१॥

शब्दार्थ - **पुरवरेहिं** - श्रेष्ठ नगरों से, **कवाडएहिं** - कपाटों से, **वच्छएहिं** - वक्षस्थल को, **उवमिज्जंति** - उपमित करते हैं, **पुरवरकवाडवच्छा** - उत्तम नगर के कपाटों के समान वक्षस्थल, **फलिहभुया** - अर्गला के समान भुजाएँ, **सिरिवच्छंकियवच्छा** - श्रीवत्स से अंकित वक्षस्थल।

भावार्थ - जहाँ सत् वस्तु को सत् वस्तु से उपमित किया जाता है, उसका उदाहरण इस प्रकार है - सद्रूप या अस्तित्व युक्त अरहंतों (तीर्थंकरों) के वक्षस्थल सद्रूप, उत्तम नगरों के सद्रूप कपाटों से उपमित किए जाते हैं। जैसे -

गाथा - सभी चौबीस तीर्थंकर भगवंत उत्तम नगरों के मुख्य द्वार के कपाटों के समान सुदृढ़ वक्षस्थल युक्त, स्फटिक के तुल्य, द्युतिमय, प्रबल भुजा युक्त, दुंदुभि एवं मेघ के समान गंभीर स्वर युक्त वक्षस्थल पर श्रीवत्स के चिह्न से अंकित होते हैं।

विवेचन - जहाँ सद्रूप उपमेय को सद्रूप उपमान द्वारा वर्णित किया जाए, वहाँ सद्रूप औपम्य संख्यान घटित होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२. सद्-असद्रूप औपम्य संख्या

संतयं असंतएणं उवमिज्जइ, जहा - संताइं णेरइयतिरिक्खजोणियमणुस्सदेवाणं आउयाइं असंतएहिं पलिओवमसागरोवमेहिं उवमिज्जंति।

भावार्थ - जहाँ सद्रूप - विद्यमान पदार्थ को अविद्यमान पदार्थ द्वारा उपमित किया जाए वहाँ सद्-असद् संख्यान होता है। जैसे -

नारकों, तिर्यंचयोनिकों, मनुष्यों और देवों की सद्रूप आयु को अविद्यमान पल्योपम, सागरोपम द्वारा बतलाना इसका उदाहरण है।

३. असद् - सद् औपम्य संख्या

असंतयं संतएणं उवमिज्जइ, तंजहा -

गाहाओ - परिजूरियपेरंतं, चलंतविंटं पडंतणिच्छीरं।
पत्तं व वसणपत्तं, कालप्पत्तं भणइ गाहं॥१॥
जह तुब्भे तह अम्हे, तुम्हे वि य होहिहा जहा अम्हे।
अप्पाहेइ पडंतं, पंडुयपत्तं किसलयाणं॥२॥
णवि अत्थि णवि य होही, उल्लावो किसलपंडुपत्ताणं।
उवमा खलु एस कया, भवियजणविबोहणट्ठाए॥३॥

शब्दार्थ - **परिजूरियपेरंतं** - सर्वथा जीर्ण, **चलंतविंटं** - जिसके डंठल टूट गए हैं, **पडंत**- गिरते हुए, **णिच्छीरं** - सार रहित, **वसणपत्तं** - बसंत ऋतु के पत्ते से, **गाहं** - गाथा कही, **तुब्भे** - तुम, **अम्हे** - मैं, **होहिहा** - होवोगे, **अप्पाहेइ** - संभाषित करता है, **किसल** - किसलय - कोंपल-नवीन पत्ता, **उवमा** - उपमा, **कया** - कृता, **भवियजणविबोहणट्ठाए** - भव्यजनों के लिए विशिष्ट बोध के लिए।

भावार्थ - इसमें असद् वस्तु को सद्-विद्यमान वस्तु से उपमित किया जाता है, जैसे -

गाथाएँ - सर्वथा जीर्ण, वृन्त से टूटे हुए, नीरस, पत्ते ने बसंत में निकले हुए नवीन पत्र से कहा - जैसे तुम हो, (कभी) मैं भी वैसा था। तुम भी वैसे हो जाओगे (होने वाले हो)।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गिरते हुए पीले पत्ते और कोंपल का यह संभाषण न तो हो रहा है और न होगा। यह भव्यजनों को उद्बोधन देने हेतु उपमा दी गई है।

विवेचन - इस सूत्र में असत् मूलक उपमान द्वारा सद्रूप उपमेय का बोध कराया गया है। जैसा सूत्र में उल्लेख हुआ है - जीर्ण और नवीन पत्ते में न तो परस्पर ऐसी बात होगी, न कभी हुई। यह जो वार्तालाप का उपमान है, वह असद्रूप है। इस उपमान द्वारा भव्य जीवों को प्रतिबोध दिया गया है कि संसार के समस्त पदार्थ अनित्य हैं। कभी एक से नहीं रहते। अतः अपनी उन्नतावस्था में अहंकार नहीं होना चाहिए और न किसी दुःखित, पीड़ित का अनादर ही करना चाहिए। यह तथ्य यहाँ उपमेय है, वाच्य है, बोध्य है।

यह सद्रूप है क्योंकि जगत् की वास्तविकता यही है।

४. असद् - असद् रूप औपम्य संख्या

असंतयं असंतएहिं उवमिज्जइ - जहा खरविसाणं तहा ससविसाणं। सेत्तं ओवम्मसंखा।

शब्दार्थ - **खरविसाणं** - गधे का सींग, **ससविसाणं** - खरगोश का सींग।

भावार्थ - असत् या अविद्यमान पदार्थ को किसी अविद्यमान पदार्थ से उपमित करना असद्रूप औपम्य संख्यान है। जैसे गधे की सींग है, वैसा ही खरगोश का सींग है।

विवेचन - यहाँ गधे का सींग उपमान है, खरगोश का सींग उपमेय है। न गधे के सींग होता है और न खरगोश के ही सींग होता है। दोनों ही में सींग का असत् भाव है, नास्तित्व है। ऐसा संख्यान-प्रकटीकरण असद्-असद् औपम्यमूलक है।

परिमाण संख्या के भेद

से किं तं परिमाणसंखा?

परिमाणसंखा दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - कालियसुयपरिमाणसंखा १ दिट्ठिवायसुयपरिमाणसंखा य २।

भावार्थ - परिमाणसंख्या कितने प्रकार की परिज्ञापित हुई है?

यह कालिकश्रुत परिमाणसंख्या और दृष्टिवादश्रुत परिमाणसंख्या के रूप में दो प्रकार की प्रज्ञप्त हुई है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कालिकश्रुत परिमाणसंख्या

से किं तं कालियसुयपरिमाणसंखा?

कालियसुयपरिमाणसंखा अणेगविहा पण्णत्ता। तंजहा - पज्जवसंखा, अक्खरसंखा, संघायसंखा, पयसंखा, पायसंखा, गाहासंखा, सिलोगसंखा, वेढसंखा, णिज्जुत्तिसंखा, अणुओगदारसंखा, उद्देसगसंखा, अज्झयणसंखा, सुयखंधसंखा, अंगसंखा। सेत्तं कालियसुयपरिमाणसंखा।

शब्दार्थ - **पज्जवसंखा** - पर्यवसंख्या, **अक्खर** - अक्षर, **सिलोग** - श्लोक, **वेढ** - वेष्ठक, **णिज्जुत्ति** - निर्युक्ति, **उद्देसग** - उद्देशक, **अज्झयण** - अध्ययन, **सुयखंध** - श्रुतस्कंध।

भावार्थ - कालिकश्रुत परिमाणसंख्या कितने प्रकार की बतलाई गई है?

कालिकश्रुत परिमाणसंख्या अनेकविध प्रज्ञप्त हुई है, यथा - पर्याय संख्या, अक्षर संख्या, संघात संख्या, पद संख्या, पाद संख्या, गाथा संख्या, श्लोक संख्या, वेष्टक संख्या, निर्युक्ति संख्या, अनुयोगद्वार संख्या, उद्देश संख्या, अध्ययन संख्या, श्रुतस्कंध संख्या एवं अंग संख्या।

यह कालिकश्रुत परिमाणसंख्या का स्वरूप है।

विवेचन - कालिकश्रुत का कालविशेष से संबंध होता है। इस कारण जो-जो आगम कालविशेष में पठनीय होते हैं, उनकी कालिक संख्या है। कालिकश्रुत या आगमों का रात व दिन के पहले और आखिरी प्रहर में स्वाध्याय किए जाने का विधान है।

उदाहरणार्थ - उत्तराध्ययन, दशाश्रुतस्कंध, निशीथ आदि कालिकश्रुत के अन्तर्गत आते हैं।

सूत्र में कालिकश्रुत के संदर्भ में कतिपय विशिष्ट पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग हुआ है। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है -

पर्यव संख्या - पर्यव शब्द पर्याय का सूचक है। साथ ही साथ वह धर्म या गुण का भी बोधक है। तद्विषयक संख्या पर्यवसंख्या है।

अक्षर संख्या - अकारादि स्वर तथा क वर्ग आदि व्यंजन अक्षर कहे जाते हैं। **'न क्षरति इति अक्षरम्'** - जो ध्वनि रूप से अविनश्वर है, उसे अक्षर कहते हैं। अक्षर संख्यात होते हैं, अनंत नहीं।

संघात संख्या - दो या अधिक अक्षरों के सम्मिलन या संयोग को संघात कहा जाता है। ये भी संख्यात हैं, अनंत नहीं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पद संख्या - सुबन्त और तिङन्त शब्द पद कहलाते हैं। पाणिनीय अष्टाध्यायी (संज्ञा प्रकरण) के अनुसार - 'सुबन्तं तिङन्तं च पदसंज्ञं स्यात्' - अर्थात् सुबन्त और तिङन्त की पद संज्ञा होती है। सुप् का तात्पर्य - सु और जस् आदि विभक्तियाँ तथा तिङ का तात्पर्य तिप् तस् झि आदि विभक्तियों से है।

पाद संख्या - छन्द या पद्य के चतुर्थ अंश को पाद या चरण कहते हैं। इनकी संख्या पादसंख्या कहलाती है।

गाथा संख्या - संस्कृत में जिस छन्द को आर्या कहा जाता है, प्राकृत में उसे गाहा या गाथा कहा जाता है। उसका लक्षण निम्नांकित है -

यस्या पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथातृतीयेषु।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदशार्या।।

जिसके पहले और तीसरे चरण में बारह मात्राएँ तथा दूसरे पद में अठारह और चतुर्थ पद में पन्द्रह मात्राएँ हों, वह आर्या या गाथा छन्द कहलाता है।

श्लोक संख्या - श्लोकों की संख्या से संबंधित श्लोक संख्या है।

वेष्टक संख्या - प्राकृत वाङ्मय में प्रयुक्त छन्द विशेष की संख्या।

निर्युक्ति संख्या - आगमगत तात्त्विक गूढ विषयों की निक्षेप पद्धति से की गई व्याख्या निर्युक्ति कहलाती है। निर्युक्तियों के रूप में ग्रंथों की प्राकृत में पद्यमय रचनाएँ हुई हैं। उनकी संख्या ग्यारह (११) हैं। इनके रचनाकार आचार्य भद्रबाहु माने जाते हैं।

अनुयोगद्वार संख्या - व्याख्या के साधनभूत सत्पद प्ररूपण, तन्मूलक उपक्रम आदि अनुयोगद्वार कहलाते हैं। तद्विषयक संख्या अनुयोगद्वार संख्या है।

उद्देशक संख्या - आगमसूत्रों के अध्ययनों के अंश उद्देशक कहलाते हैं।

अध्ययन संख्या - आगमश्रुत के भाग को अध्ययन कहा जाता है।

श्रुतस्कन्ध संख्या - आगम के अध्ययनों का समूह श्रुतस्कन्ध कहा जाता है।

यहाँ यह ज्ञातव्य है, श्रुत या आगमपुरुष की कल्पना की गई है। जिस तरह पुरुष के कंधे होते हैं, उसी तरह आगम के स्कन्ध होते हैं। ये दो माने गए हैं। कंधे सबल और सशक्त होते हैं। उसी प्रकार आगम की सारवत्ता के द्योतक हैं।

अंग संख्या - अंगों की संख्या अंग संख्या कहलाती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दृष्टिवाद श्रुत परिमाण संख्या

से किं तं दिट्ठिवायसुयपरिमाणसंखा?

दिट्ठिवायसुयपरिमाणसंखा अणेगविहा पण्णत्ता। तंजहा - पज्जवसंखा जाव अणुओगदारसंखा, पाहुडसंखा, पाहुडियासंखा, पाहुडपाहुडियासंखा, वत्थुसंखा। सेत्तं दिट्ठिवायसुयपरिमाणसंखा। सेत्तं परिमाणसंखा।

शब्दार्थ - **पाहुड** - प्राभृत, **वत्थु** - वस्तु।

भावार्थ - दृष्टिवादश्रुत परिमाण संख्या कितने प्रकार की कही गई है?

यह अनेक प्रकार की परिज्ञापित हुई है, यथा - पर्यव संख्या यावत् अनुयोगद्वार संख्या, प्राभृत संख्या, प्राभृतिका संख्या, प्राभृत-प्राभृतिका संख्या, वस्तु संख्या।

यह दृष्टिवाद श्रुत परिणाम संख्या का विवेचन है। इस प्रकार परिमाण संख्या का निरूपण पूर्ण होता है।

ज्ञान संख्या

से किं तं जाणणासंखा?

जाणणासंखा - जो जं जाणइ, तंजहा - सद्दं सद्दिओ, गणियं गणिओ, णिमित्तं णेमित्तिओ, कालं कालणाणी, वेज्जयं वेज्जो। सेत्तं जाणणासंखा।

शब्दार्थ - **जाणणा** - ज्ञान, **जं** - जिसको, **जाणइ** - जानता है, **सद्दं** - शब्द को, **सद्दिओ** - शाब्दिक, **गणियं** - गणित को, **वेज्जयं** - वैद्यक।

भावार्थ - ज्ञान संख्या का क्या स्वरूप है?

जो जिसका ज्ञान रखता है - जिसे जानता है, उसे ज्ञान संख्या कहते हैं। जैसे - शब्द को जानने वाला शाब्दिक, गणित को जानने वाला गणिक (गणितज्ञ), निमित्त को जानने वाला नैमित्तिक, काल को जानने वाला कालज्ञानी (कालज्ञ) और वैद्यक को जानने वाला वैद्य कहलाता है।

गणना संख्या

से किं तं गणणासंखा?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गणणासंखा - एक्कोगणणं ण उवेइ, दुप्पभिइ संखा, तंजहा - संखेज्जए, असंखेज्जए, अणंतए।

शब्दार्थ - उवेइ - प्राप्त करता है, दुप्पभिइ - द्विप्रभृति - दो आदि से।

भावार्थ - गणना संख्या का क्या स्वरूप है?

एक की संख्या गणना में नहीं आती है (केवल एक से गणना प्रारम्भ नहीं हो सकती अतः) दो आदि से प्रारम्भ करना गणना संख्या है।

विवेचन - पहले प्राकृत के **संखा** शब्द का जहाँ विवेचन हुआ है, वहाँ उसके संख्या, संख्य और शंख - तीन रूपों का उल्लेख किया गया है। इस सूत्र में गणनात्मक संख्या का विवेचन है। क्योंकि किन्हीं वस्तुओं की इयत्ता, परिमाण या तादाद संख्या से ही ज्ञात होती है। संख्या द्वारा ही जागतिक जीवन में सब प्रकार का आदान-प्रदान चलता है। वैसे सामान्यतः संख्या का प्रारम्भ एक से होता है और लौकिक दृष्टि से वह सामान्यतः दश शंख तक जाता है और आगे संख्यात की अनेक कोटियाँ बनती जाती हैं। इस सूत्र में एक को गणना में स्वीकार न करने का जो उल्लेख किया गया है, उसका एक विशेष आशय है।

वह (एक) संख्या तो है किन्तु गणना में नहीं आती क्योंकि उदाहरणार्थ - कोई एक वस्तु पड़ी हो तो वस्तु पड़ी है, ऐसा कहा जाता है क्योंकि उसके अतिरिक्त और वस्तु नहीं है, इसलिए एक का, कहे बिना ही वस्तु मात्र के साथ अन्तर्भाव हो जाता है। पारस्परिक आदान-प्रदान में, व्यवहार में एक वस्तु प्रायः गणना का विषयभूत नहीं होते। इसलिए गणना में उसे असंव्यवहार्य कहा गया है। यह गणनात्मक संख्या संख्येय असंख्येय और अनंत के भेद से तीन प्रकार की है।

संख्यात के भेद

से किं तं संखेज्जए?

संखेज्जए तिविहे पण्णत्ते। तंजहा - जहण्णए १ उक्कोसए २ अजहण्णमणुक्कोसए ३।

शब्दार्थ - अजहण्णमणुक्कोसए - अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम)।

भावार्थ - संख्यात कितने प्रकार का होता है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यह जघन्य संख्यात, उत्कृष्ट संख्यात और अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) संख्यात के रूप में तीन प्रकार का प्रतिपादित किया गया है।

असंख्यात के भेद

से किं तं असंखेज्जए?

असंखेज्जए तिविहे पण्णत्ते। तंजहा - परित्तासंखेज्जए १ जुत्तासंखेज्जए २ असंखेज्जासंखेज्जए ३।

भावार्थ - असंख्यात कितने प्रकार का होता है?

असंख्यात तीन प्रकार का प्रतिपादित हुआ है - १. परितासंख्यात २. युक्तासंख्या और असंख्यातासंख्यात।

से किं तं परित्तासंखेज्जए?

परित्तासंखेज्जए तिविहे पण्णत्ते।

तंजहा - जहण्णए १ उक्कोसेए २ अजहण्णमणुक्कोसए ३।

भावार्थ - परितासंख्यात कितने प्रकार का परिज्ञापित हुआ है?

यह - १. जघन्य परितासंख्यात २. उत्कृष्ट परितासंख्यात और ३. अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) परितासंख्यात के रूप में तीन प्रकार का बतलाया गया है।

से किं तं जुत्तासंखेज्जए?

जुत्तासंखेज्जए तिविहे पण्णत्ते।

तंजहा - जहण्णए १ उक्कोसए २ अजहण्णमणुक्कोसए ३।

भावार्थ - युक्तासंख्यात कियत् प्रकार का प्रतिपादित हुआ है?

युक्तासंख्यात तीन प्रकार का बतलाया गया है - १. जघन्य युक्तासंख्यात २. उत्कृष्ट युक्तासंख्यात और ३. अजघन्यानुत्कृष्ट (मध्यम) युक्तासंख्यात।

से किं तं असंखेज्जासंखेज्जए?

असंखेज्जासंखेज्जए तिविहे पण्णत्ते। तंजहा - जहण्णए १ उक्कोसए २ अजहण्णमणुक्कोसए ३।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - असंख्यातासंख्यात कितने प्रकार का कहा गया है?

असंख्यातासंख्यात तीन प्रकार का परिज्ञापित हुआ है - १. जघन्य २. उत्कृष्ट ३. अजघन्यानुत्कृष्ट।

से किं तं अणंतए?

अणंतए तिविहे पण्णत्ते। तंजहा - परित्ताणंतए १ जुत्ताणंतए २ अणंताणंतए३।

भावार्थ - अनंत के कितने भेद होते हैं?

अनंत के परितानंत, युक्तानंत और अनंतानंत के रूप में तीन भेद बतलाए गए हैं।

से किं तं परित्ताणंतए?

परित्ताणंतए तिविहे पण्णत्ते। तंजहा - जहण्णए १ उक्कोसए २ अजहण्णमणुक्कोसए ३।

भावार्थ - परितानंत के कितने भेद बतलाए गए हैं?

परितानंत १. जघन्य २. उत्कृष्ट और ३. अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) के रूप में तीन प्रकार का कहा गया है।

से किं तं जुत्ताणंतए?

जुत्ताणंतए तिविहे पण्णत्ते। तंजहा - जहण्णए १ उक्कोसए २ अजहण्णमणुक्कोसए ३।

भावार्थ - युक्तानंत के कितने भेद बतलाए गए हैं?

यह तीन प्रकार का परिज्ञापित हुआ है - १. जघन्य २. उत्कृष्ट और ३.अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम)।

से किं तं अणंताणंतए?

अणंताणंतए दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - जहण्णए १ अजहण्णमणुक्कोसए २।

भावार्थ - अनंतानंत कितने प्रकार का कहा गया है ?

यह दो प्रकार का बतलाया गया है - जघन्य और अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम)।

जहण्णयं संखेज्जयं केवइयं होइ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दोरूवयं। तेणं परं अजहण्णमणुक्कोसयाइं ठाणाइं जाव उक्कोसयं संखेज्जयं ण पावइ।

शब्दार्थ - **केत्तियं** - कितना, **पावइ** - प्राप्त करता है।

भावार्थ - जघन्य संख्येय - संख्यात कितना होता है?

जघन्य संख्यात दो रूप परिमित होती है। (अर्थात् न्यूनतम संख्या) में दो की गणना होती है) उसके पश्चात् (दो के बाद की संख्याओं को) यावत् उत्कृष्ट संख्यात का स्थान प्राप्त न कर ले तब तक (मध्यवर्ती संख्याएं) मध्यम संख्यात जानना चाहिए।

उक्कोसयं संखेज्जयं केवइयं होइ?

उक्कोसयस्स संखेज्जयस्स परूवणं करिस्सामि - से जहाणामए पल्ले सिया - एगं जोयणसयसहस्सं आयामविक्खंभेणं, तिण्णि जोयणसयसहस्साइं सोलससहस्साइं दोण्णि य सत्तावीसे जोयणसए तिण्णि य कोसे अट्ठावीसं च धणुसयं तेरस य अंगुलाइं अद्धं अंगुलं च किंचि विसेसाहियं परिक्खेवेणं पण्णत्ते, से णं पल्ले सिद्धत्थयाणं भरिए, तओ णं तेहिं सिद्धत्थएहिं दीवसमुद्दाणं उद्धारो घेप्पइ, एगे दीवे एगे समुद्दे एवं पक्खिप्पमाणेणं पक्खिप्पमाणेणं जावइया दीवसमुद्दा तेहिं सिद्धत्थएहिं अप्फुण्णा एस णं एवइए खेत्ते पल्ले (आइट्ठा) पढमा सलागा, एवइयाणं सलागाणं असंलप्पा लोगा भरिया तहा वि उक्कोसयं संखेज्जयं ण पावइ।

जहा को दिट्ठंतो?

से जहाणामए मंचे सिया आमलगाणं भरिए, तत्थ एगे आमलए पक्खित्ते सेऽवि माए, अण्णेऽवि पक्खित्ते सेऽवि माए, एवं पक्खिप्पमाणेणं पक्खिप्पमाणेणं होही सेऽवि आमलए जंसि पक्खित्ते से मंचए भरिज्जिहिइ, जे तत्थ आमलए ण माहिइ, एवामेव उक्कोसए संखेज्जए रूवे पक्खित्ते जहण्णयं परित्तासंखेज्जयं भवइ। तेण परं अजहण्णमणुक्कोसयाइं ठाणाइं जाव उक्कोसयं परित्तासंखेज्जयं ण पावइ।

शब्दार्थ - **सिद्धत्थयाणं** - सर्षप - सरसों, **उद्धारो घेप्पइ** - उद्धार प्रमाण निकाला जाता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है, **पक्खिप्पमाणेणं** - डाले जाते हुए, **जावइया** - जितने, **अप्फुण्णा** - स्पृष्ट हो जाएं, **एवइए** - उतने, **पढमा सलागा** - प्रथमा शलाका, **असंलप्पा** - अवर्णनीय, **जंसि** - जिसमें।

भावार्थ - उत्कृष्ट संख्यात कियत्प्रमाण होता है?

उत्कृष्ट संख्या की प्ररूपणा करूँगा - जैसे कोई यथानाम - अज्ञातनामा पल्य हो। वह एक लाख योजन लम्बा-चौड़ा तथा तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्ताईस योजन तीन कोस एक सौ अट्ठाईस धनुष एवं साढे तेरह अंगुल से कुछ अधिक परिधियुक्त हो। उस पल्य को सरसों के दोनों से भरा जाए। उन सरसों के दानों को द्वीपों और समुद्रों के उद्धार प्रमाण रूप में निकाला जाय। उन सर्षपों में से क्रमशः एक को द्वीप में, एक को समुद्र में (इस क्रम में) डालते-डालते उन दानों से जितने द्वीप-समुद्र स्पृष्ट हो जाएं, उतना क्षेत्र प्रथम पल्य शलाका है। इस प्रकार के शलाका पल्यों में भरे हुए सरसों के दाने, जिनका संलाप - वर्णन नहीं किया जा सकता, इतने लोक भरे हुए हों, तब भी उत्कृष्ट संख्यात का स्थान प्राप्त नहीं करता।

इस संदर्भ में क्या कोई दृष्टांत है?

जैसे कोई आँवलों से भरा हुआ मंच हो। उसमें यदि एक आँवला डाला जाता है तो वह समा जाता है। दूसरा आँवला डाला जाता है तो वह भी समा जाता है और भी डाले जाएँ तो वे भी समा जाते हैं। इस प्रकार डालते-डालते अंततः जब वह स्थिति आ जाती है कि एक आँवला और डालने से वह मंच (पूरी तरह) भर जाए। उसी प्रकार उस मंच में एक का (आँवले का) प्रक्षेप करने से जघन्य परित्त असंख्यात होता है।

तत्पश्चात् अजघन्य अनुत्कृष्ट (मध्यम) स्थान है यावत् उत्कृष्ट परितासंख्यात को न पा ले।

विवेचन - इस सूत्र में पल्य के साथ जो 'सलागा' शब्द का वर्णन हुआ है, उल्लेख हुआ है, वह एक विशेष भाव का द्योतक है। संस्कृत में इसका रूपान्तरण शलाका होता है। शलाका तीक्ष्ण होने के साथ-साथ स्वच्छ, निर्मल और उज्ज्वल भी होती है। इस कारण उसका लाक्षणिक प्रयोग या लक्ष्यार्थ उत्तम, श्रेष्ठ या विशिष्ट पदार्थों और पुरुषों के लिए भी हुआ है।

उदाहरणार्थ - जैन परम्परा में तिरेसठ (६३) शलाका पुरुष माने गए हैं, जिनमें चौबीस (२४) तीर्थंकर, बारह (१२) चक्रवर्ती, नौ (९) वासुदेव, नौ (९) प्रतिवासुदेव तथा नौ (९) बलदेव समाविष्ट हैं।

पल्य के साथ - शलाका शब्द का प्रयोग उसके वैशिष्ट्य का द्योतक है। एक-एक साक्षीभूत सरसों के दाने से भरे जाने के कारण, जैसा कि सूत्र में उल्लेख हुआ है, शलाका पल्य निष्पन्न होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शलाका पल्य के साथ-साथ प्रतिशलाका पल्य और महाशलाका पल्य का भी शास्त्रों में उल्लेख हुआ है। प्रतिसाक्षीभूत सरसों के दाने से भरे जाने के कारण वह प्रतिशलाका कहा जाता है। प्रत्येक बार शलाका पल्य के रिक्त होने पर एक-एक सरसों का दाना प्रतिशलाका पल्य में डाला जाता है। प्रतिशलाका पल्य में प्रक्षिप्त सरसों के दानों की संख्या से यह विदित होता है कि इतनी बार शलाका पल्य भरा जा चुका है। महासाक्षीभूत सरसों के दानों से भरे जाने के कारण उसकी महाशलाका पल्य संज्ञा है। प्रतिशलाका पल्य के एक-एक बार भरे जाने और उसके रिक्त हो जाने पर एक-एक सरसों का दाना महाशलाका पल्य में डाला जाता है, इससे यह परिज्ञात होता है कि प्रतिशलाका पल्य इतनी बार भरा गया।

सर्षप कणों के माप के लिए एवं उससे उत्कृष्ट संख्याता की राशि का ज्ञान करने के लिए यहाँ पर टीका में एवं कर्मग्रन्थ भाग ४ में चार पल्यों के वर्णन से समझाया गया है। वे चार पल्य इस प्रकार हैं - १. अनवस्थित (एक सरीखा नहीं रह कर क्रमशः आगे-आगे विस्तृत परिमाण वाला होने से) २. शलाका (साक्षी भूत सर्षप कण) ३. प्रतिशलाका तथा ४. महाशलाका। ये पल्य (कुएँ) एक-एक लाख योजन के लम्बे चौड़े 'जम्बूद्वीप प्रमाण' सहस्त्र-सहस्त्र योजन के ऊंडे (गहरे) वेदिका पर्यन्त तक (साढ़े आठ योजन) प्रमाण ऊँचे। तीन लाख १६ हजार दो सौ सतावीस योजन तीन कोस एक सौ अट्ठावीस धनुष साढे तेरह अंगुल झाझेरी परिधि वाले जानें। (३१६२२७ योजन, ३ कोस, १२८ धनुष, १३॥ झाझेरी परिधि) इन चारों में से सर्वप्रथम - प्रथम पल्य को शिखायुक्त (८॥ योजन ऊँचाई में) सर्षपों (सरसों के दानों) से भरे। फिर उन सर्षपों के भरे हुए पल्य को असत्कल्पना से कोई देवादि उठाकर जम्बूद्वीप से प्रारम्भ (शुरू) करके एक सर्षप का दाना एक द्वीप, एक समुद्र में डाले। इस प्रकार डालते-डालते जिस द्वीप या समुद्र में वह पल्य खाली हो उस द्वीप या समुद्र जितना (अर्थात् जम्बूद्वीप से उस द्वीप या समुद्र की जितनी लम्बाई है - उतना लम्बा-चौड़ा) फिर (दूसरी बार) अनवस्थित पल्य कल्पित(बना) कर उसे वापिस अन्य सर्षपकणों से भरे। बाद में 'दूसरे शलाका' पल्य में 'प्रथम शलाका' डाले. (यह 'शलाका' अन्य सर्षपराशि में से लेकर डालना। अनवस्थित पल्य में भरे हुए में से नहीं डालना) फिर अनवस्थित को उठावे - पूर्वोक्त रीति से डाले। जहाँ खाली होवे वहाँ उतना बड़ा अनवस्थित पल्य बना के भरे और दूसरी शलाका 'शलाका पल्य' में डाले एवं शलाका पल्य भरने पर अनवस्थित पल्य को भरकर रख दें और शलाका पल्य को उठाकर आगे के द्वीप समुद्रों में डाले। खाली होने पर 'एक प्रतिशलाका' प्रतिशलाका पल्य में डाले.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुनः पूर्वोक्त रीति से अनवस्थित शलाका भरने पर शलाका पल्य को उठावे। खाली करके पुनः एक सर्षप प्रतिशलाका में डाले, एवं पूर्वोक्त रीति से तीनों पल्य भरने पर प्रतिशलाका को उठावे- खाली करके एक 'महाशलाका' महाशलाका पल्य में डाले एवं प्रथम से दूसरे को, दूसरे से तीसरे को, तीसरे से चौथे को भरे। चौथा भर जाने पर फिर पूर्वोक्त रीति से तीसरे, दूसरे और प्रथम को भर देना, चारों पल्य भर देने पर चौथे पल्य को नहीं उठाना। इन चारों पल्य के सर्षप और तीनों पल्य के जरिये जो द्वीप समुद्रों में व्याप्त सर्षप हैं उन सब को इकट्ठा करने से एक सर्षप अधिक उत्कृष्ट संख्याता है। अर्थात् उस सम्पूर्ण राशि में से एक सर्षप कम करने से उत्कृष्ट संख्याता होते हैं और एक सर्षप कम नहीं करे तो 'जघन्य परित्त असंख्याता' होते हैं। [यह उत्कृष्ट संख्याता इस प्रकार से ही कहे जाते हैं क्योंकि यह राशि शीर्ष पहेलिका (गिनती की संख्याओं में सबसे अंतिम संख्या - इसके बाद तो औपमिक राशियें कही जाती हैं) रूप राशि से भी अतिबहूसमतिक्रान्त (बहुत आगे जाने पर आने वाली) है, अतः प्रकारान्तर से नहीं कही जा सकती है।]

उक्कोसयं परित्तासंखेज्जयं केवइयं होइ?

जहण्णयं परित्तासंखेज्जयं जहण्णयं परित्तासंखेज्जयमेत्ताणं रासीणं अण्णमण्णब्भासो रूवूणो उक्कोसं परित्तासंखेज्जयं होइ। अहवा जहण्णयं जुत्तासंखेज्जयं रूवूणं उक्कोसयं परित्ता संखेज्जयं होइ।

शब्दार्थ - **रूवूणो** - एक कम - एक को कम करने पर।

भावार्थ - उत्कृष्ट परित्ता संख्यात कितना - कियत् प्रमाण होता है?

जघन्य परित्ता संख्यात का जघन्य परित्ता संख्यात से गुणन करके उसमें से एक कम कर देने पर उत्कृष्ट परित्ता संख्यात होता है। अथवा एक कम जघन्य युक्तासंख्यात जितना एक उत्कृष्ट परित्ता संख्यात होता है।

युक्ता संख्यात

जहण्णयं जुत्तासंखेज्जयं केवइयं होइ?

जहण्णयपरित्तासंखेज्जयमेत्ताणं रासीणं अण्णमण्णब्भासो पडिपुण्णो जहण्णयं जुत्तासंखेज्जयं होइ। अहवा उक्कोसए परित्तासंखेज्जए रूवं पक्खित्तं जहण्णयं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जुत्तासंखेज्जयं होइ। आवलिया वि तत्तिया चेव। तेण परं अजहण्णमणुक्कोसयाइं ठाणाइं जाव उक्कोसयं जुत्तासंखेज्जयं ण पावइ।

शब्दार्थ - **पडिपुण्णो** - प्रतिपूर्ण, **तत्तिया** - उतनी ही।

भावार्थ - जघन्य युक्ता संख्यात का कितना प्रमाण है?

जघन्य परित्ता संख्यात राशि का जघन्य परित्ता संख्यात राशि से गुणन करने से प्राप्त संख्या जघन्य युक्तासंख्यात का प्रमाण है।

अथवा उत्कृष्ट परित्ता संख्यात के परिमाण में एक जोड़ने से जघन्य युक्तासंख्यात होता है। एक आवलिका के समयों की राशि भी उतनी ही जघन्य युक्तासंख्यात तुल्य होती है। तदनन्तर जघन्य युक्तासंख्यात से आगे यावत् जहाँ तक उत्कृष्ट युक्ता संख्यात प्राप्त न हो, उतना मध्यम युक्ता संख्यात होता है।

उक्कोसयं जुत्तासंखेज्जयं केवइयं होइ?

जहण्णएणं जुत्तासंखेज्जएणं आवलिया गुणिया अण्णमण्णब्भासो रूवूणो उक्कोसयं जुत्तासंखेज्जयं होइ। अहवा जहण्णयं असंखेज्जासंखेज्जयं रूवूणं उक्कोसयं जुत्तासंखेज्जयं होइ।

भावार्थ - उत्कृष्ट युक्तासंख्यात का प्रमाण कितना होता है?

जघन्य युक्तासंख्यात राशि को आवलिका से - जघन्य युक्तासंख्यात से गुणन करने पर जो राशि प्राप्त होती है, उसमें से एक कम उत्कृष्ट युक्तासंख्यात होता है। अथवा जघन्य असंख्याता - संख्यात राशि में से एक कम कर देने पर उत्कृष्ट युक्तासंख्यात होता है।

असंख्यातासंख्यात का निरूपण

जहण्णय असंखेज्जासंखेज्जयं केवइयं होइ?

जहण्णएणं जुत्तासंखेज्जएणं आवलिया गुणिया अण्णमण्णब्भासो पडिपुण्णो जहण्णयं असंखेज्जासंखेज्जयं होइ। अहवा उक्कोसए जुत्तासंखेज्जए रूवं पक्खित्तं जहण्णयं असंखेज्जासंखेज्जयं होइ। तेण परं अजहण्णमणुक्कोसयाइं ठाणाइं जाव उक्कोसयं असंखेज्जासंखेज्जयं ण पावइ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - जघन्य असंख्यातासंख्यात कितना - कियत् प्रमाण होता है?

जघन्य युक्तासंख्यात के साथ आवलिका की राशि का गुणन करने से प्राप्त परिपूर्ण संख्या जघन्य असंख्यातासंख्यात है। अथवा उत्कृष्ट युक्तासंख्यात में एक का प्रक्षेप करने से - एक को जोड़ देने से जघन्य असंख्यातासंख्यात होता है। तदनन्तर अजघन्य-अनुत्कृष्ट - मध्यम स्थान यावत् - जब तक असंख्यातासंख्यात प्राप्त नहीं होता अर्थात् उसके प्राप्त होने के पूर्व तक मध्यम स्थान होते हैं।

उक्कोसयं असंखेज्जासंखेज्जयं केवइयं होइ?

जहण्णयं असंखेज्जासंखेज्जयमेत्ताणं रासीणं अण्णमण्णब्भासो रूवूणो उक्कोसयं असंखेज्जासंखेज्जयं होइ। अहवा जहण्णयं परित्ताणंतयं रूवूणं उक्कोसयं असंखेज्जासंखेज्जयं होइ।

भावार्थ - उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात का कितना प्रमाण होता है?

जघन्य असंख्यातासंख्यात मात्र राशि का उसी से - जघन्य असंख्यातासंख्यात से गुणन करने से प्राप्त राशि में से एक कम कर देने पर जो राशि प्राप्त होती है, वह उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात है अथवा जघन्य परित्तासंख्यात से एक कम उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात का प्रमाण है।

विवेचन - कर्मग्रन्थ के अभिप्राय से उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात का स्वरूप इस तरह से बताया गया है - जैसे - जघन्य असंख्यातासंख्यात की राशि का तीन बार वर्ग करना (जैसे - दो को तीन बार वर्ग करने पर २५६ होते हैं - १. २×२=४, २. ४×४=१६, ३. १६×१६=२५६) फिर (प्रत्येक असंख्याता स्वरूप) दस राशियें उसमें मिलाना। तद्यथा - दो गाथाएँ -

"लोगागासपएसा, धम्माधम्मेग जीव देसा य।
दव्वट्ठियानिओआ, पत्तेया चेव बोद्धव्वा॥१॥
ठिइबंधज्झवसाणा, अणुभागा जोगछेय पलिभागा।
दोण्ह य समाण समया, असंखपक्खेवया दसउ॥२॥"

(१.) लोकाकाश के प्रदेश (२. ३. ४.) धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, एक जीव के प्रदेश (५.) सूक्ष्म बादर निगोद (अनंतकायिक वनस्पति जीवों के शरीर) (अठाणु बोल के ५४, ६०, ७२, ७३वें बोल जितने।) (६.) प्रत्येक शरीरी सर्व जीव (अठाणु बोल के १ से ७१ तक के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बोल ५४, ६०वां निकालकर) (७.) स्थितिबंध के कारणभूत अध्यवसाय स्थान (८.) अनुभागबंध के कारणभूत अध्यवसाय स्थान (९.) योगच्छेद प्रतिभाग (१०.) उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी (कालचक्र) के समय। इन दशों को मिलाने पर जो इकट्ठी बड़ी राशि होवे उसको फिर पूर्ववत् (पहले की तरह) तीन बार वर्गित कर एक रूप न्यून करने से 'उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात' होते हैं।

परित्तानन्त का वर्णन

जहण्णयं परित्ताणंतयं केवइयं होइ?

जहण्णयं असंखेज्जासंखेज्जयमेत्ताणं रासीण अण्णमण्णब्भासो पडिपुण्णो जहण्णयं परित्ताणंतयं होइ। अहवा उक्कोसए असंखेज्जासंखेज्जए रूवं पक्खित्तं जहण्णयं परित्ताणंतयं होइ। तेण परं अजहण्णमणुक्कोसयाइं ठाणाइं जाव उक्कोसयं परित्ताणंतयं ण पावइ।

भावार्थ - जघन्य परित्तानन्त का कितना प्रमाण है?

जघन्य असंख्यातासंख्यात राशि का उसी से - जघन्य असंख्यातासंख्यात राशि से गुणन करने पर प्राप्त परिपूर्ण राशि जघन्य परित्तानंत का प्रमाण है।

अथवा उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात में एक का प्रक्षेप करने से भी, जोड़ने पर भी जघन्य परित्तानन्त होता है। तत्पश्चात् यावत् उत्कृष्ट परित्तानन्त का स्थान प्राप्त न होने तक अर्थात् उससे पूर्व तक अजघन्य-अनुत्कृष्ट - मध्यम परित्तानन्त के स्थान होते हैं।

उक्कोसयं परित्ताणंतयं केवइयं होइ?

जहण्णयपरित्ताणंतयमेत्ताणं रासीणं अण्णमण्णब्भासो रूवूणो उक्कोसयं परित्ताणंतयं होइ। अहवा जहण्णयं जुत्ताणंतयं रूवूणं उक्कोसयं परित्ताणंतयं होइ।

भावार्थ - उत्कृष्ट परित्तानन्त का कितना प्रमाण है?

जघन्य परित्तानन्त की राशि को उसी से - जघन्य परित्तानन्त की राशि से गुणित करने पर जो राशि प्राप्त हो उसमें से एक कम करने से प्राप्त राशि उत्कृष्ट परित्तानन्त का प्रमाण है।

अथवा जघन्य युक्तानन्त की राशि में से एक कम करने से भी उत्कृष्ट परित्तानन्त की राशि निष्पन्न होती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

युक्तानन्त का स्वरूप

जहण्णयं जुत्ताणंतयं केवइयं होइ?

जहण्णयपरित्ताणंतयमेत्ताणं रासीणं अण्णमण्णब्भासो पडिपुण्णो जहण्णयं जुत्ताणंतयं होइ। अहवा उक्कोसए परित्ताणंतए रूवं पक्खित्तं जहण्णयं जुत्ताणंतयं होइ। अभवसिद्धिया वि तत्तिया होंति। तेण परं अजहण्णमणुक्कोसयाइं ठाणाइं जाव उक्कोसयं जुत्ताणंतयं ण पावइ।

भावार्थ - जघन्य युक्तानंत कियत्प्रमाण होता है?

जघन्य परित्तानन्त मात्र राशि को उसी राशि से गुणित करने से प्राप्त प्रतिपूर्ण राशि जघन्य युक्तानन्त है।

अथवा उत्कृष्ट परित्तानन्त राशि में एक को प्रक्षिप्त कर देने पर - जोड़ने पर जघन्य युक्तानन्त राशि प्राप्त होती है।

अभवसिद्धिक - अभव्य जीव भी उतने ही जघन्य युक्तानन्त परिमित होते हैं। तत्पश्चात् अजघन्य-अनुत्कृष्ट - मध्यम स्थान यावत् उत्कृष्ट युक्तानन्त के प्राप्त न होने तक - अर्थात् उससे पूर्व तक हैं।

उक्कोसयं जुत्ताणंतयं केवइयं होइ?

जहण्णएणं जुत्ताणंतएणं अभवसिद्धिया गुणिया अण्णमण्णब्भासो रूवूणो उक्कोसयं जुत्ताणंतयं होइ। अहवा जहण्णयं अणंताणंतयं रूवूणं उक्कोसयं जुत्ताणंतयं होइ।

भावार्थ - उत्कृष्ट युक्तानंत कियत्प्रमाण होता है?

जघन्य युक्तानन्त राशि को अभवसिद्धिक जीव राशि के साथ गुणित करने पर प्राप्त राशि में से एक को कम कर देने पर जो राशि प्राप्त होती है, वह उत्कृष्ट युक्तानंत है।

अथवा एक कम जघन्य अनन्तानन्त उत्कृष्ट युक्तानन्त है।

अनन्तानन्त का निरूपण

जहण्णयं अणंताणंतयं केवइयं होइ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जहण्णएणं जुत्ताणंतएणं अभवसिद्धिया गुणिया अण्णमण्णब्भासो पडिपुण्णो जहण्णयं अणंताणंतयं होइ। अहवा उक्कोसए जुत्ताणंतए रूवं पक्खित्तं जहण्णयं अणंताणंतयं होइ। तेण परं अजहण्णमणुक्कोसयाइं ठाणाइं। सेत्तं गणणासंखा।

भावार्थ - जघन्य अनन्तानन्त का कितना प्रमाण है?

जघन्य युक्तानन्त को अभवसिद्धिक जीव राशि के साथ गुणित करने पर प्राप्त प्रतिपूर्ण राशि जघन्य अनंतानंत का प्रमाण है।

अथवा उत्कृष्ट युक्तानन्त में एक को प्रक्षिप्त करने से - जोड़ने से निष्पन्न राशि जघन्य अनंतानंत है। तदनन्तर अजघन्य-अनुत्कृष्ट - मध्यम अनंतानंत के स्थान होते हैं।

इस प्रकार गणनासंख्या का विवेचन परिसमाप्त होता है।

विवेचन - इस सूत्र में अनंतानंत संख्या के जघन्य तथा अजघन्य-अनुत्कृष्ट - मध्यम भेदों का वर्णन किया गया है। उत्कृष्ट अनंतानंत संख्या की चर्चा नहीं है, क्योंकि अनन्तानन्त की कोटियाँ आगे से आगे बढ़ती रहती है। उस वृद्धि की कोई इयत्ता नहीं है, अतः अनन्तानन्त का उत्कृष्ट रूप असंभावित है।

कर्मग्रन्थ आदि के अभिप्राय से उत्कृष्ट अनन्तानन्त का स्वरूप इस प्रकार बताया गया है- 'जघन्य अनंत अनंत' की राशि का तीन बार वर्ग करना फिर उसमें छह अनन्त (प्रत्येक अनंत अनंत स्वरूप) राशियों को मिलाना। तद्यथा - १. गाथा -

"सिद्धा निगोय जीवा, वणस्सई काल पुग्गला चेव।
सव्वमलोगागासं* छप्पेते अणंत पक्खेवा"॥१॥

अर्थ - १. सिद्ध जीव (अठाणु बोल के ७९वें बोल जितने) २. निगोदिया जीव (अठाणु बोल के ८८वें बोल जितने) ३. वनस्पतिकाय के जीव (अठाणु बोल के ८९वें बोल जितने) ४. काल (अढ़ाई द्वीपवर्ती जीवों और पुद्‌गलों की सभी पर्यायों पर वर्तने वाला वर्तमान का एक समय-अद्धासमय) ५. पुद्‌गलास्तिकाय के सभी प्रदेश ६. सम्पूर्ण अलोकाकाश के प्रदेश (या पाठांतर से-सम्पूर्ण आकाशास्तिकाय के प्रदेश)॥ इन छह अनंतों को मिलाने पर जो राशि होवे उसको फिर तीन बार वर्गित करना। तो भी 'उत्कृष्ट अनन्त अनन्त' नहीं होते हैं। फिर उनमें केवलज्ञान केवलदर्शन की पर्याय मिलाना इस प्रकार करने से 'उत्कृष्ट अनंत अनंत' होते हैं।

* (पाठान्तर - सव्वागासपएसं)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्योंकि इसमें सर्ववस्तु संग्रहित हो चुकी है। इसके उपरान्त जो वस्तु गिने तो सर्वथापि नहीं है। परन्तु सूत्र (शास्त्र) के अभिप्राय से तो 'उत्कृष्ट अनंत अनंत नहीं' होते हैं। अतः (इसलिए) सूत्र में जहाँ कहीं भी 'अनंत अनंत' का ग्रहण है, वहाँ 'मध्यम अनंत अनंत' ही समझें।

भावसंख्या का विवेचन

से किं तं भावसंखा?

भावसंखा - जे इमे जीवा संखगइणामगोत्ताइं कम्माइं वेदेंति। सेत्तं भावसंखा। सेत्तं संखापमाणे। सेत्तं भावप्पमाणे।

सेत्तं पमाणे। पमाणे त्ति पयं समत्तं॥

भावार्थ - भावसंख्या का क्या स्वरूप है?

इस लोक में जो जीव शंख गति-नाम-गोत्र कर्मादि का वेदन करते हैं, वे भाव शंख हैं। यही भावसंख्या है, यही शंख प्रमाण है।

इस प्रकार भावप्रमाण विषयक निरूपण परिसमाप्त होता है।

यह प्रमाणद्वार की वक्तव्यता है।

इस प्रकार प्रमाण पद परिसमाप्त होता है।

विवेचन - इस सूत्र में शंख के साथ गति, नाम एवं गोत्र का प्रयोग हुआ है। जिनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है -

'गम्यते यथा सा गति' - जिसके द्वारा गमन किया जाता है - जाना होता है - उसे गति कहते हैं। यहाँ गति का प्रयोग साधारण रूप से जाने के अर्थ में नहीं है किन्तु एक जीव के मर कर दूसरी योनि में जाने से है। यह गति - विन्यास जीव के अपने द्वारा बद्ध कर्मों के अनुसार होता है। कर्मबद्ध, समग्र संसारी जीवों का नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव इन चार गतियों में समावेश होता है। पशु-पक्षी आदि जीव तिर्यंच कहे जाते हैं, उनके अनेक भेद हैं। वे एकेन्द्रिय से लेकर पञ्चेन्द्रिय तक विविध रूपों में विद्यमान रहते हैं। शंख तिर्यंचयोनिक जीव हैं। उसके स्पर्शन व रसन दो इन्द्रियाँ होती हैं, इसलिए वह द्वीन्द्रिय कहा जाता है।

नाम शब्द यहाँ आठ कर्मों में से नामकर्म के अर्थ में प्रयुक्त है। नाम कर्म के उदय से जीव विविध प्रकार के शरीर, भिन्न-भिन्न रूप एवं तरह-तरह के अंगोपांग आदि प्राप्त करता है। शंख का रूप एवं शरीर नामकर्म के उदय से जनित है। गोत्र शब्द भी यहाँ आठ कर्मों में से

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोत्र कर्म के लिए प्रयुक्त है। गोत्र कर्म के उदय से जीव सुभग - उत्तम दृष्टि से देखे जाने वाले तथा दुर्भग - तुच्छ या हीन दृष्टि से देखे जाने वाले और उच्च, नीच आदि बनते हैं।

गोत्र कर्म यहाँ शंख के साथ उसके व्यक्तित्वानुरूप भाव से जुड़ा है।

(१४८)

वक्तव्यता के भेद

से किं तं वत्तव्वया?

वत्तव्वया तिविहा पण्णत्ता। तंजहा - ससमयवत्तव्वया १ परसमयवत्तव्वया २ ससमयपरसमयवत्तव्वया ३।

शब्दार्थ - **वत्तव्वया** - वक्तव्यता, **ससमयवत्तव्वया** - अपने सिद्धांत के अनुरूप कथन-प्रतिपादन, **परसमयवत्तव्वया** - दूसरों के सिद्धांत के अनुसार प्रतिपादन।

भावार्थ - वक्तव्यता के कितने प्रकार हैं?

वक्तव्यता तीन प्रकार की कही गई है, जैसे - १. स्वसमय वक्तव्यता २. परसमय वक्तव्यता तथा ३. स्वसमय-परसमय-वक्तव्यता।

विवेचन - वक्तव्य शब्द वच् धातु के आगे तव्यत् प्रत्यय लगाने से निष्पन्न होता है। इस प्रकार यह तव्यत् प्रत्ययान्त कृदन्त रूप है। वच् धातु बोलने के अर्थ में है। **"वक्तुं योग्यं - वक्तव्यम्"** अर्थात् जो बोलने योग्य, कथन करने योग्य होता है, उसे वक्तव्य कहा जाता है।

वक्तव्यस्य भावो वक्तव्यता - वक्तव्य के आगे भाववाचक 'ता' प्रत्यय जोड़ने से वक्तव्यता रूप बनता है। जिसका अर्थ अपेक्षित भाव का कथन, प्रतिपादन या निरूपण है।

से किं तं ससमयवत्तव्वया?

ससमयवत्तव्वया - जत्थ णं ससमए आघविज्जइ, पण्णविज्जइ, परूविज्जइ, दंसिज्जइ, णिदंसिज्जइ, उवदंसिज्जइ। सेत्तं ससमयवत्तव्वया।

भावार्थ - स्वसमय वक्तव्यता का क्या स्वरूप है?

जहाँ (अविसंवादपूर्वक) अपने सिद्धान्त का आख्यान, प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निर्दर्शन एवं उपदर्शन किया जाता है, उसे स्वसमय-वक्तव्यता कहा जाता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यह स्वसमय-वक्तव्यता का स्वरूप है।

विवेचन - इस सूत्र में स्वसमय वक्तव्यता के क्रमशः विशदतामूलक स्पष्टीकरण की प्रक्रिया का वर्णन है जो लगभग सामान्य रूप से समानार्थक प्रतीयमान किन्तु सूक्ष्मता की हानि से विशदीकरण की तरतमता से युक्त विविध क्रियाओं द्वारा व्यक्त किया गया है।

उनका आशय इस प्रकार है - **आघविज्जइ - आख्यायतेऽनेन इति आख्यानम्।** सामान्य रूप से कथन करना आख्यान है। जैसे - धर्म, अधर्म, आकाश, जीव तथा पुद्गल अस्तिकाय है।

पण्णविज्जइ - प्रकर्षेण व्यज्यते ज्ञाप्यते वाऽनेन इति प्रव्यंजनं प्रज्ञापनं वा। जिसके द्वारा विवेच्य विषय को प्रकृष्ट रूप में या पृथक्-पृथक् विवेचन किया जाता है, उसे प्रव्यंजन या प्रज्ञापन कहा जाता है। यहाँ यह ज्ञातव्य है कि व्यंजन और व्यंजना शब्द एकार्थक हैं, जिनका अर्थ व्यक्त करना है।

धर्मास्तिकाय आदि के लक्षणों का पृथक्-पृथक् विवेचन करना प्रज्ञापन के अन्तर्गत है, जैसे जो जीव और पुद्गल की गति में निरपेक्ष रूप से सहायक हो, वह धर्मास्तिकाय इत्यादि।

परूविज्जइ - "प्रकर्षेण रूप्यते विस्तीर्यतेऽनेन इति प्ररूपणम्" - किसी अधिकृत विषय की विस्तार पूर्वक विवेचना या व्याख्या करना प्ररूपण है।

उदाहरणार्थ - धर्मास्तिकाय के असंख्यात प्रदेश हैं। आकाशास्तिकाय के अनंत प्रदेश हैं, इत्यादि।

दंसिज्जइ - 'दृश्यतेऽनेन इति दर्शनम्' - जहाँ दृष्टान्त आदि द्वारा सिद्धान्त को स्पष्ट किया जाता है, उसे दर्शन कहा जाता है। जैसे - धर्मास्तिकाय को समझाने में स्थूल दृष्टि से मछलियों के चलने में जल के सहायकत्व का उदाहरण दिया जाता है।

णिदंसिज्जइ - 'निर्दृश्यतेऽनेन इति निर्दर्शनम्' - विवेच्य विषय के स्वरूप का उपनय द्वारा निरूपण करना निर्दर्शन है। *जैसे पानी मछली की गति में सहायक है, वैसे ही धर्मास्तिकाय जीवों और पुद्गलों की गति में सहायक है।*

उवदंसिज्जइ - 'उपदृश्यतेऽनेन इति उपदर्शनम्' - विवेच्य - विषयमूलक समग्र कथन का उपसंहार करते हुए सिद्धान्त को स्थापित करना उपदर्शन है। जैसे - एवंविध (इस प्रकार के) स्वरूप युक्त द्रव्य धर्मास्तिकाय है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परसमयवक्तव्यता

से किं तं परसमयवत्तव्वया?

परसमयवत्तव्वया - जत्थ णं परसमए आघविज्जइ जाव उवदंसिज्जइ। सेत्तं परसमयवत्तव्वया।

भावार्थ - परसमय वक्तव्यता का क्या स्वरूप है?

जिस वक्तव्यता द्वारा अन्य मतों के सिद्धान्तों का आख्यान, कथन यावत् उपदर्शन किया जाता है, वह परसमय वक्तव्यता है।

विवेचन - तत्त्व विश्लेषण में अपने सिद्धान्तों का तो वर्णन होता ही है, पूर्वपक्ष के रूप में अन्य मतों के सिद्धांत भी वर्णित किए जाते हैं क्योंकि पूर्वपक्ष के निरसन बिना स्वसिद्धांत का सम्यक् संस्थापन, परिष्ठापन नहीं होता। परिज्ञापन की दृष्टि से ऐसा करना अनुचित नहीं माना जाता। जैन दर्शन का यह बड़ा ही उत्तम दृष्टिकोण है कि अध्येता की दृष्टि यदि सम्यक् है तो उस द्वारा पठित, अधीत मिथ्या दर्शनमूलक सिद्धांत या वाङ्मय भी सम्यक् हो जाता हैं। अर्थात् उनके सहारे वह अपने सत्य सिद्धान्तों को सुदृढ़ बनाता है। उनका अध्ययन उसके लिए हानिप्रद नहीं होता।

जिसकी दृष्टि असम्यक् या मिथ्या है, वह यदि सर्वज्ञ सर्वदर्शी तीर्थंकर देव द्वारा प्ररूपित सिद्धान्तों को भी पढ़ता है तो उसके लिए वह मिथ्या होते हैं क्योंकि अपनी दृष्टि के विपर्यास के कारण वह उन्हें असत् रूप में गृहीत करता है। यही कारण है कि जैन आगमों एवं शास्त्रों में अन्य मत के सिद्धान्तों का भी पूर्वपक्ष के परिज्ञापन की दृष्टि से विवेचन प्राप्त होता है।

उदाहरणार्थ - द्वादशांगी के द्वितीय अंग सूत्रकृताङ्ग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कंध के प्रथम अध्ययन के प्रथम उद्देशक में परसमय - अन्य मतों या दर्शनों का जो वर्णन आया है, वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

इस उद्देशक की छठी गाथा आगे वर्णित किए जाने वाले पूर्वपक्षमूलक सिद्धान्तों की प्रस्तावना के रूप में रचित है। कहा गया है -

एए गंथे विउक्कम्म, एगे समणमाहणा।
अयाणंता विउस्सित्ता, सत्ता कामेहिं माणवा॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यद्यपि 'श्रमण' शब्द का प्रयोग आज जैन और बौद्ध आदि दोनों के लिए होता है किन्तु यहाँ आया हुआ श्रमण शब्द श्रमण परंपरावर्ती अजितकेशकंबल, संजयवेलट्ठिपुत्र, प्रकुदकात्यायन, गौतमबौद्ध आदि सबके लिए है। माहण शब्द का प्रयोग ब्राह्मण परंपरा के अनुयायी, अद्वैतसिद्धांतवादी, बार्हस्पत्यदर्शनानुयायी साधकों के लिए हुआ है। इन्हें इस गाथा में आर्हत् सिद्धांत का उल्लंघन कर अपने-अपने सिद्धान्तों में अनुबद्ध अज्ञानी एवं काम-भोगासक्त बतलाया गया है। अर्थात् ये परमतवादी थे, जैन दर्शन में इनकी आस्था नहीं थी।

आगे सातवीं गाथा से उन्नीसवीं गाथा तक जैनेतर वादों का निरूपण हुआ है। सूत्रकृतांग के सुप्रसिद्ध टीकाकार आचार्य शीलांक ने अपनी टीका में पंचभूतवादी (चार्वाक), आत्मषष्ठवादी (पंचभूतों के साथ-साथ आत्मा को मानने वाले) एकान्तवादी, ब्रह्माद्वैतवादी, पंचस्कंधवादी, चतुर्धातुवादी, क्षणिकवादी प्रभृति विभिन्न सैद्धान्तिकों का विस्तार से वर्णन किया है। यहाँ दर्शन विशेष का नाम तो नहीं लिया गया है किन्तु वादों का संक्षेप में उल्लेख किया गया है। यह दार्शनिक दृष्टि से परिपूर्ण तो नहीं है किन्तु इससे इतना अवश्य पता चलता है कि उस समय इन सिद्धान्तों पर विश्वास करने वाले विविध मतानुयायी भिक्षु, साधु और उनके अनुयायी थे।

आचार्य शीलांक ने इन वादों को चार्वाक, न्याय, वैशेषिक, सांख्य, अद्वैतवाद आदि के साथ योजित करने का प्रयास किया है। इन वादों में वर्णित सिद्धांतों की शब्दावली, निरूपण शैली आदि से यह प्रकट होता है कि तब तक विभिन्न दर्शन व्यवस्थित, सुप्रतिष्ठित रूप प्राप्त नहीं कर सके थे, विकीर्ण रूप में उनके सिद्धांत फैले हुए थे। जिनका आचार्य, साधु उपदेश करते थे।

इस उद्देशक की बीसवीं से पच्चीसवीं गाथा तक इन सिद्धांतों में आस्थावान पुरुषों को यथार्थ तत्त्व का स्वरूप नहीं समझने वाले, कर्मबंध की प्रक्रिया के बोध से रहित, धर्म का स्वरूप नहीं जानने वाले, मनमाने रूप में क्रियाएँ करने वाले कहा है। अंततः कहा है - वे गर्भ के, जन्म के, मृत्यु के पार नहीं जा सकते, जन्म-मरण से नहीं छूट सकते। आवागमन में भटकते रहते हैं। यह परसमय है।

स्वसमय-परसमय वक्तव्यता

से किं तं ससमयपरसमयवत्तव्वया?

ससमयपरसमयवत्तव्वया - जत्थ णं ससमए परसमए आघविज्जइ जाव उवदंसिज्जइ। सेत्तं ससमयपरसमयवत्तव्वया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - स्वसमय-परसमयवक्तव्यता का क्या स्वरूप है?

जिसमें स्वसमय - स्वसिद्धांत और परसमय - परसिद्धांत (दोनों का) आख्यान (कथन) यावत् उपदर्शन किया जाता है, वह स्वसमय-परसमयवक्तव्यता है।

विवेचन - एक ही विवेचन या तन्मूलक शाब्दिक विश्लेषण प्रयोक्ता के लिए स्वसमय - अपना सिद्धांत होता है तथा वही कथन इतर के लिए परसमय होता है।

उस इतर द्वारा इसका प्रयोग जब किया जाता है तब उस इतर के लिए स्व समय तथा पूर्वोक्त या अन्यों के लिए परसमय हो जाता है। इसका आशय यह है, ऐसी शब्दावली दोनों ही रूप में व्यवहृत और प्रयुक्त होती है। अर्थात् जो इसका प्रयोग करता है, उसके लिए स्वसमय रूप तथा इतर के लिए परसमय रूप होती है।

ऐसा स्व-पर-समय वक्तव्यतामूलक कथन उभयमुखता लिए होता है। क्योंकि ऐसा होने से ही स्व-पर-समय का समन्वय माना जा सकता है। अन्यथा स्वसमय और परसमय कैसे स्वीकार हो सकते हैं?

सूत्रकृतांग सूत्र प्रथम श्रुतस्कंध, प्रथम अध्ययन एवं प्रथम उद्देशक में जैनेतर मतवादियों का वर्णन हुआ है, जिनका टीकाकार शीलांकाचार्य ने टीका में पंचभूतात्मवाद, आत्माद्वैतवाद, तज्जीवतच्छरीरवाद, अकारकवाद, आत्मषष्ठवाद, क्षणिक पंचस्कंधवाद के रूप में परिचय कराया है।

इनके अंत में उसी उद्देशक में निम्नांकित गाथा का उल्लेख है -

अगारमावसंतावि अरण्णा वावि पव्वया।
इमं दरिसणमावण्णा, सव्वदुक्खा विमुच्चई॥१६॥

वे अन्य - जैनेतर दर्शनों में विश्वास रखने वाले कहते हैं कि जो अगार - घर में रहते हैं, गृहस्थ हैं, जो वन में रहते हैं, वानप्रस्थ या तापस हैं, जो प्रव्रजित हैं - प्रव्रज्या या दीक्षा लेकर मुनि के रूप में परिणत हैं, उनमें से जो भी हमारे सिद्धान्तों को स्वीकार करते हैं, वे सब प्रकार के दुःखों से छूट जाते हैं।

इस गाथा का उपर्युक्त मतवादियों में से हर कोई प्रयोग कर सकता है। वह अपने सिद्धान्तों को सब दुःखों से छुटकारा दिलाने वाला कह सकता है। उसके लिए ऐसा कहना स्वसमय है किन्तु इनसे भिन्न सिद्धांतों में विश्वास करने वाले के लिए यह परसमय है। यह तथ्य सभी मतवादियों पर लागू होता है। जो-जो इसे सिद्धांत रूप में स्वीकार करते हैं, उन-उन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के लिए स्व-स्व समय और अन्यों के लिए पर-पर समय होता है। यह गाथा स्व-परसमय-वक्तव्यता का बड़ा ही सुन्दर एवं समीचीन उदाहरण है।

वक्तव्यता : विभिन्न नयदृष्टियाँ

इयाणीं को णओ कं वत्तव्वयं इच्छइ?

तत्थ णेगमसंगहववहारा तिविहं वत्तव्वयं इच्छंति, तंजहा - ससमयवत्तव्वयं १ परसमयवत्तव्वयं २ ससमयपरसमयवत्तव्वयं ३। उज्जुसुओ दुविहं वत्तव्वयं इच्छइ, तंजहा - ससमयवत्तव्वयं १ परसमयवत्तव्वयं २। तत्थ णं जा सा ससमयवत्तव्वया सा ससमयं पविट्ठा, जा सा परसमयवत्तव्वया सा परसमयं पविट्ठा, तम्हा दुविहा वत्तव्वया, णत्थि तिविहा वत्तव्वया।

तिण्णि सद्दणया एगं ससमयवत्तव्वयं इच्छंति, णत्थि परसमयवत्तव्वया।

कम्हा?

जम्हा परसमए अणट्ठे अहेऊ असब्भावे अकिरिए उम्मग्गे अणुवएसे मिच्छादंसणमितिकट्टु। तम्हा सव्वा ससमयवत्तव्वया, णत्थि परसमयवत्तव्वया, णत्थि ससमयपरसमयवत्तव्वया। सेत्तं वत्तव्वया॥

भावार्थ - इनमें (तीनों में से) कौन नय किस वक्तव्यता को स्वीकार करता है?

नैगम, संग्रह और व्यवहारनय तीनों प्रकार की वक्तव्यता को स्वीकार करते हैं, यथा - स्वसमय वक्तव्यता, परसमय वक्तव्यता और स्वसमय-परसमय-वक्तव्यता।

ऋजुसूत्रनय दो प्रकार की वक्तव्यता स्वीकार करता है -

१. स्वसमय वक्तव्यता और २. परसमय वक्तव्यता।

(क्योंकि) जो (स्वसमय-परसमय वक्तव्यता रूप तृतीय भेद में स्थित) स्वसमय वक्तव्यता है, वह प्रथम भेद स्वसमय वक्तव्यता में और (तृतीय भेद में स्थित) परसमय वक्तव्यता द्वितीय भेद परसमय वक्तव्यता में अन्तर्भूत हो जाती है। इसी कारण वक्तव्यता द्विविध है, त्रिविध नहीं।

तीनों (शब्द, समभिरूढ़ तथा एवंभूत) शब्द नय एक स्वसमयवक्तव्यता को ही स्वीकार करते हैं, परसमय वक्तव्यता को नहीं मानते क्योंकि परसमय में अनर्थ, अहेतु, असद्भाव,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अक्रिय, उन्मार्ग और अनुपदेश (विपरीत उपदेश) और मिथ्यादर्शन आदि (का संग्रह) होता है। इसलिए स्वसमयवक्तव्यता ही होती है। न तो परसमयवक्तव्यता ही होती है और न स्वसमय-परसमय-वक्तव्यता होती है।

इस प्रकार वक्तव्यता का निरूपण परिसमाप्त होता है।

(१४६)

अर्थाधिकार विवेचन

से किं तं अत्थाहिगारे?

अत्थाहिगारे - जो जस्स अज्झयणस्स अत्थाहिगारो, तंजहा -

गाहा - सावज्जजोगविरई, उक्कित्तण गुणवओ य पडिवत्ती।
खलियस्स णिंदणा वण-तिगिच्छ गुणधारणा चेव॥१॥

सेत्तं अत्थाहिगारे।

शब्दार्थ - **गुणवओ** - गुणवान्, **पडिवत्ती** - प्रतिपत्ति - यथार्थ मूल्यांकन, सम्मान-सत्कार, **वणतिगिच्छ** - घावों का इलाज, **गुणधारणा** - गुणों का धारण।

भावार्थ - अर्थाधिकार का क्या स्वरूप है?

अर्थाधिकार (आवश्यक सूत्र के) जिस अध्ययन का जो अध्ययन वर्णनीय होता है, उसका आख्यान करना अर्थाधिकार कहा जाता है। निम्नांकित गाथा में इसका उल्लेख है -

गाथा - १. (प्रथम अध्ययन) सामायिक अध्ययन का अभिप्राय सावद्ययोगविरति - पापयुक्त मानसिक, वाचिक, कायिक प्रवृत्तियों से हटना है।

२. चतुर्विंशतिस्तव नामक (द्वितीय) अध्ययन का अर्थ उत्कीर्तन - स्तुतिपरक है।

३. वंदना संज्ञक (तृतीय) अध्ययन का अर्थ - गुणी पुरुषों का यथार्थ मूल्यांकन या आदर सत्कार या वंदन, नमन करने से है।

४. (चतुर्थ) प्रतिक्रमण अध्ययन में आचार में हुई स्खलनाओं, त्रुटियों या सावद्य कृत्यों की निन्दा करना है, उनके लिए खेदानुभूति करना है।

५. (पंचम) कायोत्सर्ग अध्ययन व्रणचिकित्सा रूप कृति (विभावविरति स्वभावानुरति) से संबद्ध है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

६. प्रत्याख्यान अध्ययन त्याग-तितिक्षामूलक गुण धारण करने का अर्थाधिकार है।

यह अर्थाधिकार का स्वरूप है।

विवेचन - वक्तव्यता और अर्थाधिकार में अन्तर - वक्तव्यता और अर्थाधिकार में अन्तर यह है कि अर्थाधिकार - अध्ययन के आदि पद (शब्द) से लेकर अन्तिम पद तक सम्बन्धित एवं अनुगत रहता है, वैसे ही जैसे पुद्गलास्तिकाय में प्रत्येक परमाणु में मूर्तत्व अनुस्यूत रहता है जबकि वक्तव्यता देशादि-नियत होती है।

(१५०)

समवतार निरूपण

से किं तं समोयारे?

समोयारे छव्विहे पण्णत्ते। तंजहा - णामसमोयारे १ ठवणासमोयारे २ दव्वसमोयारे ३ खेत्तसमोयारे ४ कालसमोयारे ५ भावसमोयारे।

भावार्थ - समवतार के कितने प्रकार होते हैं?

यह छह प्रकार का प्ररूपित हुआ है -

१. नामसमवतार २. स्थापनासमवतार ३. द्रव्यसमवतार ४. क्षेत्रसमवतार ५. कालसमवतार और ६. भावसमवतार।

णामठवणाओ पुव्वं वण्णियाओ जाव सेत्तं भवियसरीरदव्वसमोयारे।

भावार्थ - नाम और स्थापना का वर्णन पूर्व में किए गए वर्णन के अनुसार ग्राह्य है यावत् भव्यशरीर द्रव्यसमवतार पर्यन्त वर्णन (द्रव्यावश्यक में आए विवेचन के अनुसार) पूर्ववत् ग्राह्य है।

से किं तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वसमोयारे?

जाणयसरीरभविय-सरीरवइरित्ते दव्वसमोयारे तिविहे पण्णत्ते। तंजहा - आयसमोयारे १ परसमोयारे २ तदुभयसमोयारे ३। सव्वदव्वा वि णं आयसमोयारेणं आयभावे समोयरंति। परसमोयारेणं जहा कुंडे बदराणि। तदुभयसमोयारे जहा घरे खंभो आयभावे य, जहा घडे गीवा आयभावे य।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - ज्ञशरीर-भव्यशरीर-व्यतिरिक्त द्रव्यसमवतार का क्या स्वरूप है?

ज्ञशरीर-भव्यशरीर-व्यतिरिक्त द्रव्यसमवतार तीन प्रकार का परिज्ञापित हुआ है - १. आत्मसमवतार २. परसमवतार और ३. तदुभयसमवतार।

सभी द्रव्य आत्मसमवतार की अपेक्षा से आत्मभाव में समवतरित होते हैं - स्व स्वरूप में ही अवस्थित रहते हैं। परसमवतार की अपेक्षा से कुंड में बेर की तरह परभाव में स्थित रहते हैं और तदुभयसमवतार की अपेक्षा से जैसे घर में स्तंभ एवं घड़े में ग्रीवा (गर्दन) की तरह परभाव एवं आत्मभाव - दोनों में रहते हैं।

विवेचन - इस सूत्र में समस्त द्रव्यों को आत्मसमवतार, परसमवतार और तदुभयसमवतार के रूप में वर्णित किया है। उसका तात्पर्य यह है कि सभी द्रव्य अपने-अपने आत्मभाव में, स्वभाव में या स्वरूप में रहते हैं। निश्चय दृष्टि से कोई भी द्रव्य किसी अन्य द्रव्य में अन्तर्भूतावस्था प्राप्त नहीं करता, उसमें समाविष्ट नहीं होता। किन्तु व्यवहारनय की दृष्टि से जब विचार किया जाता है तब दो भिन्न-भिन्न द्रव्य एक क्षेत्रावगाह में या साहचर्य में रहते हैं तब परसमवतार की स्थिति बनती है।

यहाँ कुंड में बेर का उदाहरण दिया गया है। जैसे कुंड अपने स्वरूप में स्थित है, बेर भी अपने स्वरूप में अवस्थित है। वह कुंड रूप में अन्तर्भावगत नहीं होता। उसका अपना पृथक् अस्तित्व है। किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से बेर कुंड में गिरा (रहा) हुआ है, तत्संसृष्ट, तदाधारित है। अतः इसे परसमवतार के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया गया है। परसमवतार का स्वतंत्र उदाहरण संभव नहीं है।

तदुभयसमवतार में दोनों के एक साथ समवतरण की जो बात कही गई है उसका आशय एक दूसरे का अंग और अंगी भाव या आधार और आधेय संबंध है। भवन के स्तंभ का यहाँ उदाहरण दिया गया है। स्तंभों पर भवन खड़ा है। सूक्ष्मता में जाएं तो स्तंभ अपने स्वरूप में तो अवस्थित है ही, किन्तु साथ ही साथ वह भवन रूप में भी अवस्थित है। यदि स्तंभ हट जाए तो भवन को खतरा उत्पन्न हो जाएगा। कुंड और बेर में यह स्थिति नहीं है। यदि बेर को कुंड से अलग कर दिया जाय तो कुंड को कोई खतरा नहीं होगा। इसी तरह घट और ग्रीवा के संदर्भ में जानना चाहिए। इन दोनों में ऐसा समन्वय है, जो मिटता नहीं तथा पृथक्-पृथक् भी हैं।

अहवा जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वसमोयारे दुविहे पण्णत्ते। तंजहा -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आयसमोयारे य १ तदुभयसमोयारे य २। चउसट्ठिया आयसमोयारेणं आयभावे समोयरइ, तदुभयसमोयारेणं बत्तीसियाए समोयरइ आयभावे य। बत्तीसिया आयसमोयारेणं आयभावे समोयरइ, तदुभयसमोयारेणं सोलसियाए समोयरइ आयभावे य। सोलसिया आयसमोयारेणं आयभावे समोयरइ, तदुभयसमोयारेणं अट्ठभाइयाए समोयरइ आयभावे य। अट्ठभाइया आयसमोयारेणं आयभावे समोयरइ, तदुभयसमोयारेणं चउभाइयाए समोयरइ आयभावे य। चउभाइया आयसमोयारेणं आयभावे समोयरइ, तदुभयसमोयारेणं अद्धमाणीए समोयरइ आयभावे य। अद्धमाणी आयसमोयारेणं आयभावे समोयरइ, तदुभयसमोयारेणं माणीए समोयरइ आयभावे य। सेत्तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वसमोयारे। सेत्तं णोआगमओ दव्वसमोयारे। सेत्तं दव्वसमोयारे।

भावार्थ - अथवा ज्ञशरीर-भव्यशरीर-व्यतिरिक्त द्रव्य समवतार दो प्रकार का प्रज्ञप्त हुआ है, यथा - आत्मसमवतार तथा तदुभयसमवतार।

जैसे चतुषष्ठिका आत्मसमवतार की दृष्टि से आत्मभाव में समवसृत है। तदुभयसमवतार की अपेक्षा से वह द्वात्रिंशिका में भी समवसृत है और अपने आत्मभाव में तो है ही। द्वात्रिंशिका आत्मसमवतार की दृष्टि से आत्मभाव में और उभयसमवतार की दृष्टि से षोडशिका में भी विद्यमान है, अपने स्वरूप में तो है ही। षोडशिका आत्मसमवतार की अपेक्षा से आत्मभाव समवसृत है तथा तदुभयसमवतार की दृष्टि से अष्टभागिका में भी विद्यमान है, निजस्वरूप में तो है ही। अष्टभागिका आत्मसमवतार की दृष्टि से आत्मभाव में तथा तदुभयसमवतार की दृष्टि से चतुर्भागिका में समवसृत है, स्वयं के स्वरूप में तो है ही। चतुर्भागिका आत्मसमवतार की अपेक्षा से आत्मभाव में तथा तदुभय की दृष्टि से अर्द्धमानिका में अवस्थित है, निज स्वरूप में तो है ही। अर्द्धमानिका आत्मसमवतार की दृष्टि से आत्मभाव में तथा तदुभय समवतार की दृष्टि से मानिका में समवसृत है, आत्मभाव में तो उसकी अवस्थिति है ही।

यह ज्ञशरीर-भव्यशरीर-व्यतिरिक्त द्रव्यसमवतार का वर्णन है।

यह नोआगमतः द्रव्यसमवतार का विवेचन है।

इस प्रकार द्रव्यसमवतार का निरूपण परिसमाप्त होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्षेत्रसमवतार

से किं तं खेत्तसमोयारे?

खेत्तसमोयारे दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - आयसमोयारे य १ तदुभयसमोयारे य २।

भरहे वासे आयसमोयारेणं आयभावे समोयरइ, तदुभयसमोयारेणं जंबुद्दीवे समोयरइ आयभावे य। जंबुद्दीवे आयसमोयारेणं आयभावे समोयरइ, तदुभयसमोयारेणं तिरियलोए समोयरइ आयभावे य। तिरियलोए आयसमोयारेणं आयभावे समोयरइ, तदुभयसमोयारेणं लोए समोयरइ आयभावे य✡। सेत्तं खेत्तसमोयारे।

भावार्थ - क्षेत्रसमवतार कितने प्रकार का है?

यह दो प्रकार का बतलाया गया है - १. आत्मसमवतार और २. तदुभयसमवतार।

आत्मसमवतार की दृष्टि से भरत क्षेत्र आत्मभाव में समवसृत है तथा तदुभय समवतार की दृष्टि से वह जंबूद्वीप में भी विद्यमान है, अपने स्वरूप में तो है ही। जंबूद्वीप आत्मसमवतार की दृष्टि से आत्मभाव में समवसृत है तथा तदुभयसमवतार की अपेक्षा से तिर्यक्लोक (मध्यलोक) में भी समवसृत है, वह निज स्वरूप में तो विद्यमान है ही। तिर्यक्लोक आत्मसमवतार की दृष्टि से आत्मभाव में समवसृत है तथा तदुभय समवतार की दृष्टि से लोक में भी समवस्थित है, अपने स्वरूप में तो है ही✿।

यह क्षेत्रसमवतार का स्वरूप है।

काल समवतार

से किं तं कालसमोयारे?

कालसमोयारे दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - आयसमोयारे य १ तदुभयसमोयारे य २।

समए आयसमोयारेणं आयभावे समोयरइ, तदुभयसमोयारेणं आवलियाए

✡ **लोए आयसमोयारेणं आयभावे समोयरइ, तदुभयसमोयारेणं अलोए समोयरइ आयभावे य। इच्चहियं पच्चंतरे।**

✿ लोक आत्मसमवतार की अपेक्षा से आत्मभाव में समवसृत है तथा तदुभय समवतार की दृष्टि से अलोक में समवसृत है, अपने स्वरूप में तो है ही। (अन्य किसी-किसी प्रति में ऐसा अतिरिक्त पाठ भी है।)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समोयरइ आयभावे य। एवमाणापाणू थोवे लवे मुहुत्ते अहोरत्ते पक्खे मासे उऊ अयणे संवच्छरे जुगे वाससए वाससहस्से वाससयसहस्से पुव्वंगे पुव्वे तुडियंगे तुडिए अडडंगे अडडे अववंगे अववे हुहुयंगे हुहुए उप्पलंगे उप्पले पउमंगे पउमे णलिणंगे णलिणे अत्थणिउरंगे अत्थणिउरे अउयंगे अउए णउयंगे णउए पउयंगे पउए चूलियंगे चूलिया सीसपहेलियंगे सीसपहेलिया पलिओवमे सागरोवमे-आयसमोयारेणं आयभावे समोयरइ, तदुभयसमोयारेणं ओसप्पिणीउस्सप्पिणीसु समोयरइ आयभावे य। ओसप्पिणीउस्सप्पिणीओ आयसमोयारेणं आयभावे समोयरंति, तदुभय-समोयारेणं पोग्गलपरियट्टे समोयरंति आयभावे य। पोग्गलपरियट्टे आयसमोयारेणं आयभावे समोयरइ, तदुभयसमोयारेणं तीतद्धाअणागतद्धासु समोयरइ। तीतद्धाअणागतद्धाउ आयसमोयारेणं आयभावे समोयरंति, तदुभयसमोयारेणं सव्वद्धाए समोयरंति आयभावे य। सेत्तं कालसमोयारे।

भावार्थ - कालसमवतार क्या है - कितने प्रकार का है?

कालसमवतार दो प्रकार का प्रज्ञप्त हुआ है - १. आत्मसमवतार एवं २. तदुभयसमवतार।

आत्मसमवतार की अपेक्षा से समय आत्मभाव में समवसृत है तथा तदुभय समवतार की अपेक्षा से वह आवलिका में भी और आत्मभाव में भी अवस्थित है। इसी प्रकार आनप्राण, स्तोक, लव, मुहूर्त्त, अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर, युग, शताब्दी (वर्षशत), वर्ष सहस्र (सहस्राब्दी), लक्षाब्दी, पूर्वांग, पूर्व, त्रुटितांग, त्रुटित, अटटांग, अटट, अववांग, अवव, हुहुकांग, हुहुक, उत्पलांग, उत्पल, पद्मांग, पद्म, नलिनांग, नलिन, अक्षनिकुरांग, अक्षनिकुर, अयुतांग, अयुत, नयुतांग, नयुत, प्रयुतांग, प्रयुत, चूलिकांग, चूलिका, शीर्षप्रहेलिकांग, शीर्षप्रहेलिका, पल्योपम, सागरोपम - ये समस्त आत्मसमवतार की अपेक्षा से आत्मभाव म तथा तदुभयसमवतार की दृष्टिं से अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी में भी समवसृत है, आत्मभाव में तो हैं ही।

पुद्गलपरावर्तनकाल - आत्मसमवतार की अपेक्षा से आत्मभाव में तथा तदुभयसमवतार की अपेक्षा से अतीत एवं अनागत काल में भी समवसृत है। अतीत अनागत काल आत्मसमवतार की दृष्टि से आत्मभाव में तथा तदुभय समवतार की दृष्टि से सर्वाद्धा काल में समवसृत है, आत्मभाव में तो हैं ही।

यह काल समवतार का स्वरूप है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भाव समवतार

से किं तं भावसमोयारे?

भावसमोयारे दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - आयसमोयारे य १ तदुभयसमोयारे य २।

कोहे आयसमोयारेणं आयभावे समोयरइ, तदुभयसमोयारेणं माणे समोयरइ आयभावे य। एवं माणे माया लोभे रागे मोहणिज्जे। अट्ठकम्मपयडीओ आयसमोयारेणं आयभावे समोयरंति, तदुभयसमोयारेणं छव्विहे भावे समोयरंति आयभावे य। एवं छव्विहे भावे। जीवे जीवत्थिकाए आयसमोयारेणं आयभावे समोयरइ, तदुभयसमोयारेणं सव्वदव्वेसु समोयरइ आयभावे य। एत्थ संगहणीगाहा-

कोहे माणे माया, लोभे रागे य मोहणिज्जे य।
पगडी भावे जीवे, जीवत्थिकाय दव्वा य॥१॥

सेत्तं भावसमोयारे। सेत्तं समोयारे। सेत्तं उवक्कमे॥ उवक्कम इति पढमं दारं॥

भावार्थ - भाव समवतार कैसा है - कितने प्रकार का है?

भाव समवतार दो प्रकार का बतलाया गया है - १. आत्म-समवतार एवं २. तदुभय समवतार।

आत्म-समवतार की अपेक्षा से क्रोध अपने स्वरूप में समवसृत होता है तथा निज स्वरूप युक्त क्रोध तदुभय समवतार की दृष्टि से मान में भी रहता है।

इसी तरह मान, माया, लोभ, राग, मोहनीय, अष्टकर्म प्रकृतियाँ आत्म-समवतार की दृष्टि से आत्मभाव में तथा निजस्वरूप युक्त ये सभी तदुभय समवतार की दृष्टि से छह भावों में समवतरित होते हैं।

इसी प्रकार छह प्रकार के भावों के संदर्भ में ज्ञातव्य है।

जीव, जीवास्तिकाय आत्म-समवतार की अपेक्षा से अपने स्वरूप में समवसृत होते हैं तथा तदुभय समवतार की अपेक्षा से निज स्वरूप युक्त ये सभी सर्वद्रव्यों में समवतरित होते हैं।

संग्रहणी गाथा का अर्थ इस प्रकार हैं -

'क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, मोहनीय कर्म, प्रकृति, भाव, जीव, जीवास्तिकाय तथा सभी द्रव्य आत्म-समवतार की दृष्टि से अपने-अपने स्वरूप में तथा निज स्वरूप युक्त ये तदुभय समवतार की दृष्टि से पर रूप में भी रहते हैं।'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यह भाव समवतार का स्वरूप है।

इस प्रकार समवतार का विवेचन पूर्ण होता है।

यहाँ उपक्रम संज्ञक प्रथम द्वार की विवेच्यता पूर्ण होती है।

विवेचन - समवतार के सम्बन्ध में अवशिष्ट विचारणीय - इस शास्त्र में प्रारम्भ से आवश्यक का विचार प्रस्तुत किया गया है, इसलिए आवश्यक के अंतर्गत सामायिक आदि अध्ययन भी क्षायोपशमिक भावरूप होने से पूर्वोक्त आनुपूर्वी आदि भेदों में कहाँ-कहाँ किसका समवतार होता है। इसका निरूपण यहाँ करना चाहिए था, किन्तु शास्त्रकार की प्रवृत्ति अन्यत्र भी ऐसी ही देखी गई है कि जो बात आसानी से समझ में आ जाती है, उसका वे सूत्र में निरूपण नहीं करते, सामायिक आदि अध्यनों का समवतार सुखावबोध्य होने के कारण शास्त्रकार ने यहाँ नहीं कहा है। उपयोगी होने के कारण तथा मन्दमति शिष्यों को सुगमता से बोध हो सके, इस दृष्टि से पूज्यवृत्तिकार ने यहाँ सामायिक आदि अध्ययनों के समवतार का निरूपण करने की कृपा की है -

सामायिक उत्कीर्तन का विषय होता है, इसलिए सामायिकाध्ययन का उत्कीर्तनानुपूर्वी में समवतार होता है तथा गणनानुपूर्वी में भी। पूर्वानुपूर्वी से जब आवश्यक के अध्ययनों की गणना की जाती है तो सामायिक प्रथम स्थान पर आता है और जब पश्चानुपूर्वी से गणना की जाती है तो यह (सामायिक) छठे स्थान पर आता है, तथा जब इसकी गणना अनानुपूर्वी से की जाती है तब यह द्वितीय आदि स्थानों पर आता है। अतः इसका स्थान नियत नहीं है।

इनमें सामायिक अध्ययन श्रुतज्ञानरूप होने से और श्रुतज्ञान क्षायोपशमिक भाव में आता है, क्योंकि वह श्रुतज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशमजन्य होता है। अतः सामायिक का समवतार क्षायोपशमिक भाव-नाम में होता है। जैसा कि भाष्यकार ने कहा है -

छव्विहनामे भावे खओवसमिए सुयं समोयरइ।
जं सुयनाणावरणक्खओवसमयं तयं सव्वं॥

छह प्रकार के भाव नाम में से क्षायोपशमिक भाव-नाम में श्रुत का समवतरण हो जाता है। क्योंकि यह सब श्रुतज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम जन्य है।

प्रमाणद्वार के प्रारम्भ में ही द्रव्यप्रमाण आदि के भेद से अनेक प्रकार के प्रमाणों का उल्लेख पहले किया गया है। प्रमाण जीवभावरूप है, यह पहले निर्णय किया गया था और सामायिक अध्ययन जीव का भाव रूप होने के कारण भाव-प्रमाण में इसका समवतार हो जाता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है और भावप्रमाण भी गुण, नय और संख्या के भेद से तीन प्रकार का कहा गया है। इसलिए सामायिक का समवतार - गुणप्रमाण और संख्याप्रमाण में भी हो जाता है, नयप्रमाण में नहीं।

(१५१)

निक्षेप-विवेचन

से किं तं णिक्खेवे?

णिक्खेवे तिविहे पण्णत्ते। तंजहा - ओहणिप्फण्णे १ णामणिप्फण्णे २ सुत्तालावगणिप्फण्णे ३।

भावार्थ - निक्षेप कितने प्रकार का होता है?

यह ओघनिष्पन्न, नामनिष्पन्न और सूत्रालापक निष्पन्न के रूप में तीन प्रकार का प्रज्ञप्त हुआ है।

ओघनिष्पन्न

से किं तं ओहणिप्फण्णे?

ओहण्णिप्फण्णे चउव्विहे पण्णत्ते। तंजहा - अज्झयणे १ अज्झीणे २ आया ३ झवणा ४।

भावार्थ - ओघनिष्पन्न कितने प्रकार का प्रतिपादित हुआ है?

यह चतुर्विधरूप प्रज्ञप्त हुआ है - १. अध्ययन २. अक्षीण ३. आय और ४. क्षपणा।

विवेचन - जो सामान्य (ओघ) अध्ययन आदि श्रुत के नाम से निष्पन्न हो उसे ओघनिष्पन्न कहते हैं।

अध्ययन

से किं तं अज्झयणे?

अज्झयणे चउव्विहे पण्णत्ते। तंजहा - णामज्झयणे १ ठवणज्झयणे २ दव्वज्झयणे ३ भावज्झयणे ४।

भावार्थ - अध्ययन कितने प्रकार का परिज्ञापित हुआ है?

यह नाम-अध्ययन, स्थापना-अध्ययन, द्रव्य-अध्ययन और भाव-अध्ययन के रूप में चार प्रकार का प्रतिपादित हुआ है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णामठवणाओ पुव्वं वण्णियाओ।

भावार्थ - नाम और स्थापना विषयक वर्णन पूर्वकृत विवेचन से योजनीय है।

द्रव्य-अध्ययन

से किं तं दव्वज्झयणे?

दव्वज्झयणे दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - आगमओ य १ णोआगमओ य २।

भावार्थ - द्रव्य अध्ययन कितने प्रकार का होता है?

यह आगमतः और नोआगमतः के रूप में दो प्रकार का प्रतिपादित हुआ है।

से किं तं आगमओ दव्वज्झयणे?

आगमओ दव्वज्झयणे - जस्स णं 'अज्झयण' त्ति पयं सिक्खियं, ठियं, जियं, मियं, परिजियं जाव एवं जावइया अणुवउत्ता आगमओ तावइयाइं दव्वज्झयणाइं। एवमेव ववहारस्स वि। संगहस्स णं एगो वा अणेगो वा जाव सेत्तं आगमओ दव्वज्झयणे।

भावार्थ - आगमतः द्रव्य अध्ययन का क्या स्वरूप है?

जिसने (गुरु से) 'अध्ययन' इस पद को सीख लिया है, (भलीभांति) स्थिर कर लिया है, जित, मित और परिजित कर लिया है यावत् जितने उपयोग शून्य हैं, वे आगमतः द्रव्य अध्ययन हैं।

इसी प्रकार (संग्रहनय की भांति ही) व्यवहारनय के संदर्भ में जानना चाहिए। संग्रहनय के मतानुसार एक या अनेक (आत्माएँ एक आगम द्रव्य अध्ययन हैं, इत्यादि वर्णन यहाँ पूर्वानुसार योजनीय है) यावत् यह आगमतः द्रव्य अध्ययन का स्वरूप है।

से किं तं णोआगमओ दव्वज्झयणे?

णोआगमओ दव्वज्झयणे तिविहे पण्णत्ते। तंजहा - जाणयसरीरदव्वज्झयणे१ भवियसरीरदव्वज्झयणे २ जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वज्झयणे ३।

भावार्थ - नोआगमतः द्रव्य अध्ययन कितने प्रकार का कहा गया है?

नोआगमतः द्रव्य अध्ययन तीन प्रकार का प्रज्ञप्त हुआ है -

१. ज्ञ शरीर द्रव्य अध्ययन २. भव्य शरीर द्रव्य अध्ययन ३. ज्ञ शरीर - भव्य शरीर - व्यतिरिक्त द्रव्य अध्ययन।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से किं तं जाणयसरीरदव्वज्झयणे?

जाणयसरीरदव्वज्झयणे अज्झयणपयत्थाहिगारजाणयस्स जं सरीरं ववगयचुयचाविय चत्तदेहं, जीवविप्पजढं जाव अहो णं इमेणं सरीरसमुस्सएणं जिणदिट्ठेणं भावेणं 'अज्झयणे' त्ति पयं आघवियं जाव उवदंसियं।

जहा को दिट्ठंतो?

अयं घयकुंभे आसी, अयं महुकुंभे आसी। सेत्तं जाणयसरीरदव्वज्झयणे।

भावार्थ - ज्ञ शरीर द्रव्य अध्ययन का क्या स्वरूप है?

जिसने अध्ययन पद के अर्थाधिकार को जाना है, उसके चेतना रहित, प्राण शून्य, अनशन द्वारा मृत देह को (शय्या संस्तारकगत) देखकर कोई कहे यावत् अरे! दैहिक पुद्गल समुच्चय रूप शरीर द्वारा इसने जितेन्द्र देव समुपदिष्ट आवश्यक पद को सम्यक् गृहीत किया यावत् विविध रूप में उसकी प्रज्ञापना की।

(प्रश्न उपस्थित होता है) क्या इस संदर्भ में कोई दृष्टांत है?

(समाधान है) जैसे एक रिक्त घट है, जिसमें पहले घृत या मधु था। वर्तमान में रिक्त होने पर भी उन्हें क्रमशः घृत घट एवं मधु घट कहा जाता है। (यही तथ्य ज्ञ शरीर के साथ योजनीय है)। यह ज्ञ शरीर द्रव्य अध्ययन का स्वरूप है।

से किं तं भवियसरीरदव्वज्झयणे?

भवियसरीरदव्वज्झयणे - जे जीवे जोणिजम्मणणिक्खंते, इमेणं चेव आयत्तएणं सरीरसमुस्सएणं जिणदिट्ठेणं भावेणं 'अज्झयणे' त्ति पयं सेयकोले सिक्खिस्सइ ण ताव सिक्खइ।

जहा को दिट्ठंतो?

अयं घयकुंभे भविस्सइ, अयं महुकुंभे भविस्सइ। सेत्तं भवियसरीरदव्वज्झयणे।

भावार्थ - भव्यशरीर द्रव्य अध्ययन का क्या स्वरूप है?

योनिरूप, जन्म स्थान से निःसृत किसी जीव को शरीर भविष्य में वीतराग प्ररूपित भावानुरूप अध्ययन इस पद को सीखेगा किन्तु वर्तमान में नहीं सीख रहा है (भावी पर्याय की अपेक्षा से) वह भव्य शरीर द्रव्य अध्ययन कहलाता है।

इस संदर्भ में क्या कोई दृष्टांत है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यह घृत कुंभ होगा, यह मधु कुंभ होगा (अभी घट रिक्त हैं किन्तु भविष्यवर्ती पर्याय की अपेक्षा से यह ज्ञातव्य है)। यह भव्य शरीर द्रव्य अध्ययन का स्वरूप है।

से किं तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वज्झयणे?

जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वज्झयणे पत्तयपोत्थयलिहियं। सेत्तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वज्झयणे। सेत्तं णोआगमओ दव्वज्झयणे। सेत्तं दव्वज्झयणे।

भावार्थ - ज्ञ शरीर-भव्य शरीर-व्यतिरिक्त द्रव्य अध्ययन का क्या स्वरूप है?

पत्र या पुस्तक में लिखे हुए (अध्ययन) को ज्ञ शरीर-भव्यशरीर-व्यतिरिक्त द्रव्य अध्ययन कहते हैं।

यह नोआगमतः द्रव्य अध्ययन है।

इस प्रकार द्रव्य अध्ययन का विवेचन परिसमाप्त होता है।

भाव-अध्ययन

से किं तं भावज्झयणे?

भावज्झयणे दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - आगमओ य १ णोआगमओ य २।

भावार्थ - भाव अध्ययन कितने प्रकार का होता है?

यह आगमतः और नोआगमतः के रूप में दो प्रकार का कहा गया है।

से किं तं आगमओ भावज्झयणे?

आगमओ भावज्झयणे जाणए उवउत्ते। सेत्तं आगमओ भावज्झयणे।

भावार्थ - आगमतः भाव अध्ययन का क्या स्वरूप है?

जो अध्ययन के अर्थ का ज्ञाता या ज्ञायक होने के साथ-साथ उसमें उपयोग युक्त भी हो, वह आगमतः भावयुक्त कहलाता है। यह भाव अध्ययन का स्वरूप है।

से किं तं णोआगमओ भावज्झयणे?

णोआगमओ भावज्झयणे -

गाहा - अज्झप्पस्साणयणं, कम्माणं अवचओ उवचियाणं।
अणुवचओ य णवाणं, तम्हा अज्झयणमिच्छंति॥१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सेत्तं णोआगमओ भावज्झयणे। सेत्तं भावज्झयणे। सेत्तं अज्झयणे।

शब्दार्थ - **अज्झप्पस्साणयणं** - अध्यात्म में आनयन - सामायिक आदि के अध्ययन में संलग्नता, **कम्माणं** - कर्मों का, **अवचओ** - अपचय - क्षय (नाश), **उवचियाणं** - उपचित-संचित, **अणुवचओ** - असंचय, **णवाणं** - नये (कर्मों) का, **तम्हा** - इस कारण से, **अज्झयणमिच्छंति** - अध्ययन को चाहते हैं।

भावार्थ - नोआगमतः भाव अध्ययन का क्या स्वरूप है?

नो आगमतः भाव अध्ययन इस प्रकार है -

गाथा - अपने आप को अध्यात्म आनयन - सामायिक आदि में चित्त को लगाने, उपार्जित, संचित कर्मों का क्षय करने तथा नवीन कर्मों का अवरोध होने के कारण मुमुक्षु साधक अध्ययन की इच्छा करते हैं।

यह नोआगमतः भाव अध्ययन का स्वरूप है। इस प्रकार अध्ययन के अन्तर्गत भाव-अध्ययन का विवेचन परिसमाप्त होता है।

विवेचन - नोआगमतः भाव अध्ययन में जो 'नो' शब्द का प्रयोग हुआ है, वह एकदेशीयता का सूचक है। क्योंकि सामायिक आदि अध्ययन ज्ञान और क्रिया का समन्वित रूप लिए होने के कारण आगम के एक देश हैं। इसीलिए इसे नो आगम अध्ययन के रूप में ज्ञापित किया गया है। यहाँ (इस गाथा में) प्रयुक्त **'अज्झप्पस्सायणं'** का संस्कृत रूप 'अध्यात्मस्य आनयनं' है।

'आत्मानमधिकृत्य विद्यते यत् तदध्यात्मम्' - जो आत्मा को अधिकृत कर वर्तमान रहता है, उसे अध्यात्म कहा जाता है। अर्थात् जिसमें आत्म स्वरूप का अधिग्रहण होता है, आत्मभाव का अनुशीलन होता है, वह अध्यात्म है। यह अध्यात्म शब्द का षष्ठी विभक्ति का रूप है। आनयन शब्द आ पूर्वक नी धातु से निष्पन्न कृदन्त प्रत्ययात्मक रूप है। नी धातु ले जाने के अर्थ में तथा आ पूर्वक नी धातु लाने के अर्थ में है। अध्यात्म में चित्त को लगाना अध्यात्मानयन है। सामायिक शब्द इसी भाव से अनुरंजित है। उसमें निर्जरा और संवर दोनों सधते हैं। **'सव्वं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि'** - सभी सावद्य योगों का त्याग करता हूँ, यह संवर की भाषा है, इससे नूतन कर्मों का संचित होना अवरुद्ध हो जाता है। सामायिक - आत्मभाव के चिंतन, स्वरूपानुभावन से चैतसिक निर्मलता होती है, जो तपश्चरण का रूप है और कर्म-निर्जरण का हेतु है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अक्षीण निरूपण

से किं तं अज्झीणे?

अज्झीणे चउव्विहे पण्णत्ते। तंजहा - णामज्झीणे १ ठवणज्झीणे २ दव्वज्झीणे ३ भावज्झीणे ४।

भावार्थ - अक्षीण कितने प्रकार का कहा गया है?

यह चार प्रकार का बतलाया गया है - १. नाम-अक्षीण २. स्थापना-अक्षीण ३. द्रव्य-अक्षीण एवं ४. भाव-अक्षीण।

विवेचन - 'झीण' का संस्कृत रूप क्षीण होता है। यह मिटने के अर्थ में प्रवृत्त 'क्षि' धातु का क्त प्रत्ययान्त कृदन्त रूप है। जो क्षीण नहीं होता उसे अक्षीण कहा जाता है। जो अध्ययन शिष्य-प्रशिष्य आदि की सतत् गतिशील परम्परा के कारण कभी क्षीण नहीं होता, मिटता नहीं वह अक्षीण कहा जाता है।

णामठवणाओ पुव्वं वण्णियाओ।

भावार्थ - नाम और स्थापना (अक्षीण) का वर्णन पूर्व वर्णनानुसार योजनीय है।

से किं तं दव्वज्झीणे?

दव्वज्झीणे दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - आगमओ य १ णोआगमओ य २।

भावार्थ - द्रव्य अक्षीण कितने प्रकार का होता है?

यह आगमतः और नोआगमतः के रूप में दो प्रकार का है।

से किं तं आगमओ दव्वज्झीणे?

आगमओ दव्वज्झीणे - जस्स णं 'अज्झीणे' त्ति पयं सिक्खियं ठियं, जियं, मियं, परिजियं जाव सेत्तं आगमओ दव्वज्झीणे।

भावार्थ - आगमतः द्रव्य अक्षीण का क्या स्वरूप है?

जिसने अक्षीण इस पद को (गुरु से) सीखा है, स्थिर, जित, मित और परिजित किया है यावत् (पूर्वानुसार वर्णन यहाँ भी योजनीय है) वह आगमतः द्रव्य अक्षीण है।

से किं तं णोआगमओ दव्वज्झीणे?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णोआगमओ दव्वज्झीणे तिविहे पण्णत्ते। तंजहा - जाणयसरीरदव्वज्झीणे १ भवियसरीरदव्वज्झीणे २ जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वज्झीणे ३।

भावार्थ - नोआगमतः द्रव्य अक्षीण कितने प्रकार का है?

नोआगमतः द्रव्य अक्षीण तीन प्रकार का प्रज्ञप्त हुआ है -

१. ज्ञ शरीर द्रव्य अक्षीण २. भव्य शरीर द्रव्य अक्षीण और ३. ज्ञ शरीर - भव्य शरीर-व्यतिरिक्त द्रव्य - अक्षीण।

से किं तं जाणयसरीरदव्वज्झीणे।

जाणयसरीरदव्वज्झीणे - 'अज्झीण' पयत्थाहिगारजाणयस्स जं सरीरयं ववगयचुयचावियचत्तदेहं जहा दव्वज्झयणे तहा भाणियव्वं जाव सेत्तं जाणयसरीरदव्वज्झीणे।

भावार्थ - ज्ञ शरीर द्रव्य अक्षीण का क्या स्वरूप है?

जिसने अक्षीण पद के अर्थाधिकार को जाना है, उसके चेतना रहित, प्राण शून्य, अनशन द्वारा मृत देह को देखकर आदि शेष वर्णन द्रव्य अध्ययन की तरह यहाँ ज्ञातव्य है यावत् यह ज्ञ शरीर द्रव्य अक्षीण का स्वरूप है।

से किं तं भवियसरीरदव्वज्झीणे?

भवियसरीरदव्वज्झीणे - जे जीवे जोणिजम्मणणिक्खंते जहा दव्वज्झयणे जाव सेत्तं भवियसरीरदव्वज्झीणे।

भावार्थ - भव्य शरीर द्रव्य अक्षीण से क्या तात्पर्य है?

समय पूर्ण होने पर जो जीव जन्म स्थान से निकल कर उत्पन्न हुआ इत्यादि संपूर्ण वर्णन पूर्वोक्त भव्य शरीर द्रव्य अध्ययन के समान ही यहाँ भी ग्राह्य है यावत् यह भव्य शरीर द्रव्य अक्षीण है।

से किं तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वज्झीणे?

जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वज्झीणे सव्वागाससेढी। सेत्तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्तं दव्वज्झीणे। सेत्तं णोआगमओ दव्वज्झीणे। सेत्तं दव्वज्झीणे।

शब्दार्थ - सव्वागाससेढी - सर्वाकाश श्रेणी।

भावार्थ - ज्ञ शरीर-भव्य शरीर व्यतिरिक्त द्रव्य-अक्षीण का क्या स्वरूप है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सर्वाकाश श्रेणी ज्ञ शरीर-भव्य शरीर व्यतिरिक्त द्रव्य-अक्षीण रूप है।

यह नो आगमतः द्रव्य अक्षीण का स्वरूप है। इस प्रकार द्रव्य-अक्षीण का विवेचन परिसमाप्त होता है।

विवेचन - उपर्युक्त सूत्रों में अक्षीण के नाम, स्थापना और द्रव्य - इन भेदों का विवेचन पूर्वोक्त आवश्यक अध्ययन के आधार पर लिए जाने का जो संकेत किया है, उसका अभिप्राय यह है कि आवश्यक के उक्त प्रसंग में जैसा वर्णन आया है, वैसा ही यहाँ योजनीय है। केवल आवश्यक के स्थान पर अक्षीण शब्द का प्रयोग कर लेना चाहिए।

प्रस्तुत सूत्र में सर्वाकाश श्रेणी का उल्लेख हुआ है। उसका विशेष आशय है। क्रमानुबद्ध एक-एक प्रदेश की पंक्ति श्रेणी के नाम से अभिहित की जाती है। लोक, अलोक रूप अनंत प्रदेशी सर्व आकाश द्रव्य की श्रेणी में से प्रतिसमय एक-एक प्रदेश का अपहार किया जाए फिर भी अनंत उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी कालों में वह क्षीण नहीं की जा सकती। इसीलिए उसे सर्वाकाश श्रेणी की संज्ञा दी गई है।

भाव-अक्षीण

से किं तं भावज्झीणे?

भावज्झीणे दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - आगमओ य १ णोआगमओ य २।

भावार्थ - भाव-अक्षीण कितने प्रकार का होता है?

यह आगमतः और नोआगमतः के रूप में दो प्रकार का परिज्ञापित हुआ है।

से किं तं आगमओ भावज्झीणे?

आगमओ भावज्झीणे जाणए उवउत्ते। सेत्तं आगमओ भावज्झीणे।

भावार्थ - आगमतः भाव-अक्षीण का क्या स्वरूप है?

जो ज्ञ उपयोग युक्त हो, वह आगमतः भाव-अक्षीण है।

यह आगमतः भाव-अक्षीण का स्वरूप है।

विवेचन - आगमतः भावाक्षीण के सम्बन्ध में वृद्ध पूज्यवर आचार्यों का मत यह है कि चूँकि चतुर्दशपूर्वधारी आगमोपयुक्त मुनिवर के द्वारा अन्तर्मुहूर्त्त मात्र उपयोग काल में जो अर्थोपलब्धि के उपयोगपर्याय होते हैं, उनमें से प्रतिसमय एक-एक पर्याय का अपहार करने पर भी अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी कालचक्र तक में भी उन पर्यायों का अपहार नहीं किया जा सकता यानी वे सब पर्याय रिक्त नहीं हो सकते, इस अपेक्षा से भावाक्षीणता समझ लेनी चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से किं तं णोआगमओ भावज्झीणे?

णोआगमओ भावज्झीणे -

गाहा - जह दीवा दीवसयं पइप्पए दिप्पए य सो दीवो।

दीवसमा आयरिया, दिप्पंति परं च दीवंति॥१॥

सेत्तं णोआगमओ भावज्झीणे। सेत्तं भावज्झीणे। सेत्तं अज्झीणे।

शब्दार्थ - **दीवा** - दीपक, **दीवसयं** - सैंकड़ों दीपक, **पइप्पए** - प्रज्वलित कर-कर के, **दिप्पए** - दीप्त रहता है, **दीवसमा** - दीप के समान, **आयरिया** - आचार्य, **दिप्पंति** - दीप्त रहते हैं, **दीवंति** - दीप्त करते हैं।

भावार्थ - नोआगमतः भाव-अक्षीण का क्या स्वरूप है?

नोआगमतः भाव-अक्षीण इस प्रकार है -

गाथा - जैसे एक दीपक सैंकड़ों दीपों को प्रज्वलित करके भी स्वयं दीप्त रहता है, प्रज्वलित रहता है, उसी तरह आचार्य दीपक के समान अन्य-शिष्यवृन्द को देदीप्यमान करते हुए स्वयं भी दीप्त रहते हैं।

यह नोआगमतः भाव-अक्षीण का स्वरूप है।

इस प्रकार भाव-अक्षीण का विवेचन परिसमाप्त होता है।

आय - विवेचन

से किं तं आए?

आए चउव्विहे पण्णत्ते। तंजहा - णामाए १ ठवणाए २ दव्वाए ३ भावाए ४।

भावार्थ - आय कितने प्रकार की होती है?

यह नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव के रूप में चार प्रकार की प्रज्ञप्त हुई है।

णामठवणाओ पुव्वं भणियाओ।

भावार्थ - नाम और स्थापना आय का वर्णन पूर्व वर्णनानुसार ग्राह्य है।

से किं तं दव्वाए?

दव्वाए दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - आगमओ य १ णोआगमओ य २।

भावार्थ - द्रव्य आय के कितने भेद कहे गए हैं?

द्रव्य आय के आगमतः और नोआगमतः के रूप में दो भेद परिज्ञापित किए गए हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से किं तं आगमओ दव्वाए?

आगमओ दव्वाए - जस्स णं 'आए' त्ति पयं सिक्खियं, ठियं, जियं, मियं, परिजियं जाव कम्हा? 'अणुवओगो' दव्वमिति कट्टु। णेगमस्स णं जावइया अणुवउत्ता आगमओ तावइया ते दव्वाया जाव सेत्तं आगमओ दव्वाए।

भावार्थ - आगमतः द्रव्य आय का क्या स्वरूप है?

जिसने (गुरु से) 'आय' इस पद को सीख लिया है, स्थित, जित, मित और परिजित किया है (द्रव्य अध्ययन के वर्णनानुसार यहाँ वर्णन ग्राह्य है) यावत् कैसे?

वह उपयोग रहित होने से द्रव्य है। नैगमनय से जितने उपयोग रहित हैं उतने ही आगमतः द्रव्य हैं यावत् यह द्रव्य आय का स्वरूप है।

से किं तं णोआगमओ दव्वाए?

णोआगमओ दव्वाए तिविहे पण्णत्ते। तंजहा - जाणयसरीरदव्वाए १ भविय-सरीरदव्वाए २ जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वाए ३।

भावार्थ - नोआगमतः द्रव्य-आय कितने प्रकार की कही गई है?

नोआगमतः द्रव्य-आय तीन प्रकार की कही गई है - १. ज्ञ शरीर द्रव्य आय, २. भव्यशरीर द्रव्य आय एवं ३. ज्ञ शरीर-भव्यशरीर-व्यतिरिक्त द्रव्य आय।

से किं तं जाणयसरीरदव्वाए?

जाणयसरीरदव्वाए - 'आय' पयत्थाहिगारजाणयस्स जं सरीरयं ववगय-चुयचावियचत्तदेहं जहा दव्वज्झयणे जाव सेत्तं जाणयसरीरदव्वाए।

भावार्थ - ज्ञ शरीर द्रव्य आय का क्या स्वरूप है?

जिसने आय पद के अर्थाधिकार को जाना है, उसके चेतनारहित, प्राणशून्य, अनशन द्वारा मृत देह को शय्या-संस्तारकगत देखकर कोई कहे इत्यादि वर्णन द्रव्याध्ययन के समान ही यहाँ ज्ञातव्य है यावत् यह ज्ञ शरीर द्रव्य आय का स्वरूप है।

से किं तं भवियसरीरदव्वाए?

भवियसरीरदव्वाए - जे जीवे जोणिजम्मणणिक्खंते जहा दव्वज्झयणे जाव सेत्तं भवियसरीरदव्वाए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - भव्यशरीर-द्रव्य-आय का क्या स्वरूप है?

योनि रूप जन्मस्थान से निःसृत होकर किसी जीव का शरीर (भविष्य में वीतराग प्ररूपित धर्म को सीखेगा) इत्यादि वर्णन जैसा द्रव्यावश्यक के अध्ययन में आया है, यहाँ भी गृहीत है यावत् यह भव्यशरीर द्रव्य आय का स्वरूप है।

से किं तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वाए?

जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वाए तिविहे पण्णत्ते। तंजहा - लोइए १ कुप्पावयणिए २ लोगुत्तरिए ३।

भावार्थ - ज्ञ शरीर-भव्यशरीर-व्यतिरिक्त द्रव्य आय कितने प्रकार की होती है?

ज्ञ शरीर-भव्यशरीर-व्यतिरिक्त द्रव्य आय तीन प्रकार की प्रज्ञप्त हुई है -

१. लौकिक २. कुप्रावचनिक और ३. लोकोत्तरिक।

से किं तं लोइए?

लोइए तिविहे पण्णत्ते। तंजहा - सचित्ते १ अचित्ते २ मीसए य ३।

भावार्थ - लौकिक (ज्ञ शरीर-भव्यशरीर-व्यतिरिक्त) आय कितने प्रकार की होती है?

यह सचित्त, अचित्त और मिश्र के रूप में त्रिविध रूप में प्रज्ञप्त हुई हैं।

से किं तं सचित्ते?

सचित्ते तिविहे पण्णत्ते। तंजहा - दुपयाणं १ चउप्पयाणं २ अपयाणं ३। दुपयाणं - दासाणं-दासीणं, चउप्पयाणं - आसाणं हत्थीणं, अपयाणं - अंबाणं अंबाडगाणं आए। सेत्तं सचित्ते।

भावार्थ - सचित्त (लौकिक) आय का क्या स्वरूप है?

सचित्त (लौकिक) आय तीन प्रकार की होती है - १. द्विपद आय २. चतुष्पद आय तथा ३. अपद आय।

इनमें दास-दासियों की प्राप्ति - आय द्विपद आय, घोड़ों, हाथियों की प्राप्ति चतुष्पद आय तथा आम, आँवला के वृक्ष आदि की प्राप्ति अपद आय के अन्तर्गत है।

यह सचित्त आय का स्वरूप है।

से किं तं अचित्ते?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अचित्ते-सुव्वण्णरययमणिमोतियसंखसिलप्पवालरत्तरयणाणं (संतसावएज्जस्स) आए। सेत्तं अचित्ते।

शब्दार्थ - संतसावएज्जस्स - सत्स्वापतेयं - धन आदि उत्तम द्रव्य।

भावार्थ - अचित्त आय का क्या स्वरूप है?

स्वर्ण, रजत, मणि, मोती, शंख, शिला, प्रवाल, लाल रत्न (माणिक) आदि उत्तम, सारयुक्त द्रव्यों की आय - प्राप्ति अचित्त आय है।

से किं तं मीसए?

मीसए-दासाणं दासीणं आसाणं हत्थीणं समाभरियाउज्जालंकियाणं आए। सेत्तं मीसए। सेत्तं लोइए।

शब्दार्थ - समाभरियाउज्जालंकियाणं - समाभरितातोद्यालंकृतानाम् - आभूषणों एवं झल्लरी आदि वाद्यों से सम्यक् अलंकृत।

भावार्थ - मिश्र आय किसे कहते हैं?

आभूषणों एवं झल्लरी आदि वाद्यों से सम्यक् विभूषित दास-दासियों, अश्वों, हाथियों आदि की प्राप्ति को मिश्र आय कहते हैं।

यह मिश्र आय का स्वरूप है।

इस प्रकार लौकिक द्रव्य आय का विवेचन परिसमाप्त होता है।

से किं तं कुप्पावयणिए?

कुप्पावयणिए तिविहे पण्णत्ते। तंजहा - सचित्ते १ अचित्ते २ मीसए य ३। तिण्णि वि जहा लोइए जाव से त्तं मीसए। सेत्तं कुप्पावयणिए।

भावार्थ - कुप्रावचनिक आय कितने प्रकार की होती है?

यह सचित्त, अचित्त और मिश्र के रूप में तीन प्रकार की है।

उपर्युक्त तीनों का वर्णन यावत् मिश्र पर्यन्त पूर्वकृत लौकिक आय के अनुसार करणीय है।

यह कुप्रावचनिक आय का स्वरूप है।

से किं तं लोगुत्तरिए? लोगुत्तरिए तिविहे पण्णत्ते। तंजहा - सचित्ते १ अचित्ते २ मीसए य ३।

भावार्थ - लोकोत्तरिक आय के कितने प्रकार होते हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लोकोत्तरिक आय सचित्त, अचित्त और मिश्र के रूप में (यह) तीन प्रकार की कही गई है।

से किं तं सचित्ते?

सचित्ते-सीसाणं सि(स्स)स्सिणियाणं। सेत्तं सचित्ते।

शब्दार्थ - **सीसाणं** - शिष्यों का, **सिस्सिणियाणं** - शिष्याओं का।

भावार्थ - सचित्त (लोकोत्तरिक) आय का क्या स्वरूप है?

शिष्य-शिष्याओं की प्राप्ति सचित्त लोकोत्तरिक आय के अन्तर्गत है।

से किं तं अचित्ते?

अचित्ते-पडिग्गहाणं वत्थाणं कंबलाणं पायपुंछणाणं आए। सेत्तं अचित्ते।

शब्दार्थ - **पडिग्गहाणं** - पतद्ग्रहाणां - पात्र, **वत्थाणं** - वस्त्रों को, **पायपुंछणाणं** - पाद-प्रोंछन।

भावार्थ - अचित्त लोकोत्तरिक आय का क्या स्वरूप है?

पात्र, वस्त्र, कंबल एवं पादप्रोञ्छन की प्राप्ति अचित्त आय के अन्तर्गत है।

से किं तं मीसए?

मीसए-सिस्साणं सिस्सिणियाणं सभंडोवगरणाणं आए। से तं मीसए। से तं लोगुत्तरिए। से तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वाए। सेत्तं णोआगमओ दव्वाए। सेत्तं दव्वाए।

भावार्थ - मिश्र (लोकोत्तरिक) आय का क्या स्वरूप है?

भंडोपकरणों सहित शिष्य-शिष्याओं की प्राप्ति मिश्र आय के अन्तर्गत है।

यह लोकोत्तरिक मिश्र आय का स्वरूप है।

इस प्रकार नोआगमतः द्रव्य आय के अन्तर्गत ज्ञ शरीर-भव्यशरीर-व्यतिरिक्त द्रव्य आय का विवेचन पूर्ण होता है।

भाव - आय

से किं तं भावाए?

भावाए दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - आगमओ य १ णोआगमओ य २।

भावार्थ - भाव-आय कितने प्रकार की होती है?

यह आगमतः और नोआगमतः के रूप में दो प्रकार की प्रज्ञप्त हुई है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से किं तं आगमओ भावाए?

आगमओ भावाए जाणए उवउत्ते। से तं आगमओ भावाए।

भावार्थ - आगमतःभाव-आय का क्या स्वरूप है?

आय पद के ज्ञाता और उपयोगयुक्त जीव आगमतः भाव आय है।

से किं तं णोआगमओ भावाए?

णोआगमओ भावाए दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - पसत्थे य १ अपसत्थे य २।

भावार्थ - नोआगमतः भाव-आय कितने प्रकार की है?

यह प्रशस्त और अप्रशस्त के रूप में दो प्रकार की प्रज्ञप्त हुई है।

से किं तं पसत्थे?

पसत्थे तिविहे पण्णत्ते। तंजहा - णाणाए १ दंसणाए २ चरित्ताए ३। सेत्तं पसत्थे।

भावार्थ - प्रशस्त (नोआगमतःभाव) आय कितने प्रकार की है?

प्रशस्त आय-ज्ञान आय, दर्शन आय और चारित्र आय के रूप में तीन प्रकार की कही गई है।

यह प्रशस्त आय का स्वरूप है।

से किं तं अपसत्थे?

अपसत्थे चउव्विहे पण्णत्ते। तंजहा - कोहाए १ माणाए २ मायाए ३ लोहाए ४। से तं अपसत्थे। से तं णोआगमओ भावाए। से तं भावाए। से तं आए।

भावार्थ - अप्रशस्त (नोआगमतःभाव) आय कितने प्रकार की बतलाई गई है?

यह चार प्रकार की बतलाई गई है -

१. क्रोध-आय २. मान-आय ३. माया-आय एवं ४. लोभ-आय।

यह अप्रशस्त आय का स्वरूप है।

यह भाव आय के अन्तर्गत नोआगमतः भाव आय का स्वरूप है।

इस प्रकार आय की वक्तव्यता पूर्ण होती है।

विवेचन - उपर्युक्त सूत्रों में प्रशस्त और अप्रशस्त का प्रयोग हुआ है। शंस् धातु में क्त प्रत्यय के योग से शस्त कृदन्त रूप बनता है, जिसका अर्थ स्तुत या प्रशंसित है। **"प्रकर्षेण शस्तः प्रशस्तः"** - जो उत्कृष्ट रूप में, श्लाघास्पद, प्रशंसास्पद होता है, उसे प्रशस्त कहा जाता है। ज्ञान, दर्शन और चारित्र को जो प्रशस्त आय के रूप में आख्यात किया गया है,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उसका आशय यह है कि यह आत्मा की प्रशंसनीय, मोक्षोन्मुख आय या उपलब्धि है जो "**सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः**"✡ से सिद्ध है।

जो प्रशस्त न हो, उसे अप्रशस्त कहा जाता है। अर्थात् श्लाघास्पद न हो, तद्विपरीत हो, उसे अप्रशस्त कहा जाता है। क्रोध, मान, माया, लोभ को अप्रशस्त आय के रूप में इसलिए अभिहित किया गया है कि इनसे आत्मा अश्लाघनीय, निन्दनीय या निम्न अवस्था को प्राप्त करती है। ये कषाय हैं।

से किं तं झवणा?

झवणा चउव्विहा पण्णत्ता। तंजहा - णामज्झवणा १ ठवणज्झवणा २ दव्वज्झवणा ३ भावज्झवणा ४। णामठवणाओ पुव्वं भणियाओ।

शब्दार्थ - झवणा - क्षपणा।

भावार्थ - क्षपणा कितने प्रकार की कही गई है?

यह नामक्षपणा, स्थापनाक्षपणा, द्रव्यक्षपणा और भावक्षपणा के रूप में चार प्रकार की परिज्ञापित हुई है।

नाम और स्थापना का विवेचन पूर्वकृत वर्णन के अनुसार ग्राह्य है।

द्रव्यक्षपणा

से किं तं दव्वज्झवणा?

दव्वज्झवणा दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - आगमओ य १ णोआगमओ य २।

भावार्थ - द्रव्यक्षपणा कितने प्रकार की परिज्ञापित हुई है?

यह आगमतः और नोआगमतः के रूप में दो प्रकार की परिज्ञापित हुई है।

विवेचन - कर्मों के क्षय, निर्जरण या नाश को क्षपणा कहते हैं। अर्थात् जिससे पूर्वबद्ध कर्म खिरते हैं, झड़ते हैं, क्षय प्राप्त करते हैं, वह विधि 'क्षपणा' कहलाती है।

से किं तं आगमओ दव्वज्झवणा?

आगमओ दव्वज्झवणा - जस्स णं 'झवणे' त्ति पयं सिक्खियं, ठियं, जियं, मियं, परिजियं जाव सेत्तं आगमओ दव्वज्झवणा।

भावार्थ - आगमतः द्रव्यक्षपणा का क्या स्वरूप है?

✡ तत्त्वार्थ सूत्र, १, १.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जिसने 'क्षपणा' इस पद को (गुरु से) सीखा है, स्थिर, जित, मित, परिजित किया है यावत् (पूर्व वर्णनानुसार) यह आगमतः द्रव्यक्षपणा का स्वरूप है।

से किं तं णोआगमओ दव्वज्झवणा?

णोआगमओ दव्वज्झवणा तिविहा पण्णत्ता। तंजहा - जाणयसरीर-दव्वज्झवणा १ भवियसरीरदव्वज्झवणा २ जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ता दव्वज्झवणा ३।

भावार्थ - नोआगमतः द्रव्यक्षपणा कितने प्रकार की कही गई है?

यह तीन प्रकार की परिज्ञापित हुई है - १. ज्ञ शरीर द्रव्यक्षपणा २. भव्य शरीर द्रव्यक्षपणा और ३. ज्ञ शरीर-भव्यशरीर-व्यतिरिक्त द्रव्यक्षपणा।

से किं तं जाणयसरीरदव्वज्झवणा?

जाणयसरीरदव्वज्झवणा 'झवणा' पयत्थाहिगारजाणयस्स जं सरीरयं ववगयचुयचावियचत्तदेहं सेसं जहा दव्वज्झयणे जाव सेत्तं जाणयसरीरदव्वज्झवणा।

भावार्थ - ज्ञ शरीर द्रव्यक्षपणा का क्या स्वरूप है?

जिसने क्षपणा पद के अर्थाधिकार को जाना है, उसके चेतना रहित, प्राणशून्य, अनशन द्वारा मृत देह को देखकर कहे-इत्यादि समस्त वर्णन द्रव्य अध्ययन के समान यहाँ ग्राह्य है यावत् यह ज्ञ शरीर द्रव्यक्षपणा का स्वरूप है।

से किं तं भवियसरीरदव्वज्झवणा?

भवियसरीरदव्वज्झवणा जे जीवे जोणिजम्मणणिक्खंते सेसं जहा दव्वज्झयणे जाव सेत्तं भवियसरीरदव्वज्झवणा।

भावार्थ - भव्यशरीर द्रव्यक्षपणा का क्या स्वरूप है?

योनि रूप जन्म स्थान में निःसृत किसी जीव का शरीर (भविष्य में क्षपणा इस पद को सीखेगा) इत्यादि वर्णन द्रव्य अध्ययन की तरह यहाँ ज्ञातव्य है यावत् यह भव्य शरीर द्रव्यक्षपणा का स्वरूप है।

से किं तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ता दव्वज्झवणा?

जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ता दव्वज्झवणा जहा जाणयसरीरभविय-सरीरवइरित्ते दव्वाए तहा भाणियव्वा जाव से तं मीसिया। से तं लोगुत्तरिया। से तं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ता दव्वज्झवणा। से तं णोआगमओ दव्वज्झवणा। से तं दव्वज्झवणा।

भावार्थ - ज्ञ शरीर - भव्य शरीर-व्यतिरिक्त - द्रव्यक्षपणा का क्या स्वरूप है?

ज्ञ शरीर - भव्यशरीर-व्यतिरिक्त-द्रव्य क्षपणा का स्वरूप ज्ञ शरीर - भव्य शरीर-व्यतिरिक्त द्रव्य आय के सदृश है यावत् इसके लौकिक, कुप्रावचनिक एवं लोकोत्तरिक भेद एवं लौकिक के तीन भेद यावत् मिश्र पर्यन्त ज्ञातव्य हैं (अंततः) लोकोत्तरिक का स्वरूप भी (द्रव्य आय) के समान योजनीय है।

इस प्रकार द्रव्यक्षपणा के अन्तर्गत नोआगमतः द्रव्यक्षपणा के ज्ञ शरीर भव्यशरीर-व्यतिरिक्त-द्रव्यक्षपणा का वर्णन परिसमाप्त होता है।

भावक्षपणा

से किं तं भावज्झवणा?

भावज्झवणा दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - आगमओ य १ णोआगमओ य २।

से किं तं आगमओ भावज्झवणा?

आगमओ भावज्झवणा जाणए उवउत्ते। से तं आगमओ भावज्झवणा।

भावार्थ - भावक्षपणा कितने प्रकार की बतलाई गई है?

यह आगमतः एवं नोआगमतः के रूप में दो प्रकार की प्रज्ञप्त हुई है।

आगमतः भावक्षपणा का क्या स्वरूप है?

क्षपणा इस पद का उपयोग युक्त ज्ञाता आगमतः भावक्षपणा रूप है।

यह आगमतः भावक्षपणा का स्वरूप है।

से किं तं णोआगमओ भावज्झवणा?

णोआगमओ भावज्झवणा दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - पसत्था य १ अपसत्था य २।

भावार्थ - नोआगमतः भावक्षपणा के कितने भेद बतलाए गए हैं?

यह प्रशस्त और अप्रशस्त के रूप में दो प्रकार के कहे गए हैं।

से किं तं पसत्था?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पसत्था तिविहा पण्णत्ता। तंजहा - णाणज्झवणा १ दंसणज्झवणा २ चरित्तज्झवणा ३। सेत्तं पसत्था।

भावार्थ - प्रशस्त भावक्षपणा कितने प्रकार की है?

प्रशस्त भावक्षपणा ज्ञानक्षपणा, दर्शनक्षपणा और चारित्रक्षपणा के रूप में तीन प्रकार की परिज्ञापित हुई है। यह प्रशस्त क्षपणा का स्वरूप है।

से किं तं अपसत्था?

अपसत्था चउव्विहा पण्णत्ता। तंजहा - कोहज्झवणा १ माणज्झवणा २ मायज्झवणा ३ लोहज्झवणा ४। से तं अपसत्था।

से तं णोआगमओ भावज्झवणा। से तं भावज्झवणा। से तं झवणा। से तं ओहणिप्फण्णे।

भावार्थ - अप्रशस्त भावक्षपणा कितने प्रकार की होती है?

अप्रशस्त भावक्षपणा चार प्रकार की परिज्ञापित हुई है -

१. क्रोधक्षपणा २. मानक्षपणा ३. मायाक्षपणा और ४. लोभक्षपणा।

यह अप्रशस्त भावक्षपणा का स्वरूप है।

यह भावक्षपणा के अन्तर्गत नोआगमतः भावक्षपणा का विवेचन है।

इस प्रकार ओघनिष्पन्न निक्षेपगत क्षपणा की वक्तव्यता परिसमाप्त होती है।

विवेचन - किसी किसी प्रति में उपर्युक्त मूल पाठ में प्रशस्त अप्रशस्त क्षपणा के भेदों को व्युत्क्रम से लिया है अर्थात् प्रशस्त क्षपणा में चार कषायों की क्षपणा तथा अप्रशस्त क्षपणा में ज्ञान, दर्शन, चारित्र की क्षपणा को बताया गया है।

एक जगह 'प्रशस्त' विशेषण को 'भाव' का और दूसरी जगह 'क्षपणा' का विशेषण माना गया है। अतः प्रशस्त ज्ञान आदि गुणों के क्षय को प्रशस्त भाव क्षपणा के रूप में एवं अप्रशस्त क्रोधादि के क्षय को अप्रशस्त भाव क्षपणा के रूप में ग्रहण किया गया है। इसी आपेक्षिक दृष्टि के कारण किसी-किसी प्रति में यहाँ प्रस्तुत पाठ से भिन्न पाठ दिया गया है।

नामनिष्पन्ननिक्षेप

से किं तं णामणिप्फण्णे?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णामणिप्फण्णे सामाइए। से समासओ चउव्विहे पण्णत्ते। तंजहा - णामसामाइए१ ठवणासामाइए २ दव्वसामाइए ३ भावसामाइए ४।

णामठवणाओ पुव्वं भणियाओ।

भावार्थ - नाम निष्पन्न निक्षेप का क्या स्वरूप है, (कितने प्रकार का होता है)?

नामनिष्पन्न निक्षेप सामायिक (रूप) है। यह चार प्रकार का बतलाया गया है - १. नाम सामायिक २. स्थापना सामायिक ३. द्रव्य सामायिक एवं ४. भाव सामायिक।

(प्रथम एवं द्वितीय भेद) नाम एवं स्थापना का वर्णन पूर्व में वर्णित किया जा चुका है (वैसा ही यहाँ भी योजनीय है)।

द्रव्य सामायिक

दव्वसामाइए वि तहेव जाव सेत्तं भवियसरीरदव्वसामाइए।

से किं तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वसामाइए?

जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वसामाइए पत्तयपोत्थयलिहियं। से तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वसामाइए। से तं णोआगमओ दव्वसामाइए। से तं दव्वसामाइए।

भावार्थ - (तृतीय भेद) द्रव्य सामायिक का वर्णन भी भव्यशरीर द्रव्यसामायिक पर्यन्त (द्रव्यावश्यक के वर्णन की तरह) ज्ञातव्य है।

ज्ञ शरीर-भव्यशरीर-व्यतिरिक्त-द्रव्यसामायिक का क्या स्वरूप है?

पत्र या पुस्तक में लिखित (सामायिक पद) ज्ञ शरीर-भव्य शरीर-व्यतिरिक्त द्रव्य सामायिक है।

यह ज्ञ शरीर-भव्यशरीर-व्यतिरिक्त द्रव्य सामायिक का स्वरूप है।

इस प्रकार द्रव्यसामायिक के अन्तर्गत नोआगमतः द्रव्यसामायिक की विवेच्यता पूर्ण होती है।

भाव सामायिक

से किं तं भावसामाइए?

भावसामाइए दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - आगमओ य १ णोआगमओ य २।

भावार्थ - भाव सामायिक कितने प्रकार की कही गई है?

यह दो प्रकार की बतलाई गई है, यथा - १. आगमतः तथा २. नोआगमतः।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से किं तं आगमओ भावसामाइए?

आगमओ भावसामाइए जाणए उवउत्ते। से तं आगमओ भावसामाइए।

भावार्थ - आगमतः भाव सामायिक का क्या स्वरूप है?

भाव सामायिक (इस पद का) उपयोग युक्त ज्ञाता आगमतः भाव सामायिक रूप है। यह आगमतः भाव सामायिक का स्वरूप है।

से किं तं णोआगमओ भावसामाइए?

णोआगमओ भावसामाइए -

गाहाओ - जस्स सामाणिओ अप्पा, संजमे णियमे तवे।
तस्स सामाइयं होइ, इइ केवलिभासियं॥१॥
जो समो सव्वभूएसु, तसेसु थावरेसु य।
तस्स सामाइयं होइ, इइ केवलिभासियं॥२॥

शब्दार्थ - **सामाणिओ** - सामानिक - सन्निहित, **अप्पा** - आत्मा, **संजमे** - संयम में, **तवे** - तप में, **केवलिभासियं** - सर्वज्ञ द्वारा भाषित।

भावार्थ - नो आगमतः भाव सामायिक का क्या स्वरूप है?

गाथा - जिसकी आत्मा संयम (मूलगुणों) नियम (उत्तरगुणों) और तप (अनशन आदि तपों) में संलग्न, सन्निहित और समाहित रहती है, उसके सामायिक सिद्ध होती है। सर्वज्ञ जिनेश्वर देव ने ऐसा भाषित किया है॥१॥

जो त्रस और स्थावर - दोनों ही प्रकार के जीवों के प्रति समान भाव से वर्तन करता है, समत्व युक्त होता है, उसके सामायिक स्वायत्त होती है, ऐसी केवली भगवन्त की प्ररूपणा है॥२॥

सामायिक हेतु अधिकृत

जइ मम ण पियं दुक्खं, जाणिय एमेव सव्वजीवाणं।
ण हणइ ण हणावेइ य, सममणइ तेण सो समणो॥३॥
णत्थि य से कोइ वेसो, पिओ य सव्वेसु चेव जीवेसु।
एएण होइ समणो, एसो अण्णोऽवि पज्जाओ॥४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ - **जह** - जैसे, **ण** - नहीं, **पियं** - प्रिय, **जाणिय** - जानो, **हणइ** - मारता है, **हणावेइ** - मरवाता है, **वेसो** - द्वेष करने योग्य, **सममणइ** - समान मानता है, **अण्णोऽवि**- दूसरा भी, **पज्जाओ** - पर्यायवाची नाम है।

भावार्थ - जैसे मुझे दुःख प्रिय नहीं है, वैसे ही समस्त जीवों के लिए वह प्रिय नहीं है, इसे जानो॥३॥

अतः जो न किसी का हनन करता है, न किसी का हनन करवाता (मरवाता) है, सभी को समान मानता है, वह इन्हीं कारणों से 'श्रमण' कहा जाता है॥४॥

समस्त जीवों में न किसी से मेरा द्वेष है और प्रेम या राग ही। इस कारण से वह श्रमण कहा जाता है। यह श्रमण शब्द का दूसरा पर्याय (पर्यायवाची शब्द) है।

श्रमण जीवन की विभिन्न उपमाएं

उरगगिरिजलणसागर - णहतलतरुगणसमो य जो होइ।
भमरमियधरणिजलरुह-, रविपवणसमो य सो समणो॥५॥

शब्दार्थ - **उरग** - सर्प, **गिरि** - पर्वत, **जलण** - ज्वलन - अग्नि, **णहतल** - नभतल-आकाश, **तरुगणसमो** - वृक्ष समूह सदृश, **मिय** - मृग, **धरणि** - पृथ्वी, **जलरुह** - कमल, **रवि** - सूर्य।

भावार्थ - जो सर्प, पर्वत, अग्नि, समुद्र, गगनतल, वृक्ष-समूह, भौंरा, मृग, धरती, कमल, सूरज और वायु के सदृश होता है, वही श्रमण है॥५॥

विवेचन - इस सूत्र में श्रमण जीवन की विशेषताओं का उपमाओं द्वारा विश्लेषण किया गया है। काव्यशास्त्र में शब्दसौष्ठव एवं वर्ण सौन्दर्य हेतु अलंकारों के प्रयोग का विधान है। जिस प्रकार कटक-कुण्डल आदि आभूषण देह को सुशोभित करते हैं, उसी प्रकार **'अलंकरोतीति अलंकारः'** के अनुसार अलंकार शब्द रचना में सुंदरता और विशिष्टता का समावेश करते हैं।

अर्थालंकारों में उपमा का अत्यधिक महत्त्व है। विषय के स्वरूप को उपमा द्वारा व्यक्त करने से उसमें वैशद्य आता है। यहाँ श्रमण उपमेय है तथा उरग आदि उपमान हैं, जिन द्वारा श्रमण को उपमित किया गया है। इतने विभिन्न उपमानों का प्रयोग श्रमण जीवन के वैविध्य पूर्ण संयम साधनामय, त्याग-तपस्यामय वैशिष्ट्य का द्योतक है। संक्षेप में इन उपमानों का विवेचन इस प्रकार है -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१. उरग - 'उरसा गच्छतीति उरगः' - छाती के बल रेंगकर चलने के कारण सांप को उरग कहा जाता है। यह योगरूढ शब्द है। वैसे चलने वाले और भी प्राणी हैं किन्तु उरग शब्द साँप के लिए प्रयुक्त है। इसलिए यौगिक होते हुए भी यह रूढ है।

जैसे सर्प अपने लिए स्वयं बिल नहीं बनाता, वह अन्यों द्वारा बनाए गए बिल में रहता है। उसी प्रकार श्रमण अपने लिए आवास का निर्माण नहीं करता।

२. गिरि - जैसे पर्वत, आँधी और तूफान में अविचल रहता है, उसी प्रकार साधु परीषहों एवं उपसर्गों को सहने में आत्मबल के सहारे (पर्वत की तरह) अविचल रहता है।

३. जलन (ज्वलन) - जिस प्रकार अग्नि अपनी ज्वाला से उद्दीप्त रहती है, उसी प्रकार साधु अपने तपोबल से देदीप्यमान रहता है।

४. सागर - जैसे समुद्र कभी भी अपनी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता उसी प्रकार साधु अपनी आचार मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता। अथवा समुद्र जैसे रत्नों का आकर है, वैसे ही साधु ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि गुणों का निधान है।

५. नभमंडल - जैसे गगनतल सर्वत्र निरवलम्ब है, किसी भी अवलंबन पर नहीं टिका है, उसी प्रकार साधु भी अन्य के आधार, अवलंबन या आश्रय पर नहीं होता।

६. तरुगण - जैसे 'वृक्ष समूह' का सिंचन करने वाले पर राग और छेदन करने वाले पर द्वेष नहीं होता, उसी प्रकार साधु निंदा, प्रशंसा, मानापमान में एक समान रहता है।

७. भ्रमर - जैसे भौंरा अनेक फूलों से थोड़ा-थोड़ा रस ग्रहण कर अपनी उदर पूर्ति करता है, उसी प्रकार साधु भी अनेक घरों से थोड़ी-थोड़ी भिक्षा आहार ग्रहण कर अपना निर्वाह करता है।

८. मृग - जैसे मृग हिंसक जन्तुओं, आखेटकों आदि से सदैव भयभीत रहता है, उसी प्रकार साधु संसारभय से सदा भयान्वित या उद्विग्न रहता है।

९. धरणी - जैसे पृथ्वी सब कुछ सहन करती है, उसी प्रकार साधु भी अनुकूल - प्रतिकूल सभी स्थितियों को समभाव से सहता है।

१०. जलरुह - जैसे कमल कीचड़ में उत्पन्न होता है, जल में संवर्द्धित होता है किन्तु उनसे सर्वथा निर्लेप रहता है। उसी प्रकार साधु भी काम-भोगात्मक, मालिन्ययुक्त जगत् में रहता हुआ भी उससे सर्वथा अलिप्त रहता है।

११. रवि - सूर्य अपने प्रकाश से समान रूप में सभी क्षेत्रों को आलोकित प्रकाशित करता है, उसी प्रकार साधु अपने ज्ञानरूपी प्रकाश को धर्म देशना द्वारा सर्वत्र फैलाता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१२. पवन - जिस प्रकार पवन सर्वत्र अप्रतिहत, अनवरूद्ध रूप से चलता है, उसी प्रकार साधु भी सर्वत्र अप्रतिबद्ध विहरणशील होता है।

इन बारह उपमाओं के प्रत्येक के सात-सात भेद करके चौरासी भेद भी बताये गये हैं। श्री अमोलकऋषिजी म. सा. द्वारा संपादित 'जैन तत्त्व प्रकाश' पुस्तक में उन चौरासी भेदों को बताया गया है।

श्रमण का व्युत्पत्ति मूलक निर्वचन

तो समणो जइ सुमणो, भावेण य जइ ण होइ पावमणो।
सयणे य जणे य समो, समो य माणवमाणेसु॥६॥

से तं णोआगमओ भावसामाइए। से तं भावसामाइए। से तं सामाइए। से तं णामणिप्फण्णे।

शब्दार्थ - जइ - यदि, **सुमणो** - श्रेष्ठ, उत्तम मन - मानसिक वृत्ति युक्त, **पावमणो** - पाप पूर्ण मन युक्त, **सयणे** - पारिवारिकजनों के प्रति, **माणावमाणेसु** - सम्मान - तिरस्कार में।

भावार्थ - जिसका मन उत्तम, पवित्र भाव युक्त रहता है, जिसके मन में कभी पाप उत्पन्न नहीं होता, जो अपने सांसारिक संबंधियों के प्रति एवं अन्यों के प्रति सदैव समान भाव लिए रहता है तथा जो मान और अपमान को समान समझता है, वह श्रमण होता है॥६॥

यह नोआगमतः भाव सामायिक है।

इस प्रकार सामायिक के अन्तर्गत भाव सामायिक का विवेचन है।

इस प्रकार नाम निष्पन्न की वक्तव्यता पूर्ण होती है।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में श्रमण का विशिष्ट रूप में शाब्दिक विश्लेषण करते हुए नो-आगमतः भाव सामायिक के संपन्न होने की सूचना है। यह सुविदित है कि सामायिक ज्ञान के साथ क्रिया रूप भी है। क्रिया आगम रूप नहीं मानी जाती। इसलिए यहाँ नोआगमता सिद्ध होती है। किन्तु सामायिक और सामायिकाचरणाशील श्रमण दोनों में अभेदोपचार करने से श्रमण भी नोआगम की अपेक्षा भाव सामायिक है।

सूत्रालापक निष्पन्न निक्षेप

से किं तं सुत्तालावगणिप्फण्णे?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इयाणिं सुत्तालावगणिप्फण्णं णिक्खेवं इच्छावेइ, से य पत्तलक्खणे वि ण णिक्खिप्पइ।

कम्हा?

लाघवत्थं। अत्थि इओ तइए अणुओगदारे अणुगमे त्ति। तत्थ णिक्खत्ते इहं णिक्खित्ते भवइ। इहं वा णिक्खित्ते तत्थ णिक्खित्ते भवइ। तम्हा इहं ण णिक्खिप्पइ, तहिं चेव णिक्खिप्पइ। से तं णिक्खेवे।

शब्दार्थ - **सुत्तालावगणिप्फण्णे** - सूत्रालापक निष्पन्न, **इयाणिं** - इस समय, **इच्छावेइ**- इच्छा है, **पत्तलक्खणे** - प्राप्त लक्षण, **णिक्खिप्पइ** - निक्षेप करते हैं, **लाघवत्थं** - लाघव हेतु, **इओ** - इससे, **तइए** - तीसरा।

भावार्थ - सूत्रालापक निष्पन्न (निक्षेप) का क्या स्वरूप है?

इस समय - नाम निष्पन्न निक्षेप का वर्णन करने के पश्चात् सूत्रालापक निष्पन्न निक्षेप प्राप्त लक्षण है। उसका लक्षण, विवेचन करने का अवसर है। किन्तु आगे अनुगम नामक तीसरे अनुयोग द्वार में इसी का वर्णन किये जाने से लाघव - संक्षेप की दृष्टि से अभी निक्षेप नहीं किया जा रहा है क्योंकि यहाँ निक्षेप करने से वहाँ निक्षेप हो जाता है (पुनरावृत्ति हो जाती है)। इसलिए यहाँ निक्षेप नहीं किया जा रहा है, वहीं पर निक्षेप किया जायेगा।

यह निक्षेप का स्वरूप है।

(१५२)

अनुगम विवेचन

से किं तं अणुगमे?

अणुगमे दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - सुत्ताणुगमे य १ णिज्जुत्तिअणुगमे य २।

भावार्थ - अनुगम कितने प्रकार का बतलाया गया है?

यह सूत्रानुगम और निर्युक्त्यनुगम के रूप में दो प्रकार का बतलाया गया है।

से किं तं णिज्जुत्तिअणुगमे?

णिज्जुत्तिअणुगमे तिविहे पण्णत्ते। तंजहा - णिक्खेवणिज्जुत्तिअणुगमे १ उवग्घायणिज्जुत्तिअणुगमे २ सुत्तप्फासियणिज्जुत्तिअणुगमे ३।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - निर्युक्त्यनुगम कितने प्रकार का बतलाया गया है?

यह तीन प्रकार का कहा गया है, यथा - १. निक्षेपनिर्युक्त्यनुगम २. उपोद्घात निर्युक्त्यनुगम और ३. सूत्रस्पर्शिक निर्युक्त्यनुगम।

१. निक्षेपनिर्युक्त्यनुगम

से किं तं णिक्खेवणिज्जुत्तिअणुगमे?

णिक्खेवणिज्जुत्तिअणुगमे अणुगए। से तं णिक्खेवणिज्जुत्तिअणुगमे।

भावार्थ - निक्षेपनिर्युक्त्यनुगम का क्या स्वरूप है?

निक्षेपनिर्युक्त्यनुगम का अनुगम पूर्ववत् योजनीय है।

यह निक्षेपनिर्युक्त्यनुगम का स्वरूप है।

(यहाँ पूर्ववत् का तात्पर्य सामायिक आदि पदों की विवेचना के अन्तर्गत नाम, स्थापना विषयक वर्णनों से है)।

२. उपोद्घातनिर्युक्त्यनुगम

से किं तं उवग्घायणिज्जुत्तिअणुगमे?

उवग्घायणिज्जुत्तिअणुगमे इमाहिं दोहिं मूलगाहाहिं अणुगंतव्वो, तंजहा -

गाहाओ - उद्देसे णिद्देसे य, णिग्गमे खेत्त काल पुरिसे य।
कारण पच्चय लक्खण, णए समोयारणाणुमए॥१॥
किं कइविहं कस्स कहिं, केसु, कहं किच्चिरं हवइ कालं।
कइ संतर - मविरहियं, भवागरिस फासण णिरुत्ती॥२॥

सेत्तं उवग्घायणिज्जुत्तिअणुगमे।

शब्दार्थ - **इमाहिं** - इन, **गाहाहिं** - गाथाओं से, **अणुगंतव्वो** - अनुगम करना चाहिए।

भावार्थ - उपोद्घातनिर्युक्त्यनुगम का क्या स्वरूप है?

इन दो गाथाओं से इसका अनुगमन करना चाहिए, इसका अर्थ जानना चाहिए -

१. उद्देश २. निर्देश ३. निर्गम ४. क्षेत्र ५. काल ६. पुरुष ७. कारण ८. प्रत्यय ६. लक्षण १०. नय ११. समवतारानुमत १२. किम् (क्या) १३. कितने तरह की १४. किसको १५. कहां पर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१६. किनमें १७. कैसे १८. कियत् काल तक (होता है) १९. कितने २०. सांतर (अंतर-विरहकाल) २१. अविरहित - विरह काल रहित २२. भव २३. आकर्ष २४. स्पर्शन २५. निर्युक्ति॥१,२॥

इन प्रश्नों का उत्तर उपोद्घात निर्युक्त्यनुगम स्वरूप है।

विवेचन - उपोद्घात निर्युक्त्यनुगम - उपोद्घात निर्युक्त्यनुगम का विवेचन इस प्रकार किया गया है - **उपोद्हननं - व्याख्येयस्यं सूत्रस्य व्याख्याविधि समीपीकरणमुपोद्घातस्तस्य** तद्विषया वा निर्युक्ति उपोद्घातनिर्युक्तिः, तद्रूपस्तस्या वा अनुगमः उपोद्घात निर्युक्त्यनुगमः। व्याख्येय सूत्र की व्याख्या विधि का निकटीकरण करना उपोद्घात है, उसकी (उपोद्घात करने वाली) या तद्विषयक निर्युक्ति को उपोद्घात निर्युक्ति कहते हैं। उपोद्घात निर्युक्ति का या तद्रूप अनुगम 'उपोद्घात निर्युक्त्यनुगम' कहते हैं।

उपर्युक्त गाथाद्वय में उपोद्घात निर्युक्त्यनुगम विषयक प्रश्नों का उपपादन किया गया है। उनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है -

१. उद्देश - सामान्य रूप से कथन करना उद्देश कहा जाता है। जैसे - अध्ययन।

२. निर्देश - उद्देश का विशेष रूप से नाम निर्देश करना निर्देश या अभिधान निर्देश कहा जाता है।

३. निर्गम - वस्तु विशेष के निर्गमन, निःसरण के आधार या स्त्रोत का वर्णन करना निर्गम है। जैसे - सामायिक का निर्गम या स्त्रोत कहां से हुआ ? अर्थतः उसका स्त्रोत तीर्थंकरों से और सूत्रापेक्षया गणधरों से हुआ।

४. क्षेत्र - किस क्षेत्र में सामायिक की उत्पत्ति हुई? सामान्यतः समय क्षेत्र में तथा विशेषतः मध्यम पावापुरी के महासेन नामक वनोद्यान में।

५. काल - किस काल में सामायिक का उद्भव हुआ? वर्तमान काल की अपेक्षा से वैशाख शुक्ला एकादशी के दिन प्रथम पौरूषी काल में इसका उद्भव हुआ।

६. पुरुष - किस पुरुष द्वारा सामायिक का समुद्भव हुआ? सर्वज्ञ पुरुषों ने सामायिक का निरूपण किया। अथवा जिनशासन की अपेक्षा से श्रमण भगवान् महावीर ने सामायिक का उद्बोधन दिया अथवा अर्थ की अपेक्षा भगवान् महावीर ने सामायिक का प्रतिपादन किया और सूत्रापेक्षया गौतम आदि गणधरों ने उसका संग्रथन किया।

७. कारण - गौतम आदि गणधरों ने किस कारण से प्रेरित होते हुए भगवान् महावीर से सामायिक का श्रवण किया?

उन्होंने संयति भाव की सिद्धि हेतु सामायिक का श्रवण किया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

८. प्रत्यय - यह शब्द निमित्त का सूचक है। भगवान् महावीर ने प्रत्यय-नैमित्तिक प्रेरणा से सामायिक का उपदेश दिया। केवलज्ञान - सर्वज्ञत्व प्राप्त होने से भगवान् ने सामायिक चारित्र का उद्बोधन प्रदान किया है। भगवान् केवली हैं, इस प्रतीति से भव्य जीवों ने श्रवण किया।

९. लक्षण - इसका तात्पर्य सामायिक के लक्षण का कथन करना है। जैसे सम्यक्त्व, सत् तत्त्वों की श्रद्धा, श्रुतसामायिक का स्वरूप, जीवादि तत्त्वों का परिज्ञान, चारित्र सामायिक का सर्वसावद्य विरतिमूलक रूप इनके लक्षण का बोध तथा देश चारित्र रूप सामायिक का विरति-अविरति का लक्षण इसके अन्तर्गत है।

१०. नय - नैगम आदि नयों के सिद्धान्तानुसार सामायिक कैसे होती है? जैसे व्यवहारनय से पाठ रूप सामायिक होती है तथा तीन शब्दनयों के अनुसार जीवादि पदार्थ ज्ञान रूप सामायिक होती है।

११. समवतारानुमत - नैगम आदि नयों का जहाँ समवतार, अन्तर्भाव या समावेश संभावित हो, वहाँ उसका निर्देश करना।

कौन नय, किस सामायिक को मोक्षमार्ग रूप मानता है? जैसे - नैगम, संग्रह एवं व्यवहारनय तप-संयमरूप चारित्र सामायिक को, निर्ग्रन्थ प्रवचन रूप श्रुतसामायिक को एवं तत्त्वश्रद्धानयुक्त सम्यक्त्व सामायिक को मोक्षमार्ग मानते हैं।

ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ तथा एवंभूत नय संयम रूप चारित्र सामायिक को ही मोक्षमार्ग स्वरूप मानते हैं क्योंकि सर्वसंवरमय चारित्र के अनंतर ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। इस प्रकार समवतारानुमत के अनुसार नयप्रयोग की यह पद्धति है।

१२. किम् - सामायिक क्या है?

द्रव्यार्थिक नय के अनुसार सामायिक जीवद्रव्य है तथा पर्यायार्थिक नयानुसार सामायिक जीव का गुण है।

१३. कितने तरह की - सामायिक कितने तरह की है?

सामायिक तीन तरह की है - १. सम्यक्त्व सामायिक २. श्रुत सामायिक तथा ३. चारित्र सामायिक। पुनश्च, इसके भेद-प्रभेदों का कथन करना।

१४. किसको - किस जीव को सामायिक प्राप्त होती है?

जिसकी आत्मा संयम, नियम तथा तपश्चरण में सन्निहित-संलग्न होती है तथा जो जीव त्रस् तथा स्थावर - समस्त प्राणीवर्ग पर समत्व भाव रखता है, उस जीव को सामायिक प्राप्त होती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१५. कहाँ - सामायिक कहाँ-कहाँ होती है?

एतद्विषयक निर्देश करना, जैसे क्षेत्र, दिशा, काल, गति, भव्य, संज्ञी, उच्छ्वास, दृष्टि एवं आहारक इत्यादि का आश्रय लेकर कौनसी सामायिक कहाँ संभावित होती है, इसका कथन करना।

१६. किसमें - सामायिक किस-किसमें होती है?

सम्यक्त्व सामायिक सर्वद्रव्यों में तथा सर्वपर्यायों में संभावित है, पर श्रुत तथा चारित्र सामायिक सर्वद्रव्यों में ही होती है, सर्वपर्यायों में नहीं पाई जाती। देशविरति सामायिक न तो सर्वद्रव्यों में और न सर्वपर्यायों में ही संभावित है।

१७. कैसे - जीव सामायिक कैसे प्राप्त करता है?

मनुष्य भव, आर्य क्षेत्र, जाति, कुल, रूप, आरोग्य, आयुष्य, बुद्धि, धर्मश्रवण, धर्मावधारण, श्रद्धा तथा संयम - ये लोक में दुर्लभ द्वादश स्थान प्राप्त होने पर जीव सामायिक को स्वायत्त करता है।

१८. कियत् काल तक - सामायिक कियत्काल तक रह सकती है? दूसरे शब्दों में, सामायिक का कालमान कितना है?

सम्यक्त्व और श्रुत सामायिक की उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक छियासठ सागरोपम है और चारित्र सामायिक की उत्कृष्ट स्थिति देशोन पूर्व कोटि वर्षों की है। इन दोनों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है।

१९. कितने - विवक्षित समय में सामायिक में प्रतिपद्यमान, पूर्व प्रतिपन्न और पतित जीव कितने होते हैं?

सम्यक्त्व और देशविरति सामायिक के प्रतिपद्यमान जीव किसी एक काल में क्षेत्र पल्योपम-असंख्यात भाग प्रदेश प्रमाण होते हैं। इनमें भी देशविरति सामायिक के धारकों की अपेक्षा सम्यक्त्व सामायिक के धारक असंख्यात गुण अधिक हैं।

जघन्य एक अथवा दो हो सकते हैं। श्रेणी के असंख्यातवें भाग में जितने आकाश प्रदेश होते हैं, उत्कृष्टतः उतने ही प्रतिपद्यमान जीव एक काल में सम्यक्त्व - मिथ्याश्रुत भेदों से रहित सामान्य अक्षर श्रुतात्मक श्रुत सामायिक के धारक होते हैं।

जघन्यतः एक, दो होते हैं। सर्वविरति सामायिक के धारक उत्कृष्टतः सहस्र पृथक्त्व प्रमाण और जघन्यतः एक, दो होते हैं।

सम्यक्त्व एवं देशविरति सामायिक के पूर्व प्रतिपन्न, एक समय में उत्कृष्टतः और जघन्यतः असंख्यात होते हैं। सम्यक् और मिथ्या विशेषण से रहित सामान्य अक्षरात्मक श्रुत सामायिक के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एक काल में पूर्व प्रतिपन्न घनीकृत लोकप्रतर के असंख्यातवें भाग में रही हुई असंख्यात श्रेणियों के आकाश प्रदेश जितने होते हैं।

चारित्र सामायिक, देशविरति सामायिक तथा सम्यक्त्व सामायिक - इनमें से प्रपतित जीव सम्यक्त्व आदि सामायिकों के प्राप्त करने वाले तथा पूर्वप्रतिपन्न जीवों की अपेक्षा अनन्तगुणे हैं।

२०. सांतर (अंतर) - सामायिक का अंतर या विरहकाल कितना होता है?

सम्यक् एवं मिथ्या इन विशेषणों से रहित सामान्य श्रुत सामायिक में जघन्यतः अन्तर अन्तर्मुहूर्त्त का होता है तथा उत्कृष्टतः अन्तर -- अनन्तकाल का होता है। एक जीव की अपेक्षा से सम्यक्, श्रुत, देशविरति, सर्व विरति रूप सामायिक का जघन्यकाल जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त तथा उत्कृष्टतः कुछ न्यून अर्द्धपुद्गल परावर्त्त परिमित होता है।

इतना बड़ा अन्तर काल आशातना बहुल जीवों की अपेक्षा से होता है।

२१. अविरहित (निरन्तर काल) - बिना अन्तर के लगातार कितने काल तक सामायिक ग्रहण करने वाले होते हैं?

सम्यक्त्व तथा श्रुत सामायिक के गृहीता अगारी - गृहस्थ निरन्तर उत्कृष्टतः आवलिका के असंख्यातवें भाग परिमित काल तक होते हैं। गृहीता अगारी - अगार धर्म के पालक गृहस्थ उत्कृष्टतः आवलिका के असंख्यातवें भाग प्रमाण तक होते हैं तथा चारित्र सामायिक के गृहीता आठ समय तक होते हैं। जघन्यतः समस्त सामायिकों के गृहीता दो समय तक निरन्तर स्थित रहते हैं।

२२. भव - कितने भव तक सामायिक रह सकती है?

सम्यक्त्व और देशविरति सामायिक पल्य के असंख्यातवें भाग परिमित तथा चारित्र सामायिक आठ भव पर्यन्त और श्रुत सामायिक अनंतकाल तक होती है।

२३. आकर्ष - एक भव में या अनेक भवों में सामायिक के कितने आकर्ष होते हैं?

दूसरे शब्दों में, एक भव में या अनेक भवों में सामायिक कितनी बार धारण की जाती है?

सम्यक्त्व, श्रुत और देशविरति सामायिक के आकर्ष - एक भव में उत्कृष्टतः सहस्र पृथक्त्व परिमित तथा सर्व विरति के आकर्ष-शत पृथक्त्व परिमित होते हैं। जघन्यतः समस्त सामायिकों का आकर्ष - एक भव में एक ही होता है तथा अनेक भवों की दृष्टि से सम्यक्त्व एवं देशविरति सामायिक के उत्कृष्टतः असंख्य सहस्र पृथक्त्व परिमित और सर्वविरति सामायिक के सहस्र पृथक्त्व प्रमाण आकर्ष होते हैं।

२४. स्पर्श - सामायिक युक्त जीव कितने क्षेत्र का स्पर्श करते हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

-सम्यक्त्व एवं सर्वविरति रूप चारित्र सामायिक युक्त जीव उत्कृष्टतः केवलि समुद्घात की अपेक्षा समस्त लोक का तथा जघन्यतः लोक के असंख्यातवें भाग का स्पर्श करते हैं। श्रुत और देशविरति सामायिक कतिपय जीव उत्कृष्टतः चवदह रज्जू प्रमाण लोक, सात रज्जू, पाँच, चार, तीन और दो रज्जू प्रमाण लोक का स्पर्श करते हैं।

२५. निरुक्ति - "निश्चिताः उक्ति निरूक्तिः" - निरूक्ति का अर्थ निश्चित उक्ति या कथन है।

सामायिक की निरूक्ति क्या है?

सम्यक् दृष्टि, अमोह, शोधि, सद्भाव, दर्शन, बोधि, अविपर्यय, सुदृष्टि इत्यादि सामायिक के नाम हैं। अर्थात् सामायिक का पूर्ण वर्णन ही सामायिक की निरूक्ति है।

यह उपोद्घातनिर्युक्त्यनुगम की व्याख्या है। अब सूत्र के प्रत्येक अवयव की विशेष व्याख्या करने रूप सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्त्यनुगम का कथन करते हैं।

३. सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्त्यनुगम

से किं तं सुत्तप्फासियणिज्जुत्तिअणुगमे?

सुत्तप्फासियणिज्जुत्तिअणुगमे - सुत्तं उच्चारेयव्वं-अक्खलियं, अमिलियं, अवच्चामेलियं, पडिपुण्णं, पडिपुण्णघोसं, कंठोट्ठविप्पमुक्कं, गुरुवायणोवगयं। तओ तत्थ णज्जिहिइ ससमयपयं वा परसमयपयं वा, बंधपयं वा मोक्खपयं वा, सामाइयपयं वा णोसामाइयपयं वा। तओ तम्मि उच्चारिए समाणे केसिं च णं भगवंताणं केइ अत्थाहिगारा अहिगया भवंति, केइ अत्थाहिगारा अणहिगया भवंति। तओ तेसिं अणहिगयाणं अहिगमणट्ठाए पयं पएणं वण्णइस्सामि -

गाहा - संहिया य पयं चेव, पयत्थो पयविग्गहो।
चालणा य पसिद्धी य, छव्विहं विद्धि लक्खणं॥१॥

से तं सुत्तप्फासियणिज्जुत्तिअणुगमे। से तं णिज्जुत्तिअणुगमे। से तं अणुगमे।

शब्दार्थ - **सुत्तप्फासियणिज्जुत्तिअणुगमे** - सूत्रस्पर्शकनिर्युक्त्नुगम, **उच्चारेयव्वं** - उच्चारण करना चाहिए, **अक्खलियं** - अस्खलित, **अमिलियं** - अमिलित, **अवच्चामेलियं** - अव्यत्याम्रेडित, **कंठोट्ठविप्पमुक्कं** - कंठोष्ठ विप्रमुक्त, **गुरुवायणोवगयं** - गुरुवाचनोपगत,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णेज्जिहिइ - ज्ञात होता है, **ससमयपयं** - स्वसमयपद, **तम्मि** - उसके, **केसिं** - किन, **अहिगया** - अधिगत - प्राप्त, **अणहिगयाणं** - अनधिगत - अज्ञात, **अहिगमणट्ठाए** - अभिगमन के अर्थ में, **वण्णइस्सामि** - वर्णन करूंगा, **संहिया** - संहिता, **पयविग्गहो** - पदविग्रह, **चालणा** - संचालन करना, **विद्धि** - वृद्धि (सूत्र व्याख्या)।

भावार्थ - सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्त्यनुगम क्या है?

सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्त्यनुगम में अस्खलित, अमिलित, अव्यत्याम्रेडित, प्रतिपूर्ण, प्रतिपूर्णघोष, कंठोष्ठविप्रमुक्त तथा गुरुवाचनोपगत रूप से सूत्र का उच्चारण करना चाहिए। इस प्रकार सूत्र का उच्चारण करने से यह अवगत होगा कि यह स्वसमय पद है या परसमय पद है या बंध पद है या मोक्षपद है या सामायिक पद है या नो सामायिक पद है।

इस प्रकार दोष रहित विधि से सूत्र का उच्चारण करने पर कितने ही साधु भगवंतों को कई एक अर्थाधिकार - अधिगत हो जाते हैं। तथा किन्हीं-किन्हीं को कतिपय अनधिगत रहते हैं। अर्थात् ज्ञात या प्राप्त नहीं होते। अतएव उन अनधिगत अर्थों का अधिगम - ज्ञान कराने के लिए एक-एक पद को कहूंगा - व्याख्या करूंगा। उसकी विधि इस प्रकार है -

गाथा - संहिता १. पद २. पदच्छेद ३. पदों का अर्थ ४. पद्र-विग्रह ५. चालना ६. प्रसिद्धि - इनके आधार पर छह प्रकार से व्याख्या करने की विधि है।

यह सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्त्यनुगम का स्वरूप है।

इस प्रकार निर्युक्त्यनुगम तथा अनुगम की वक्तव्यता वर्णन पूर्ण होती है।

विवेचन - इस सूत्र में उच्चारण के संबंध में अस्खलित आदि के रूप में जिन बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए, उनका संक्षेप में वर्णन इस प्रकार है -

१. अस्खलित - पाठ में स्खलन न करना, पाठ का यथा प्रवाह उच्चारण करना।

२. अमिलित - अक्षरों को परस्पर न मिलाते हुए उच्चारणीय पाठ के साथ किन्हीं दूसरे अक्षरों को न मिलाते हुए उच्चारण करना।

३. अव्यत्याम्रेडित - अन्य सूत्रों, शास्त्रों के पाठ को समानार्थक जानकर उच्चार्य्य पाठ के साथ मिला देना व्यत्याम्रेडित है। ऐसा न करना अव्यत्याम्रेडित है।

४. प्रतिपूर्ण - पाठ का पूर्ण रूप से उच्चारण करना, उसके किसी अंग को अनुच्चारित न रखना।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

५. प्रतिपूर्णघोष - उच्चारणीय पाठ का मंद स्वर द्वारा, जो कठिनाई से सुनाई दे वैसा उच्चारण न करना, पूरे स्वर से स्पष्टतया उच्चारण करना।

६. कण्ठोष्ठविप्रमुक्त - उच्चारणीय पाठ या पाठांश को गले और होठों में अटका कर अस्पष्ट नहीं बोलना।

इसी सूत्र में निर्दोष विधि से उच्चारण करने का विशेष रूप से संकेत किया गया है। उच्चारण विधि के बत्तीस (३२) दोष माने गए हैं, जिन्हें उच्चारण करते समय अवश्य टालना चाहिए, वे निम्नांकित हैं -

१. अलीक - अलीक का अर्थ असत्य है। अविद्यमान या असद्भूत पदार्थों का सद्भाव बताना अलीक दोष है। जैसे सृष्टि का कोई रचयिता है। आत्मा नहीं है, इत्यादि।

२. उपघात - जीवों के घात या हिंसा का विधान करना, जैसे - **"वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति"** - वेदविधि से यज्ञ में होने वाली 'हिंसा' हिंसा नहीं है।

३. निरर्थक - जिन अक्षरों का अनुक्रम पूर्वक उच्चारण तो प्रतीत हो किन्तु अर्थ कुछ भी न निकले। जैसे अ, आ, इ आदि स्वरों का उच्चारण तथा डित्थ, डवित्थ आदि स्वरों का प्रयोग।

४. अपार्थक - यथार्थ अभिप्राय को व्यक्त न करने वाले शब्दों का उस अर्थ में प्रयोग करना।

५. छल दोष - ऐसे पद का प्रयोग करना जिसका अभीप्सित अर्थ न हो, जैसे - **"नव कंबलोऽयं माणवकः"** - यहाँ नव शब्द का अर्थ नवीन है किन्तु उसका अर्थ नौ भी हो सकता है।

इसलिए यदि कोई नूतन अर्थ करे तो छल द्वारा उसे खंडित करने का अवसर रहता है।

६. द्रुहिल दोष - पापपूर्ण व्यापार का पोषण करना।

७. निस्सार वचन - साररहित या अयुक्तियुक्त वचन बोलना।

८. अधिक - जहाँ अक्षर, पद आदि वांछित से अधिक हों, वैसा प्रयोग करना।

९. ऊनदोष - जहाँ अक्षर पदादि हीन हों अथवा हेतु एवं दृष्टान्त की न्यूनता हो।

१०. पुनरुक्त दोष - शब्द और अर्थ की दृष्टि से पुनरुक्त दो प्रकार का है। जिस शब्द का एक बार उच्चारण किया जाय, पुनः उसी का उच्चारण करना पुनरुक्त शब्द दोष है, उसी प्रकार अर्थ को पुनरुक्त करना।

११. व्याहत - जहाँ पूर्व वचन का उत्तर वचन से खंडन हो। जैसे - कर्म है किन्तु उसका कोई कर्त्ता नहीं है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१२. अयुक्त - जो वचन युक्ति, उपपत्ति से सर्वथा असंगत हो, उसे अयुक्त कहा जाता है। जैसे - 'वन्ध्यापुत्र, गगन पुष्प लेकर सूंघने लगा'।

१३. क्रमभिन्न - जिसमें अनुक्रम से कथन न हो। जैसे - संवर, मोक्ष, निर्जरा, आस्रव, अजीव, पाप, जीव, पुण्य।

१४. वचनभिन्न - जहाँ विशेषण - विशेष्य एवं क्रिया आदि में वचन की विसंगति या भिन्नता हो। जैसे - वृक्षाः पुष्पितः।

१५. विभक्तिभिन्न - जहाँ वाक्य में विभक्तियों की विसंगति एवं विपरीतता हो। जैसे - "व्यायामं कुरु" के स्थान पर "व्यायामः कुरु।"

१६. लिंग - वाक्य के विशेषण - विशेष्य आदि में लिंगात्मक विसंगति - विपरीतता होना, लिंगदोष है। जैसे - "अयं कन्या"।

१७. अनभिहित - अपने सिद्धान्त में जो पदार्थ गृहीत नहीं हैं, उनका उपदेश करना। जैसे जैन दर्शन के विवेचन के संदर्भ में ईश्वर द्वारा सृष्टि की रचना करने का विधान करना।

१८. अप - छन्द विशेष के स्थान पर तद् भिन्न छन्द का उच्चारण करना। जैसे इन्द्रवज्रा पद के स्थान पर वसन्ततिलका के पद का उच्चारण करना।

१९. स्वभावहीन - जिस पदार्थ का जो स्वभाव हो, उससे विपरीत उच्चारण करना। जैसे - आकाश मूर्त्त है।

२०. व्यवहित - जिस का कथन शुरु किया हो, उसे छोड़ कर किसी दूसरे को ले लिया जाय, उसकी व्याख्या करने के बाद फिर पहले को लिया जाय, यों दोनों के मध्य व्यवधान आ जाता है।

२१. काल - भूतकाल के वचन का वर्तमान काल में उच्चारण करना। "सिकंदर ने भारत पर आक्रमण किया" के स्थान पर "सिकंदर भारत पर आक्रमण कर रहा है।"

२२. यति - अनुपयुक्त स्थान पर विराम लेना अथवा विराम बिल्कुल भी न लेना।

२३. छवि - अनुचित, असंगत, सामंजस्य रहित अलंकार का प्रयोग करना।

२४. समयविरुद्ध - स्वसिद्धान्त से विपरीत प्रतिपादन करना।

२५. वचनमात्र - निरर्थक, निर्हेतुक वचनों का उच्चारण करना।

२६. अर्थापत्ति - जिस स्थान पर अर्थापत्ति के कारण अनिष्ट अर्थ की प्राप्ति हो। जैसे - देवदत्त मोटा है, दिन में नहीं खाता अर्थात् वह रात्रि में खाता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२७. अ समास - जहाँ पर समासविधि प्राप्त हो, समास करणीय हो, वहाँ समास न करना। जहाँ समास की प्राप्ति न हो, तद्भिन्न समास करना।

२८. उपमा - हीन, असंगत, विपरीत उपमा देना। मेरू सर्षप जैसा है।

२९. रूपक - निरूपणीय मूल वस्तु की उपेक्षा कर उसके अवयवों का निरूपण करना। जैसे - पर्वत के निरूपण को छोड़ कर उसके शिखर, उपत्यका, अधीत्यका का वर्णन करना।

३०. अवयव - निर्दिष्ट पदों की जहाँ एक वाचकता न हो।

३१. पदार्थ - वस्तु के पर्याय को एक पृथक् पदार्थ मानना।

३२. संधि - जहाँ संधि होनी चाहिए वहाँ न करना अथवा नियम विरुद्ध करना।

अर्थों के अभिगम की विधि में प्रयुक्त संहिता आदि का विश्लेषण इस प्रकार है, जिनका इस सूत्र के अन्तर्गत गाथा में उल्लेख हुआ है -

१. संहिता - अस्खलित रूप में पदों का उच्चारण करना।

२. पद - सुबन्त एवं तिङन्त (सुप्तिङन्तं पदम् - सुबन्तं तिङन्तं च पद संज्ञं स्यात्-) के अनुसार सु औजस, तिप तस् झि के अनुसार स्वरान्त हसन्त आदि संज्ञापद अस्मद्-युष्मद् आदि सर्वनाम पद परस्मैपदी, आत्मनेपदी आदि धातुनिष्पन्न क्रिया पद 'पद' कहलाते हैं।

३. पदार्थ - पद का अर्थ करना पदार्थ कहलाता है।

४. पदविग्रह - संयुक्त पदों का प्रकृति-प्रत्ययात्मक विभाग रूप विस्तार करना पद विग्रह है। जैसे - 'नरेशः' का पद विग्रह 'नराणाम् ईशः' है।

५. चालना - प्रश्नोत्तरों द्वारा सूत्र एवं अर्थ की पुष्टि करना चालना है।

६. प्रसिद्धि - सूत्र एवं उसके अर्थ का युक्ति, न्याय एवं तर्क पूर्वक जैसा वह है, उसी प्रकार उसे स्थापित एवं ख्यापित करना।

शंका - सूत्र व्याख्यान के इस षड्विध लक्षण के संबंध में प्रश्न उपस्थित होता है कि इसमें कितना सूत्रानुगम का विषय है, कितना सूत्रालापक का तथा कितना सूत्रस्पर्शिक निर्युक्त्यनुगम का विषय है? तथा नय का क्या विषय है?

समाधान - इसका समाधान यह है कि पदच्छेद सहित सूत्र का कथन करते सूत्रानुगम कृतार्थ हो जाता है, अर्थात् - सूत्रानुगम का विषय तो इतना ही है कि वह पदच्छेदयुक्त सूत्र का उच्चारण करे। सूत्रोच्चारण करके उसका पदच्छेद करना सूत्रानुगम का कार्य है। सूत्रानुगम जब यह कार्य कर चुकता है, तब सूत्रालापक निक्षेप का यह कार्य होता है कि वह सूत्रालापकों को नाम, स्थापना आदि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

निक्षेपों से निक्षिप्त करे। अर्थात् सूत्रालापकों को नाम, स्थापना आदि निक्षेपों में वह विभक्त करता है। इतने से वह कृतार्थ हो जाता है। तदनन्तर पदार्थ, पदविग्रह आदि जो और कार्य बचता है, उसे सूत्रस्पर्शिक निर्युक्त्यनुगम सम्पन्न करता है। इसी प्रकार नैगम, संग्रह आदि जो सात नय हैं, उनका विषय भी प्रायः पदार्थ आदि का विचार करना है। वस्तुतः नैगमादि नय भी जब पदार्थ आदि को विषय करते हैं, तब सूत्रस्पर्शिक निर्युक्ति के अन्तर्गत हो जाते हैं।

(१५३)

नय-विश्लेषण

से किं तं णए?

सत्त मूलणया पण्णत्ता। तंजहा - णेगमे १ संगहे २ ववहारे ३ उज्जुसुए ४ सद्दे ५ समभिरूढे ६ एवंभूए ७। तत्थ गाहाओ -

णेगेहिं माणेहिं, मिणइत्ति णेगमस्स य णिरुत्ती।
सेसाणं पि णयाणं, लक्खणमिणमो सुणह वोच्छं॥१॥
संगहियपिंडियत्थं, संगहवयणं समासओ बिंति।
वच्चइ विणिच्छियत्थं, ववहारो सव्वदव्वेसु॥२॥
पच्चुप्पण्णग्गाही, उज्जुसुओ णयविही मुणेयव्वो।
इच्छइ विसेसियतरं, पच्चुप्पण्णं णओ सद्दो॥३॥
वत्थूओ संकमणं, होइ अवत्थू णए समभिरूढे।
वंजणअत्थतदुभयं, एवंभूओ विसेसेइ॥४॥

शब्दार्थ - **णेगेहिं** - अनेक द्वारा, **माणेहिं** - मानों - मापदण्डों द्वारा, **मिणइत्ति** - मापता है, **इणमो** - यह, **सुणह** - सुनो, **वोच्छं** - कहूँगा, **संगहियपिंडियत्थं** - सम्यक् प्रकार से गृहीत पिंडितार्थ, **पच्चुप्पण्णग्गाही** - प्रत्युत्पन्नग्राही - वर्तमान कालवर्ती पर्याय को ग्रहण करने वाला, **णयविहि** - नयविधि, **सद्दो** - शब्द, **वत्थुओ** - वस्तु का, **संकमणो** - संक्रमण, **वंजण** - व्यंजन - शब्द, **अत्थ** - अर्थ।

भावार्थ - नय का क्या स्वरूप है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मौलिक रूप में सात नय बतलाए गए हैं - १. नैगम २. संग्रह ३. व्यवहार ४. ऋजुसूत्र ५. शब्द ६. समभिरूढ तथा ७. एवंभूत।

गाथाएं - अनेक मानों, मापदण्डों द्वारा जो वस्तु के स्वरूप का विवेचन करता है, वह नैगमनय है। यह इसका निरूक्ति-व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है। सुनो, अवशिष्ट नयों का लक्षण इस प्रकार है, जिन्हें मैं कहने जा रहा हूँ॥१॥

सम्यक् रूप में गृहीत एक जाति को प्राप्त सामान्य रूप अर्थ जिसका विषय है, वैसा वचन संग्रहनय है, संक्षेप में सर्वज्ञों ने ऐसा बतलाया है। व्यवहार समस्त द्रव्यों में विनिश्चित अर्थ को बतलाता है॥२॥

ऋजुसूत्र वर्तमान भावी पर्याय को ग्रहण करता है। इस नय का यह विधिक्रम ज्ञातव्य है। ऋजुसूत्र की अपेक्षा विशिष्टतर प्रत्युत्पन्न विषय को शब्दनय बतलाता है॥३॥

समभिरूढ नय वस्तु का अवस्तु में संक्रमण होना मानता है। एवंभूत नय शब्द एवं अर्थ इन दोनों की विशेष रूप से स्थापना करता है॥४॥

विवेचन - उपर्युक्त चार गाथाओं में सात नयों का संक्षेप में सारांश बतलाया गया है -

१. नैगमनय - इसे अनेक मानों से निरूपित होना बतलाया गया है, वह **'सामान्य विशेषग्राही नैगमः'** इस परिभाषा के अनुरूप है। क्योंकि अनेक मानदण्डों से निरूपण करने का अर्थ - सामान्य तथा विशेषमूलक एकाधिक दृष्टिकोणों से वस्तु का स्वरूप बतलाना है।

२. संग्रहनय - इसमें पिण्डितार्थ को प्रतिपादित करने का उल्लेख किया गया है, इसका आशय सामान्य मात्रग्राही संग्रह से फलित होता है, क्योंकि सामान्य में समग्र अर्थों का समुच्चयात्मक अर्थ आ जाता है, जिसे गाथाकार ने पिण्डितार्थ कहा है। जैसे किसी पिण्ड में सभी कण समवेत रूप में सम्मिश्रित हो जाते हैं, उसी प्रकार संग्रह में सामान्य के अन्तर्गत सभी का समावेश हो जाता है।

३. व्यवहारनय - इस गाथा में सामान्य को विनिश्चितार्थ ज्ञापक कहा है। विनिश्चितार्थ वह होता है, जो व्यवहारोपयोगी विशेष धर्मग्राही हो।

४. ऋजुसूत्रनय - यह प्रत्युत्पन्नग्राही बतलाया गया है। जिसका तात्पर्य भूत, भविष्य रहित केवल वर्तमानवर्ती पर्याय को ग्रहण करना है।

५. शब्द - जो ऋजुसूत्र की अपेक्षा सूक्ष्मता लिए रहता है, अनेक पर्यायवाची शब्दों द्वारा सूचित वाच्यार्थ के एकत्व को जो ग्रहण करता है, वह शब्दनय है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

६. समभिरूढ - यहाँ वस्तु का अवस्तु में संक्रमण करने का तात्पर्य है कि जो व्युत्पत्ति की भिन्नता के आधार पर भिन्न-भिन्न अर्थ को ग्रहण करता है, वह समभिरूढ नय है।

७. एवंभूतनय - यहाँ शब्द, अर्थ एवं दोनों को ग्रहण करने का आशय यह है कि वह सीधे व्युत्पत्ति से सिद्ध अर्थ का प्रतिपादन करता है।

नयवर्णन की उपयोगिता

णायम्मि गिण्हियव्वे, अगिण्हियव्वम्मि चेव अत्थम्मि।
जइयव्वमेव इइ जो, उवएसो सो णओ णाम॥५॥
सव्वेसिं पि णयाणं, बहुविहवत्तव्वयं णिसामित्ता।
तं सव्वणयविसुद्धं, जं चरणगुणट्ठिओ साहू॥६॥
सेत्तं णए।

॥ अणुओगद्दारा समत्ता॥

शब्दार्थ - **णायम्मि** - जानकर, **गिण्हियव्वे** - ग्रहण करने योग्य, **जइयव्वमेव** - प्रयत्न करना चाहिए, **उवएसो** - उपदेश, **णिसामित्ता** - सुनकर, **चरणगुणट्ठिओ** - चारित्रगुण में स्थित, **साहू** - साधु।

भावार्थ - ग्रहण करने योग्य और न ग्रहण करने योग्य अर्थ को जानकर उपदेश के अनुरूप प्रयत्नशील होना चाहिए। इस प्रकार का जो उपदेश है, वह नय है॥५॥

सब प्रकार के नयों की बहुविध वक्तव्यता का श्रवण कर सर्वनय विशुद्ध सम्यक्त्व चारित्र में स्थित रहता है, वही साधु है।

यह नय का स्वरूप विश्लेषण है।

इस प्रकार अनुयोग द्वार की वक्तव्यता समाप्त होती है।

प्रशस्ति गाथाएं

सोलससयाणि चउरुत्तराणि, होंति उ इमंमि गाहाणं।
दुसहस्स मणुट्ठुभ-, छंदवित्तपमाणओ भणिओ॥१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णयरमहादारा इव, उवक्कम दाराणुओगवरदारा।
अक्खरबिंदुगमत्ता, लिहिया दुक्खक्खयट्ठाए॥२॥

॥ अणुओगदारसुत्तं समत्तं॥

शब्दार्थ - **सोलससयाणि** - सोलह सौ, **चउरुत्तराणि** - चार अधिक, **इमंमि** - इसमें, **दुसहस्स मणुट्ठुभ** - दो हजार अनुष्टुप्, **णयरमहादारा** - नगर के विशाल द्वारों, **उवक्कम** - उपक्रम, **अक्खरबिंदुगमत्ता** - अक्षर, बिन्दु, मात्रा, **लिहिया** - लिखित, **दुक्खक्खयट्ठाए** - दुःखक्षयार्थम् - दुःख के क्षय हेतु।

भावार्थ - अनुयोगद्वार सूत्र में कुल सोलह सौ चार (१६०४) गाथाएँ (गाथा छन्द के प्रमाण से)। इसका रचना प्रमाण दो हजार (२०००) अनुष्टुप् छन्द परिमित है॥१॥

नगर के विशाल श्रेष्ठ द्वारों के समान इसके (चार) मुख्य द्वार हैं। इसमें उल्लिखित अक्षर, बिन्दु और मात्राएँ समस्त दुःखों की नाश की हेतुभूत हैं॥२॥

विवेचन - यद्यपि ये गाथायें मूल सूत्र में नहीं हैं। वृत्तिकारों ने भी इनकी वृत्ति नहीं लिखी है। तथापि सारांश अच्छा होने से अनुयोगद्वार सूत्र की पूर्ति के पश्चात् इनको उद्धृत किया गया है। गाथार्थ सुगम और सुबोध है।

संस्कृत में जिस छन्द को 'आर्या' कहा जाता है, प्राकृत में उसे 'गाहा या गाथा' कहा जाता है। उसका लक्षण निम्नांकित है -

'यस्या पादे प्रथमे द्वादश, मात्रास्तथातृतीयेषु।
अष्टादश द्वितीये, चतुर्थके पञ्चदशार्या॥'

जिसके पहले और तीसरे चरण में बारह मात्राएं तथा दूसरे पद में अठारह और चतुर्थ पद में पन्द्रह मात्राएँ हों, वह आर्या या गाथा छन्द कहलाता है।

॥ अनुयोग द्वार सूत्र समाप्तम्॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ
ब्यावर (राज.)

मुद्रक
स्वस्तिक प्रिन्टर्स
प्रेम भवन हाथी भाटा, अजमेर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org